नमो नमो निम्मलदंसणस्स

पूज्य आनंद-क्षमा-ललित-सुशील-सुधर्मसागर-गुरुभ्यो नमः

सवृत्तिक-आगम-सुत्ताणि

भाग 39



आगम ४५

"अनुयोगद्वार" मूलं एवं वृत्तिः

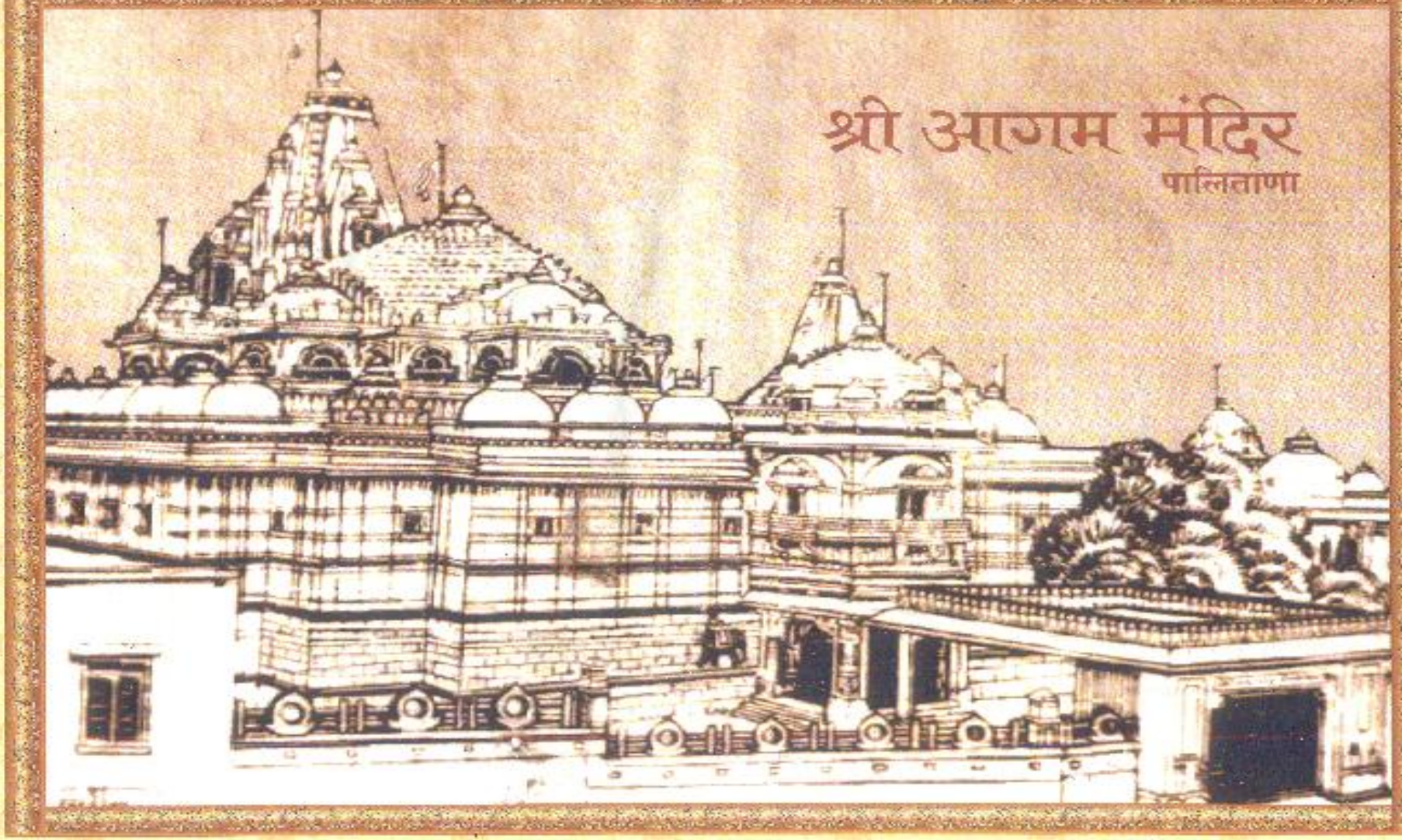
मूल संशोधक :- पूज्यपाद आगमोद्धारक आचार्यश्री आनंदसागरसूरीश्वरजी महाराजसाहेब

अभिनव-संकलनकर्ता :- आगम दिवाकर मुनिश्री दीपरत्नसागरजी [M.Com., M.Ed., Ph.D., श्रुतमहर्षि]

पूज्य शासनप्रभावक आचार्यश्री हर्षसागरसूरिजी की प्रेरणा से

'वर्धमान जैन आगम मंदिर संस्था' पालिताणा

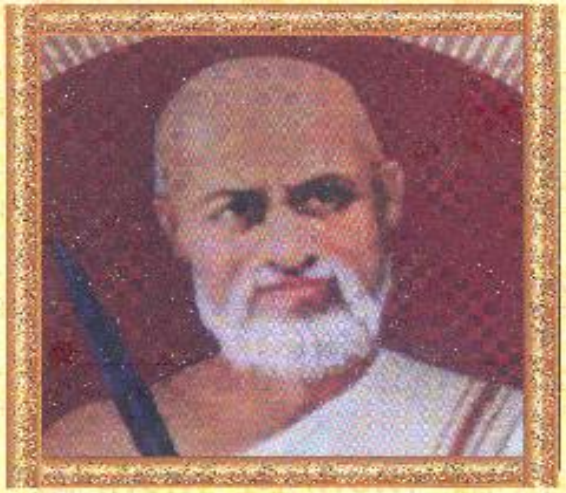
ईस प्रोजेक्ट के संपूर्ण-अनुदान-दाता



नमो नमो निम्मलदंसणस्स

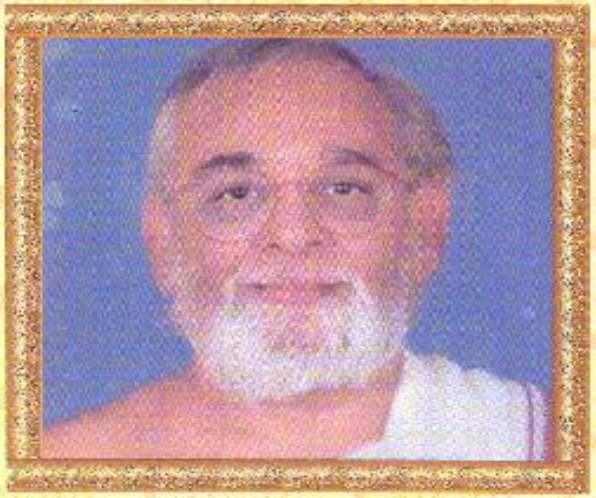
सवृत्तिक-आगम-सुत्ताणि

मूल संशोधक



पूज्यपाद आगमोद्धारक आचार्य
श्री आनंदसागरसूरीश्वरजी महाराज

अभिनव-संकलनकर्ता



आगम दिवाकर मुनिश्री दीपरत्नसागरजी
[M.Com., M.Ed., Ph.D., श्रुतमहर्षि]

प्रत-प्राप्ति और पेज-सेटिंग कर्ता : www.jainelibrary.org के चेरमन श्री प्रवीणभाई शाह, अमेरिका
मुद्रक : नवप्रभात प्रिन्टींग प्रेस अमदाबाद Mo 9825598855 / 9825306275



आगम

वाचना शताब्दी वर्ष

[भाग-३९] अनुयोगद्वार (चूलिकासूत्रम्-२)

नमो नमो निम्मलदंसणस्स

पूज्य श्रीआनंद-क्षमा-ललित-सुशील-सुधर्मसागर गुरूभ्यो नम:

“अनुयोगद्वार” मूलं एवं वृत्ति:

[मूलं + मलधारगच्छीय-हेमचन्द्रसूरि-रचिता वृत्ति:]

[आद्य संपादकश्री]

पूज्य आगमोद्धारक आचार्यदेव श्री आनंदसागर सूरीश्वरजी म॰ सा॰

(किञ्चित् वैशिष्ठ्यं समर्पितेन सह)

पुन: संकलनकर्ता→ मुनि दीपरत्नसागर (M.Com., M.Ed., Ph.D., श्रुतमहर्षि)

28/07/2017, शुक्रवार, २०७३ श्रावण शुक्ल ५ ‘सवृत्तिक-आगम-सुत्ताणि’ श्रेणि भाग-39

श्री आगमोद्धारक-वाचना-शताब्दी-वर्ष-निमित्त ‘आगम-वृत्ति-मुद्रण-प्रोजेक्ट’

सामाचारी-संरक्षक, ज्ञानधनी, आगम-संशोधक, तीव्र-मेधावी, समाधिमृत्यु-प्राप्त, बहुमुखीप्रतिभाधारक

पूज्यपाद आगमोद्धारक आचार्यदेव श्री आनंदसागरसूरीश्वरजी महाराज साहेब

◆ जिन्होने शुद्ध-श्रद्धा, सम्यक्-श्रुत आराधना, यथाख्यातचारित्र के प्रति गति और अंत समय देह-ममत्व के त्याग के द्वारा कायोत्सर्ग नामक अभ्यंतर-तप कि मिशाल कायम कि है ऐसे बहुश्रुत आचार्य श्री सागरानंदसूरीश्वरजी महाराज का परिचय कराना मेरे लिए नामुमकिन है , फ़िर भी गुरुभक्ति बुद्धि से श्रद्धांजली स्वरुप एक मामुली सी झलक पैस करने का यह प्रयास मात्र है |

◆ चारित्र-ग्रहण के बाद अल्प कालमे जो अपने गुरुदेव की छत्रछाया से दूर हो गये , तो भी गुरुदेव के स्वर्ग-गमन को सिर्फ़ कर्मो का प्रभाव मानकर अपने संयम के लक्ष्य प्रति स्थिर रहते हुए अकेले ज्ञान-मार्ग कि साधना के पथ पर चले | पढाई के लिए ही कितने महिनो तक रोज एकासणा तप के साथ बारह किल्लोमिटर पैदल विहार भी किया | लेकिन अपने मंझिल पे डटे रहे, और परिणाम स्वरुप संस्कृत एवं प्राकृत भाषा का, प्राचीन लिपिओ का, व्याकरण-न्याय-साहित्य आदि का सम्पूर्ण ज्ञान प्राप्त किया | जैन आगमशास्त्रो के समुद्र को भी पार कर गए|

◆ एक अकेला आदमी भी क्या नहीं कर शकता? इस प्रश्न का उत्तर हमें इस महापुरुष के जीवन और कवन से मिल गया, जब वे चल पड़े देवर्द्धिगणी क्षमाश्रमण के स्थापित पथ पर. बिना किसी सहाय लिए हुए सिर्फ अकेले ही "जैन-आगम-शास्त्रो" को दीर्घजीवी बनाने के लिए अनेक हस्तप्रतो से शुद्ध-पाठ तैयार किये | दो वैकल्पिक आगम, कल्पसूत्र और निर्युक्तिओ को जोड़कर ४५ आगम-शास्त्रो को संशोधित कर के संपादित किया | फिर पालीताणामें आगम मंदिर बनवाकर आरस-पत्थर के ऊपर ये सभी आगम-साहित्य को कंडारा , सूरतमें ताम्रपत्र पर भी अंकित करवाए और "आगम मंजूषा" नाम से मुद्रण भी करवा के बड़ी बड़ी पेटीमें रखवा के गाँव गाँव भेज दिए | वर्तमानकालमे सर्व प्रथमबार ऐसा कार्य हुआ |

◆ सिर्फ मूल आगम के कार्य से ही उन के कदम रुके नही थे , उन्होंने आगमो की वृत्ति, चूर्णि, निर्युक्ति, अवचूरी, संस्कृत-छाया आदि का भी संशोधन-सम्पादन किया | उपयोगी विषयो के लिए उन्होंने एक लाख श्लोक प्रमाण संस्कृत-प्राकृत नए ग्रंथो की रचना भी की | कितने ही ग्रंथो की प्रस्तावना भी लिखी | ये सम्यक्-श्रुत मुद्रित करवाने के लिए आगमोदय समिति, देवचंद लालभाई इत्यादि विभिन्न संस्था की स्थापना भी की |

◆ ज्ञानमार्ग के अलावा सम्मेतशिखर, अंतरीक्षजी, केशरियाजी आदि तीर्थरक्षा कर के सम्यक-दर्शन-आराधना का परिचय भी दिया | राजाओं को प्रतिबोध कर के और वाचनाओ द्वारा अपनी प्रवचन-प्रभावकता भी उजागर करवाई | बालदिक्षा, देवद्रव्य-संरक्षण, तिथि-प्रश्न इत्यादि विषयोमे सत्य-पक्षमें अंत तक दृढ़ रहे | जैनशासन के लिए जब जरुरत पड़ी तब अदालती कारवाईंओ का सामना भी बड़ी निडरता से किया था |

◆ सागरानंदजी के नाम से मशहूर हो चुके पूज्य आनंदसागरसूरीश्वरजीने अपने परिवार स्वरुप ८७० साधू-साध्वीजी भी शासन को भेट किये |

...ये थे हमारे गुरुदेव "सागरजी"... *.....मुनि दीपरत्नसागर...*

संयमैकलक्षी, उपधान-तप-प्रेरक, चारित्र-मार्ग-रागी, प्रवचन-पटु, सुपरिवार-युक्त

पूज्य गच्छाधिपतिआचार्यदेव श्री देवेन्द्रसागरसूरीश्वरजी महाराज साहेब

*** परमपूज्य आचार्यश्री आनंदसागरसूरीश्वरजी के पाट-परंपरामे हुए तिसरे गच्छाधिपति थे पूज्य आचार्य श्री देवेन्द्रसागरसूरीश्वरजी , जो एक पून्यवान् आत्मा थे, दीक्षा ग्रहण के बाद अल्पकालमे ही एक शिष्य के गुरु बन गये | फ़िर क्या ! शिष्यो कि संख्या बढती चली , बढ़ते हुए पुन्य के साथ-साथ वे आखिर 'गच्छाधिपति' पद पे आरूढ़ हो गए | इस महात्मा का पुन्य सिर्फ शिष्यों तक सिमित नही था, वे जहा कहीं भी 'उपधान-तप' की प्रेरणा करते थे, तुरंत ही वहां 'उपधान' हो जाते थे | प्रवचनपटुता एवं पर्षदापुन्य के कारण उन के उपदेश-प्राप्त बहोत आत्माओने संयम-मार्ग का स्वीकार किया | खुद भी संयमैकलक्षी होने के कारण चारित्रमार्ग के रागी तो थे ही , साथसाथ ज्ञानमार्ग का स्पर्श भी उन का निरंतर रहेता था | आप कभी भी दुपहर को चले जाइए, वे खुद अकेले या शिष्य-परिवार के साथ कोई भी ग्रन्थ के अध्ययन-अध्यापनमें रत दिखाई देंगे |

*** ये तो हमने उनके जीवन के दो-तीन पहेलु दिखाए | एक और भी अनुसरणीय बात उन के जीवनमें देखने को मिली थी- 'आराधना-प्रेम'. कैसी भी शारीरिक स्थिति हो , मगर उन्होंने दोनों शाश्वती ओलीजी , [पोष}दशमी, शुक्ल पंचमी, त्रिकाल देववंदन, पर्व या पर्वतिथि के देववंदन आदि आराधना कभी नहीं छोड़ी | आखरी सालोमें जब उन को एहसास हो गया की अब 'अंतिम-आराधना' का अवसर नजदीक है, तब उन के मुहमें एक ही रटण बारबार चालु हो गया- "*अरिहंतनुं शरण, सिद्धनुं शरण, साधुनुं शरण, केवली भगवंते भाखेला धर्मनुं शरण*" इसी चार शरणो के रटण के साथ ही वे समाधि-मृत्यु-रूप सम्यक् निद्रा को प्राप्त हुए थे | ऐसे महान् सूरिवर को भावबरी वंदना | *** मुनि दीपरत्नसागर...

◆◆◆ श्री वर्धमान जैन आगम मंदिर संस्था, पालिताणा ◆◆◆

पूज्यपाद आनंदसागर-सूरीश्वरजी की बौद्धिक-प्रतिभा का मूर्तिमंत स्वरुप ऐसी इस संस्था की स्थापना विक्रम-संवत १९९९ मे महा-वद ५ को हुइ | *पूज्य आचार्य हर्षसागरसूरिजी की प्रेरणा से* जिन की तरफ़ से इस *सवृत्तिक-आगम-सुत्ताणि* के लिए संपूर्ण द्रव्य-सहाय की प्राप्ति हुइ |

शिल्प-स्थापत्य , शिलोत्कीर्ण आगम और समवसरण स्थित नयनरम्य ४५ चौमुख जिन-प्रतिमाजी से सुशोभित ऐसा ये 'आगममंदिर' है, जो शत्रुंजय-गिरिराज कि तलेटीमे स्थित है | वर्तमान २४ जिनवर, २० विहरमान जिनवर और १ शाश्वत मिलाकर ४५ चौमुखजी यहा बिराजमान है | जहां ४० समवसरण की रचना मेरु पर्वत के तिनो काण्ड के वर्णो के अनुसार चार अलग-अलग रंगो के आरस-पत्थर से बना है, देवो द्वारा रचित समवसरण के शास्त्र वर्णन-अनुसार आगम-मंदिर कि समवसरण का स्थापत्य है | ऐसी अनेक विशेषता से युक्त ये आगममंदिर है |

*** *मुनि दीपरत्नसागर...*

'सागर-समुदाय-एकता-संरक्षक, तीर्थ-उद्धार-कार्य-प्रवृत्त, गुणानुरागी'

इस "सवृत्तिक-आगम-सुत्ताणि' श्रेणि भाग १ से ४० के संपूर्ण अनुदान के प्रेरणादाता

पूज्य शासनप्रभावक आचार्य श्री हर्षसागरसूरिजी महाराज साहेब

पूज्यपाद स्व॰ गच्छाधिपति देवेन्द्रसागर-सूरीश्वरजी के विनयी शिष्य एवं दो गच्छाधिपतिओ के मुख्य सहायक के रुपमे 'सागर समुदाय' के सुचारु संचालक पूज्य हर्षसागरसूरिजी, जिन की प्रेरणा से ये "सवृत्तिक-आगम-सुत्ताणि" के मुद्रण के लिए संपूर्ण द्रव्यराशि प्राप्त हुई, उनका अत्यल्प परिचय यहां करेंगे| समुदाय-एकता के लिए सदैव प्रयत्नशील रहते हुए ये महात्मा *समुदाय के साधु-साध्वीजी* की आवश्यकताओकी पूर्ती के लिए भी प्रवृत्त रहेते है, प्राचीन-अर्वाचीन तीर्थो के जीर्णोद्धार एवं विकाश के लिए भी उत्साहित रहेते है, ज्ञान-क्षेत्र अछूता न रहे इसीलिए अनुमोदना, अनुदान एवं समय मिलने पर शास्त्र-वांचनमें भी रूचि रखते है | समुदाय के जरूरतमंद साध्वीजी भगवंतो के आवास का विषय हो या साध्वीजी के विहारमें मजदूर का वेतन चुकाना हो, ऐसे छोटे-छोटे कार्यो के प्रति भी उन का लक्ष्य रहेता है | दर्शन-शुद्धि के लिए जब उन्होंने समग्र भारतवर्ष के १०० साल तक के पुराने जिनालयो में १८ अभिषेक की प्रेरणा की, उस वक्त लगभग सभी अभिषेक-सामग्री की द्रव्य-शुद्धि का ख़याल रखते हुए अपनी मेधावी बुद्धि का परिचय दिया था, साथमे अनुकंपा भाव से पुजारी या विधि करानेवाले को यत्किंचित् बहुमान प्रगट करते हुए कुछ धन-राशि प्रदान करवाई |

ऐसे बहुगुण-संपन्न महात्मा पूज्य आचार्यश्री हर्षसागर-सूरिजी को हम भावभरी वंदना करते हुए इस श्रुतकार्य का प्रारंभ करने जा रहे है |

**** मुनि दीपरत्नसागर*

[कात्रज]पूना, कपडवंज, प्रभासपाटण आदि स्थानोमे आगममंदिर के प्रेरक, कर्मग्रंथ अभ्यासु, निस्पृह महात्मा

पूज्यपाद गच्छाधिपति आचार्य श्री दौलतसागर-सूरीश्वरजी महाराज साहेब

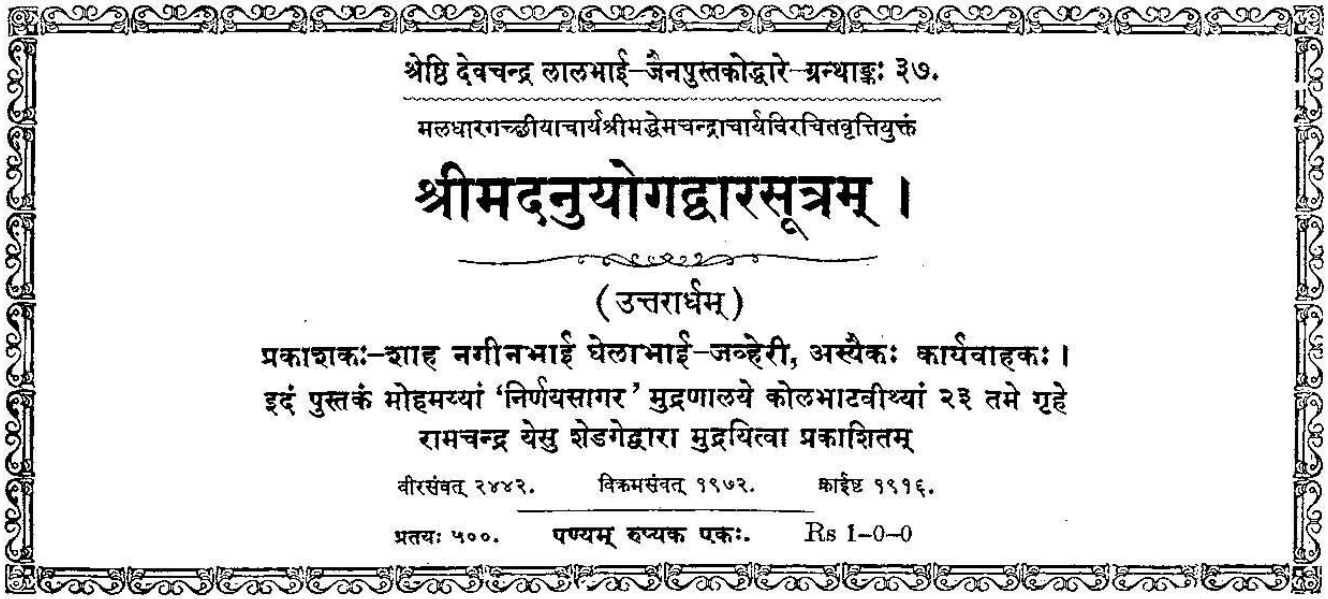
(एवं) अजातशत्रु, स्वाध्याय-रसिक, प्रशांतमूर्ती और अपने गुरु के प्रीतिपात्र

परम पूज्य आचार्य श्री नंदीवर्धनसागर-सूरिजी महाराज साहेब

इस पवित्र श्रुत-कार्यमे दोनो सूरिवरो का स्मरण करते हुए कोटि कोटि वंदना के साथ

.....मुनि दीपरत्नसागर

प्रत सूत्रांक [–] दीप अनुक्रम [–]	मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित.....आगमसूत्र-[४५], चूलिका सूत्र-[२] "अनुयोगद्वार" मूलं एवं हेमचन्द्रसूरि-रचिता वृत्ति:



श्रेष्ठि देवचन्द्र लालभाई–जैनपुस्तकोद्धारे–ग्रन्थाङ्कः ३७.

मलधारगच्छीयाचार्यश्रीमद्धेमचन्द्राचार्यविरचितवृत्तियुक्तं

श्रीमदनुयोगद्वारसूत्रम् ।

(उत्तरार्धम्)

प्रकाशकः–शाह नगीनभाई घेलाभाई–जव्हेरी, अस्यैकः कार्यवाहकः ।
इदं पुस्तकं मोहमय्यां 'निर्णयसागर' मुद्रणालये कोलभाटवीथ्यां २३ तमे गृहे
रामचन्द्र येसु शेडगेद्धारा मुद्रयित्वा प्रकाशितम्

वीरसंवत् २४४२. विक्रमसंवत् १९७२. क्राईष्ट १९१६.

प्रतयः ५००. पण्यम् रुप्यक एकः. Rs 1–0–0

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनुयोगद्वार सूत्रस्य मूल "टाइटल पेज"

मूलांक:	विषय:	पृष्ठांक:		मूलांक:	विषय:	पृष्ठांक:		मूलांक:	विषय:	पृष्ठांक:
००१-	अनुयोगद्वारसूत्रं	०१२								
	➔ ज्ञानविषयक वर्णनं	०१३			➔ द्रव्यस्कन्ध:	०९२			➔ प्रमाण प्ररुपणा	३१३
	➔ आवश्यक-तस्य	०३१			➔ उपक्रम:, तस्य	१०२			➔ समय आदि व्याख्या	३६१
	. अध्ययनं,				➔ आनुपूर्वी	११६			➔ जीवादि द्रव्य-	३९७
	➔ श्रुत- तस्य निक्षेपा:,	०३९			➔ अनुगमं	१५३			➔ निक्षेप-व्याख्या	५१०
	भेदा:, ...इत्यादि				➔ नाम एवं तस्य	२१९			➔ सप्तनय स्वरुपम्	५३८
					भेद-प्ररुपणा				----------	

[अनुयोगद्वार- मूलं एवं वृत्ति:] इस प्रकाशन की विकास-गाथा

यह प्रत सबसे पहले "अनुयोगद्वार सूत्र" के नामसे सन १९१६ (विक्रम संवत १९७२) में देवचन्द्र लालभाइ पुस्तकोद्धार संस्था द्वारा प्रकाशित हुई, इस के संपादक-महोदय थे पूज्यपाद आगमोद्धारक आचार्यदेव श्री आनंदसागरसूरीश्वरजी (सागरानंदसूरिजी) महाराज साहेब |

इसी प्रत को फिर अपने नामसे 'जिनशासन आराधना ट्रस्ट' की तरफ से आचार्य श्री हेमचन्द्रसूरिजीने छपवाई, जिसमे उन्होंने खुदने तो कुछ नहीं किया, मगर इसी प्रत को ऑफसेट करवा के, ऊपर अपना नाम एवं अपनी प्रकाशन संस्था का नाम छाप दिया. यह स्पष्ट रूपसे एक प्रकारसे अदत्तादान ही है, ऐसी अनेक प्रतो के अगले दो पेज पलटकर या नए डालकर उन्होंने अपने नामसे छपवाइ है, इस तरह वो अपने आपको बड़ा आगम संरक्षक साबित करनेकी अनुचित चेष्टा कर चुके है |

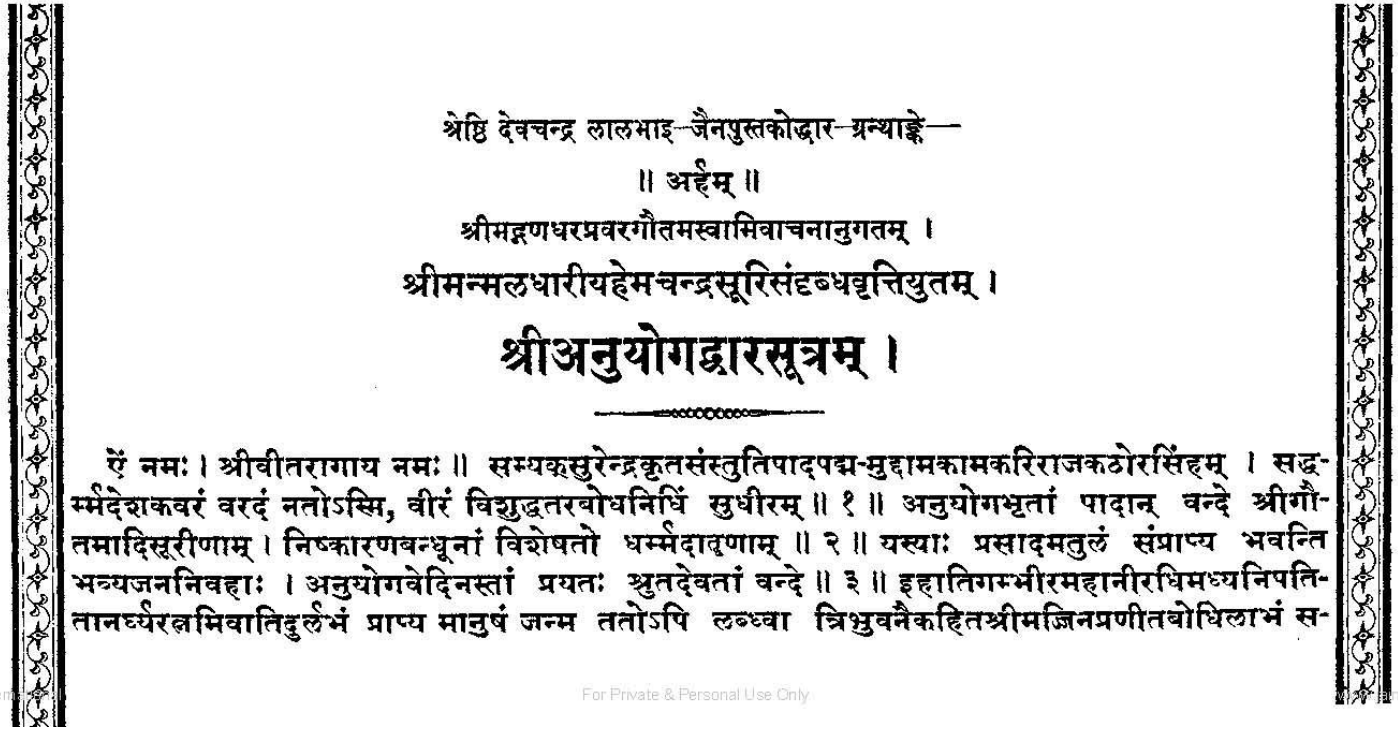
इसी अनुयोगद्वार सूत्र की प्रत को ऑफसेट की मदद से दुसरोने भी भी प्रकाशित करवाई है, किसीने पूज्यश्री सागरानंदसूरीश्वरजी महाराजश्री का नाम बड़ी इज्जत के साथ अपनी जगह पे ही रखा है, और खुदका नाम पुन: संपादक रूप से पेश किया है तो किसीने अपना नाम आगे कर दिया है और पूज्य सागरानंदसूरीश्वरजीका नाम गौण कर दिया है या उड़ा दिया है |

✣ हमारा ये प्रयास क्यों? ✣ आगम की सेवा करने के हमें तो बहोत अवसर मिले, ४५-आगम सटीक भी हमने ३० भागोमे १२५०० से ज्यादा पृष्ठोमें प्रकाशित करवाए है, किन्तु लोगो की पूज्यश्री सागरानंदसूरीश्वरजी के प्रति श्रद्धा तथा प्रत स्वरुप प्राचीन प्रथा का आदर देखकर हमने इसी प्रत को स्केन करवाई, उसके बाद एक स्पेशियल फोरमेट बनवाया, जिसमे बीचमे पूज्यश्री संपादित प्रत ज्यों की त्यों रख दी, ऊपर शीर्षस्थानमे आगम का नाम, फिर सूत्र आदि के नंबर लिख दिए, ताँकि पढ़नेवाले को प्रत्येक पेज पर कौनसा सूत्र आदि चल रहे है उसका सरलतासे ज्ञान हो शके | बायीं तरफ आगम का क्रम और इसी प्रत का सूत्रक्रम दिया है, उसके साथ वहाँ 'दीप अनुक्रम' भी दिया है, जिससे हमारे प्राकृत, संस्कृत, हिंदी गुजराती, इंग्लिश आदि सभी आगम प्रकाशनोमें प्रवेश कर शके | हमारे अनुक्रम तो प्रत्येक प्रकाशनोमें एक सामान और क्रमशः आगे बढते हुए ही है, इसीलिए सिर्फ क्रम नंबर दिए है, मगर प्रत में गाथा और सूत्रों के नंबर अलग-अलग होने से हमने जहां सूत्र है वहाँ कौंस [-] दिए है और जहां गाथा है वहाँ ||-|| ऐसी दो लाइन खींची या 'गाथा' शब्द लिखा है| हर पृष्ठ के नीचे विशिष्ठ फूटनोट दी है |

शासनप्रभावक पूज्य आचार्यश्री हर्षसागरसूरिजी म०सा० की प्रेरणासे और श्री वर्धमान जैन आगममंदिर, पालिताणा की संपूर्ण द्रव्य सहाय से ये 'सवृत्तिक-आगम-सुत्ताणि' भाग-३९ का मुद्रण हुआ है, हम उन के प्रति हमारा आभार व्यक्त करते है |

.....मुनि दीपरत्नसागर.

प्रत सूत्रांक [–] दीप अनुक्रम [–]	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[४५], चूलिकासूत्र-[२] अनुयोगद्वार मूलं एवं हेमचन्द्रसूरि-रचिता वृत्तिः
	वृत्तिकार कृत् मंगलं, वंदन तथा आरम्भ-कथनं



श्रेष्ठि देवचन्द्र लालभाइ–जैनपुस्तकोद्धार–ग्रन्थाङ्के—

॥ अर्हम् ॥

श्रीमद्गणधरप्रवरगौतमस्वामिवाचनानुगतम् ।

श्रीमन्मलधारीयहेमचन्द्रसूरिसंदृब्धवृत्तियुतम् ।

श्रीअनुयोगद्वारसूत्रम् ।

ऐं नमः । श्रीवीतरागाय नमः ॥ सम्यक्सुरेन्द्रकृतसंस्तुतिपादपद्म-मुद्दामकामकरिराजकठोरसिंहम् । सद्ध-र्म्मदेशकवरं वरदं नतोऽस्मि, वीरं विशुद्धतरबोधनिधिं सुधीरम् ॥ १ ॥ अनुयोगभृतां पादान् वन्दे श्रीगौ-तमादिसूरीणाम् । निष्कारणबन्धूनां विशेषतो धर्म्मदातृणाम् ॥ २ ॥ यस्याः प्रसादमतुलं संप्राप्य भवन्ति भव्यजननिवहाः । अनुयोगवेदिनस्तां प्रयतः श्रुतदेवतां वन्दे ॥ ३ ॥ इहातिगम्भीरमहानीरधिमध्यनिपति-तानर्घ्यरत्नमिवातिदुर्लभं प्राप्य मानुषं जन्म ततोऽपि लब्ध्वा त्रिभुवनैकहितश्रीमज्जिनप्रणीतबोधिलाभं स-

अनु. १

Jain Education Intern... For Private & Personal Use Only ...elibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[४५], चूलिकासूत्र-[२] अनुयोगद्वार मूलं एवं हेमचन्द्रसूरि-रचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१]

दीप अनुक्रम [१]

अनुयो० मलधारीया ॥ १ ॥

मासाद्य विरत्यनुगुणपरिणामं प्रतिपद्य चरणधर्म्ममधीत्य विधिवत् सूत्रं समधिगम्य तत्परमार्थं विज्ञाय स्वपरसमयरहस्यं तथाविधकर्म्मक्षयोपशमसंभविनीं चावाप्य विशदप्रज्ञां जिनवचनानुयोगकरणे यतितव्यं, तस्यैव सकलमनोऽभिलषितार्थसार्थसंसाधकत्वेन यथोक्तसमग्रसामग्रीफलत्वात् । स चानुयोगो यद्यप्यनेकग्रन्थविषयः संभवति, तथापि प्रतिशास्त्रं प्रत्यध्ययनं प्रत्युद्देशकं प्रतिवाक्यं प्रतिपदं चोपकारित्वात्प्रथममनुयोगद्वाराणामसौ विधेयः । जिनवचने ह्याचारादि श्रुतं प्रायः सर्वमप्युपक्रमनिक्षेपानुगमनयद्वारैर्विचार्यते, प्रस्तुतशास्त्रे च तान्येवोपक्रमादिद्वाराण्यभिधास्यन्ते, अतोऽस्यानुयोगकरणे वस्तुतो जिनवचनस्य सर्वस्याप्यसौ कृतो भवतीत्यतिशयोपकारित्वात्प्रकृतशास्त्रस्यैव प्रथममनुयोगो विधेयः । स च यद्यपि चूर्णिटीकाद्वारेण वृद्धैरपि विहितः, तथापि तद्वचसामतिगम्भीरत्वेन दुरधिगमत्वाद् मन्दमतिनाऽपि मयाऽसाधारणश्रुतभक्तिजनितौत्सुक्यभावतोऽविचारितस्वशक्तित्वादल्पधियामनुग्रहार्थत्वाच्च कर्तुमारभ्यते ॥

॥ नाणं पंचविहं पण्णत्तं, तंजहा-आभिणिबोहियनाणं सुयनाणं ओहिनाणं मणपज्जवनाणं केवलनाणं (सू० १-प० ९)

अस्य च शास्त्रस्य परमपदप्राप्तिहेतुत्वेन श्रेयोभूतत्वात् संभाव्यमानविघ्नत्वात् तदुपशमार्थं शिष्टसमयपरिपालनार्थं चादौ मङ्गलरूपं सूत्रमाह—'नाणं पञ्चविहं'इत्यादि, व्याख्या-ज्ञातिर्ज्ञानं 'कृल्ल्युटो बहुलं'(पा०

वृत्तिः अनुयो० अधि० ॥ १ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ज्ञानस्य पञ्चविधत्वस्य प्ररुपणा

३-३-११३)इति वचनात् भावसाधनः, ज्ञायते परिच्छिद्यते वस्त्वनेनास्मादस्मिन्वेति वा ज्ञानं, [जानाति स्वविषयं परिच्छिनत्तीति वा ज्ञानं-ज्ञानावरणकर्म्मक्षयोपशमक्षयजन्यो जीवस्वतत्त्वभूतो बोध इत्यर्थः, 'पञ्चविहंति' पञ्चेति-सङ्ख्यावचनो विधानानि विधाः-भेदाः पञ्च विधा अस्येति पञ्चविधं-पञ्चप्रकारमित्यर्थः, 'पण्णत्तंति' प्रज्ञप्तमर्थतस्तीर्थंकरैः सूत्रतो गणधरैः प्ररूपितमित्यर्थः, अनेन सूत्रकृता आत्मनः स्वमनीषिका परिहृता भवति, अथवा प्राज्ञात्-तीर्थकरादासं-प्रासं गणधरैरिति प्राज्ञाप्तम्, अथवा-प्राज्ञैः-गणधरैस्तीर्थकरादात्तं-गृहीतमिति प्राज्ञात्तं, प्रज्ञया वा भव्यजन्तुभिरासं-प्रासं प्रज्ञासं, न हि प्रज्ञाविकलैरिदमवाप्यत इति प्रतीतमेव, ह्रस्वत्वं सर्वत्र प्राकृतत्वादित्यवयवार्थः, अक्षरयोजना त्वेवम्–ज्ञानं परमगुरुभिः प्रज्ञप्तमिति सम्बन्धः, कतिविधमिति, अत्रोच्यते, पञ्चविधमिति ॥ तस्यैव पञ्चविधत्वस्योपदर्शनार्थमाह—'तंजहेत्यादि' तद्यथेत्युपन्यासार्थः, आभिनिबोधिकज्ञानं श्रुतज्ञानम् अवधिज्ञानं मनःपर्यायज्ञानं केवलज्ञानं चेति । तत्र अभीत्याभिमुख्ये नीति नैयत्ये, ततश्चाभिमुखो-वस्तुयोग्यदेशावस्थानापेक्षी नियत-इन्द्रियाण्याश्रित्य स्वस्वविषयापेक्षी बोधः अभिनिबोध इति भावसाधनः, स्वार्थिकतद्धितोत्पादात्स एवाभिनिबोधिकम्, अभिनिबुध्यते आत्मना स इत्यभिनिबोध इति कर्म्मसाधनो वा, अभिनिबुध्यते वस्त्वसावित्यभिनिबोध इति कर्तृसाधनो वा, स एवाभिनिबोधिकमिति तथैव, आभिनिबोधिकं च तद् ज्ञानं चाभिनिबोधिकज्ञानम्–इन्द्रियपञ्चकमनोनिमित्तो बोध इत्यर्थः । श्रवणं-श्रुतम् अभिलापप्लावितार्थग्रहणस्वरूप उपलब्धिविशेषः, श्रुतं च तद् ज्ञानं च श्रुतज्ञा-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१]

दीप अनुक्रम [१]

अनुयो० मलधारीया ॥ २ ॥

नम्, अथवा श्रूयत इति श्रुतं-शब्दः स चासौ कारणे कार्योपचाराद् ज्ञानं च श्रुतज्ञानं, शब्दो हि श्रोतुः साभिलापज्ञानस्य कारणं भवतीति सोऽपि श्रुतज्ञानमुच्यते । अवधानमवधिः-इन्द्रियाद्यनपेक्षमात्मनः साक्षादर्थग्रहणम्, अवधिरेव ज्ञानमवधिज्ञानम्, अथवा अवधिः-मर्यादा तेनावधिना-रूपिद्रव्यमर्यादात्मकेन ज्ञानमवधिज्ञानं । संज्ञिभिर्जीवैः कायथोगेन मनोवर्गणाभ्यो गृहीतानि मनोयोगेन मनस्त्वेन परिणमितानि द्रव्याणि मनांसीत्युच्यन्ते, तेषां मनसां पर्यायाः-चिन्तनानुगुणाः परिणामास्तेषु ज्ञानं मनःपर्यायज्ञानम्, अथवा यथोक्तस्वरूपाणि मनांसि पर्येति-अवगच्छतीति मनःपर्यायमिति कर्म्मण्यण् (पा० ३-२-१), तच्च तद् ज्ञानं च मनःपर्यायज्ञानं । केवलं-संपूर्णज्ञेयविषयत्वात् संपूर्णं तच्च तद् ज्ञानं च केवलज्ञानमिति ॥ अवग्रहादिभेदचिन्ता त्वेतेषां ज्ञानानामत्र न क्रियते, सूत्रेऽनुक्तत्वेनाप्रस्तुतत्वात् नन्द्यादिषु विस्तरेणोक्तत्वाच्चेति । अनेन च शास्त्रस्यादावेव ज्ञानपञ्चकोत्कीर्त्तनेन मङ्गलं कृतं भवति, सकलक्लेशविच्छेदहेतुत्वेन ज्ञानस्य परममङ्गलत्वात् । अभिधेयं तु गुणनिष्पन्नानुयोगद्वारलक्षणशास्त्रनामत एव सकाशात्प्रतीयते, उपक्रमाद्यनुयोगद्वाराणामेवेहाभिधास्यमानत्वात् । प्रयोजनं तु प्रकरणकर्तृश्रोत्रोः प्रत्येकमनन्तरपरम्परभेदाच्चिन्तनीयं, तत्र प्रकरणकर्तुरनन्तरं सत्त्वानुग्रहः प्रयोजनं, श्रोतुश्च प्रकरणार्थपरिज्ञानं, परम्परं तु द्वयोरपि परमपदप्राप्तिः, इदं तु यद्यपीह साक्षान्नोक्तं तथापि सामर्थ्यादवसीयते, तथाहि-सत्त्वानुग्रहप्रवृत्ता एव परमगुरव इदमुपदिशन्ति, तदनुग्रहे च क्रमेण परमपदप्राप्तिः प्रतीतैव, श्रोताऽपि गुरुभ्यः प्रस्तुतप्रकरणार्थं विजानाति, तत्परिज्ञाने

वृत्तिः अनुयो० अधि० ॥ २ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१]

दीप अनुक्रम [१]

च सकलजिनवचनानुयोगकरणे कुशलतामासादयति, तत्कुशलतायां च विप्रहाय हेयानुपादाय उपादेयान् संप्राप्य प्रकर्षचरणकरणं कृत्वाऽतिदुष्करतपश्चरणं अनुभूय विशदकेवलालोकतः सकलत्रिलोकीतलसाक्षात्करणं प्रविश्य सकलकर्म्मविच्छेदकर्तृ शैलेशीकरणं सकलमुक्तजनशरणं परमपदमधिगच्छतीति । सम्बन्धोऽप्युपायोपेयलक्षणो गम्यत एव, वचनरूपापन्नं हि शास्त्रमिदमुपायस्तदर्थस्तूपेय इति । एवं च समस्तशास्त्रकाराणां समयः परिपालितो भवति, उक्तं च तैः—"संबंधंभिधेयपओयणाइं तह मंगलं च सत्थम्मि । सीसपवित्तिनिमित्तं निव्विग्घत्थं च चिंतिज्जा ॥ १ ॥" इत्यलं विस्तरेण ॥ १ ॥

तत्थ चत्तारि नाणाइं ठप्पाइं ठवणिज्जाइं णो उद्दिसंति णो समुद्दिसंति णो अणुण्णविज्जंति, सुयनाणस्स उद्देसो समुद्देसो अणुण्णा अणुओगो य पवत्तइ (सू० २-प० १८)

यदि नाम ज्ञानं पञ्चविधं प्रज्ञप्तं ततः किमित्याह—'तत्थे'त्यादि, 'तत्र' तस्मिन् ज्ञानपञ्चके आभिनिबोधिकावधिमनःपर्यायकेवलाख्यानि चत्वारि ज्ञानानि 'ठप्पाइंति' स्थाप्यानि-असंव्यवहार्याणि, व्यवहारनयो हि यदेव लोकस्योपकारे वर्त्तते तदेव संव्यवहार्यं मन्यते, लोकस्य च हेयोपादेयेष्वर्थेषु निवृत्तिप्रवृत्तिद्वारेण प्रायः

१ सम्बन्धाभिधेयप्रयोजनानि तथा मङ्गलं च शास्त्रे । शिष्यप्रवृत्तिनिमित्तं निर्विघ्नार्थं च चिन्तयेत् ॥ १ ॥
२ णो उद्दिसिज्जंति णो समुद्दिसिज्जंति प्र.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [२]

दीप अनुक्रम [२]

श्रुतमेव साक्षादत्यन्तोपकारि, यद्यपि केवलादिदृष्टमर्थं श्रुतमभिधत्ते तथापि गौणवृत्त्या तानि लोकोपकारीणीति भावः। यद्युक्तन्यायेनासंव्यवहार्याणि तानि ततः किमित्याह—'ठवणिज्जाइंति' ततः स्थापनीयानि एतानि, तथाविधोपकाराभावतोऽसंव्यवहार्यत्वात्तिष्ठन्तु, न तैरिहोद्देशसमुद्देशाद्यवसरेऽधिकार इत्यर्थः, अथवा स्थाप्यानि-अमुखराणि स्वस्वरूपप्रतिपादनेऽप्यसमर्थानि, न हि शब्दमन्तरेण स्वस्वरूपमपि केवलादीनि प्रतिपादयितुं समर्थानि, शब्दश्चानन्तरमेव श्रुतत्वेनोक्त इति स्वपरस्वरूपप्रतिपादने श्रुतमेव समर्थं, स्वरूपकथनं चेदमतः स्थाप्यानि-अमुखराणि यानि चत्वारि ज्ञानानि तानीहानुयोगद्वारविचारप्रक्रमे किमित्याह-अनुपयोगित्वात् स्थापनीयानि-अनधिकृतानि, यत्रैव ह्युद्देशसमुद्देशानुज्ञादयः क्रियन्ते, तत्रैवानुयोगः तद्द्वाराणि चोपक्रमादीनि प्रवर्त्तन्ते, एवंभूतं त्वाचारादि श्रुतज्ञानमेव इत्यत उद्देशाद्यविषयत्वादनुपयोगीनि शेषज्ञानानि, इत्यतोऽत्रानधिकृतानि। अत्राह-अनुयोगो व्याख्यानं, तच्च शेषज्ञानचतुष्टयस्यापि प्रवर्त्तत एवेति कथमनुपयोगित्वं ?, ननु समयचर्यानभिज्ञतासूचकमेवेदं वचो, यतो हन्त तत्रापि तद्ज्ञानप्रतिपादकसूत्रसंदर्भ एव व्याख्यायते, स च श्रुतमेवेति श्रुतस्यैवानुयोगप्रवृत्तिरिति। अथवा-स्थाप्यानि-गुर्वनधीनत्वेनोद्देशाद्यविषयभूतानि, एतदेव विवृणोति-स्थापनीयानीति, एकार्थौ द्वावपि, इदमुक्तं भवति-अनेकार्थत्वादतिगम्भीरत्वाद्विविधमन्त्राद्यतिशयसम्पन्नत्वाच्च प्रायो गुरूपदेशापेक्षं श्रुतज्ञानं, तच्च गुरोरन्तिके गृह्यमाणं परमकल्याणकोशत्वादुद्देशादिविधिना गृह्यत इति तस्योद्देशादयः प्रवर्त्तन्ते, शेषाणि तु चत्वारि ज्ञानानि तदावरण-

॥ ३ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कर्मक्षयक्षयोपशमाभ्यां स्वत एव जायमानानि नोद्देशादिप्रक्रममपेक्षन्ते । यतश्चैवमत आह—'नो उद्दिसिज्जंती'त्यादि, नो उद्दिश्यन्ते नो समुद्दिश्यन्ते नो अनुज्ञायन्ते, तत्र इदमध्ययनादि त्वया पठितव्यमिति गुरुवचनविशेष उद्देशः, तस्मिन्नेव शिष्येण अहीनादिलक्षणोपेतेऽधीते गुरोर्निवेदिते स्थिरपरिचितं कुर्विदमिति गुरुवचनविशेष एव समुद्देशः, तथा कृत्वा गुरोर्निवेदिते सम्यगिदं धारयान्यांश्चाध्यापयेति तद्वचनविशेष एवानुज्ञा 'सुयणाणस्सेत्यादि' श्रुतज्ञानस्योद्देशः समुद्देशोऽनुज्ञा अनुयोगश्च प्रवर्त्तते ॥ २ ॥

तत्रोद्देशादीनां त्रयाणां स्वरूपं संक्षेपत उक्तमपि विनेयानुग्रहार्थं किञ्चिद्विस्तरतः उच्यते-तत्राचाराद्यङ्गस्य उत्तराध्ययनादिकालिकश्रुतस्कन्धस्य औपपातिकाद्युत्कालिकोपाङ्गाध्ययनस्य चायमुद्देशविधिः-इहाचाराङ्गाद्यन्यतरश्रुतमध्येतुमिच्छति यो विनेयः स स्वाध्यायं प्रस्थाप्य गुरुं विज्ञपयति-भगवन्! अमुकं मम श्रुतमुद्दिशत, गुरुरपि भणति 'इच्छाम' इति, ततो विनेयो वन्दनकं ददाति १, ततो गुरुरुत्थाय चैत्यवन्दनं करोति, तत ऊर्ध्वस्थितो वामपार्श्वीकृतशिष्यो योगोत्क्षेपनिमित्तं पञ्चविंशत्युच्छ्वासमानं कायोत्सर्गं करोति, 'चंदेसु निम्मलयरे'ति यावच्चतुर्विंशतिस्तवं चिन्तयतीत्यर्थः, ततः पारितकायोत्सर्गः संपूर्णं चतुर्विंशतिस्तवं भणित्वा तथास्थित एव पञ्चपरमेष्ठिनमस्कारं वारत्रयमुच्चार्य 'नाणं पञ्चविहं पण्णत्त'मित्यादि उद्देशनन्दीं भणति, तदन्ते च 'इदं पुनः प्रस्थापनं प्रतीत्य अस्य साधोरिदमङ्गमसुं श्रुतस्कन्धं इदमध्ययनं वा उद्दिशामि क्षमाश्रमणानां हस्तेन सूत्रमर्थं तदुभयं च उद्दिष्ट'मित्येवं वदति, क्षमाश्रमणानामित्यादि त्वात्मनोऽहङ्कारवर्जनार्थमभिधत्ते, ततो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [२]

दीप अनुक्रम [२]

अनुयो० मलधारीया ॥ ४ ॥

विनेय 'इच्छामी'ति भणित्वा वन्दनकं ददाति २, तत उत्थितो ब्रवीति 'संदिशत किं भणामी'ति, ततो गुरुर्वदति—'वन्दित्वा प्रवेदये'ति, ततो विनेय 'इच्छामी'ति भणित्वा वन्दनकं ददाति ३, ततः पुनरुत्थितः प्रतिपादयति—'भवद्भिर्ममामुकं श्रुतमुद्दिष्टमिच्छाम्यनुशास्तिं' ततो गुरुः प्रत्युत्तरयति—'योगं कुर्विं'ति, एवं सन्दिष्टो विनेय 'इच्छामी'ति भणित्वा वन्दनकं ददाति, ततोऽत्रान्तरे नमस्कारमुच्चारयन्नसौ गुरुं प्रदक्षिणयति, तदन्ते च गुरोः पुरतः स्थित्वा पुनर्वदति—'भवद्भिर्ममामुकं श्रुतमुद्दिष्टमिच्छाम्यनुशास्तिं' ततो गुरुराह—'योगं कुर्व्वि'ति, एवं संदिष्ट इच्छामीति भणित्वा वन्दित्वा च पुनस्तथैव गुरुं प्रदक्षिणयति, तदन्ते च पुनस्तथैव गुरुशिष्ययोर्वचनप्रतिवचने, तथैव च तृतीयप्रदक्षिणां विदधाति विनेयः, एतानि च चतुर्थवन्दनकादीनि त्रीण्यपि वन्दनकान्येकमेव चतुर्थं गण्यते, एकार्थप्रतिबद्धत्वादिति ४, ततस्तृतीयप्रदक्षिणान्ते गुरुर्निषीदति, निषण्णस्य च गुरोः पुरतोऽर्द्धावनतगात्रो विनेयो वक्ति-'युष्माकं प्रवेदितं, संदिशत साधूनां प्रवेदयामि' ततो गुरुराह—'प्रवेदये'ति, तत इच्छामीति भणित्वा विनेयो वन्दनकं ददाति ५, प्रत्युत्थितश्चोचारितपञ्चपरमेष्ठिनमस्कारः पुनर्वन्दनकं ददाति ६, पुनरुत्थितो वदति—'युष्माकं प्रवेदितं साधूनां च तत् प्रवेदितं, सन्दिशत करोमि कायोत्सर्गं' ततो गुरुरनुजानीते—'कुर्व्वि'ति, ततः पुनरपि वन्दनकं ददाति ७, एतानि सप्त थो(छो)भवन्दनकानि श्रुतप्रत्ययानि भवन्ति, ततः प्रत्युत्थितोऽभिधत्ते—'अमुकस्योद्देशनिमित्तं करोमि कायोत्सर्गमन्यत्रोच्छ्वसितादित्यादि यावद्व्युत्सृजामीति' ततः कायोत्सर्गस्थितः सप्तविंशतिमुच्छ्वासां-

वृत्तिः अनुयो० अधि० ॥ ४ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [२]

दीप अनुक्रम [२]

श्चिन्तयति 'सागरवरगम्भीरेति'यावच्चतुर्विंशतिस्तवं चिन्तयति इत्यर्थः, 'उद्देससमुद्देसे सत्तावीसं अणुण्णवणयाए' इतिवचनात्, ततः पारितकायोत्सर्गः संपूर्णं चतुर्विंशतिस्तवं भणित्वा परिसमाप्तोद्देशक्रियत्वाद् गुरोः थोभवन्दनकं ददाति, तच्च न श्रुतप्रत्ययं, किं तर्हि ?, श्रुतदातृत्वादिना गुरुः परमोपकारी, तद्विनयप्रतिपत्तिनिमित्तमिति । अङ्गादिसमुद्देशेऽप्ययमेव विधिर्वक्तव्यो, नवरं पूर्वप्रवेदिते योगं कुर्वित्युक्तमत्र तु स्थिरपरिचितं कुर्विति वदति, योगोत्क्षेपकायोत्सर्गौ नन्द्याकर्षणं प्रदक्षिणात्रयविधिश्च न क्रियते, शेषः सवन्दनकादिको विधिस्तथैव । अनुज्ञाविधिस्तु योगोत्क्षेपकायोत्सर्गवर्जः सर्वोऽप्युद्देशविधिवद्वक्तव्यो, नवरं प्रवेदिते गुरुर्वदति—'सम्यग् धारयान्येषां च प्रवेदय' अन्यानपि पाठयेत्यर्थः, आवश्यकादिषु तण्डुलविचारणादिप्रकीर्णकेष्वपि चैष एव विधिः, नवरं स्वाध्यायप्रस्थापनं योगोत्क्षेपकायोत्सर्गश्च न क्रियते, एवं सामायिकाद्यध्ययनेषूद्देशकेषु च चैत्यवन्दनप्रदक्षिणात्रयादिविशेषक्रियारहितः सप्तवन्दनकप्रदानादिकः स एव विधिरिति तावदियं चूर्णिकारलिखिता सामाचारी, साम्प्रतं पुनरन्यथापि ताः समुपलभ्यन्ते, न च तथोपलभ्य सम्मोहः कर्त्तव्यः, विचित्रत्वात्सामाचारीणामिति । इदानीमनुयोगविधिरुच्यते–तत्रानुयोगो–वक्ष्यमाणशब्दार्थः, स यदाऽधीतसूत्रस्याचार्यपदप्रस्थापनयोग्यस्य शिष्यस्यानुज्ञायते तदाऽयं विधिः–प्रशस्तेषु तिथिनक्षत्रकरणमुहूर्त्तेषु प्रशस्ते च जिनायतनादौ क्षेत्रे भुवं प्रमार्ज्य एका गुरूणामेका स्वक्षाणामिति निषद्याद्वयं क्रि-

१ उद्देशे समुद्देशे सप्तविंशतिरनुज्ञापने.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[४५], चूलिकासूत्र-[२] अनुयोगद्वार मूलं एवं हेमचन्द्रसूरि-रचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [२] दीप अनुक्रम [२]	अनुयो० मलधारीया ॥ ५ ॥ यते, ततः प्राभातिककाले प्रवेदिते निषद्यानिषण्णस्य गुरोश्चोलपट्टकरजोहरणमुखवस्त्रिकामात्रोपकरणो विनेयः पुरतोऽवतिष्ठते, ततो द्वावपि गुरुशिष्यौ मुखवस्त्रिकां प्रत्युपेक्षयतः, तया च समग्रं शरीरं प्रत्युपेक्षयतः, ततो विनेयो गुरुणा सह द्वादशावर्त्तवन्दनकं दत्त्वा वदति—'इच्छाकारेण संदिशत स्वाध्यायं प्रस्थापयामि', ततश्च द्वावपि स्वाध्यायं प्रस्थापयतः, ततः प्रस्थापिते स्वाध्याये गुरुर्निषीदति, ततः शिष्यो द्वादशावर्त्तवन्दनकं ददाति, ततो गुरुरुत्थाय शिष्येण सहानुयोगप्रस्थापननिमित्तं कायोत्सर्गं करोति, ततो गुरुर्निषीदति, ततस्तं शिष्यो द्वादशावर्त्तवन्दनकेन वन्दते, ततो गुरुरक्षानभिमन्त्र्योत्तिष्ठति, उत्थाय च निषद्यां पुरतः कृत्वा वामपार्श्वीकृतशिष्यश्चैत्यवन्दनं करोति, ततः समाप्ते चैत्यवन्दने पुनः गुरूर्ध्वस्थित एव नमस्कारपूर्व्वं नन्दिमुच्चारयति, तदन्ते चाभिधत्ते–'अस्य साधोरनुयोगमनुजानामि, क्षमाश्रमणानां हस्तेन, द्रव्यगुणपर्यायैरनुज्ञातः' ततो विनेयश्छोभवन्दनकेन वन्दते, उत्थितश्च ब्रवीति–'संदिशत किं भणामि?' ततो गुरुराह—'वन्दित्वा प्रवेदय' ततो वन्दते शिष्यः, उत्थितस्तु ब्रवीति 'भवद्भिर्ममानुयोगोऽनुज्ञातः, इच्छाम्यनुशास्तिं' ततो गुरुर्वदति-'सम्यग् धारय अन्येषां च प्रवेदय' अन्येषामपि व्याख्यानं कुर्व्वित्यर्थः, ततो वन्देतेऽसौ, वन्दित्वा च गुरुं प्रदक्षिणयति, प्रदक्षिणान्ते च भवद्भिर्ममानुयोगोऽनुज्ञात इत्यनुक्तिप्रत्युक्तिर्द्वितीयप्रदक्षिणा च तथैव, पुनस्तृतीयापि तथैव, ततस्तृतीयप्रदक्षिणान्ते गुरुर्निषीदति, तत्पुरःस्थितश्च विनेयो वदति-'युष्माकं प्रवेदितं, सन्दिशत साधूनां प्रवेदयामी'त्यादि, शेषमुद्देशविधिवद्वक्तव्यं यावदनुयोगानुज्ञा-	वृत्तिः अनुयो० अधि० ॥ ५ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [२]

दीप अनुक्रम [२]

निमित्तं कायोत्सर्गं करोति, तदन्ते च सनिषद्यः शिष्यो गुरुं प्रदक्षिणयति, तदन्ते च वन्दते, पुनः प्रदक्षिणयति, एवं तिस्रो वाराः, ततो गुरोर्दक्षिणभुजासन्ने निषीदति, ततो गुरुपारम्पर्यागतानि मन्त्रपदानि गुरुः तिस्रो वाराः शिष्यस्य कथयति, तदनन्तरं यथोत्तरं प्रवर्द्धमानाः प्रवरसुगन्धमिश्रास्तिस्रोऽक्षतमुष्टीस्तस्मै ददाति, ततो निषद्याया गुरुरुत्थाय शिष्यं तत्रोपवेश्य यथासन्निहितसाधुभिः सह तस्मै वन्दनकं ददाति, ततो विनेयो निषद्यास्थित एव 'नाणं पंचविहं पण्णत्त'मित्यादिसूत्रमुच्चार्य यथाशक्ति व्याख्यानं करोति, तदन्ते च साधवो वन्दनकं ददति, ततः शिष्यो निषद्यातः उत्तिष्ठति, गुरुरेव पुनस्तत्र निषीदति, ततो द्वावप्यनुयोगविसर्गार्थं कालप्रतिक्रमणार्थं च प्रत्येकं कायोत्सर्गं कुरुतः, ततः शिष्यो निरुद्धं प्रवेदयते, निरुद्धं करोतीत्यर्थः । एवं श्रुतस्यैव उद्देशादयः प्रवर्त्तन्ते, न शेषज्ञानानाम्, अत्र चानुयोगेनैवाधिकारो न शेषैः, अनुयोगद्वारविचारस्यैवेह प्रक्रान्तत्वाद् ॥

जइ सुयनाणस्स उद्देसो समुद्देसो अणुण्णा अणुओगो य पवत्तइ, किं अंगपविट्ठस्स उद्देसो समुद्देसो अणुण्णा अणुओगो य पवत्तइ ?, किं अंगबाहिरस्स उद्देसो समुद्देसो अणुण्णा अणुओगो य पवत्तइ ?, अंगपविट्ठस्सवि उद्देसो जाव पवत्तइ, अणंगपविट्ठ-

१ अंगबाहिरस्सवि प्र.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'श्रुतज्ञान आदीनाम् 'उद्देश-समुद्देश-अनुज्ञा' प्रवर्तन

प्रत सूत्रांक [३]

दीप अनुक्रम [३]

स्सवि उद्देसो जाव पवत्तइ?, इमं पुण पट्ठवणं पडुच्च अणंगपविट्ठस्स अणुओगो (सू० ३-प० ४०)

अत्र यथाभिहितमुपजीव्याह शिष्यो—'यदी'त्यादि, यदुक्तक्रमेण श्रुतज्ञानस्योद्देशः समुद्देशोऽनुज्ञा अनुयोगश्च प्रवर्त्तते, तर्हि किमसावङ्गप्रविष्टस्य प्रवर्त्तते, उताङ्गबाह्यस्येति?, तत्राङ्गेषु प्रविष्टम्-अन्तर्गतमङ्गप्रविष्टं, श्रुतम्-आचारादि तद्बाह्यं तु उत्तराध्ययनादि, अत्र गुरुर्निर्वचनमाह—'अंगपविट्ठस्सवी'त्यादि, अपिशब्दौ परस्परसमुच्चयार्थौ, अङ्गप्रविष्टस्याप्युद्देशादि प्रवर्त्तते, अङ्गाद्बाह्यस्यापि, 'इदं पुनः' प्रस्तुतं 'प्रस्थापनं' प्रारम्भं, 'प्रतीत्य' आश्रित्याङ्गबाह्यस्य प्रवर्त्तते नेतरस्य, आवश्यकं ह्यत्र व्याख्यास्यते, तच्चाङ्गबाह्यमेवेतिभावः ॥ ३ ॥

जइ अणंगपविट्ठस्स अणुओगो, किं कालिअस्स अणुओगो? उक्कालिअस्स अणुओगो?, कालिअस्सवि अणुओगो उक्कालिअस्सवि अणुओगो, इमं पुण पट्ठवणं पडुच्च उक्कालिअस्स अणुओगो (सू० ४-प० २०)

अत्राङ्गबाह्यस्येति सामान्योक्तौ सत्यां संशयानो विनेय आह—'जइ अंगबाहिरस्से'त्यादि, यद्यङ्गबाह्यस्योद्देशादिः किमसौ कालिकस्य प्रवर्त्तते उत्कालिकस्य वा?, द्विधाऽप्यङ्गबाह्यस्य संभवादितिभावः, तत्र दिवसनिशाप्रथमचरमपौरुषीलक्षणे कालेऽधीयते नान्यत्रेति कालिकम्–उत्तराध्ययनादि, यत्तु कालवेलामात्रवर्जं

॥ ६ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [४]

दीप अनुक्रम [४]

शेषकालानियमेन पठ्यते तदुत्कालिकम्–आवश्यकादि। अत्र गुरुः प्रतिवचनमाह—'कालियस्सवी'त्यादि, कालिकस्याप्यसौ प्रवर्त्तते, उत्कालिकस्यापि, इदं पुनः प्रस्तुतं प्रस्थापनं-प्रारम्भं प्रतीत्य उत्कालिकस्यासौ मन्तव्यः, आवश्यकमेव ह्यत्र व्याख्यास्यते, तच्चोत्कालिकमेवेति हृदयम् ॥ ४ ॥ उत्कालिकस्येति सामान्यवचने विशेषजिज्ञासुः पृच्छति—

जइ उक्कालिअस्स अणुओगो किं आवस्सगस्स अणुओगो? आवस्सगवतिरित्तस्स अणुओगो?, आवस्सगस्सवि अणुओगो आवस्सगवतिरित्तस्सवि अणुओगो, इमं पुण पट्ठवणं पडुच्च आवस्सगस्स अणुओगो (सू० ५)

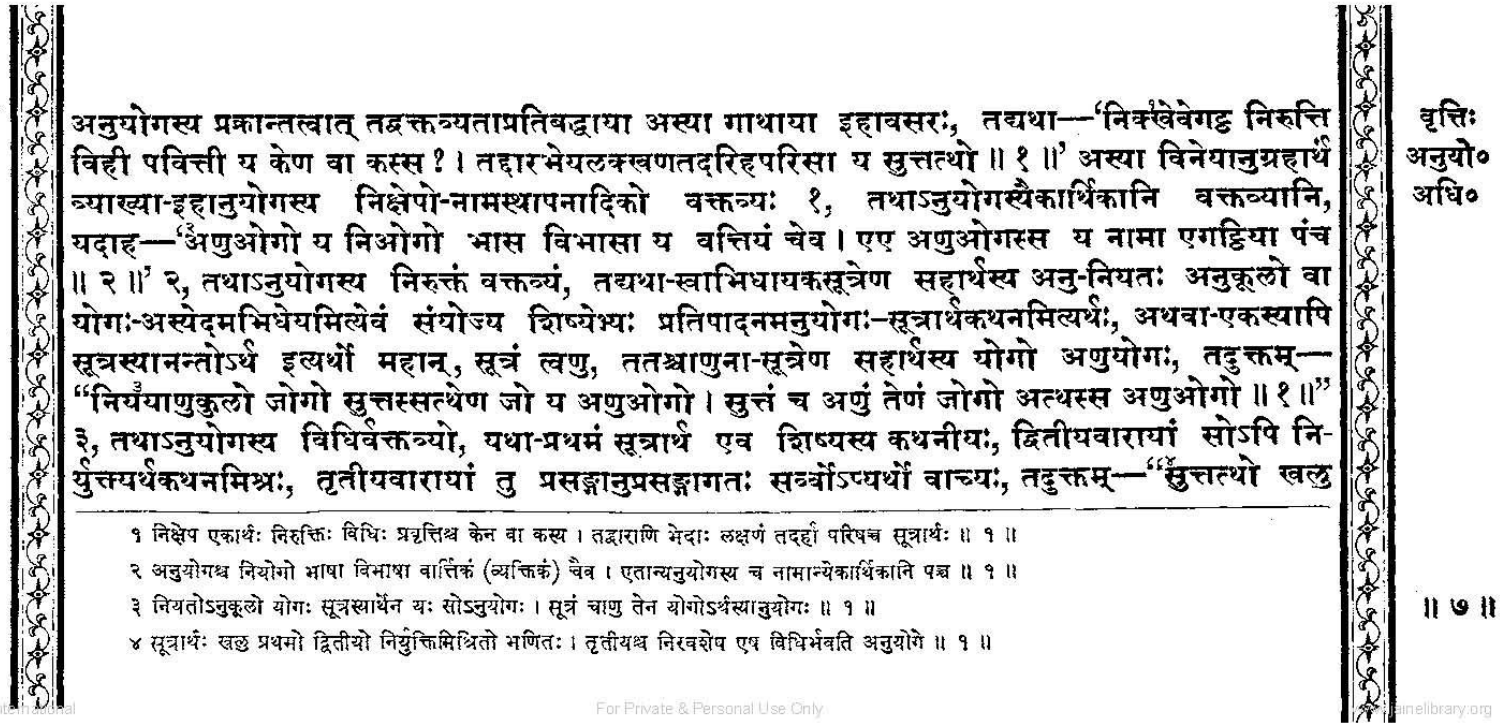
यद्युत्कालिकस्योद्देशादिस्तत्किमावश्यकस्यायं प्रवर्त्तते, यद्वाऽऽवश्यकव्यतिरिक्तस्य?, उभयथाऽप्युत्कालिकस्य सम्भवादिति परमार्थः। तत्र श्रमणैः श्रावकैश्चोभयसन्ध्यमवश्यंकरणादावश्यकं–सामायिकादिषडध्ययनकलापः, तस्मात्तु व्यतिरिक्तं-भिन्नं दशवैकालिकादि, गुरुराह—'आवस्सगस्सवी'त्यादि, द्वयोरप्येतयोः सामान्येनोद्देशादिः प्रवर्त्तते, किंत्विदं प्रस्तुतं प्रस्थापनं-प्रारम्भं प्रतीत्यावश्यकस्यानुयोगो नेतरस्य, सकलसामाचारीमूलत्वादस्यैवेह शेषपरिहारेण व्याख्यानादिति भावनीयम्, उद्देशसमुद्देशानुज्ञास्त्वावश्यके प्रवर्त्तमाना अप्यत्र नाधिकृताः, अनुयोगावसरत्वाद्, अतस्तत्परिहारेणोक्तम्, 'अणुओगो'त्ति, अयमत्र भावार्थः–

अनु. २

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [५]

दीप अनुक्रम [५]



अनुयो० मलधारीया ॥ ७ ॥

अनुयोगस्य प्रक्रान्तत्वात् तद्वक्तव्यताप्रतिबद्धाया अस्या गाथाया इहावसरः, तद्यथा—'निक्खेवेगट्ठ निरुत्ति विही पवित्ती य केण वा कस्स ? । तद्दारभेयलक्खणतदरिहपरिसा य सुत्तत्थो ॥ १ ॥' अस्या विनेयानुग्रहार्थं व्याख्या-इहानुयोगस्य निक्षेपो-नामस्थापनादिको वक्तव्यः १, तथाऽनुयोगस्यैकार्थिकानि वक्तव्यानि, यदाह—'अणुओगो य निओगो भास विभासा य वत्तियं चेव । एए अणुओगस्स य नामा एगट्ठिया पंच ॥ २ ॥' २, तथाऽनुयोगस्य निरुक्तं वक्तव्यं, तद्यथा-स्वाभिधायकसूत्रेण सहार्थस्य अनु-नियतः अनुकूलो वा योगः-अस्येदमभिधेयमित्येवं संयोज्य शिष्येभ्यः प्रतिपादनमनुयोगः-सूत्रार्थकथनमित्यर्थः, अथवा-एकस्यापि सूत्रस्यानन्तोऽर्थ इत्यर्थो महान्, सूत्रं त्वणु, ततश्चाणुना-सूत्रेण सहार्थस्य योगो अणुयोगः, तदुक्तम्—"नियँयाणुकूलो जोगो सुत्तस्सत्थेण जो य अणुओगो । सुत्तं च अणुं तेणं जोगो अत्थस्स अणुओगो ॥ १ ॥" ३, तथाऽनुयोगस्य विधिर्वक्तव्यो, यथा-प्रथमं सूत्रार्थ एव शिष्यस्य कथनीयः, द्वितीयवारायां सोऽपि निर्युक्त्यर्थकथनमिश्रः, तृतीयवारायां तु प्रसङ्गानुप्रसङ्गागतः सर्वोऽप्यर्थो वाच्यः, तदुक्तम्—"सुँत्तत्थो खलु

१ निक्षेप एकार्थः निरुक्तिः विधिः प्रवृत्तिश्च केन वा कस्य । तद्वाराणि भेदाः लक्षणं तदर्हा परिषच्च सूत्रार्थः ॥ १ ॥
२ अनुयोगश्च नियोगो भाषा विभाषा वार्त्तिकं (व्यक्तिकं) चैव । एतान्यनुयोगस्य च नामान्येकार्थिकानि पञ्च ॥ १ ॥
३ नियतोऽनुकूलो योगः सूत्रस्यार्थेन यः सोऽनुयोगः । सूत्रं चाणु तेन योगोऽर्थस्यानुयोगः ॥ १ ॥
४ सूत्रार्थः खलु प्रथमो द्वितीयो निर्युक्तिमिश्रितो भणितः । तृतीयश्च निरवशेष एष विधिर्भवति अनुयोगे ॥ १ ॥

वृत्तिः अनुयो० अधि० ॥ ७ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [५]

दीप अनुक्रम [५]

पढमो बीओ निज्जुत्तिमीसितो भणितो। तइओ य निरवसेसो एस विही होइ अणुओगे ॥ १ ॥" इत्याद्यन्योऽपि अत्र विधिर्वाच्यो, दिङ्मात्रत्वादस्येति ४, तथाऽनुयोगस्य प्रवृत्तिर्यथा भवति तथा वाच्यं, तत्रोद्यमी सूरिरुद्यमिनः शिष्याः, उद्यमी सूरिरनुद्यमिनः शिष्याः, अनुद्यमी सूरिरुद्यमिनः शिष्याः, अनुद्यमी सूरिरनुद्यमिनः शिष्या इति चतुर्भङ्गी, अत्र प्रथमभङ्गे अनुयोगस्य प्रवृत्तिर्भवति, चतुर्थे तु न भवति, द्वितीयतृतीययोस्तु काचित्कथञ्चिद्भवत्यपि ५, तथाऽनुयोगः केन कर्त्तव्य इति तद्योग्यः कर्त्ताऽभिधानीयो, यदाह— "देसकुलजाइरूवी संघयणी धिइजुओ अणासंसी। अविकत्थणो अमाई थिरपरिवाडी गहियवक्को ॥१॥" थिरपरिवाडित्ति अविस्मृतसूत्रः। "जियपरिसो जियनिद्दो मज्झत्थो देसकालभावन्नू। आसन्नलद्धपइभो नाणाविहदेसभासण्णू ॥ २ ॥ पंचविहे आयारे जुत्तो सुत्तत्थतदुभयविहिण्णू। आहरणहेउउवणयनयनिउणो गाहणाकुसलो ॥ ३ ॥ ससमयपरसमयविऊ गंभीरो दित्तिमं सिवो सोमो। गुणसयकलिओ जुत्तो पवयणसारं परिकहेउं ॥ ४ ॥" 'सिवोत्ति' मन्त्रादिसामर्थ्यादुपशमितोपद्रवः, युक्तः–उचितः प्रवचनसारं परिकथयितुं ६, तथा अयमनुयोगः कस्य शास्त्रस्यैवंभूतेन गुरुणा कर्त्तव्य इत्यपि वाच्यं ७, तथा 'तद्दारत्ति' तस्य-अनुयोगस्य

१ देशकुलजातिरूपवान् संहननी धृतियुतोऽनाशंसी। अविकत्थनोऽमायावी स्थिरपरिपाटिर्ग्राह्यवाक्यः ॥ १ ॥ जितपर्षत् जितनिद्रो मध्यस्थो देशकालभावज्ञः आसन्नलब्धप्रतिभो नानाविधदेशभाषाज्ञः ॥ २ ॥ पञ्चविधे आचारे युक्तः सूत्रार्थतदुभयविधिज्ञः। आहरणहेतूपनयनयनिपुणः अवगाहनाकुशलः ॥ ३ ॥ स्वसमयपरसमयवित् गम्भीरो दीप्तिमान् शिवः सौम्यः। गुणशतकलितो युक्तः प्रवचनसारं परिकथयितुम् ॥ ४ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [५]

दीप अनुक्रम [५]

अनुयो० मलधारीया ॥ ८ ॥

द्वाराणि–उपक्रमादीन्यत्रैव वक्ष्यमाणस्वरूपाणि वाच्यानि ८, तथा 'भेदत्ति' तेषामेव द्वाराणामानुपूर्वीनामप्रमाणादिकोऽत्रैव वक्ष्यमाणस्वरूपो भेदो वक्तव्यः ९, तथाऽनुयोगस्य लक्षणं वाच्यं, यदाह—"संहिया य पदं चेव, पयत्थो पयविग्गहो। चालणा य पसिद्धी य, छव्विहं विद्धि लक्खणं ॥ १ ॥" प्रश्ने कृते सति 'पसिद्धित्ति' चालनायां सत्यां प्रसिद्धिः-समाधानं 'विद्धित्ति' जानीहि, व्याख्येयसूत्रस्य च 'अलियमुवघायजणय'मित्यादिद्वात्रिंशद्दोषरहितत्वादिकं लक्षणं वक्तव्यं १०, तथा तस्यैव-अनुयोगस्य योग्या परिषद्वक्तव्या, सा च सामान्यतस्त्रिधा भवति, तद्यथा—"[3]जाणंतिया अजाणंतिया य तह दुव्वियड्ढिया चेव। तिविहा य होइ परिसा तीसे नाणत्तगं वोच्छं ॥ १ ॥ गुणदोसविसेसण्णू अणभिग्गहिया य कुस्सुइमएसुं। सा खलु जाणगपरिसा गुणतत्तिल्ला अगुणवज्जा ॥ २ ॥ खीरमिव रायहंसा जे घुट्टंति गुणे गुणसमिद्धा। दोसेवि य छड्डित्ता ते वसभा धीरपुरिसत्ति ॥ ३ ॥" इति ज्ञायकपरिषत्। "जे हुंति पगइसुद्धा मिगसावगसीहकुक्कुडगभूया। रयणमिव असंठविया सुहसंण्णप्पा गुणसमिद्धा ॥ ४ ॥" सावगशब्दः सर्वत्र संबध्यते, ततो मृगसिंहकुर्कुटशावो लघुमृगाद्यपत्यं तद्भूता अत्यन्तर्जुत्वसाम्यात् तत्सदृशी येत्यर्थः, सहजरत्नमिवासंस्कृता 'सुहस-

१ संहिता च पदं चैव पदार्थः पदविग्रहः। चालना च प्रसिद्धिश्च षड्विधं विद्धि लक्षणम् ॥ १ ॥
२ जानाना अजानाना च तथा दुर्विदग्धा चैव। त्रिविधा भवति पर्षत् तस्या नानात्वं वक्ष्ये ॥ १ ॥ गुणदोषविशेषज्ञा, अनभिगृहीता च कुश्रुतिमतेषु। सा खलु ज्ञायकपर्षत् गुणतृप्ता अगुणवर्जा ॥ २ ॥ क्षीरमिव राजहंसा ये पिबन्ति गुणान् गुणसमृध्धाः। दोषानपि त्यक्त्वा ते वृषभा धीरपुरुषा इति ॥ ३ ॥ या भवति प्रकृतिशुद्धा मृगसिंहकुर्कुटशावक(बाल)भूता। रत्नमिवासंस्थिता सुखसंज्ञप्या गुणसमृद्धाः ॥ ४ ॥

वृत्तिः अनुयो० अधि० ॥ ८ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [५]

दीप अनुक्रम [५]

पण्णप्पत्ति' सुखप्रज्ञापनीया "जा खलु अभाविया कुस्सुइहिं न य ससमए गहियसारा। अकिलेसकरा सा खलु वइरं छक्कोडिसुद्धं व ॥ ५ ॥" षट्कोणशुद्धं वज्रमिव-हीरक इव विशुद्धा या सा खल्वज्ञायकपरिषदिति वाक्यशेषः। इदानीं दुर्विदग्धपरिषदुच्यते—"न य कत्थवि निम्माओ न य पुच्छइ परिभवस्स दोसेणं। वत्थिव्व वायपुण्णो फुट्टइ गामिल्लगवियड्ढो ॥ ६ ॥ किंचिम्मत्तगाही पल्लवगाही य तुरियगाही य। दुव्विड्ढिया उ एसा भणिया तिविहा इमा परिसा ॥ ७ ॥" अत्राद्यपरिषद्द्वयमनुयोगार्हं तृतीया त्वयोग्येति ११, एतत्सर्वमभिधाय ततः सूत्रार्थो वक्तव्यः १२ इति लेशतो व्याख्यातेयं गाथा। विस्तरार्थिना तु कल्पपीठिकाऽन्वेषणीयेत्येवं चानुयोगस्य द्वादश द्वाराणि वक्तव्यानि भवन्ति। तत्र शेषद्वारोपलक्षणार्थं कस्य शास्त्रस्यायमनुयोग इति सप्तमं द्वारं चेतसि निधाय 'जइ सुयनाणस्स उद्देसो' इत्यादिसूत्रप्रपञ्चपूर्वकमुक्तं सूत्रकृता—'इदं पुनः प्रस्थापनं प्रतीत्यावश्यकस्यानुयोग' इति ॥ ५ ॥ पुनरप्याह विनेयः—

जइ आवस्सगस्स[2] अणुओगो किं अंगं अंगाइं सुअखंधो सुअखंधा अज्झयणं अज्झय-

---

१ या खल्वभाविता कुश्रुतिभिः न च स्वसमये गृहीतसारा। अक्लेशकरी खलु सा षट्कोटिशुद्धवज्रमिव ॥ ५ ॥ न च कुत्रापि निर्मातो न च पृच्छति परिभवस्य दोषेण। वस्तिरिव वातपूर्णः स्फुटति ग्रामेयको विदग्धः ॥ ६ ॥ किञ्चिन्मात्रग्राहिणी पल्लवग्राहिणी त्वरितग्राहिणी च। दुर्विदग्धा त्वेषा भणिता त्रिविधेयं पर्षत् ॥ ७ ॥ २ आवस्सयं णं इत्यधिकं प्र.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [६]

दीप अनुक्रम [६]

णाइं उद्देसो उद्देसा?, आवस्सयस्स णं नो अंगं नो अंगाइं सुअखंधो नो सुअखंधा नो अज्झयणं अज्झयणाइं नो उद्देसो नो उद्देसा (सू० ६)

यद्यावश्यकस्य प्रस्तुतोऽनुयोगः, तर्हि 'किं णमि'ति वाक्यालङ्कारे, किमिति परप्रश्ने, किमेकं द्वादशाङ्गान्तर्गतमङ्गमिदम्, उत बह्वन्यङ्गानि, अथैकः श्रुतस्कन्धो बहवो वा श्रुतस्कन्धाः, अध्ययनं वैकं बहूनि वाऽध्ययनानि, उद्देशको वा एको बहवो वा उद्देशका इत्यष्टौ प्रश्नाः, तत्र श्रुतस्कन्धः अध्ययनानि चेदमिति प्रतिपत्तव्यं, षडध्ययनात्मकश्रुतस्कन्धरूपत्वादस्य, शेषास्तु षट् प्रश्ना अनादेयाः, अनङ्गादिरूपत्वादिति, एतदेवाह—'आवस्सयस्स ण'मित्यादि, अत्राह-नन्वावश्यकं किमङ्गमङ्गानीत्येतत् प्रश्नद्वयमज्ञानवकाशमेव, नन्ध्यध्ययन एवास्यानङ्गप्रविष्टत्वेन निर्णीतत्वात्, तथात्राप्यङ्गबाह्योत्कालिकक्रमेणानन्तरमेवोक्तत्वादिति, अत्रोच्यते, यत्तावदुक्तं—'नन्ध्यध्ययन एवेत्यादि' तदयुक्तं, यतो नावश्यं नन्ध्यध्ययनं व्याख्याय तत इदं व्याख्येयमिति नियमोऽस्ति, कदाचिदनुयोगद्वारव्याख्यानस्यैव प्रथमं प्रवृत्तेः, अनियमज्ञापकश्चायमेव सूत्रोपन्यासः, अन्यथा ह्यङ्गबाह्यत्वेऽस्य तत्रैव निश्चिते किमिहाङ्गानङ्गप्रविष्टचिन्तासूत्रोपन्यासेनेति, मङ्गलार्थमवश्यं नन्दिरादौ व्याख्येया इति चेन्न, ज्ञानपञ्चकाभिधानमात्रस्यैव मङ्गलत्वात्तस्य चेहापि कृतत्वादिति, यचोक्तम् 'अत्राप्यङ्गबाह्योत्कालिकक्रमेणेत्यादि' तत्रापि समुदितानामुद्देशसमुद्देशानु-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [६]

दीप अनुक्रम [६]

ज्ञानुयोगानां प्रश्नप्रकरणे तदुक्तम्, अत्र तु केवलोऽनुयोग एवाधिकृतः, तत्प्रस्तावे त्विदमेवोक्तम्–इदं पुनः प्रस्थापनं प्रतीत्यावश्यकस्यानुयोग' इत्यतो भिन्नप्रस्तावत्वात् पृच्छा क्रियते ' आवस्सयस्स णं · किमि'त्यादि, विस्मरणशीलाल्पबुद्धिमाषतुषादिकल्पसाध्वनुग्रहार्थं वेत्यदोषः ॥ ६ ॥ तदेवं यस्माद् 'इदं पुनः प्रस्थापनं प्रतीत्यावश्यकस्यानुयोग' इत्यनेनावश्यकमिति शास्त्रनाम निर्णीतं, यस्माच्चाष्टस्वनन्तरोक्तप्रश्नेष्वावश्यकं श्रुतस्कन्धत्वेनाध्ययनकलापात्मकत्वेन च निर्णीतं, तस्मात्किमित्याह—

तम्हा आवस्सयं निक्खिविस्सामि सुअं निक्खिविस्सामि खंधं निक्खिविस्सामि अज्झयणं निक्खिविस्सामि (सू० ७)

यस्मात्प्रस्तुतानुयोगविषयं शास्त्रमुक्तक्रमेणावश्यकादिरूपतया निर्णीतं, तस्मादावश्यकं निक्षेप्स्यामि श्रुतं निक्षेप्स्यामि स्कन्धं निक्षेप्स्यामि अध्ययनं निक्षेप्स्यामि, इदमुक्तं भवति-आवश्यकादिरूपतया प्रकृतशास्त्रस्य निश्चितत्वादावश्यकादिशब्दानामर्थो निरूपणीयः, स च निक्षेपपूर्वक एव स्पष्टतया निरूपितो भवति, अतोऽमीषां निक्षेपः क्रियते, तत्र निक्षेपणं निक्षेपो-यथासंभवमावश्यकादेर्नामादिभेदनिरूपणम् ॥ ७ ॥

जत्थ य जं जाणेज्जा निक्खेवं निक्खिवे निरवसेसं । जत्थविअ न जाणेज्जा चउक्कगं निक्खिवे तत्थ ॥ १ ॥ (१)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [७] + गाथा ॥१॥

दीप अनुक्रम [८]

अनुयो० मलधारीया ॥ १० ॥

तत्र जघन्यतोऽप्यसौ चतुर्विधो दर्शनीय इति नियमार्थमाह—'यत्र च' जीवादिवस्तुनि यं जानीयात् 'निक्षेपं' न्यासं, यत्तदोर्नित्याभिसंबन्धात्तत्र वस्तुनि तं निक्षेपं 'निक्षिपेत्' निरूपयेत् 'निरवशेषं' समग्रं, यत्रापि च न जानीयान्निरवशेषं निक्षेपभेदजालं तत्रापि नामस्थापनाद्रव्यभावलक्षणं चतुष्कं निक्षिपेद्, इदमुक्तं भवति–यत्र तावन्नामस्थापनाद्रव्यक्षेत्रकालभवभावादिलक्षणा भेदा ज्ञायन्ते तत्र तैः सर्वैरपि वस्तु निक्षिप्यते, यत्र तु सर्वभेदा न ज्ञायन्ते तत्रापि नामादिचतुष्टयेन वस्तु चिन्तनीयमेव, सर्वव्यापकत्वात्तस्य, न हि किमपि तद्वस्तु अस्ति यन्नामादिचतुष्टयं व्यभिचरतीति गाथार्थः ॥ १ ॥ तत्र 'यथोद्देशं निर्देशः' इत्यावश्यकनिक्षेपार्थमाह—

से किं तं आवस्सयं?, आवस्सयं चउव्विहं पण्णत्तं, तंजहा-नामावस्सयं ठवणावस्सयं दव्वावस्सयं भावावस्सयं (सू० ८)

अत्र सेशब्दो मागधदेशीप्रसिद्धोऽथशब्दार्थे वर्त्तते, अथशब्दस्तु वाक्योपन्यासार्थः, तथा चोक्तम्—"अथ प्रक्रियाप्रश्नानन्तर्यमङ्गलोपन्यासनिर्वचनसमुच्चयेषु" इति, किमिति प्रश्ने, तदिति सर्वनाम पूर्वप्रक्रान्तपरामर्शार्थं, ततश्चायं समुदायार्थः-अथ किंस्वरूपं तदावश्यकम्?, एवं प्रश्निते सत्याचार्यः शिष्यवचनानुरोधेन आदराधानार्थं प्रत्युच्चार्य निर्दिशति—'आवस्सयं चउव्विह'मित्यादि, अवश्यं कर्त्तव्यमावश्यकम्, अथवा गुणानां आ-समन्ताद्-

वृत्तिः अनुयो० अधि० ॥ १० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

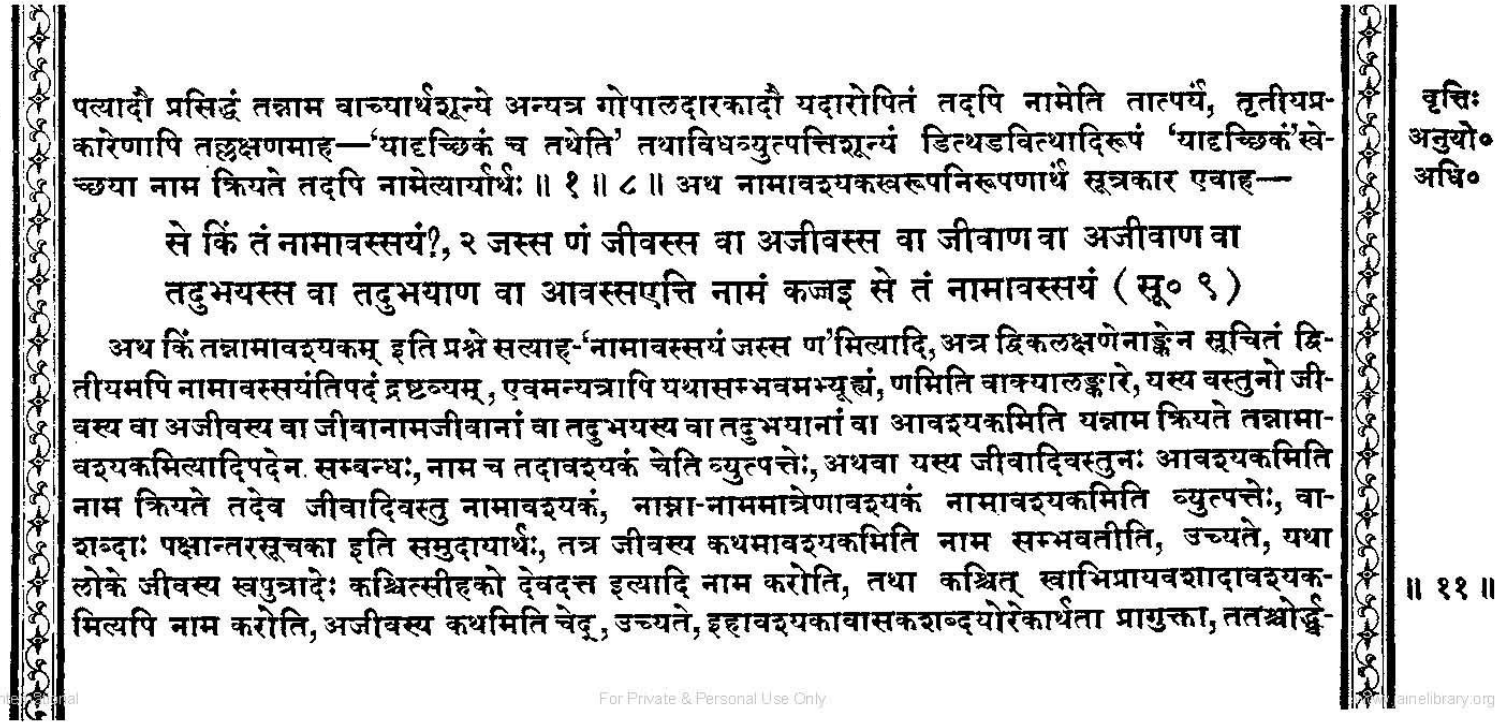
अथ 'आवश्यक'स्य नाम-आदि चत्वारः निक्षेपाः

इयमात्मानं करोतीत्यावश्यकं, यथा अन्तं करोतीति अन्तकः, अथवा-आवस्सयंति प्राकृतशैल्या आवासकं, तत्र 'वस निवासे' इति गुणशून्यमात्मानम् आ-समन्तात् वासयति गुणैरित्यावासकं, 'चउव्विहं पण्णत्तंति' चतस्रो विधा-भेदा अस्येति चतुर्विधं प्रज्ञप्तं-प्ररूपितमर्थतस्तीर्थकरैः सूत्रतो गणधरैः, तद्यथा—'नामावस्सयमित्यादि' नाम-अभिधानं तद्रूपमावश्यकं नामावश्यकम् आवश्यकाभिधानमेवेत्यर्थः, अथवा नाम्ना-नाममात्रेणावश्यकं नामावश्यकं जीवादीत्यर्थः, तल्लक्षणं चेदम्—"यद्वस्तुनोऽभिधानं स्थितमन्यार्थे तदर्थनिरपेक्षम्। पर्यायानभिधेयं च नाम यादृच्छिकं च तथा ॥ १ ॥" विनेयानुग्रहार्थमेतद्व्याख्या-यद्वस्तुन इन्द्रादेः 'अभिधानम्' इन्द्र इत्यादिवर्णावलीमात्रमिदमेव च आवश्यकलक्षणवर्णचतुष्टयावलीमात्रं यत्तदोर्नित्याभिसंबन्धात्तन्नामेति संटङ्कः, अथ प्रकारान्तरेण नाम्नो लक्षणमाह—'स्थितमन्यार्थे तदर्थनिरपेक्षं पर्यायानभिधेयं चेति' तदपि नाम, यत्कथंभूतमित्याह-अन्यश्चासावर्थश्चान्यार्थो-गोपालदारकादिलक्षणः तत्र स्थितम्, अन्यत्रेन्द्रादावर्थे यथार्थत्वेन प्रसिद्धं सदन्यत्र गोपालदारकादौ यदारोपितमित्यर्थः, अत एवाह—'तदर्थनिरपेक्षम्' इति, तस्य-इन्द्रादिनाम्नोऽर्थः-परमैश्वर्यादिरूपस्तदर्थः, स चासावर्थश्चेति वा तदर्थः, तस्य निरपेक्षं गोपालदारकादौ तदर्थस्याभावात्, पुनः किंभूतं तदित्याह—'पर्यायानभिधेयमिति' पर्यायाणां-शक्रपुरन्दरादीनामनभिधेयम्-अवाच्यं, गोपालदारकादयो हीन्द्रादिशब्दैरुच्यमाना अपि शचीपत्यादिरिव शक्रपुरन्दरादिशब्दैर्नाभिधीयन्ते, अतस्तन्नामापि नामतद्वतोरभेदोपचारात्पर्यायानभिधेयमित्युच्यते, चशब्दो नाम्न एव लक्षणान्तरसूचकः, शची-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [८]

दीप अनुक्रम [९]



अनुयो० मलधारीया ॥ ११ ॥

पत्यादौ प्रसिद्धं तन्नाम वाच्यार्थशून्ये अन्यत्र गोपालदारकादौ यदारोपितं तदपि नामेति तात्पर्यं, तृतीयप्रकारेणापि तल्लक्षणमाह—'यादृच्छिकं च तथेति' तथाविधव्युत्पत्तिशून्यं डित्थडवित्थादिरूपं 'यादृच्छिकं'स्वेच्छया नाम क्रियते तदपि नामेत्यार्यार्थः ॥ १ ॥ ८ ॥ अथ नामावश्यकस्वरूपनिरूपणार्थं सूत्रकार एवाह—

से किं तं नामावस्सयं?, २ जस्स णं जीवस्स वा अजीवस्स वा जीवाण वा अजीवाण वा तदुभयस्स वा तदुभयाण वा आवस्सएत्ति नामं कज्जइ से तं नामावस्सयं (सू० ९)

अथ किं तन्नामावश्यकम् इति प्रश्ने सत्याह-'नामावस्सयं जस्स ण'मित्यादि, अत्र द्विकलक्षणेनाङ्केन सूचितं द्वितीयमपि नामावस्सयंतिपदं द्रष्टव्यम्, एवमन्यत्रापि यथासम्भवमभ्यूह्यं, णमिति वाक्यालङ्कारे, यस्य वस्तुनो जीवस्य वा अजीवस्य वा जीवानामजीवानां वा तदुभयस्य वा तदुभयानां वा आवश्यकमिति यन्नाम क्रियते तन्नामावश्यकमित्यादिपदेन सम्बन्धः, नाम च तदावश्यकं चेति व्युत्पत्तेः, अथवा यस्य जीवादिवस्तुनः आवश्यकमिति नाम क्रियते तदेव जीवादिवस्तु नामावश्यकं, नाम्ना-नाममात्रेणावश्यकं नामावश्यकमिति व्युत्पत्तेः, वाशब्दाः पक्षान्तरसूचका इति समुदायार्थः, तत्र जीवस्य कथमावश्यकमिति नाम सम्भवतीति, उच्यते, यथा लोके जीवस्य स्वपुत्रादेः कश्चित्सीहको देवदत्त इत्यादि नाम करोति, तथा कश्चित् स्वाभिप्रायवशादावश्यकमित्यपि नाम करोति, अजीवस्य कथमिति चेद्, उच्यते, इहावश्यकावासकशब्दयोरेकार्थता प्रागुक्ता, ततश्चोर्द्ध-

वृत्तिः अनुयो० अधि० ॥ ११ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शुष्कोऽचित्तो बहुकोटराकीर्णो वृक्षोऽन्यो वा तथाविधः कश्चित्पदार्थविशेषः सर्पादेरावासोऽयमिति लौकिकैर्व्यपदिश्यत एव, स च वृक्षादिर्यद्यप्यनन्तैः परमाणुलक्षणैरजीवद्रव्यैर्निष्पन्नस्तथाऽप्येकस्कन्धपरिणतिमाश्रित्य एकाजीवत्वेन विवक्षित इति स्वार्थिककप्रत्ययोपादानादेकाजीवस्यावासकनाम सिद्धं, जीवानामपि बहूनामावासकनाम दृश्यते यथा-इष्टकापाकाद्यग्निर्मूषिकावास इत्युच्यते, तत्र ह्यग्नौ किल मूषिकाः संमूर्च्छन्ति अतस्तेषामसंख्येयानामग्निजीवानां पूर्ववदावासकं नाम सिद्धम्, अजीवानां तु यथा नीडं पक्षिणामावास इत्युच्यते, तद्धि बहुभिस्तृणाद्यजीवैर्निष्पद्यते इति बहूनामजीवानामावासकनाम भवति, इदानीमुभयस्यावासकसंज्ञा भाव्यते-तत्र गृहदीर्घिकाऽशोकवनिकाद्युपशोभितः प्रासादादिप्रदेशो राजादेरावास उच्यते, सौधर्मादिविमानं वा देवानामावासोऽभिधीयते, अत्र च जलवृक्षादयः सचेतनरत्नाद्यश्च जीवा इष्टकाकाष्ठाद्योऽचेतनरत्नाद्यश्चाजीवास्तन्निष्पन्नमुभयं, तस्य कप्रत्ययोपादाने आवासकसंज्ञा सिद्धा, उभयानां त्वावासकसंज्ञा यथा संपूर्णनगरादिकं राजादीनामावास उच्यते, संपूर्णः सौधर्म्मादिकल्पो वा इन्द्रादीनामावासोऽभिधीयते, अत्र च पूर्वोक्तप्रासादविमानयोर्लघुत्वादेकमेव जीवाजीवोभयं विवक्षितमत्र तु नगरादीनां सौधर्म्मादिकल्पानां च महत्त्वाद्बहूनि जीवाजीवोभयानि विवक्षितानीति विवक्षया भेदो द्रष्टव्यः, एवमन्यत्रापि जीवादीनामावासकसंज्ञा यथासंभवं भावनीया, दिग्मात्रप्रदर्शनार्थत्वादस्य। निगमयन्नाह—'से त्तमित्यादि' से तमित्यादि वा क्वचित् पाठः, तदेतन्नामावश्यकमित्यर्थः ॥ ९ ॥ इदानीं स्थापनावश्यकनिरूपणार्थमाह—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१०]

दीप अनुक्रम [११]

अनुयो० मलधारीया ॥ १२ ॥

से किं तं ठवणावस्सयं ?, २ जण्णं कट्ठकम्मे वा पोत्थकम्मे वा चित्तकम्मे वा लेप्पकम्मे वा गंथिमे वा वेढिमे वा पूरिमे वा संघाइमे वा अक्खे वा वराडए वा एगो वा अणेगो वा सब्भावठवणा वा असब्भावठवणा वा आवस्सएत्ति ठवणा ठविज्जइ से तं ठवणावस्सयं (सू० १०)

अथ किं तत् स्थापनावश्यकमिति प्रश्ने सत्याह–'ठवणावस्सयं जण्ण'मित्यादि, तत्र स्थाप्यते अमुकोऽयमित्यभिप्रायेण क्रियते निर्वर्त्त्यत इति स्थापना–काष्ठकर्म्मादिगतावश्यकवत्साध्वादिरूपा सा चासौ आवश्यकतद्व्यतोरभेदोपचारादावश्यकं च स्थापनावश्यकं, स्थापनालक्षणं च सामान्यत इदम्—"यत्तु तदर्थवियुक्तं तदभिप्रायेण यच्च तत्करणि। लेप्यादिकर्म्म तत्स्थापनेति क्रियतेऽल्पकालं च॥१॥" इति,विनेयानुग्रहार्थमत्रापि व्याख्या–तुशब्दो नामलक्षणात् स्थापनालक्षणस्य भेदसूचकः, स चासावर्थश्च तदर्थो-भावेन्द्रभावावश्यकादिलक्षणस्तेन वियुक्तं-रहितं यद्वस्तु 'तदभिप्रायेण' भावेन्द्राद्यभिप्रायेण 'क्रियते' स्थाप्यते तत् स्थापनेति सम्बन्धः, किंविशिष्टं यदित्याह—'यच्च तत्करणि' तेन-भावेन्द्रादिना सह करणिः-सादृश्यं यस्य(तत्) तत्करणि-तत्सदृशमित्यर्थः,चशब्दात्तदकरणि चाक्षादि वस्तु गृह्यते, असदृशमित्यर्थः, किं पुनस्तदेवंभूतं वस्त्वित्याह—'लेप्यादिकर्म्मेति' लेप्यपुत्तलिकादीत्यर्थः, आदिशब्दात् काष्ठपुत्तलिकादि गृह्यते, अक्षादि वाऽनाकारं, कियन्तं कालं तत् क्रियत इत्याह-अल्पः कालो यस्य

वृत्तिः अनुयो० अधि० ॥ १२ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१०]

दीप अनुक्रम [११]

अनु. ३

तदल्पकालम्-इत्वरकालमित्यर्थः, चशब्दाद्यावत्कथिकं च शाश्वतप्रतिमादि, यत्पुनर्भावेन्द्राद्यर्थरहितं साकारमनाकारं वा तदर्थाभिप्रायेण क्रियते तत् स्थापनेति तात्पर्यमित्यार्यार्थः ॥ १ ॥ इदानीं प्रकृतमुच्यते–'जं णं'ति 'ण'मिति वाक्यालङ्कारे, यत्काष्ठकर्मणि वा चित्रकर्म्मणि वा वराटके वा एको वा अनेको वा सद्भावस्थापनया वा असद्भावस्थापनया वा 'आवस्सएत्ति' आवश्यकतद्वतोरभेदोपचारात्तद्वानिह गृह्यते, ततश्चैको वा अनेको वा, कथंभूताः? अत उच्यते–आवश्यकक्रियावानावश्यकक्रियावन्तो वा 'ठवणा ठविज्जइत्ति' स्थापनारूपं स्थाप्यते-क्रियते, आवृत्त्या बहुवचनान्तत्वे स्थापनारूपाः स्थाप्यन्ते–क्रियन्ते, तत् स्थापनावश्यकमित्यादिपदेन सम्बन्ध इति समुदायार्थः । काष्ठकर्म्मादिष्वावश्यकक्रियां कुर्वन्तो यत् स्थापनारूपाः साध्वादयः स्थाप्यन्ते तत् स्थापनावश्यकमिति तात्पर्यम् । अधुना अवयवार्थ उच्यते-तत्र क्रियत इति कर्म काष्ठे कर्म काष्ठकर्म–काष्ठनिकुट्टितं रूपकमित्यर्थः, 'चित्रकर्म'चित्रलिखितं रूपकं 'पोत्थकम्मे व'त्ति अत्र पोत्थं–पोतं वस्त्रमित्यर्थः, तत्र कर्म्म-तत्पल्लवनिष्पन्नं धीउल्लिकारूपकमित्यर्थः, अथवा पोत्थं-पुस्तकं तचेह संपुटकरूपं गृह्यते, तत्र कर्म्म–तन्मध्ये वर्त्तिकालिखितं रूपकमित्यर्थः, अथवा पोत्थं–ताडपत्रादि तत्र कर्म्म-तच्छेदनिष्पन्नं रूपकं, 'लेप्यकर्म्म' लेप्यरूपकं, 'ग्रन्थिमं' कौशलातिशयाद् ग्रन्थिसमुदायनिष्पादितं रूपकं, 'वेष्टिमं' पुष्पवेष्टनक्रमेण निष्पन्नमानन्दपुरादिप्रतीतरूपम्, अथवा एकं द्व्यादीनि वा वस्त्राणि वेष्टयन् कश्चित् रूपकं उत्थापयति तद्वेष्टिमं, 'पूरिमं भरिमं' पित्तलादिमयप्रतिमावत् 'संघातिमं' बहुवस्त्रादिखण्डसंघातनिष्पन्नं कञ्चुकवत्, 'अक्षः' चन्दनको

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'वराटकः' कपर्दकः, अत्र वाचनान्तरे अन्यान्यपि दन्तकर्मादिपदानि दृश्यन्ते तान्यप्युक्तानुसारतो भावनीयानि, वाशब्दाः पक्षान्तरसूचकाः, यथासम्भवमेवमन्यत्रापि, एतेषु काष्ठकर्मादिषु आवश्यकक्रियां कुर्वन्तः एकादिसाध्वादयः सद्भावस्थापनया असद्भावस्थापनया वा स्थाप्यमानाः स्थापनावश्यकं, तत्र काष्ठकर्मादिष्वाकारवती सद्भावस्थापना, साध्वाद्याकारस्य तत्र सद्भावात्, अक्षादिषु त्वनाकारवती असद्भावस्थापना, साध्वाद्याकारस्य तत्रासद्भावादिति, निगमयन्नाह—'सेतमित्यादि' तदेतत् स्थापनावश्यकमित्यर्थः ॥ १० ॥

अत्र नामस्थापनयोरभेदं पश्यन्निदमाह—

नामट्ठवणाणं को पइविसेसो ?, णामं आवकहिअं, ठवणा इत्तरिआ वा होज्जा आवकहिआ वा (सू० ११)

नामस्थापनयोः कः प्रतिविशेषो ?, न कश्चिदित्यभिप्रायः, तथाहि–आवश्यकादिभावार्थशून्ये गोपालदारकादौ द्रव्यमात्रे यथा आवश्यकादि नाम क्रियते, तत्स्थापनापि तथैव तच्छून्ये काष्ठकर्मादौ द्रव्यमात्रे क्रियते, अतो भावशून्ये द्रव्यमात्रे क्रियमाणत्वाविशेषान्नानयोः कश्चिद्विशेषः, अत्रोत्तरमाह—'नामं आवकहियमित्यादि' नाम यावत्कथिकं-स्वाश्रयद्रव्यस्यास्तित्वकथां यावदनुवर्त्तते, न पुनरन्तराऽप्युपरमते(ति), स्थापना पुनरित्वरा–स्वल्पकालभाविनी वा स्याद्यावत्कथिका वा, स्वाश्रयद्रव्ये अवतिष्ठमानेऽपि काचिदन्तराऽपि निवर्त्तते काचित्तु तत्सत्तां यावदवतिष्ठत इतिभावः, तथाहि–नाम आवश्यकादिकं मेरुजम्बूद्वीपकलिङ्गमगधसुराष्ट्रादिकं वा यावत् स्वाश्रयो गोपालदारकदेहादिः शिलासमुच्चयादिर्वा समस्ति तावदवतिष्ठत इति तद्यावत्कथिकमेव, स्था-

॥ १३ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [११] दीप अनुक्रम [१२]	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[४५], चूलिकासूत्र-[२] अनुयोगद्वार मूलं एवं हेमचन्द्रसूरि-रचिता वृत्तिः

पना त्वावश्यकत्वेन योऽक्षः स्थापितः स क्षणान्तरे पुनरपि तथाविधप्रयोजनसम्भवे इन्द्रत्वेन स्थाप्यते, पुनरपि च राजादित्वेनेत्यल्पकालवर्त्तिनी, शाश्वतप्रतिमादिरूपा तु यावत्कथिका वर्त्तते, तस्याश्चार्हदादिरूपेण सर्वदा तिष्ठतीति स्थापनेति व्युत्पत्तेः स्थापनात्वमवसेयं, न तु स्थाप्यत इति स्थापना, शाश्वतत्वेन केनापि स्थाप्यमानत्वाभावादिति, तस्माद्भावशून्यद्रव्याधारसाम्येऽप्यस्त्यनयोः कालकृतो विशेषः। अत्राह–ननु यथा स्थापना काचिदल्पकालीना तथा नामापि किञ्चिदल्पकालीनमेव, गोपालदारकादौ विद्यमानेऽपि कदाचिदनेकनामपरावृत्तिदर्शनाद्, सत्यं, किन्तु प्रायो नाम यावत्कथिकमेव, यस्तु क्वचिदन्यथोपलम्भः सोऽल्पत्वान्नेह विवक्षित इत्यदोषः। उपलक्षणमात्रं चेदं कालभेदेनैतयोर्भेदकथनम्, अपरस्यापि बहुप्रकारभेदस्य सम्भवात्, तथाहि–यथेन्द्रादिप्रतिमास्थापनायां कुण्डलाङ्गदादिभूषितः सन्निहितशचीवज्रादिराकार उपलभ्यते न तथा नामेन्द्रादौ, एवं यथा तत्स्थापनादर्शनाद् भावः समुल्लसति नैवमिन्द्रादिश्रवणमात्राद्, यथा च तत्स्थापनायां लोकस्योपयाचितेच्छापूजाप्रवृत्तिसमीहितलाभादयो दृश्यन्ते नैवं नामेन्द्रादाविलेवमन्यदपि वाच्यमिति ॥ ११ ॥ उक्तं स्थापनावश्यकम्, इदानीं द्रव्यावश्यकनिरूपणाय प्रश्नं कारयति—

से किं तं दव्वावस्सयं?, २ दुविहं पण्णत्तं, तंजहा—आगमओ अ नोआगमओ अ (सू० १२)

अथ किं तत् द्रव्यावश्यकमिति पृष्टे सत्याह–'दव्वावस्सयं दुविहमित्यादि' तत्र द्रवति-गच्छति ताँस्तान्पर्यायानिति द्रव्यं-विवक्षितयोरतीतभविष्यद्भावयोः कारणम्, अनुभूतविवक्षितभावमनुभविष्यद्विवक्षितभावं वा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	अथ द्रव्य-आवश्यकस्य भेद-प्रभेदयुक्त विस्तृत-वर्णनं क्रियते

वस्त्वित्यर्थः, द्रव्यं च तदावश्यकं च द्रव्यावश्यकम्, अनुभूतावश्यकपरिणाममनुभविष्यदावश्यकपरिणामं वा साधुदेहादीत्यर्थः। द्रव्यलक्षणं च सामान्यत इदम्—'भूतस्य भाविनो वा भावस्य हि कारणं तु यल्लोके। तत् द्रव्यं तत्त्वज्ञैः सचेतनाचेतनं कथितम् ॥ १ ॥' व्याख्या–तद् द्रव्यं तत्त्वज्ञैः कथितं, यत्कथंभूतमित्याह–यत्कारणं-हेतुः, कस्येत्याह–'भावस्य' पर्यायस्य, कथंभूतस्येत्याह–'भूतस्य' अतीतस्य 'भाविनो वा' भविष्यतो वा, 'लोके' आधारभूते, तच्च सचेतनं-पुरुषादि अचेतनं च-काष्ठादि भवति, एतदुक्तं भवति–यः पूर्वं स्वर्गादिष्विन्द्रादित्वेन भूत्वा इदानीं मनुष्यादित्वेन परिणतः सोऽतीतस्येन्द्रादिपर्यायस्य कारणत्वात्साम्प्रतमपि द्रव्यत इन्द्रादिरभिधीयते, अमात्यादिपदपरिभ्रष्टामात्यादिवत्, तथा अग्रेऽपि य इन्द्रादित्वेनोत्पत्स्यते स इदानीमपि भविष्यदिन्द्रादिपदपर्यायकारणत्वात् द्रव्यत इन्द्रादिरभिधीयते, भविष्यद्राजकुमारराजवत्, एवमचेतनस्यापि काष्ठादेर्भूतभविष्यत्पर्यायकारणत्वेन द्रव्यता भावनीयेत्यार्यार्थः ॥ १ ॥ इतः प्रकृतमुच्यते–तत्रेह द्रव्यरूपमावश्यकं प्रकृतं, तत्रावश्यकोपयोगाधिष्ठितः साध्वादिदेहो वन्दनकादिसूत्रोच्चारणलक्षणश्चागमः आवर्त्तादिका क्रिया चावश्यकमुच्यते, आवश्यकोपयोगशून्यास्तु ता एव देहागमक्रिया द्रव्यावश्यकं, तच्च द्विविधं प्रज्ञप्तमिति, तद्यथा—'आगमतः' आगममाश्रित्य 'नोआगमतः' नोआगममाश्रित्य, नोआगमशब्दार्थं यथावसरमेव वक्ष्यामः, चशब्दौ द्वयोरपि स्वस्वविषये तुल्यप्राधान्यख्यापनार्थौ ॥१२॥ अत्राद्यभेदजिज्ञासुराह—

से किं तं आगमओ दव्वावस्सयं?, २जस्स णं आवस्सएत्ति पदं सिक्खितं ठितं जितं

Jain Education Inte... For Private & Personal Use Only ...nelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१३]

दीप अनुक्रम [१४]

मितं परिजितं नामसमं घोससमं अहीणक्खरं अणच्चक्खरं अव्वाइद्धक्खरं अक्खलिअं अमिलिअं अवच्चामेलियं पडिपुण्णं पडिपुण्णघोसं कंठोट्ठविप्पमुक्कं गुरुवायणोवगयं, से णं तत्थ वायणाए पुच्छणाए परिअट्टणाए धम्मकहाए नो अणुपेहाए, कम्हा? 'अणुवओगो दव्व'मितिकट्टु (सू० १३)

अथ किं तदागमतो द्रव्यावश्यकमिति, आह–'आगमतो दव्वावस्सयं जस्स णमित्यादि' 'ण'मिति पूर्ववत्, 'जस्स'त्ति यस्य कस्यचित् 'आवस्सएत्तिपयं'ति आवश्यकपदाभिधेयं शास्त्रमित्यर्थः, ततश्च यस्य कस्यचिदावश्यकशास्त्रं शिक्षितं स्थितं जितं यावत् वाचनोपगतं भवति, 'से णं तत्थे'ति स-जन्तुस्तत्र-आवश्यकशास्त्रे वाचनाप्रच्छनापरिवर्त्तनाधर्म्मकथाभिर्वर्त्तमानोऽप्यावश्यकोपयोगे अवर्त्तमानः'आगमतः' आगममाश्रित्य द्रव्यावश्यकमिति समुदायार्थः । अत्राह–नन्वागममाश्रित्य द्रव्यावश्यकमित्यागमरूपमिदं द्रव्यावश्यकमित्युक्तं भवति, एतच्चायुक्तं, यत आगमो ज्ञानं, ज्ञानं च भाव एवेति कथमस्य द्रव्यत्वमुपपद्यते?, सत्यमेतत्, किन्त्वागमस्य कारणमात्मा तदधिष्ठितो देहः शब्दश्चोपयोगशून्यसूत्रोच्चारणरूप इहास्ति, न तु साक्षादागमः, एतच्च त्रितयमागमकारणत्वात्कारणे कार्योपचारादागम उच्यते, कारणं च विवक्षितभावस्य द्रव्यमेव भवतीत्युक्तमेवेत्यदोषः । तत्रादित आरभ्य पठनक्रियया यावदन्तं नीतं तच्छि-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[४५], चूलिकासूत्र-[२] अनुयोगद्वार मूलं एवं हेमचन्द्रसूरि-रचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१३]

दीप अनुक्रम [१४]

क्षितमुच्यते, तदेवाविस्मरणतश्चेतसि स्थितं-स्थितत्वात् स्थितमप्रच्युतमित्यर्थः, परावर्त्तनं कुर्व्वतः परेण वा क्वचित् पृष्टस्य यच्छीघ्रमागच्छति तज्जितं, विज्ञातश्लोकपदवर्णादिसंख्यं मितं, परि-समन्तात्सर्व्वप्रकारैर्जितं परिजितं-परावर्त्तनं कुर्व्वतो यत्क्रमेणोत्क्रमेण वा समागच्छतीत्यर्थः, नाम-अभिधानं तेन समं नामसमम्, इदमुक्तं भवति–यथा स्वनाम कस्यचिच्छिक्षितं जितं मितं परिजितं भवति तथैतदपीत्यर्थः, घोषा-उदात्तादयः तैर्वाचनाचार्योभिहितघोषैः समं घोषसमं, यथा गुरुणा अभिहिता घोषास्तथा शिष्योऽपि यत्र शिक्षते तत् घोषसममिति भावः, एकद्व्यादिभिरक्षरैर्हीनं हीनाक्षरं न तथा अहीनाक्षरम्, एकादिभिरक्षरैरधिकमत्यक्षरं न तथा अनत्यक्षरम्, 'अव्वाइद्धक्खरं'ति विपर्यस्तरत्नमालागतरत्नानीव व्याविद्धानि-विपर्यस्तान्यक्षराणि यत्र तद्व्याविद्धाक्षरं न तथाऽव्याविद्धाक्षरं, 'अव्वाइद्ध'मिति क्वचित्पाठः, तत्रापि व्याविद्धाक्षरयोगाद्व्याविद्धं न तथाऽव्याविद्धम्, उपलशकलाद्याकुलभूभागे लाङ्गलमिव स्खलति यत्तत् स्खलितं न तथाऽस्खलितम्, अनेकशास्त्रसम्बन्धीनि सूत्राण्येकत्र मीलयित्वा यत्र पठति तत् मिलितमसदृशधान्यमेलकवत्, अथवा परावर्त्तमानस्य यत्र पदादिविच्छेदो न प्रतीयते तन्मीलितं न तथाऽमीलितम्, एकस्मिन्नेव शास्त्रेऽन्यान्यस्थाननिबद्धान्येकार्थानि सूत्राण्येकत्र स्थाने समानीय पठतो व्यत्यानेडितम्, अथवा आचारादिसूत्रमध्ये स्वमतिचर्चितानि तत्सदृशानि सूत्राणि कृत्वा प्रक्षिपतो व्यत्यानेडितम्, अस्थानविरतिकं वा व्यत्यानेडितं न तथाऽव्यत्यानेडितं, सूत्रतो बिन्दुमात्रादिभिरनूनमर्थतस्त्वध्याहाराकाङ्क्षादिरहितं प्रतिपूर्णम्, उदात्तादिघोषैरविकलं

॥ १५ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रतिपूर्णघोषम् । अत्राह-घोषसममित्युक्तमेव तत्क इह विशेष इति, उच्यते, घोषसममिति शिक्षाकालमधिकृत्योक्तं, प्रतिपूर्णघोषं तु परावर्त्तनादिकालमधिकृत्येति विशेषः, कण्ठश्चौष्ठश्च कण्ठौष्ठमिति प्राण्यङ्गत्वात्समाहारस्तेन विप्रमुक्तं कण्ठौष्ठविप्रमुक्तं, बालमूकभाषितवद्यदव्यक्तं न भवतीत्यर्थः, गुरुप्रदत्तया वाचनया उपगतं-प्राप्तं गुरुवाचनोपगतं न तु कर्णाघाटकेन शिक्षितं, न वा पुस्तकात् स्वयमेवाधीतमिति भावः, तदेवं यस्य जन्तोरावश्यकशास्त्रं शिक्षितादिगुणोपेतं भवति स जन्तुस्तत्रावश्यकशास्त्रे वाचनया-शिष्याध्यापनलक्षणया प्रच्छनया-तद्गतार्थादेर्गुरुं प्रति प्रश्नलक्षणया परावर्त्तनया-पुनः पुनः सूत्रार्थाभ्यासलक्षणया धर्मकथया-अहिंसादिधर्म्मप्ररूपणस्वरूपया वर्त्तमानोऽपि, अनुपयुक्तत्वादिति साध्याहारम्, आगमतो द्रव्यावश्यकमित्यनेन सम्बन्धः । ननु यथा वाचनादिभिस्तत्र वर्त्तमानोऽपि द्रव्यावश्यकं भवति तथाऽनुप्रेक्षयाऽपि तत्र वर्त्तमानस्तद्भवति?, नेत्याह–'नो अणुप्पेहाए'त्ति अनुप्रेक्षया-ग्रन्थार्थानुचिन्तनरूपया, तत्र वर्त्तमानो न द्रव्यावश्यकमित्यर्थः, अनुप्रेक्षाया उपयोगमन्तरेणाभावाद्, उपयुक्तस्य च द्रव्यावश्यकत्वायोगादिति भावः । अत्राह परः—'कम्हे'त्ति, ननु कस्माद्वाचनादिभिस्तत्र वर्त्तमानोऽपि द्रव्यावश्यकं? कस्माच्चानुप्रेक्षया तत्र वर्त्तमानो न तथेति प्रच्छकाभिप्रायः, एवं पृष्टे सत्याह—'अणुवओगो दव्वमितिकट्टु त्ति' अनुपयोगो द्रव्यमितिकृत्वा, उपयोजनमुपयोगो-जीवस्य बोधरूपो व्यापारः, स चेह विवक्षितार्थे चित्तस्य विनिवेशस्वरूपो गृह्यते, न विद्यतेऽसौ यत्र सोऽनुपयोगः–पदार्थः, स विवक्षितोपयोगस्य कारणमात्रत्वात् द्रव्यमेव भवति

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनुयो० मलधारीया ॥ १६ ॥

'इतिकृत्वा' अस्मात्कारणाद् अनन्तरोक्तमुपपद्यत इति शेषः, एतदुक्तं भवति-उपयोगपूर्वका अनुपयोगपूर्वकाश्च वाचनाप्रच्छनादयः संभवन्त्येव, तत्रेह द्रव्यावश्यकचिन्ताप्रस्तावादनुपयोगपूर्वका गृह्यन्ते, अत एव सूत्रेऽनभिहितस्याप्यनुपयुक्तत्वस्याध्याहारस्तत्र कृतः, अनुपयोगस्तु भावशून्यता, तच्छून्यं च वस्तु द्रव्यमेव भवतीत्यतो वाचनादिभिस्तत्र वर्त्तमानोऽपि द्रव्यावश्यकम्, अनुप्रेक्षा तूपयोगपूर्विकैव संभवति अतस्तत्र वर्त्तमानो न तथेति भावार्थः। अत्राह–नन्वागमतोऽनुपयुक्तो वक्ता द्रव्यावश्यकमित्येतावतैवेष्टसिद्धेः शिक्षितादिश्रुतगुणसमुत्कीर्त्तनमनर्थकम्, अत्रोच्यते, शिक्षितादिगुणोत्कीर्त्तनं कुर्व्वन्निदं ज्ञापयति–यदुतैवंभूतमपि निर्दोषं श्रुतमुच्चारयतोऽनुपयुक्तस्य द्रव्यश्रुतं द्रव्यावश्यकमेव भवति, किं पुनः सदोषम्?, उपयुक्तस्य तु स्खलितादिदोषदुष्टमपि निगदतः भावश्रुतमेव भवति, एवमन्यत्रापि प्रत्युपेक्षणादिक्रियाविशेषाः सर्वे निर्दोषा अप्यनुपयुक्तस्य तथाविधफलशून्या एव संपद्यन्ते, उपयुक्तस्य तु मतिवैकल्यादितः सदोषा अप्यमी कर्ममलापगमायैवेत्यलं विस्तरेण। अत्राह–ननु भवत्येवं, किन्तु हीनाक्षरे सूत्रे समुच्चारिते को दोषो? येनोक्तमहीनाक्षरमिति, अत्रोच्यते, लोकेऽपि तावद्विद्यामन्त्रादिभिरक्षरादिहीनैरुच्चार्यमाणैर्विवक्षितफलवैकल्यमनर्थावासिश्चं दृश्यते, किं पुनः परममन्त्रकल्पे सिद्धान्ते?, तथाहि–राजगृहनगरे समवसृतस्य भगवतश्चरमतीर्थाधिपतेर्वन्दनार्थं विबुधविद्याधरनरनिवहः श्रेणिकश्च सपुत्रः समाययौ, ततो भगवदन्तिके धर्मं श्रुत्वा प्रतिनिवृत्तायां परिषदि कस्यचिद्विद्याधरस्य गगनोत्पतनहेतुविद्यासंबन्ध्येकमक्षरं विस्मृतिपथमवततार, विस्मृते च

वृत्तिः अनुयो० अधि० ॥ १६ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१३]

दीप अनुक्रम [१४]

तस्मिन्किञ्चिन्नभस्युत्पत्य पुनर्निपतत्यसौ पुनरुत्पतति पुनश्च निपतति, एवं च कुर्वन्तममुं विलोक्य श्रेणिकेन भगवान् पृष्टः–किमित्ययं महाभागः खेचरो विधुरितपक्षः पक्षीव नभसि किञ्चिदुत्पत्य पुनर्निपतति?, भगवता च विद्याक्षरविस्मरणव्यतिकरस्तस्मै निवेदितः, तं च निवेद्यमानं श्रुत्वा अभयकुमारः खेचरमुपसृत्यैवमवादीत्–भोः खेचर! यदि मां समानसिद्धिकं करोषि तदा त्वद्विद्याक्षैरमुपलभ्य कथयामि, प्रतिपन्नं च तेन, अभयकुमारस्य चैकस्मादपि पदादनेकपदाभ्यूहनशक्तिरस्तीति शेषाक्षरानुसारेणोपलभ्य तदक्षरं निवेदितं खेचरस्य, सोऽपि संजातसंपूर्णविद्यो हृष्टः श्रेणिकसुताय विद्यासाधनोपायं कथयित्वा गतः समीहितप्रदेशमिति, एष दृष्टान्तः, उपनयस्त्वयम्–यथा तस्य विद्याधरस्य हीनाक्षरतादोषान्नभोगमनमुपरतं, तदुपरमे च व्यर्थैव विद्या, तथेहापि हीनाक्षरतायामर्थभेदस्तद्भेदे क्रियाभेदस्तद्भेदे च मोक्षाभावस्तदभावे च दीक्षादिग्रहणवैयर्थ्यमेवेति। एवमधिकाक्षरादिष्वपि दोषाः सदृष्टान्ता अभ्यूह्य वाच्याः ॥ १३ ॥

नेगमस्स णं एगो अणुवउत्तो आगमओ एगं दव्वावस्सयं दोण्णि अणुवउत्ता आगमओ दोण्णि दव्वावस्सयाइं तिण्णि अणुवउत्ता आगमओ तिण्णि दव्वावस्सयाइं एवं जावइआ अणुवउत्ता आगमओ तावइआइं दव्वावस्सयाइं, एवमेव ववहारस्सवि, संगहस्स णं एगो वा अणेगो वा अणुवउत्तो वा अणुवउत्ता वा आगमओ दव्वाव-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[४५], चूलिकासूत्र-[२] अनुयोगद्वार मूलं एवं हेमचन्द्रसूरि-रचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१४]

दीप अनुक्रम [१५]

स्सयं दव्वावस्सयाणि वा, से एगे दव्वावस्सए, उज्जुसुअस्स एगो अणुवउत्तो आगमतो एगं दव्वावस्सयं पुहुत्तं नेच्छइ, तिण्हं सद्दनयाणं जाणए अणुवउत्ते अवत्थु, कम्हा ?, जइ जाणए अणुवउत्ते न भवति जइ अणुवउत्ते जाणए ण भवति, तम्हा णत्थि आगमओ दव्वावस्सयं। से तं आगमओ दव्वावस्सयं (सू० १४)

इह जिनमते सर्वमपि सूत्रमर्थश्च श्रोतृजनमपेक्ष्य नयैर्विचार्यते, 'नत्थि नएहिं विहुणं सुत्तं अत्थो य जिणमए किंचि। आसज्ज उ सोयारं नए नयविसारओ बूया ॥ १ ॥'[1] इति वचनात्, अत इदमपि द्रव्यावश्यकं नयैश्चिन्त्यते, ते च मूलभेदानाश्रित्य नैगमादयः सप्त, तदुक्तम्–"नेगमसंगहववहार उजुसुए चेव होई बोद्धव्वे। सद्दे य समभिरूढे एवंभूते य मूलनया ॥ १ ॥"[2] तत्र नैगमस्तावत्कियन्ति द्रव्यावश्यकानीच्छतीत्याह —'नेगमस्सेत्यादि' सामान्यविशेषादिप्रकारेण नैकः अपि तु बहवो गमा–वस्तुपरिच्छेदा यस्यासौ निरुक्तविधिना ककारस्य लोपान्नैगमः, सामान्यविशेषादिप्रकारैः बहुरूपवस्त्वभ्युपगमपर इत्यर्थः, तस्य-नैगमस्यैको देवदत्तादिरनुपयुक्त आगमत एकं द्रव्यावश्यकं, द्वौ देवदत्तयज्ञदत्तावनुपयुक्तौ आगमतो द्वे द्रव्यावश्यके, त्रयो देवदत्तयज्ञदत्तसोमदत्ता अनुपयुक्ता आगमतस्त्रीणि द्रव्यावश्यकानि, किं बहुना?, एवं यावन्तो देवदत्तादः

१ नास्ति नयैर्विहीनं सूत्रमर्थश्च जिनमते किंचित्। आसाद्य तु श्रोतारं नयान् नयविशारदो ब्रूयात् ॥ १ ॥
२ नैगमः संग्रहो व्यवहार ऋजुसूत्रश्चैव भवति बोद्धव्यः। शब्दश्च समभिरूढ एवम्भूतश्च मूलनयाः ॥ १ ॥

॥ १७ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

योऽनुपयुक्तास्तावन्त्येव तान्यतीतादिकालत्रयवर्त्तीनि नैगमस्यागमतो द्रव्यावश्यकानि, एतदुक्तं भवति–नैगमो हि सामान्यरूपं विशेषरूपं च वस्त्वभ्युपगच्छत्येव, न पुनर्वक्ष्यमाणसंग्रहवत्सामान्यरूपमेव, ततो विशेषवादित्वादस्येह प्राधान्येन विवक्षितत्वाद्यावन्तः केचन देवदत्तादिविशेषा अनुपयुक्तास्तावन्ति सर्वाण्यप्यस्य द्रव्यावश्यकानि, न पुनः संग्रहवत्सामान्यवादित्वादेकमेवेतिभावः। एवमेव 'ववहारस्सवि'त्ति व्यवहरणं व्यवहारो लौकिकप्रवृत्तिरूपस्तत्प्रधानो नयोऽपि व्यवहारः, तस्यापि 'एवमेव' नैगमवदेको देवदत्तादिरनुपयुक्त आगमत एकं द्रव्यावश्यकमित्यादि सर्वं वाच्यम्, इदमुक्तं भवति–व्यवहारनयो लोकव्यवहारोपकारिण एव पदार्थानभ्युपगच्छति, न शेषान्, लोकव्यवहारे च जलाहरणव्रणपिण्डीप्रदानादिके घटनिम्बादिविशेषा एवोपकुर्व्वाणा दृश्यन्ते न पुनस्तदतिरिक्तं तत्सामान्यमिति विशेषानेव वस्तुत्वेन प्रतिपद्यतेऽसौ न सामान्यं, व्यवहारानुपकारित्वाद्विशेषव्यतिरेकेणानुपलभ्यमानत्वाच्चेति, अतो विशेषवादिनैगममतसाम्येनातिदिष्टः। अत्र चातिदेशेनैवेष्टार्थसिद्धेर्ग्रन्थलाघवार्थं संग्रहमतिक्रम्य व्यवहारोपन्यासः कृत इति भावनीयम्। 'संगहस्सेत्यादि' सर्वमपि भुवनत्रयान्तर्वर्त्ति वस्तुनिकुरुम्बं संगृह्णाति–सामान्यरूपतयाऽध्यवस्यतीति संग्रहस्तस्य मते एको वा अनेके वा अनुपयुक्तोऽनुपयुक्ता वा यदागमतो द्रव्यावश्यकं द्रव्यावश्यकानि वा तत्किमित्याह—'से एगे'त्ति तदेकं द्रव्यावश्यकम्, इदमत्र हृदयम्-संग्रहनयः सामान्यमेवाभ्युपगच्छति न विशेषान्, अभिदधाति च–सामान्याद्विशेषा व्यतिरिक्ताः स्युः अव्यतिरिक्ता वा स्युः?, यद्याद्यः पक्षस्तर्हि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

न सन्त्यमी, निःसामान्यत्वात्, खरविषाणवत्, अथापरः पक्षस्तर्हि सामान्यमेव ते, तद्व्यतिरिक्तत्वात्, सामान्यस्वरूपवत्, तस्मात्सामान्यव्यतिरेकेण विशेषासिद्धेर्यानि कानिचिद् द्रव्यावश्यकानि तानि तत्सामान्याव्यतिरिक्तत्वादेकमेव संग्रहस्य द्रव्यावश्यकमिति। 'उजुसुयस्से'त्यादि ऋजु-अतीतानागतपरकीयपरिहारेण प्राञ्जलं वस्तु सूत्रयति-अभ्युपगच्छतीति ऋजुसूत्रः, अयं हि वर्त्तमानकालभाव्येव वस्तु अभ्युपगच्छति, नातीतं विनष्टत्वान्नाप्यनागतमनुत्पन्नत्वाद्, वर्त्तमानकालभाव्यपि स्वकीयमेव मन्यते स्वकार्यसाधकत्वात् स्वधनवत्, परकीयं तु नेच्छति स्वकार्याप्रसाधकत्वात् परधनवत्, तस्मादेको देवदत्तादिरनुपयुक्तोऽस्य मते आगमत एकं द्रव्यावश्यकमस्ति 'पुहुत्तं नेच्छइ'त्ति अतीतानागतभेदतः परकीयभेदतश्च 'पृथक्त्वं' पार्थक्यं नेच्छत्यसौ, किं तर्हि?, वर्त्तमानकालीनं स्वगतमेव चाभ्युपैति, तच्चैकमेवेति भावः, 'तिण्हं सद्दनयाण'मित्यादि, शब्दप्रधाना नयाः शब्दनयाः-शब्दसमभिरूढैवंभूताः, ते हि शब्दमेव प्रधानमिच्छन्तीति, अर्थं तु गौणं, शब्दवशेनैवार्थप्रतीतेः, तेषां त्रयाणां शब्दनयानां ज्ञायकोऽथ चानुपयुक्त इत्येतदवस्तु, न सम्भवतीत्यर्थः, 'कम्हे'ति कस्मादेवमुच्यते इत्याह—'जई'त्यादि, यदि ज्ञायकस्तर्ह्यनुपयुक्तो न भवति, ज्ञानस्योपयोगरूपत्वाद्, इदमत्र हृदयम्-आवश्यकशास्त्रज्ञस्तत्र चानुपयुक्त आगमतो द्रव्यावश्यकमिति प्राग्निर्णीतम्, एतच्चामी न प्रतिपद्यन्ते, यतो यद्यावश्यकशास्त्रं जानाति कथमनुपयुक्तः?, अनुपयुक्तश्चेत् कथं जानाति?, ज्ञानस्योपयोगरूपत्वात्, यदप्यागमकारणत्वादात्मदेहादिकमागमत्वेनोक्तं, तदप्यौपचारिकत्वादमी न मन्यन्ते, शुद्धनयत्वेन मुख्यव-

॥ १८ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१४]

दीप अनुक्रम [१५]

स्वभ्युपगमपरत्वात्, तस्मादेतन्मते द्रव्यावश्यकस्यासंभव इति, निगमयन्नाह—'सेत्त'मित्यादि, तदेतदागमतो द्रव्यावश्यकम् ॥ १४ ॥ उक्तं सप्रपञ्चमागमतो द्रव्यावश्यकमिदानीं नोआगमतस्तदुच्यते—

से किं तं नोआगमओ दव्वावस्सयं ?, २ तिविहं पण्णत्तं, तंजहा—जाणयसरीरदव्वावस्सयं भविअसरीरदव्वावस्सयं जाणयसरीरभविअसरीरवतिरित्तं दव्वावस्सयं(सू०१५)

अथ किं तन्नोआगमतो द्रव्यावश्यकमिति प्रश्नः, उत्तरमाह—'नोआगमओ दव्वावस्सयं तिविहं पण्णत्तमि'त्यादि, नोआगमत इत्यत्र नोशब्द आगमस्य सर्वनिषेधे देशनिषेधे वा वर्त्तते,यत उक्तं पूर्वमुनिभिः—"आगमसव्वनिसेहे नोसद्दो अहव देसपडिसेहे। सव्वे जह णसरीरं भव्वस्स य आगमाभावा॥१॥" व्याख्या-आगमस्य–आवश्यकादिज्ञानस्य सर्वनिषेधे वर्त्तते नोशब्दः, अथवा तस्यैव देशप्रतिषेधे वर्तते, तत्र 'सव्वे'त्ति सर्वनिषेधे उदाहरणमुच्यते, यथेत्युपप्रदर्शने, 'णसरीरं'ति ज्ञस्य-जानतः शरीरं ज्ञशरीरं नोआगमत इह द्रव्यावश्यकं, 'भव्यस्य च' योग्यस्य यच्छरीरं तदपि नोआगमत इह द्रव्यावश्यकं, कुत इत्याह—आगमस्य–आवश्यकादिज्ञानलक्षणस्य सर्वथाऽभावाद्, इदमुक्तं भवति–ज्ञशरीरं भव्यशरीरं चानन्तरमेव वक्ष्यमाणस्वरूपं नोआगमतः सर्वथा आगमाभावमाश्रित्य द्रव्यावश्यकमुच्यते, नोशब्दस्यात्र पक्षे सर्वनिषेधवचनत्वादिति गाथार्थः ॥ देशप्रतिषेधवचनेऽपि नोशब्दे उदाहरणं यथा—"किरियागमुच्चरंतो आवासं कुणइ भावसुन्नो उ। किरिया-

अनु. ४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गमो न होई तस्स निसेहो भवे देसे ॥ १ ॥" व्याख्या–क्रियाम्-आवर्तादिकां कुर्वन्नित्यध्याहारः, आगमं च–वन्दनकसूत्रादिकमुच्चारयन् भावशून्यो य आवश्यकं करोति, सोऽपि नोआगमतः, इह द्रव्यावश्यकमिति शेषः, अत्र च क्रिया आवर्तादिकाऽऽगमो न भवति, जडत्वाद्, आगमस्य च ज्ञानरूपत्वाद्, अतस्तस्याऽऽगमस्य देशे क्रियालक्षणे निषेधो भवति, क्रिया आगमो न भवतीत्यर्थः, अतो नोआगमत इति, इह किमुक्तं भवति?–देशे क्रियालक्षणे आगमाभावमाश्रित्य द्रव्यावश्यकमिदमिति गाथार्थः ॥ तदेवं नोआगमत आगमाभावमाश्रित्य द्रव्यावश्यकं त्रिविधं प्रज्ञप्तं, तद्यथा—ज्ञशरीरद्रव्यावश्यकं, भव्यशरीरद्रव्यावश्यकं, ज्ञशरीरभव्यशरीरव्यतिरिक्तं द्रव्यावश्यकम् ॥ १५ ॥ तत्राऽऽद्यभेदं विवरीषुराह—

से किं तं जाणयसरीरदव्वावस्सयं?, २ आवस्सएत्ति पयत्थाहिगारजाणयस्स जं सरीरयं ववगयचुतचावितचत्तदेहं जीवविप्पजढं सिज्जागयं वा संथारगयं वा निसीहिआगयं वा सिद्धसिलातलगयं वा पासित्ता णं कोई भणेज्जा–अहो! णं इमेणं सरीरसमुस्सएणं जिणदिट्ठेणं भावेणं आवस्सएत्तिपयं आघवियं पण्णवियं परूवियं दंसियं निदंसियं उवदंसियं, जहा को दिट्ठंतो?, अयं महुकुंभे आसी अयं घयकुंभे आसी, सेतं जाणयसरीरदव्वावस्सयं (सू० १६)

॥ १९ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अथ किं तत् ज्ञशरीरद्रव्यावश्यकमिति प्रश्ने निर्वचनमाह—'जाणगसरीरदव्वावस्सयं आवस्सएत्ती'त्यादि, ज्ञानवानिति ज्ञः, प्रतिक्षणं शीर्यत इति शरीरं, ज्ञस्य शरीरं ज्ञशरीरं, तदेव अनुभूतभावत्वाद् द्रव्यावश्यकं, किं तदित्याह–यच्छरीरकं संज्ञायां कच् वपुरित्यर्थः, कस्य सम्बन्धीत्याह—'आवस्सएत्ती'त्यादि, आवश्यकमिति यत्पदं आवश्यकपदाभिधेयं शास्त्रमित्यर्थः, तस्यार्थ एवार्थाधिकारोऽनेके वा तद्गतार्थाधिकारा गृह्यन्ते, तस्य तेषां वा ज्ञातुः सम्बन्धि, कथंभूतं तदिदं ज्ञशरीरं द्रव्यावश्यकं भवतीत्याह—व्यपगतच्युतच्यावितत्यक्तदेहं जीवविप्रमुक्तमित्यक्षरयोजना, इदानीं भावार्थः कश्चिदुच्यते–तत्र व्यपगतं–चैतन्यपर्यायादचैतन्यलक्षणं पर्यायान्तरं प्राप्तम्, अत एव च्युतं–उच्छ्वासनिःश्वासजीवितादिदशविधप्राणेभ्यः परिभ्रष्टम्, अचेतनस्योच्छ्वासाद्ययोग्यत्वादन्यथा लेष्ट्वादीनामपि तत्प्रसङ्गात्, तेभ्यश्च परिभ्रंशस्तु स्वभाववादिभिः कैश्चित् स्वभावत एवाभ्युपगम्यते, तदपोहार्थमाह—च्यावितं–बलीयसा आयुःक्षयेण तेभ्यः परिभ्रंशितं, न तु स्वभावतः, तस्य सदाऽवस्थितत्वेन सर्वदा तत्प्रसङ्गाद्, एवं च सति कथंभूतं तदित्याह—त्यक्तदेहं–'दिह उपचये'त्यक्तो देह आहारपरिणतिजनित उपचयो येन तत् त्यक्तदेहम्, अचेतनस्याऽऽहारग्रहणपरिणतेरभावात्, एवमुक्तेन विधिना जीवेन–आत्मना विविधम्–अनेकधा प्रकर्षेण मुक्तं जीवविप्रमुक्तं, तदेतदावश्यकं ज्ञस्य शरीरमतीतावश्यकभावस्य कारणत्वाद् द्रव्यावश्यकम्, अस्य च नोआगमत्वमागमस्य तदानीं सर्वथाऽभावात्, नोशब्दस्य चात्र पक्षे सर्वनिषेधवचनत्वादिति भावः । ननु

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१६]

दीप अनुक्रम [१७]

अनुयो० मलधारीया ॥ २० ॥

यदि जीवविप्रमुक्तमिदं, कथं तर्ह्यस्य द्रव्यावश्यकत्वं?, लेष्ट्वादीनामपि तत्प्रसङ्गात्, तत्पुद्गलानामपि कदाचिदावश्यकवेत्तृभिर्गृहीत्वामुक्तत्वसम्भवादित्याशङ्क्याह–'सेज्जागत'मित्यादि, यस्मादिदं शय्यागतं वा संस्तारगतं वा नैषेधिकीगतं वा सिद्धशिलातलगतं वा दृष्ट्वा कोऽपि ब्रूयाद्–अहो! अनेन शरीरसमुच्छ्रयेण जिनदृष्टेन भावेन आवश्यकमित्येतत् पदं गृहीतमित्यादि यावदुपदर्शितमिति, तस्मादतीतवर्तमानकालभाविवस्त्वेकत्वग्राहिनयानुसारिणामेवंवादिनां सम्भवाद् यथोक्तशरीरस्य द्रव्यावश्यकत्वं न विरुध्यते, लेष्ट्वादिदर्शने पुनर्नैत्थम्भूतः प्रत्ययः कस्यापि समुत्पद्यत इति न तेषां तत्प्रसङ्गः, तेनैव करचरणोरुग्रीवादिपरिणामेनानन्तरमेवाऽऽवश्यककारणत्वेन व्याप्तत्वात्, तदेव तथाविधप्रत्ययजनकं द्रव्यावश्यकं, न लेष्ट्वादय इति भाव इति समुदायार्थः। इदानीमवयवार्थं उच्यते–तत्र शय्या–महती सर्वाङ्गप्रमाणा तां गतं शय्यागतं शय्यास्थितमित्यर्थः, संस्तारो–लघुकोऽर्धतृतीयहस्तमानस्तं गतं तत्रस्थमित्यर्थः, यत्र साधवस्तपःपरिकर्मितशरीराः स्वयमेव गत्वा भक्तपरिज्ञाद्यनशनं प्रतिपन्नपूर्वाः प्रतिपद्यन्ते प्रतिपत्स्यन्ते च तत् सिद्धशिलातलमुच्यते, क्षेत्रगुणतो यथाभद्रकदेवतागुणतो वा साधूनामाराधनाः सिद्ध्यन्ति तत्रेतिकृत्वा, अन्ये तु व्याचक्षते–यत्र महर्षिः कश्चित् सिद्धस्तत् सिद्धशिलातलं, तद्गतं तत्रस्थितं सिद्धशिलातलगतम्, इह 'निसीहियागयं वे'त्यादीन्यपि पदानि वाचनान्तरे दृश्यन्ते, तानि च सुगमत्वात् स्वयमेव भावनीयानि, नवरं नैषेधिकी–शवपरिस्थापनभूमिः, अपरं चात्रान्तरे 'पासित्ता णं कोई भणिज्ज'त्ति ग्रन्थः क्वचिद् दृश्यते, स च समुदायार्थकथनावसरे

वृत्तिः अनुयो० अधि०

॥ २० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

योजित एव, यत्र तु न दृश्यते तत्राध्याहारो द्रष्टव्यः, अहोशब्दो दैन्यविस्मयामन्त्रणेषु वर्तते, स चेह त्रिष्वपि घटते, तथाहि–अनित्यं शरीरमिति दैन्ये, आवश्यकं ज्ञातमिति विस्मये, अन्यं पार्श्वस्थितमामन्त्रयमाणस्याऽऽमन्त्रणे, 'अनेन' प्रत्यक्षतया दृश्यमानेन शरीरमेव पुद्गलसङ्घातत्वात् समुच्छ्रयस्तेन, 'जिनदृष्टेन'–तीर्थङ्कराभिमतेन, 'भावेन' कर्मनिर्जरणाभिप्रायेण, अथवा–भावेन–तदावरणकर्मक्षयक्षयोपशमलक्षणेन, आवश्यकपदाभिधेयं शास्त्रं 'आघविय'ंति प्राकृतशैल्या छान्दसत्वाच्च गुरोः सकाशादागृहीतं, 'प्रज्ञापितं' सामान्यतो विनेयेभ्यः कथितं, 'प्ररूपितं' तेभ्य एव प्रतिसूत्रमर्थकथनतः, 'दर्शितं' प्रत्युपेक्षणादिक्रियादर्शनतः इयं क्रिया एभिरक्षरैरत्रोपात्ता इत्थं च क्रियते इत्येवं विनेयेभ्यः प्रकटितमिति भावः, 'निदर्शितं' कथञ्चिदगृह्णतः परयाऽनुकम्पया निश्चयेन पुनः पुनः दर्शितम्, 'उपदर्शितं' सर्वनययुक्तिभिः। आह–नन्वनेन शरीरसमुच्छ्रयेणाऽऽवश्यकमागृहीतमित्यादि नोपपद्यते, ग्रहणप्ररूपणादीनां जीवधर्मत्वेन शरीरस्याघटमानत्वात्, सत्यं, किन्तु भूतपूर्वगत्या जीवशरीरयोरभेदोपचारादित्थमुपन्यास इत्यदोषः। पुनरप्याह–ननु यद्यपि तच्छरीरकं शय्यादिगतं दृष्ट्वा पूर्वोक्तवक्तारो भवन्ति, तथाऽपि कथं तस्य द्रव्यावश्यकता?, यत आवश्यकस्य कारणमेव द्रव्यावश्यकं भवितुमर्हति, 'भूतस्य भाविनो वे'त्यादिपूर्वोक्तवचनात्, कारणं चाऽऽगमस्य चेतनाधिष्ठितमेव शरीरं न त्विदं, चेतनारहितत्वात्, तस्यापि तत्कारणत्वेऽतिप्रसङ्गात्, सत्यं, किन्त्वतीतपर्यायानुवृत्त्यभ्युपगमपरनयानुवृत्त्याऽतीतमावश्यककारणत्वपर्यायमपेक्ष्य द्रव्यावश्यकताऽस्योच्यत इत्यदोषः। स्यादेवं, यद्यत्रार्थे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[४५], चूलिकासूत्र-[२] अनुयोगद्वार मूलं एवं हेमचन्द्रसूरि-रचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१६]

दीप अनुक्रम [१७]

कश्चिद् दृष्टान्तः स्यादिति विकल्प्य पृच्छति–यथा कोऽत्र दृष्टान्तः?, इति पृष्टे सत्याह—यथाऽयं घृतकुम्भ आसीत्, अयं मधुकुम्भ आसीदित्यादि, एतदुक्तं भवति–यथा मधुनि घृते वा प्रक्षिप्यापनीते तदाधारत्वपर्यायेऽतिक्रान्तेऽप्ययं मधुकुम्भः अयं च घृतकुम्भ इति व्यपदेशो लोके प्रवर्तते, तथा आवश्यककारणत्वपर्यायेऽतिक्रान्तेऽपि अतीतपर्यायानुवृत्त्या द्रव्यावश्यकमिदमुच्यत इति भावः, निगमयन्नाह—'से त'मित्यादि, तदेतद् ज्ञशरीरद्रव्यावश्यकम् ॥ १६ ॥ उक्तो नोआगमतो द्रव्यावश्यकप्रथमभेदः, अथ द्वितीयभेदनिरूपणार्थमाह—

से किं तं भविअसरीरदव्वावस्सयं?, २ जे जीवे जोणिजम्मणनिक्खंते इमेणं चेव आत्तएणं सरीरसमुस्सएणं जिणोवदिट्ठेणं भावेणं आवस्सएत्तिपयं सेयकाले सिक्खिस्सइ न ताव सिक्खइ, जहा को दिट्ठंतो?, अयं महुकुंभे भविस्सइ अयं घयकुंभे भविस्सइ, से त्तं भविअसरीरदव्वावस्सयं (सू० १७)

अथ किं तद्व्यशरीरद्रव्यावश्यकमिति प्रश्ने सत्याह—'भवियसरीरदव्वावस्सयं जे जीवे'इत्यादि, विवक्षितपर्यायेण भविष्यतीति भव्यो-विवक्षितपर्यायार्हस्तद्योग्य इत्यर्थः, तस्य शरीरं, तदेव भाविभावावश्यककारणत्वात् द्रव्यावश्यकं, भव्यशरीरद्रव्यावश्यकं, किं पुनस्तदित्यत्रोच्यते–यो जीवो योनीजन्मत्वनिष्क्रान्तो-

॥ २१ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१७]

दीप अनुक्रम [१८]

ऽनेनैव शरीरसमुच्छ्रयेणात्तेन जिनोपदिष्टेन भावेन आवश्यकमित्येतत् पदं आगामिनि काले शिक्षिष्यते न तावच्छिक्षते तज्जीवाधिष्ठितं शरीरं भव्यशरीरद्रव्यावश्यकमिति समुदायार्थः। साम्प्रतमवयवार्थं उच्यते–तत्र यः कश्चिद् 'जीवो'जन्तुः योन्या–योषिदवाच्यदेशलक्षणायाः परिपूर्णसमस्तदेहो जन्मत्वेन–जन्मसमयेन निष्क्रान्तो न पुनरामगर्भावस्थ एव पतितो योनीजन्मत्वनिष्क्रान्तः, अनेनैव शरीरमेव पुद्गलसङ्घातत्वादुत्पत्तिसमयादारभ्य प्रतिसमयं समुत्सर्पणाद् वा समुच्छ्रयस्तेन आत्तेन-आदत्तेन वा गृहीतेन प्राकृतशैलीवशादात्मीयेन वा जिनोपदिष्टेनेत्यादि पूर्ववत्, 'सेयकालि'त्ति छान्दसत्वादागामिनि काले शिक्षिष्यते-अध्येष्यते साम्प्रतं तु न तावदद्यापि शिक्षते, तज्जीवाधिष्ठितं शरीरं भव्यशरीरद्रव्यावश्यकं। नोआगमत्वं चात्राप्यागमाभावमाश्रित्य मन्तव्यं, तदानीं तत्र वपुष्यागमाभावात्, नोशब्दस्य चात्रापि सर्वनिषेधवचनत्वात्। अत्राऽऽह–नन्वावश्यकस्य कारणं द्रव्यावश्यकमुच्यते, यदि त्वत्र वपुष्यागमाभावः कथं तर्हि तस्य तं प्रति कारणत्वम्?, न हि कार्याभावे वस्तुनः कारणत्वं युज्यते, अतिप्रसङ्गात्, अतः कथमस्य द्रव्यावश्यकता?, सत्यं, किं तु भविष्यत्पर्यायस्येदानीमपि योऽस्तित्वमुपचरति नयस्तदनुवृत्त्याऽस्य द्रव्यावश्यकत्वमुच्यते, तथा च तदनुसारिणः पठन्ति–'भाविनि भूतवदुपचार' इति, अत्रार्थे दृष्टान्तं दिदर्शयिषुः प्रश्नं कारयति–यथा कोऽत्र दृष्टान्त इति, निर्वचनमाह–यथाऽयं मधुकुम्भो भविष्यतीत्यादि, एतदुक्तं भवति–यथा मधुनि घृते वा प्रक्षेसुमिष्टे तदाधारत्वपर्याये भविष्यत्यपि लोकेऽयं मधुकुम्भो घृतकुम्भो वेत्यादि व्यपदेशो दृश्यते, तथाऽत्रा-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्यावश्यककारणत्वपर्याये भविष्यत्यपि तदस्तित्वपरनयानुवृत्त्या द्रव्यावश्यकत्वमुच्यत इति भावः, निगमयन्नाह—'सेत्त'मित्यादि, तदेतद्द्रव्यशरीरद्रव्यावश्यकमिति ॥ १७ ॥ उक्तो नोआगमतो द्रव्यावश्यकद्वितीयभेदः, तृतीयभेदनिरूपणार्थमाह—

से किं तं जाणयसरीरभविअसरीरवतिरित्तं दव्वावस्सयं ?, २ तिविहं पण्णत्तं, तंजहा-लोइअं कुप्पावयणियं लोउत्तरिअं (सू० १८)

अथ किं तत् ज्ञशरीरभव्यशरीरव्यतिरिक्तं द्रव्यावश्यकम् ?, निर्वचनमाह—'जाणगसरीरभवियसरीरवइरित्ते दव्वावस्सए तिविहे' इत्यादि, यत्र ज्ञशरीरभव्यशरीरयोः सम्बन्धि पूर्वोक्तं लक्षणं न घटते तत् ताभ्यां व्यतिरिक्तं-भिन्नं द्रव्यावश्यकमुच्यते, तच्च त्रिविधं प्रज्ञप्तं, तद्यथा–लौकिकं कुप्रावचनिकं लोकोत्तरिकं च ॥१८॥ तत्र प्रथमभेदं जिज्ञासुराह—

से किं तं लोइयं दव्वावस्सयं ?, २ जे इमे राईसरतलवरमांडबिअकोडुंबिअइब्भसेट्ठिसेणावइसत्थवाहप्पभितिओ कल्लं पाउप्पभायाए रयणीए सुविमलाए फुल्लुप्पलकमलकोमलुम्मिलिअंमि अहापंडुरे पभाए रत्तासोगपगासकिंसुअसुअमुहगुंजद्धरागस-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१९]

दीप अनुक्रम [२०]

रिसे कमलागरनलिणिसंडबोहए उट्ठिअंमि सूरे सहस्सरस्सिंमि दिणयरे तेअसा जलंते मुहधोअणदंतपक्खालणतेल्लफणिहसिद्धत्थयहरिआलिअद्दागधूवपुप्फमल्लगंधतंबोलवत्थाइआइं दव्वावस्सयाइं करेंति, ततो पच्छा रायकुलं वा देवकुलं वा आरामं वा उज्जाणं वा सभं वा पवं वा गच्छन्ति, सेतं लोइयं दव्वावस्सयं (सू० १९)

अत्र निर्वचनमाह—'लोइयमि'त्यादि, लोके भवं लौकिकं शेषं तथैव, अत्र राजेश्वरतलवरादयः प्रभातसमये मुखधावनादि कृत्वा ततः पश्चाद् राजकुलादौ गच्छन्ति, तत्तेषां सम्बन्धि मुखधावनादि लौकिकं ज्ञशरीरभव्यशरीरव्यतिरिक्तं द्रव्यावश्यकमिति समुदायार्थः । तत्र राजा–चक्रवर्ती वासुदेवो बलदेवो महामण्डलिकश्च, ईश्वरो-युवराजः सामान्यमण्डलिकोऽमात्यश्च, अन्ये तु व्याचक्षते–अणिमाद्यष्टविधैश्वर्ययुक्त ईश्वरः, परितुष्टनरपतिप्रदत्तरत्नालङ्कृतसौवर्णपट्टविभूषितशिरास्तलवरः, यस्य पार्श्वत आसन्नमपरं ग्रामनगरादिकं नास्ति तत्सर्वतश्छिन्नजनाश्रयविशेषरूपं मडम्बमुच्यते, तस्याधिपतिर्माडम्बिकः, कतिपयकुटुम्बप्रभुः कौटुम्बिकः, इभो-हस्ती तत्प्रमाणं द्रव्यमर्हतीतीभ्यः–यस्य सत्कपुञ्जीकृतहिरण्यरत्नादिद्रव्येणान्तरितो हस्त्यपि न दृश्यते सः, अधिकतरद्रव्यो वा इभ्य इत्यर्थः, श्रीदेवताध्यासितसौवर्णपट्टविभूषितोत्तमाङ्गः पुरज्येष्ठो वणिग्विशेषः श्रेष्ठी, हस्त्यश्वरथपदातिसमुदायलक्षणायाः सेनायाः प्रभुः

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सेनापतिः—"गणिमं धरिमं मेज्जं पारिच्छेज्जं च दव्वजायं तु । घेत्तूणं लाभत्थं वच्चइ जो अन्नदेसं तु ॥ १ ॥ निवबहुमओ पसिद्धो दीणाणाहाण वच्छलो पंथे । सो सत्थवाहनामं धणोव्व लोए समुव्वहई ॥ २ ॥" एतल्लक्षणयुक्तः सार्थवाहः, प्रभृतिग्रहणेन शेषप्राकृतजनपरिग्रहः, 'कल्लं पाउप्पभायाए'इत्यादि, कल्यमिति विभक्तिव्यत्ययात् सामान्येन प्रभाते, प्रभातस्यैव विशेषावस्थाः प्राह—'पाउ'इत्यादि, प्रादुः–प्राकाश्ये, ततश्च प्रकाशप्रभातायां रजन्यां, किञ्चिदुपलभ्यमानप्रकाशायामिति भावः, तदनन्तरं 'सुविमलायां' तस्यामेव किञ्चित्परिस्फुटतरप्रकाशायाम्, अथशब्द आनन्तर्ये, तदनन्तरं पाण्डुरे प्रभाते, कथंभूत इत्याह—'फुल्लोत्पलकमलकोमलोन्मीलिते' फुल्लं-विकसितं तच्च तदुत्पलं च फुल्लोत्पलं, कमलो–हरिणविशेषः, फुल्लोत्पलं च कमलश्च फुल्लोत्पलकमलौ तयोः, कोमलम्–अकठोरं दलानां नयनयोश्चोन्मीलितम्–उन्मीलनं यत्र प्रभाते तत् तथा, अनेन च प्रागुक्तायाः सुविमलतायाः वक्ष्यमाणसूर्योदयस्य चान्तरालभाविनीं पूर्वस्यां दिश्यरुणप्रभावस्थामाह, तदनन्तरं 'उट्ठिए सूरिए'त्ति अभ्युद्गते आदित्ये, कथम्भूते इत्याह—'रक्ताशोकप्रकाशकिंशुकशुकमुखगुञ्जार्धरागसदृशे' रक्ताशोकप्रकाशस्य किंशुकस्य–पुष्पितपलाशस्य शुकमुखस्य गुञ्जार्धस्य च रागेण सदृशो यः स तथा तस्मिन्, आरक्ते इत्यर्थः, तथा 'कमलाकरनलिनीखण्डबोधके'

१ गण्यं धार्यं मेयं परिच्छेद्यं च द्रव्यजातं तु । गृहीत्वा लाभार्थं व्रजति योऽन्यदेशं तु ॥ १ ॥ नृपबहुमतः प्रसिद्धो दीनानाथेषु वत्सलः पथि । स सार्थवाहनाम धन्य इव लोके समुद्वहति ॥ २ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कमलानामाकरा–उत्पत्तिभूमयो ह्रदादिजलाशयविशेषास्तेषु यानि नलिनीखण्डानि तेषां बोधको यः स तथा तस्मिन्, पुनः किंभूते तस्मिन्नित्याह–सहस्ररश्मौ, दिनं करोतीति दिनकरस्तस्मिन्, तेजसा ज्वलति सति, तत्रैवैते भावाः सर्वेऽपि सन्तीति ज्ञापनार्थं सूर्यस्य विशेषणबहुत्वम्, अनेन चोत्तरोत्तरकालभाविना आवश्यककरणकालविशेषणकलापेन प्रकृष्टमध्यमजघन्योद्यमवतां सत्त्वानां तं तमावश्यककरणसमयमाह, तथाहि–केचित् प्रकृष्टोद्यमिनः किञ्चित् प्रकाशमानायां रजन्यां मुखधावनाद्यावश्यकं कुर्वन्ति, मध्यमोद्यमिनस्तु तस्यामेव सुविमलायामरुणप्रभावसरे वा, जघन्योद्यमिनस्तु समुद्गते सवितरीति, 'मुहधोवणे'त्यादि, मुखधावनं च दन्तप्रक्षालनं च तैलं च फणिहश्च सिद्धार्थाश्च हरितालिका च आदर्शश्च धूपश्च पुष्पाणि च माल्यं च गन्धाश्च ताम्बूलं च वस्त्राणि च तान्यादिः येषां स्नानाभरणपरिधानादीनां तानि तथा, तत्र फणिहः–कङ्कतकस्तं मस्तकादौ व्यापारयन्ति, सिद्धार्थाः–सर्षपाः, हरितालिका–दूर्वा, एतद्द्वयं मङ्गलार्थं शिरसि प्रक्षिपन्ति, आदर्शेषु मुखादि निरीक्षन्ते, धूपेन वस्त्रादि धूपयन्ति, अग्रथितानि पुष्पाणि, तान्येव ग्रथितानि माल्यम्, अथवा विकसितानि पुष्पाणि तान्येवाविकसितानि माल्यम्, एतेषां च मस्तकादिषूपयोगः, शेषं स्वरूपत उपयोगतश्च प्रतीतमेव, एतानि द्रव्यावश्यकानि कृत्वा ततः पश्चाद्राजकुलादौ गच्छन्ति। तत्र रमणीयतातिशयेन स्त्रीपुरुषमिथुनानि यत्राऽऽरमन्ति स विविधपुष्पजात्युपशोभित आरामः, वस्त्राभरणादिसमलङ्कृतविग्रहाः सन्निहिताशनाद्याहारा मदनोत्सवादिषु क्रीडार्थं लोका उद्यन्ति यत्र तच्चम्पकादितरुख-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[४५], चूलिकासूत्र-[२] अनुयोगद्वार मूलं एवं हेमचन्द्रसूरि-रचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१९]

दीप अनुक्रम [२०]

अनुयो० मलधारीया ॥ २४ ॥

ण्डमण्डितमुद्यानं, भारतादिकथाविनोदेन यत्र लोकस्तिष्ठति सा सभा, शेषं प्रतीतम् । अत्राह–ननु राजादिभिः प्रभातेऽवश्यं क्रियत इति व्युत्पत्तिमात्रेणाऽऽवश्यकत्वं भवतु सुखधावनादीनां, द्रव्यत्वं तु कथमीषां?, विवक्षितभावस्य हि कारणं द्रव्यं भवति, 'भूतस्य भाविनो वा भावस्य ही'त्यादिवचनात्, न च राजादिभिः क्रियमाणानि सुखधावनादीनि भावावश्यककारणं भवन्ति, सत्यं, किन्तु 'भूतस्य भाविनो वे'त्याद्येव द्रव्यलक्षणं न मन्तव्यं, किं तर्हि? "अप्पाहण्णेवि दव्वसद्दोत्ती(त्थी)"ति वचनादप्रधानवाचकोऽपि द्रव्यशब्दोऽवगन्तव्यः, अप्रधानानि च मोक्षकारणभावावश्यकापेक्षया संसारकारणानि राजादिसुखधावनादीनि, ततश्च द्रव्यभूतानि अप्रधानभूतान्यावश्यकानि द्रव्यावश्यकानि एतानीत्यदोषः, नोआगमत्वं चेहाप्यागमाभावान्नोशब्दस्य च सर्वनिषेधवचनत्वादित्यलं विस्तरेण, निगमयन्नाह—'से तं लोइय'मित्यादि, तदेतज्ज्ञशरीरभव्यशरीरव्यतिरिक्तं लौकिकं द्रव्यावश्यकमित्यर्थः ॥ १९ ॥ उक्तो नोआगमतो द्रव्यावश्यकान्तर्गतज्ञशरीरभव्यशरीरव्यतिरिक्तद्रव्यावश्यकप्रथमभेदः । अथ द्वितीयभेदनिरूपणार्थमाह—

से किं तं कुप्पावयणिअं दव्वावस्सयं?, २ जे इमे चरगचीरिगचम्मखंडिअभिक्खोंडपंडुरंगगोअमगोव्वतिअगिहिधम्मधम्मचिंतगअविरुद्धविरुद्धवुड्ढसावगप्पभितओ पासंडत्था कल्लं पाउप्पभाए रयणीए जाव तेअसा जलंते इंदस्स वा खंदस्स वा रुद्दस्स वा

वृत्तिः अनुयो० अधि० ॥ २४ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [२०]

दीप अनुक्रम [२१]

सिवस्स वा वेसमणस्स वा देवस्स वा नागस्स वा जक्खस्स वा भूअस्स वा मुगुंदस्स वा अज्जाए वा दुग्गाए वा कोट्टकिरियाए वा उवलेवणसंमज्जणआवरिसणधूवपुप्फगंध-मल्लाइआइं दव्वावस्सयाइं करेंति, से तं कुप्पावयणियं दव्वावस्सयं (सू० २०)

अथ किं तत् कुप्रावचनिकं द्रव्यावश्यकम्?, अत्र निर्वचनम्—'कुप्पावयणियं दव्वावस्सयं जे इमे' इत्यादि, कुत्सितं प्रवचनं येषां ते कुप्रवचनास्तेषामिदं कुप्रावचनिकं द्रव्यावश्यकं, किं पुनस्तदित्याह—'जे इमे' इत्यादि, य एते चरकचीरिकादयः प्रभातसमये इन्द्रस्कन्दादेरुपलेपनादि कुर्वन्ति तत् कुप्रावचनिकं द्रव्यावश्यकमिति समुदायार्थः ॥ तत्र धाटिवाहकाः सन्तो ये भिक्षां चरन्ति ते चरकाः, अथवा ये भुञ्जानाश्चरन्ति ते चरकाः, रथ्यापतितचीरपरिधानाश्चीरिकाः, अथवा येषां चीरमयमेव सर्वमुपकरणं ते चीरिकाः, चर्मपरिधानाश्चर्मखण्डिकाः, अथवा चर्ममयं सर्वमेवोपकरणं येषां ते चर्मखण्डिकाः, ये भिक्षामेव भुञ्जते न तु स्वपरिगृहीतगोदुग्धादिकं ते भिक्षोण्डाः, सुगतशासनस्था इत्यन्ये, पाण्डुराङ्गा भस्मोद्धूलितगात्राः, विचित्रपादपतनादिशिक्षाकलापयुक्तवराटकमालिकादिचर्चितवृषभकोपायतः कणभिक्षाग्राहिणो गोतमाः, गोचर्यानुकारिणो गोव्रतिकाः, ते हि वयमपि किल तिर्यक्षु वसाम इति भावनां भावयन्तो गोभिर्निर्गच्छन्तीभिः सह निर्गच्छन्ति स्थिताभिस्तिष्ठन्त्यासीनाभिरुपविशन्ति भुञ्जानाभिस्तद्वदेव तृणपत्रपुष्पफलादि भुञ्जन्ति,

अनु. ५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [२०]

दीप अनुक्रम [२१]

अनुयो० मलधारीया ॥ २५ ॥

तदुक्तम्—"गावीहिं समं निग्गमपवेसठाणासणाइ पकरंति । भुंजंति जहा गावी तिरिक्खवासं विभावंता ॥ १ ॥" गृहस्थधर्म एव श्रेयानित्यभिसन्धाय तद्यथोक्तचारिणो गृहिधर्माः, तथा च तदनुसारिणां वचः—"गृहाश्रमसमो धर्मो, न भूतो न भविष्यति । तं पालयन्ति ये धीराः, क्लीबाः पाषण्डमाश्रिताः ॥ १ ॥" इति । याज्ञवल्क्यप्रभृतिऋषिप्रणीतधर्मसंहिताश्चिन्तयन्ति ताभिश्च व्यवहरन्ति(ये) ते धर्मचिन्तकाः, देवताक्षितीशमातापितृतिर्यगादीनामविरोधेन विनयकारित्वादविरुद्धा–वैनयिकाः, पुण्यपापपरलोकाद्यनभ्युपगमपरा अक्रियावादिनो विरुद्धाः, सर्वपाषण्डिभिः सह विरुद्धचारित्वाद्, अत्राऽऽह–ननु यद्येते पुण्याद्यनभ्युपगमपराः कथं तर्ह्येषां वक्ष्यमाणमिन्द्रादुपलेपनं संभवति ?, पुण्यादिनिमित्तमेव तस्य सम्भवात्, सत्यं, किन्तु जीविकादिहेतोस्तेषामपि तत्संभवतीत्यदोषः । प्रथममेवाऽऽद्यतीर्थकरकाले समुत्पन्नत्वात् प्रायो वृद्धकाले दीक्षाप्रतिपत्तेश्च वृद्धाः–तापसाः, श्रावका-ब्राह्मणाः प्रथमं भरतादिकाले श्रावकाणामेव सतां पश्चाद् ब्राह्मणत्वभावाद्, अन्ये तु वृद्धश्रावका इत्येकमेव पदं ब्राह्मणवाचकत्वेन व्याचक्षते, एतेषां द्वन्द्वसमासः, प्रभृतिग्रहणात् परिव्राजकादिपरिग्रहः, पाषण्डं–व्रतं तत्र तिष्ठन्तीति पाषण्डस्थाः, 'कल्लं पाउप्पभायाए' इत्यादि, पूर्ववद् यावत्तेजसा ज्वलतीति । 'इंदस्स वे'त्यादि, तत्रेन्द्रः–प्रतीतः, स्कन्दः-कार्तिकेयः, रुद्रो-हरः, शिवस्त्वाकारविशेषधरः स एव, व्यन्तरविशेषो वा, वैश्रवणो–यक्षनायकः, देवः–सामान्यः, नागो-भवनपतिविशेषः,

१ गोभिः समं निर्गमप्रवेशस्थानासनादि प्रकुर्वन्ति । भुञ्जते यथा गावः तिर्यग्वासं विभावयन्तः ॥ १ ॥ २ प्रपालयन्ति.

वृत्तिः अनुयो० अधि० ॥ २५ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [२०]

दीप अनुक्रम [२१]

यक्षभूतौ-व्यन्तरविशेषौ, मुकुन्दो-बलदेवः, आर्या-प्रशान्तरूपा, दुर्गा सैव महिषारुढा, तत्कुट्टनपरा कोट्टक्रिया, अत्रोपचारादिन्द्रादिशब्देन तदायतनमप्युच्यते, अतस्तस्येन्द्रादेरुपलेपनसम्मार्जनावर्षणपुष्पधूपगन्धमाल्यादीनि द्रव्यावश्यकानि कुर्वन्ति, तत्र उपलेपनं–छगणादिना प्रतीतमेव, सम्मार्जनं–दण्डपुञ्छनादिना, आवर्षणं–गन्धोदकादिना, शेषं गतार्थं, तदेवं य एते चरकादय इन्द्रादेरुपलेपनादि कुर्वन्ति तत् कुप्रावचनिकं द्रव्यावश्यकम्, अत्र द्रव्यत्वमावश्यकत्वं नोआगमत्वं च लौकिकद्रव्यावश्यकोक्तमिव भावनीयम्। निगमयन्नाह—'से त'मित्यादि, तदेतज्ज्ञशरीरभव्यशरीरव्यतिरिक्तं कुप्रावचनिकं द्रव्यावश्यकमित्यर्थः, उक्तो नोआगमतो द्रव्यावश्यकान्तर्गतज्ञशरीरभव्यशरीरव्यतिरिक्तद्रव्यावश्यकद्वितीयभेदः ॥ २० ॥ अथ तृतीयभेदनिरूपणार्थमाह—

से किं तं लोगुत्तरिअं दव्वावस्सयं ?, २ जे इमे समणगुणमुक्कजोगी छक्कायनिरणुकंपा हया इव उद्दामा गया इव निरंकुसा घट्टा मट्ठा तुप्पोट्ठा पंडुरपडपाउरणा जिणाणमणाणाए सच्छंदं विहरिऊणं उभओकालं आवस्सयस्स उवट्ठंति, से तं लोगुत्तरिअं दव्वावस्सयं, से तं जाणयसरीरभविअसरीरवइरित्तं दव्वावस्सयं, से तं नोआगमतो दव्वावस्सयं, से तं दव्वावस्सयं (सू० २१)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

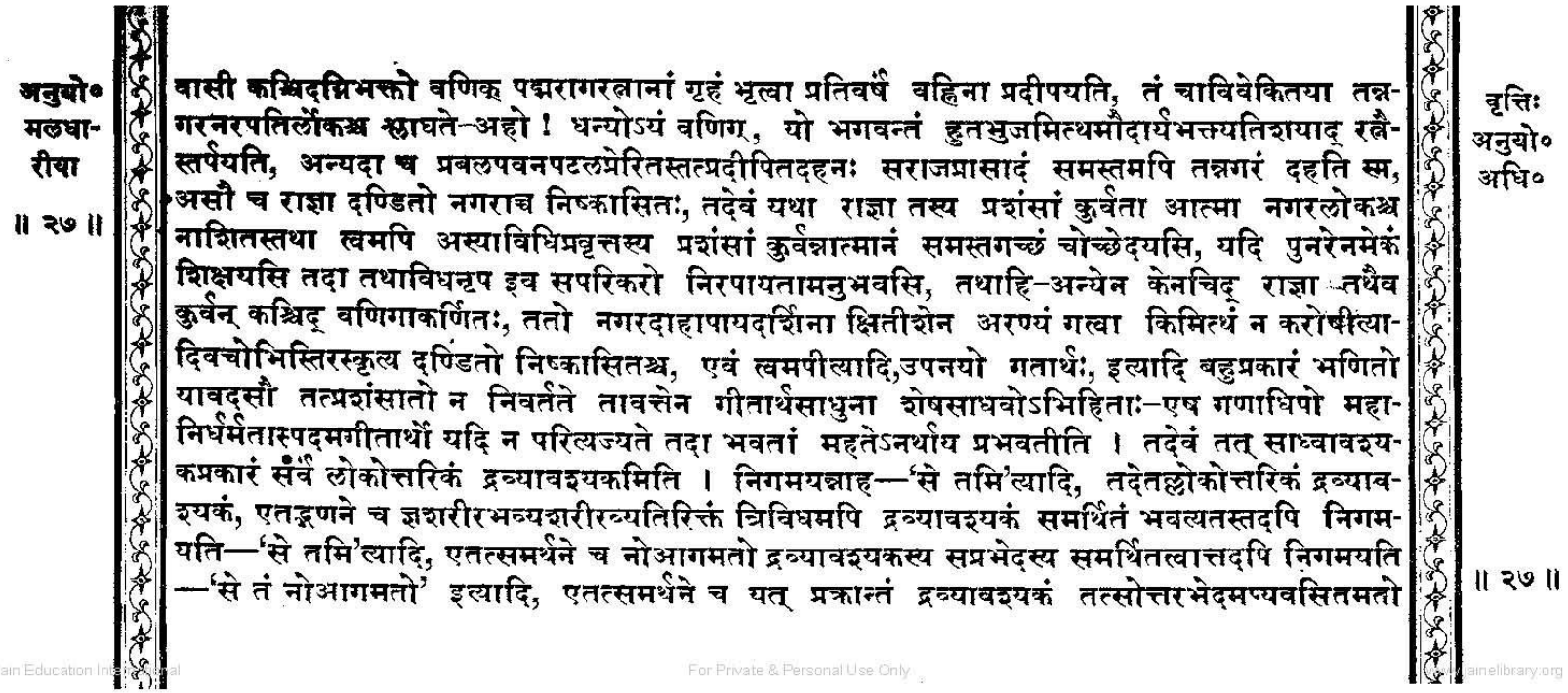
अथ किं तल्लोकोत्तरिकं द्रव्यावश्यकम्?, अत्र निर्वचनमाह–लोकस्योत्तराः-साधवः, अथवा लोकस्योत्तरं-प्रधानं लोकोत्तरं-जिनशासनं तेषु तस्मिन् वा भवं लोकोत्तरिकं, द्रव्यावश्यकमिति व्याख्यातमेव, किं पुनस्तदित्याह—'जे इमे'इत्यादि, य एते श्रमणगुणमुक्तयोगित्वादिविशेषणविशिष्टाः साध्वाभासा जिनानामनाज्ञया स्वच्छन्दं विहृत्योभयकालमावश्यकाय-प्रतिक्रमणायोपतिष्ठन्ते तत्तेषां प्रतिक्रमणानुष्ठानं लोकोत्तरिकं द्रव्यावश्यकमिति समुदायार्थः । इदानीमवयवार्थं उच्यते–तत्र श्रमणाः-साधवस्तेषां गुणा-मूलोत्तरगुणरूपाः, तत्र जीववधविरत्यादयो मूलगुणाः पिण्डविशुद्ध्यादयस्तूत्तरगुणाः, तेषु मुक्तो योगो–व्यापारो यैस्ते सर्वधनादेराकृतिगणत्वात् श्रमणगुणमुक्तयोगिनः, एते च जीववधादिविरतिमुक्तव्यापारा अपि मनसा कदाचित् सानुकम्पा अपि स्युरित्याह–षट्सु कायेषु-पृथिव्यादिषु विषये निर्गता-अपगता अनुकम्पा-मनःसार्द्रता येभ्यस्ते तथा, निरनुकम्पताचिह्नमेवाऽऽह–हया इव-तुरगा इव, उद्दामाः–चरणनिपातजीवोपमर्दनिरपेक्षत्वाद् द्रुतचारिण इत्यर्थः, किमित्येवंभूतास्ते इत्याह–यतो गजा इव-दुष्टद्विरदा इव निरङ्कुशाः–गुर्वाज्ञाव्यतिक्रमचारिण इत्यर्थः, अत एव 'घट्ठ'त्ति येषां जङ्घे श्लक्ष्णीकरणार्थं फेनादिना घृष्टे भवतस्तेऽवयवावयविनोरभेदोपचारात् घृष्टाः, तथा 'मट्ठ'त्ति तैलोदकादिना येषां केशाः शरीरं वा मृष्टं ते तथैव मृष्टाः, अथवा

१ लक्तः प्र.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

केशादिषु मृष्टं विद्यते येषां ते मृष्टवन्तः, वत्प्रत्ययलोपान्मृष्टाः, तथा 'तुप्पोट्ठ'त्ति तुप्ता-म्रक्षिता मदनेन वा वेष्टिताः शीतरक्षादिनिमित्तमोष्ठा येषां ते तुप्तोष्ठाः, तथा मलपरीषहासहिष्णुतादूरीकृतत्वात् पाण्डुरो-धौतः पटः–प्रावरणं येषां ते तथा, 'जिनानामनाज्ञया स्वच्छन्दं विहृत्य' तीर्थकराज्ञाबाह्याः स्वरुच्या विविध-चेष्टाः कृत्वा तत्रोभयकालं-प्रभातसमयेऽस्तमयसमये च चतुर्थ्यर्थे षष्ठीतिकृत्वा आवश्यकाय-प्रतिक्रमणा-योपतिष्ठन्ते तत्तेषामावश्यकं लोकोत्तरिकं द्रव्यावश्यकम्, अत्र तु द्रव्यावश्यकत्वं भावशून्यत्वात् तत्फला-भावाच्चाप्रधानतयाऽवसेयं, नोआगमत्वमपि देशे क्रियालक्षणे आगमाभावान्नोशब्दस्य चात्र देशप्रतिषेधवच-नत्वादिति। अत्र च लोकोत्तरिके द्रव्यावश्यके उदाहरणम्–वसन्तपुरे नगरेऽगीतार्थोऽसंविग्नो गच्छ एको विचरति, तत्र श्रमणगुणमुक्तयोगी संविग्नाभासः साधुरेकः प्रतिदिनं पुरःकर्मादिदोषदुष्टमनेषणीयं भक्तादि गृहीत्वा महता संवेगेन प्रतिक्रमणकाले आलोचयति, तँसै च गच्छाचार्योऽगीतार्थत्वात् प्रायश्चित्तं प्रयच्छन् भणति-पश्यत अहो! कथमसौ भावमगोपयन् अशठतया सर्वं समालोचयति?, सुखं हि आसेवना क्रियते, दुःखं चेत्थमालोचयितुं, तस्मादशठतयैव शुद्धोह्यसौ, तथा च तं प्रशस्यमानं दृष्ट्वा तत्र अन्येऽप्यगीतार्थश्रम-णाः प्रशंसन्ति, चिन्तयन्ति च—गुरोश्चेदित्थमालोच्यते तर्हि दोषासेवनायामसकृत्कृतायामपि न कश्चिद्दोषः, आलोचनाया एव साध्यत्वाद्, एवं चान्यदा तत्र संविग्नगीतार्थः साधुः कश्चिदायातः, तेन च प्रतिदिनं तमेव व्यतिकरमालोक्य सूरिरुक्तः–त्वमित्थमस्य प्रशंसां कुर्वन् विवक्षितक्षितीश इव लक्ष्यसे, तथाहि–गिरिनगर-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org



अनुयो० मलधारीया ॥ २७ ॥

वासी कश्चिदग्निभक्तो वणिक् पद्मरागरत्नानां गृहं भृत्वा प्रतिवर्षं वह्निना प्रदीपयति, तं चाविवेकितया तन्नगरनरपतिर्लोकश्च श्लाघते–अहो ! धन्योऽयं वणिग्, यो भगवन्तं हुतभुजमित्थमौदार्यभक्त्यतिशयाद् रत्नैस्तर्पयति, अन्यदा च प्रबलपवनपटलप्रेरितस्तत्प्रदीपितदहनः सराजप्रासादं समस्तमपि तन्नगरं दहति स्म, असौ च राज्ञा दण्डितो नगराच्च निष्कासितः, तदेवं यथा राज्ञा तस्य प्रशंसां कुर्वता आत्मा नगरलोकश्च नाशितस्तथा त्वमपि अस्याविधिप्रवृत्तस्य प्रशंसां कुर्वन्नात्मानं समस्तगच्छं चोच्छेदयसि, यदि पुनरेनमेकं शिक्षयसि तदा तथाविधनृप इव सपरिकरो निरपायतामनुभवसि, तथाहि–अन्येन केनचिद् राज्ञा तथैव कुर्वन् कश्चिद् वणिगाकर्णितः, ततो नगरदाहापायदर्शिना क्षितीशेन अरण्यं गत्वा किमित्थं न करोषीत्यादिवचोभिस्तिरस्कृत्य दण्डितो निष्कासितश्च, एवं त्वमपीत्यादि,उपनयो गतार्थः, इत्यादि बहुप्रकारं भणितो यावदसौ तत्प्रशंसातो न निवर्तते तावत्तेन गीतार्थसाधुना शेषसाधवोऽभिहिताः–एष गणाधिपो महानिर्धर्मतास्पदमगीतार्थो यदि न परित्यज्यते तदा भवतां महतेऽनर्थाय प्रभवतीति । तदेवं तत् साध्वावश्यकप्रकारं सर्वं लोकोत्तरिकं द्रव्यावश्यकमिति । निगमयन्नाह—'से तमि'त्यादि, तदेतल्लोकोत्तरिकं द्रव्यावश्यकं, एतद्गुणने च ज्ञशरीरभव्यशरीरव्यतिरिक्तं त्रिविधमपि द्रव्यावश्यकं समर्थितं भवत्यतस्तदपि निगमयति—'से तमि'त्यादि, एतत्समर्थने च नोआगमतो द्रव्यावश्यकस्य सप्रभेदस्य समर्थितत्वात्तदपि निगमयति —'से तं नोआगमतो' इत्यादि, एतत्समर्थने च यत् प्रक्रान्तं द्रव्यावश्यकं तत्सोत्तरभेदमप्यवसितमतो

वृत्तिः अनुयो० अधि०

॥ २७ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [२१] दीप अनुक्रम [२२]	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[४५], चूलिकासूत्र-[२] अनुयोगद्वार मूलं एवं हेमचन्द्रसूरि-रचिता वृत्तिः

निगमयति—'से तं दव्वावस्सय'मिति, तदेतत् द्रव्यावश्यकं समर्थितमित्यर्थः ॥ २१ ॥ उक्तं सप्रपञ्चं द्रव्यावश्यकं, साम्प्रतमवसरायातभावावश्यकनिरूपणार्थमाह—

से किं तं भावावस्सयं?, २ दुविहं पण्णत्तं, तंजहा–आगमतो अ नोआगमतो अ (सू० २२)

अथ किं तद् भावावश्यकमिति, अत्र निर्वचनमाह—'भावावस्सयं दुविहमि'त्यादि, वक्तुर्विवक्षितपरिणामस्य भवनं भावः, उक्तं च–"भावो विवक्षितक्रियाऽनुभूतियुक्तो हि वै समाख्यातः। सर्वज्ञैरिन्द्रादिवदिहेन्दनादिक्रियाऽनुभवात् ॥१॥" व्याख्या-वक्तुर्विवक्षितक्रियायाः–विवक्षितपरिणामस्य इन्दनादेरनुभवनम्–अनुभूतिस्तया युक्तो योऽर्थः स भावतद्वतोरभेदोपचाराद्भावः सर्वज्ञैः समाख्यातः, निदर्शनमाह–इन्द्रादिवदित्यादि, यथा इन्दनादिक्रियानुभवात् परमैश्वर्यादिपरिणामेन परिणतत्वादिन्द्रादिर्भाव उच्यत इत्यर्थः, इत्यार्यार्थः। भावश्चासौ आवश्यकं च भावमाश्रित्य वा आवश्यकं भावावश्यकं, तच्च द्विविधं प्रज्ञप्तं, तद्यथा–आगमतः–आगममाश्रित्य नोआगमतः–आगमाभावमाश्रित्य ॥ २२ ॥ तत्राऽऽद्यभेदनिरूपणार्थमाह—

से किं तं आगमतो भावावस्सयं ?, २ जाणए उवउत्ते, से तं आगमतो भावावस्सयं (सू० २३)

अथ किं तदागमतो भावावश्यकम् ?, अत्राह—'आगमओ भावावस्सयं जाणए' इत्यादि, ज्ञायक उपयुक्त आगमतो भावावश्यकम्, इदमुक्तं भवति–आवश्यकपदार्थज्ञस्तज्जनितसंवेगविशुद्ध्यमानपरिणामस्तत्र चो-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	अथ भाव-आवश्यकस्य भेद-प्रभेदयुक्तं विस्तृत-वर्णनं क्रियते

पयुक्तः साध्वादिरागमतो भावावश्यकम्, आवश्यकार्थोपयोगलक्षणस्याऽऽगमस्यात्र सद्भावात्, भावावश्यकता चात्राऽऽवश्यकोपयोगपरिणामस्य सद्भावात्, भावमाश्रित्य आवश्यकमिति व्युत्पत्तेः, अथवाऽऽवश्यकोपयोगपरिणामानन्यत्वात् साध्वादिरपि भावः, ततश्च भावश्चासावावश्यकं चेति व्युत्पत्तेरप्यसौ मन्तव्य इति। 'से तमि'त्यादि निगमनम् ॥ २३ ॥ अथ भावावश्यकद्वितीयभेदनिरूपणार्थमाह—

से किं तं नोआगमतो भावावस्सयं ?, २ तिविहं पण्णत्तं, तंजहा–लोइयं कुप्पावयणियं लोगुत्तरिअं, (सू० २४)

अथ किं तन्नोआगमतो भावावश्यकम् ?, अत्राऽऽह–नोआगमतो भावावश्यकं त्रिविधं प्रज्ञप्तं, तद्यथा–लौकिकं कुप्रावचनिकं लोकोत्तरिकं च ॥ २४ ॥ तत्र प्रथमभेदनिर्णयार्थमाह—

से किं तं लोइयं भावावस्सयं ?, २ पुव्वण्हे भारहं अवरण्हे रामायणं से तं लोइयं भावावस्सयं (सू० २५)

अथ किं तल्लौकिकं भावावश्यकमिति ?, आह—'लोइयं भावावस्सयं पुव्वण्हे' इत्यादि, लोके भवं लौकिकं यदिदं लोकः पूर्वाह्णे भारतमपराह्णे रामायणं वाचयति शृणोति वा, तल्लौकिकं भावावश्यकं, लोके हि भारतरामायणयोर्वाचनं श्रवणं वा पूर्वाह्णापराह्णयोरेव रूढं, विपर्यये दोषदर्शनात्, ततश्चेत्थमनयोर्लोकेऽवश्यकरणी-

॥ २८ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यत्वादावश्यकत्वं, तद्वाचकस्य श्रोतॄणां च तदर्थोपयोगपरिणामसद्भावात् भावत्वं, तद्वाचकाः श्रोतारश्च पत्रकपरावर्तनहस्ताभिनयगात्रसंयतत्वकरकुड्मलमीलनादिक्रियायुक्ता भवन्ति, क्रिया च नोआगमत्वेन प्रागिहोक्ता 'किरियाऽऽगमो न होइ'त्ति वचनात्, ततश्च क्रियालक्षणे देशे आगमस्याभावात् नोआगमत्वमपि भावनीयं, नोशब्दस्यात्र देशनिषेधवचनत्वाद्, देशे त्वागमोऽस्ति, लौकिकाभिप्रायेण भारतादेरागमत्वात्, तस्माद् यथानिर्दिष्टसमये लौकिकास्तदुपयुक्ता यदवश्यं भारतादि वाचयन्ति शृण्वन्ति वा तल्लौकिकं भावावश्यकमिति स्थितं भावमाश्रित्याऽऽवश्यकं भावावश्यकं, भावश्चासावावश्यकं चेति वा भावावश्यकमित्यलं विस्तरेण। 'से तमि'त्यादि निगमनम्॥ २५ ॥ उक्तो नोआगमतो भावावश्यकप्रथमभेदः, अथ तद्द्वितीयभेदनिरूपणार्थमाह—

से किं तं कुप्पावयणियं भावावस्सयं ?, २ जे इमे चरगचीरिग जाव पासंडत्था इज्जं-जलिहोमजपोन्दुरुक्कनमोक्कारमाइआइं भावावस्सयाइं करेंति से तं कुप्पावयणिअं भावावस्सयं (सू० २६)

अत्र च निर्वचनमाह—'कुप्पावयणियं भावावस्सयं जे इमे' इत्यादि, कुत्सितं प्रवचनं येषां ते तथा तेषु भवं कुप्रावचनिकं भावावश्यकं, किं तद् ?, उच्यते, य एते चरकचीरिकादयः पाषण्डस्था यथावसरं इज्याञ्ज-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [२६]

दीप अनुक्रम [२७]

अनुयो० मलधारीया ॥ २९ ॥

लिहोमादीनि भावरूपाण्यावश्यकानि भावावश्यकानि कुर्वन्ति तत् कुप्रावचनिकं भावावश्यकमिति सम्बन्धः । तत्र चरकादिस्वरूपं प्रागेवोक्तम्, इज्याञ्जल्यादिस्वरूपं तूच्यते–तत्र यजनमिज्या याग इत्यर्थस्तद्विषयो जलस्याञ्जलिः इज्याञ्जलिः यागदेवतापूजावसरभावीति हृदयम्, अथवा यजनमिज्या-पूजा गायत्र्यादिपाठपूर्वकं विप्राणां सन्ध्यार्चनमित्यर्थः, तत्राञ्जलिः इज्याञ्जलिः, अथवा देशीभाषया इज्येति माता तस्या नमस्कारविधौ तद्भक्तैः क्रियमाणः करकुड्मलमीलनलक्षणोऽञ्जलिरिज्याञ्जलिः, होमः–अग्निहोत्रिकैः क्रियमाणमग्निहवनं, जपो मन्त्राद्यभ्यासः 'उंदुरुक्क'त्ति देशीवचनं उन्दु-मुखं तेन रुक्कं-वृषभादिशब्दकरणमुन्दुरुक्कं देवतादिपुरतो वृषभगर्जितादिकरणमित्यर्थः, नमस्कारो–नमो भगवते दिवसनाथायेत्यादिकः, एतेषां द्वन्द्वे इज्याञ्जलिहोमजपोन्दुरुक्कनमस्कारास्ते आदिर्येषां तानि तथा, आदिशब्दात् स्तवादिपरिग्रहः, एतेषां च चरकादिभिरवश्यं क्रियमाणत्वादावश्यकत्वम्, एतत्कर्तृणां च तदर्थोपयोगश्रद्धादिपरिणामसद्भावात् भावत्वम्, अन्यच्च चरकादीनां तदर्थोपयोगलक्षणो देश आगमः देशस्तु करशिरोव्यापारादिक्रियालक्षणो नोआगमस्ततो देश आगमाभावमाश्रित्य नोआगमत्वमवगन्तव्यं, नोशब्दस्येहापि देशनिषेधपरत्वात्, तस्माच्चरकादयस्तदुपयुक्ता यथावसरं यदवश्यमिज्याञ्जल्यादि कुर्वन्ति तत् कुप्रावचनिकं भावावश्यकं, भावावश्यकशब्दस्य च व्युत्पत्तिद्वयं तथैव, 'से तमि'त्यादि निगमनम् ॥ २६ ॥ उक्तो नोआगमतो भावावश्यकद्वितीयभेदः, अथ तृतीयभेदनिरूपणार्थमाह—

वृत्तिः अनुयो० अधि० ॥ २९ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [२७]

दीप अनुक्रम [२८]

से किं तं लोगुत्तरिअं भावावस्सयं ?, २ जण्णं इमे समणे वा समणी वा सावओ वा सावि आ वा तच्चित्ते तम्मणे तल्लेसे तदज्झवसिए तत्तिव्वज्झवसाणे तदट्ठोवउत्ते तदप्पिअकरणे तब्भावणाभाविए अण्णत्थ कत्थइ मणं अकरेमाणे उभओकालं आवस्सयं करेंति से तं लोगुत्तरियं भावावस्सयं, से तं नोआगमतो भावावस्सयं, से तं भावावस्सयं (सू० २७)

अत्र निर्वचनम्—'लोउत्तरियं भावावस्सयं जं णमि'त्यादि 'जं णं'ति णमिति वाक्यालङ्कारे, यदिदं श्रमणादयस्तच्चित्तादिविशेषणविशिष्टा उभयकालं प्रतिक्रमणाद्यावश्यकं कुर्वन्ति तल्लोकोत्तरिकं भावावश्यकमिति सम्पटङ्कः, तत्र श्राम्यतीति श्रमणः–साधुः, श्रमणी-साध्वी, शृणोति साधुसमीपे जिनप्रणीतां सामाचारीमिति श्रावकः–श्रमणोपासकः, श्राविका–श्रमणोपासिका, वाशब्दाः समुच्चयार्थाः, तस्मिन्नेवाऽऽवश्यके चित्तं-सामान्योपयोगरूपं यस्येति स तच्चित्तः, तस्मिन्नेव मनो-विशेषोपयोगरूपं यस्य स तन्मनाः, तत्रैव लेश्याशुभपरिणामरूपा यस्येति स तल्लेश्यः, तथा तदध्यवसितः–इहाध्यवसायोऽध्यवसितं, ततश्च तच्चित्तादिभावयुक्तस्य सतस्तस्मिन्नेवाऽऽवश्यकेऽध्यवसितं क्रियासम्पादनविषयमस्येति तदध्यवसितः, तथा तत्तीव्राध्यवसायः–तस्मिन्नेवाऽऽवश्यके तीव्रं प्रारम्भकालादारभ्य प्रतिक्षणं प्रकर्षयायि प्रयत्नविशेषलक्षणमध्यवसानं यस्य

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स तथा, तथा 'तदर्थोपयुक्तः' तस्य-आवश्यकस्यार्थस्तदर्थस्तस्मिन्नुपयुक्तस्तदर्थोपयुक्तः–प्रशस्ततरसंवेगविशुद्ध्यमानः, तस्मिन्नेव प्रतिसूत्रं प्रतिक्रियं चार्थेषूपयुक्त इत्यर्थः, तथा 'तदर्पितकरणः' करणानि-तत्साधकतमानि देहरजोहरणमुखवस्त्रिकादीनि तस्मिन्–आवश्यके यथोचितव्यापारनियोगेनार्पितानि-नियुक्तानि तानि येन स तथा, सम्यगयथास्थानन्यस्तोपकरण इत्यर्थः, तथा 'तद्भावनाभावितः' तस्य-आवश्यकस्य भावना–अव्यवच्छिन्नपूर्वपूर्वतरसंस्कारस्य पुनः पुनस्तदनुष्ठानरूपा तया भावितोऽङ्गाङ्गिभावेन परिणतावश्यकानुष्ठानपरिणामस्तद्भावनाभावितः, तदेवं यथोक्तप्रकारेण प्रस्तुतव्यतिरेकतोऽन्यत्र कुत्रचिन्मनोऽकुर्वन् उपलक्षणत्वाद्वाचं कायं चान्यत्राकुर्वन्, एकार्थिकानि वा विशेषणान्येतानि प्रस्तुतोपयोगप्रकर्षप्रतिपादनपराणि, अमूनि च लिङ्गविपरिणामतः श्रमणीश्राविकयोरपि योज्यानि, तस्मात् तच्चित्तादिविशेषणविशिष्टाः श्रमणादयः 'उभयकालम्' उभयसन्ध्यं यदावश्यकं कुर्वन्ति तल्लोकोत्तरिकं, भावमाश्रित्य भावश्चासावावश्यकं चेति वा भावावश्यकम्, अत्राप्यवश्यंकरणादावश्यकत्वं तदुपयोगपरिणामस्य च सद्भावात् भावत्वं मुखवस्त्रिकाप्रत्युपेक्षणरजोहरणव्यापारादिक्रियालक्षणदेशस्यानागमत्वात् नोआगमत्वं भावनीयम्, 'से तमि'त्यादि निगमनम् ॥ २७ ॥ तदेवं स्वरूपत उक्तं भावावश्यकम्, अनेन चाद्याधिकार इत्यतो नानादेशजविनेयानुग्रहार्थं तस्यैव पर्यायाभिधानार्थमाह—

तस्स णं इमे एगट्ठिआ णाणाघोसा णाणावंजणा णामधेज्जा भवंति, तंजहा–आव-

॥ ३० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[४५], चूलिकासूत्र-[२] अनुयोगद्वार मूलं एवं हेमचन्द्रसूरि-रचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [२८] + गाथा ॥२,३॥

दीप अनुक्रम [२९-३२]

स्सयं अवस्संकरणिज्जं धुवनिग्गहो विसोही अ। अज्झयणछक्कवग्गो नाओ आराहणा-
मग्गो ॥ १ ॥ (२) समणेणं सावएण य अवस्सकायव्वयं हवइ जम्हा। अंतो अहो-
निसस्स य तम्हा आवस्सयं नाम ॥ २ ॥ (३) से तं आवस्सयं (सू० २८)

'तस्य' आवश्यकस्य 'अमूनि' वक्ष्यमाणानि 'एकार्थिकानि' परमार्थत एकार्थविषयाणि 'नानाघोषाणि' पृथग्भिन्नोदात्तादिस्वराणि 'नानाव्यञ्जनानि' पृथग्भिन्नककाराद्यक्षराणि 'नामधेयानि' पर्यायध्वनयो भवन्ति, तद्यथा–'आवस्सयं' गाहा, व्याख्या–श्रमणादिभिरवश्यं क्रियत इति निपातनादावश्यकम्, अथवा ज्ञानादिगुणा मोक्षो वा आ-समन्ताद्वश्यः क्रियतेऽनेनेत्यावश्यकम्, अथवा आ-समन्ताद्वश्या इन्द्रियकषायादिभावशत्रवो येषां ते तथा, तैरेव क्रियते यत् तदावश्यकम्, अथवा समग्रस्यापि गुणग्रामस्यावासकमित्यावासकमित्यपरमपि स्वधिया वाच्यं, पूर्वमपि च व्युत्पादितमिदं, तथा मुमुक्षुभिर्नियमानुष्ठेयत्वादवश्यकरणीयं, तथा 'ध्रुवनिग्रह' इति अत्रानादित्वात् क्वचिदपर्यवसितत्वाच्च ध्रुवं–कर्म तत्फलभूतः संसारो वा तस्य निग्रहहेतुत्वान्निग्रहो ध्रुवनिग्रहः, तथा कर्ममलिनस्याऽऽत्मनो विशुद्धिहेतुत्वाद्विशुद्धिः, तथा सामायिकादिषडध्ययनकलापात्मकत्वादध्ययनषट्कं, तथाऽभीष्टार्थसिद्धेः सम्यगुपायत्वात् न्यायः, अथवा जीवकर्मसम्बन्धापनयनान्न्यायः, अयमभिप्रायो–यथा कारणिकैर्दृष्टो न्यायो द्वयोरर्थिप्रत्यर्थिनोर्भूमिद्रव्यादि-

अनु. ६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [२८] + गाथा ॥२,३॥ दीप अनुक्रम [२९-३२]	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[४५], चूलिकासूत्र-[२] अनुयोगद्वार मूलं एवं हेमचन्द्रसूरि-रचिता वृत्तिः

अनुयो० मलधारीया ॥ ३१ ॥

सम्बन्धं चिरकालीनमप्यपनयत्येवं जीवकर्मणोरनादिकालीनमप्याश्रयाश्रयिभावसम्बन्धमपनयतीत्यावश्यकमपि न्याय उच्यते, तथा मोक्षाराधनाहेतुत्वादाराधना, तथा मोक्षपुरप्रापकत्वादेव मार्ग इति गाथार्थः ॥ १ ॥ उक्तगाथाया आद्यपदं सूत्रकार एव व्युत्पादयन्नाह—'समणेण' गाहा, श्रमणादिना अहोरात्रस्य मध्ये यस्मादवश्यं क्रियते तस्मादावश्यकम्, एवमेवावश्यकरणीयादिपदानामपि व्युत्पत्तिर्द्रष्टव्या उपलक्षणत्वादस्याः, इति गाथार्थः ॥ १ ॥ 'से तमि'त्यादि निगमनं, तदेतदावश्यकं निक्षिप्तमित्यर्थः । तदेवं नामादिभेदैर्निक्षिप्तमावश्यकं, तन्निक्षेपे च यदुक्तम्–'आवश्यकं निक्षेप्स्यामी'ति तत् सम्पादितम्, [इति अनुयोगद्वारग्रन्थे आवश्यकाधिकारः कथितः ॥ २८ ॥ अथ श्रुताधिकारः कथ्यते]–साम्प्रतं पुनर्यदुक्तम्—'श्रुतं निक्षेप्स्यामी'ति तत्सम्पादनार्थमाह—

से किं तं सुतं ?, २ चउव्विहं पण्णत्तं, तंजहा–नामसुअं ठवणसुअं दव्वसुअं भावसुअं (सू० २९)

अथ किं तत् श्रुतमिति प्रश्नः, अत्र निर्वचनं 'सुअं चउव्विहमि'त्यादि, 'श्रुतं' प्राग्निरूपितशब्दार्थं चतुर्विधं प्रज्ञप्तं, तद्यथा–नामश्रुतं स्थापनाश्रुतं द्रव्यश्रुतं भावश्रुतं च ॥ २९ ॥ तत्राऽऽद्यभेदनिर्णयार्थमाह—

वृत्तिः श्रुतनिक्षेपः ॥ ३१ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	अथ 'श्रुत'स्य चत्वारः निक्षेपाः प्ररुप्यते

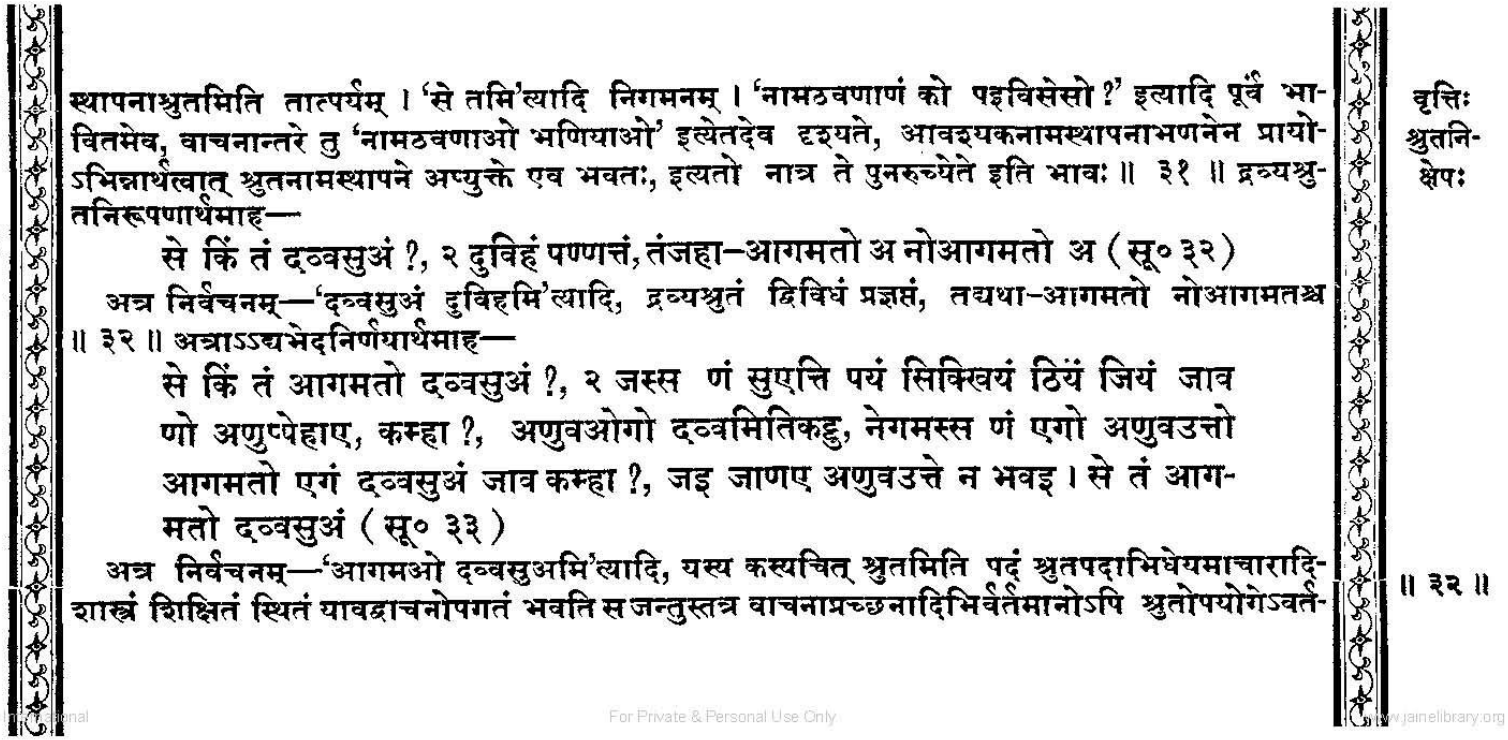
से किं तं नामसुअं ?, २ जस्स णं जीवस्स वा जाव सुएत्ति नामं कज्जइ से तं नाम-सुअं (सू० ३०)

अत्र निर्वचनं–नामश्रुतं, 'जस्स णमि'त्यादि, यस्य जीवस्य वा अजीवस्य वा जीवानां वा अजीवानां वा तदुभयस्य वा तदुभयानां वा श्रुतमिति यन्नामक्रियते तन्नामश्रुतमित्यादिपदेन सम्बन्धः, नाम च तत् श्रुतं चेति व्युत्पत्तेः, अथवा यस्य जीवादेः श्रुतमिति नाम क्रियते तज्जीवादिवस्तु नामश्रुतं, नाम्ना–नाममात्रेण श्रुतं नामश्रुतमिति व्युत्पत्तेः। तत्र जीवस्य कथं श्रुतमिति नाम सम्भवतीत्यादिभावना यथा नामावश्यके तथा तदनुसारेण यथासम्भवमभ्यूह्य वाच्या, 'से तमि'त्यादि निगमनम् ॥ ३० ॥ उक्तं नामश्रुतम्, अथ स्थापना-श्रुतनिरूपणार्थमाह—

से किं तं ठवणासुअं ?, जं णं कट्ठकम्मे वा जाव ठवणा ठविज्जइ से तं ठवणासुअं। नामठवणाणं को पइविसेसो ?, नाम आवकहिअं ठवणा इत्तरिआ वा होज्जा आव-कहिआ वा (सू० ३१)

अत्र निर्वचनम्—'ठवणासुअं जं णमि'त्यादि, अत्र व्याख्यानं यथा स्थापनावश्यके तथा सप्रपञ्चं द्रष्टव्यं, नवरमावश्यकस्थाने श्रुतमुच्चारणीयं, काष्ठकर्मादिषु श्रुतपठनादिक्रियावन्त एकादिसाध्वादयः स्थाप्यमानाः

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org



अनुयो० मलधारीया ॥ ३२ ॥

स्थापनाश्रुतमिति तात्पर्यम् । 'से तमि'त्यादि निगमनम् । 'नामठवणाणं को पइविसेसो ?' इत्यादि पूर्वं भावितमेव, वाचनान्तरे तु 'नामठवणाओ भणियाओ' इत्येतदेव दृश्यते, आवश्यकनामस्थापनाभणनेन प्रायोऽभिन्नार्थत्वात् श्रुतनामस्थापने अप्युक्ते एव भवतः, इत्यतो नात्र ते पुनरुच्येते इति भावः ॥ ३१ ॥ द्रव्यश्रुतनिरूपणार्थमाह—

से किं तं दव्वसुअं ?, २ दुविहं पण्णत्तं, तंजहा–आगमतो अ नोआगमतो अ (सू० ३२)

अत्र निर्वचनम्—'दव्वसुअं दुविहमि'त्यादि, द्रव्यश्रुतं द्विविधं प्रज्ञप्तं, तद्यथा–आगमतो नोआगमतश्च ॥ ३२ ॥ अत्राऽऽद्यभेदनिर्णयार्थमाह—

से किं तं आगमतो दव्वसुअं ?, २ जस्स णं सुएत्ति पयं सिक्खियं ठियं जियं जावणो अणुप्पेहाए, कम्हा ?, अणुवओगो दव्वमितिकट्टु, नेगमस्स णं एगो अणुवउत्तो आगमतो एगं दव्वसुअं जाव कम्हा ?, जइ जाणए अणुवउत्ते न भवइ । से तं आगमतो दव्वसुअं (सू० ३३)

अत्र निर्वचनम्—'आगमओ दव्वसुअमि'त्यादि, यस्य कस्यचित् श्रुतमिति पदं श्रुतपदाभिधेयमाचारादिशास्त्रं शिक्षितं स्थितं यावद्वाचनोपगतं भवति स जन्तुस्तत्र वाचनाप्रच्छनादिभिर्वर्तमानोऽपि श्रुतोपयोगेऽवर्ते-

वृत्तिः श्रुतनिक्षेपः

॥ ३२ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र द्रव्यश्रुतस्य भेद-प्रभेदयुक्तं विस्तृतं वर्णनं क्रियते

मानत्वादागमतः–आगममाश्रित्य द्रव्यश्रुतमिति समुदायार्थः । शेषोऽत्राऽऽक्षेपपरिहारादिप्रपञ्चो नयविचारणा च द्रव्यावश्यकवत् द्रष्टव्या, अत एव सूत्रेऽप्यतिदेशं कुर्वता 'जाव कम्हा ?, जइ जाणए' इत्यादिना पर्यन्त-निर्दिष्टानां शब्दनयानां सम्बन्धी सूत्रालापको गृहीतः । एतच्च काश्चिदेव वाचनामाश्रित्य व्याख्यायते, वाचनान्तराणि तु हीनाधिकान्यपि दृश्यन्ते, 'से तमि'त्यादि निगमनम् ॥ ३३ ॥ उक्तमागमतो द्रव्यश्रुतम्, इदानीं नोआगमतस्तदेवोच्यते—

से किं तं नोआगमतो दव्वसुअं ?, २ तिविहं पण्णत्तं, तंजहा–जाणयसरीरदव्वसुअं भविअसरीरदव्वसुअं जाणयसरीरभविअसरीरवइरित्तं दव्वसुअं (सू० ३४)

अत्र निर्वचनम्—'नोआगमओ दव्वसुअं तिविहमि'त्यादि 'जाणयसरीर० भविअसरीर० जाणयसरीरभविअसरीरवइरित्तं दव्वसुअं' ॥ ३४ ॥ अत्राऽऽद्यभेदज्ञापनार्थमाह—

से किं तं जाणयसरीरदव्वसुअं ?, २ सुअत्तिपयत्थाहिगारजाणयस्स जं सरीरयं ववगयचुअचाविअचत्तदेहं तं चेव पुव्वभणिअं भाणिअव्वं जाव से तं जाणयसरीरदव्वसुअं (सू० ३५)

अत्रोत्तरम्—'जाणयसरीरदव्वसुयं सुअत्ती'त्यादि, ज्ञातवानिति ज्ञस्तस्य शरीरं तदेवानुभूतभावत्वाद्

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

द्रव्यश्रुतं ज्ञशरीरद्रव्यश्रुतं, श्रुतमिति यत्पदं तदर्थाधिकारज्ञायकस्य यच्छरीरकं व्यपगतादिविशेषणविशिष्टं तज्ज्ञशरीरद्रव्यश्रुतमित्यर्थः । ननु यदि जीवविप्रमुक्तमिदं कथं तर्ह्यस्य द्रव्यश्रुतत्वं ?, लेष्ट्वादीनामपि तत्प्रसङ्गात्, तत्पुद्गलानामपि कदाचित् श्रुतकर्तृभिः गृहीत्वा मुक्तत्वसम्भवादित्याशङ्क्याऽऽह—'सेज्जागयमि'त्यादि, शेषोऽत्रावयवव्याख्यादिप्रपञ्चो ज्ञशरीरद्रव्यावश्यकवत्, श्रुताभिलापतो वाच्यः, यावत् 'सेतमि'त्यादि निगमनम् ॥ ३५ ॥ द्वितीयभेदनिरूपणार्थमाह—

से किं तं भविअसरीरदव्वसुअं ?, २ जे जीवे जोणीजम्मणनिक्खंते जहा दव्वावस्सए तहा भाणिअव्वं जाव से तं भविअसरीरदव्वसुअं (सू० ३६)

अत्र प्रतिवचः—'भविअसरीरदव्वसुअं जे जीवे' इत्यादि, विवक्षितपर्यायेण भविष्यतीति भव्यो–विवक्षितपर्यायार्हः तद्योग्य इत्यर्थः, तस्य शरीरं तदेव भाविभावश्रुतकारणत्वात् द्रव्यश्रुतं भव्यशरीरद्रव्यश्रुतं, किं पुनस्तदिति, अत्रोच्यते, यो जीवो योनिजन्मत्वनिष्क्रान्तोऽनेनैव शरीरसमुच्छ्रयेणादत्तेन जिनोपदिष्टेन भावेन श्रुतमित्येतत् पदमागामिकाले शिक्षिष्यते न तावच्छिक्षते तज्जीवाधिष्ठितं शरीरं भव्यशरीरं द्रव्यश्रुतमित्यर्थः । शेषं द्रव्यावश्यकवत् श्रुताभिलापेन सर्वं वाच्यं, यावत् 'से त'मित्यादि निगमनम् ॥ ३६ ॥ तृतीयभेदपरिज्ञानार्थमाह—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [३६]

दीप अनुक्रम [४०]

से किं तं जाणयसरीरभविअसरीरवइरित्तं दव्वसुअं ?, २ पत्तयपोत्थयलिहिअं, अहवा जाणयसरीरभविअसरीरवइरित्तं दव्वसुअं पंचविहं पण्णत्तं, तंजहा–अंडयं बोंडयं कीडयं वालयं वागयं, अंडयं हंसगब्भादि, बोंडयं कप्पासमाइ, कीडयं पंचविहं पण्णत्तं, तंजहा–पट्टे मलए अंसुए चीणंसुए किमिरागे, वालयं पंचविहं पण्णत्तं, तंजहा–उण्णिए उट्टिए मिअलोमिए कोतवे किट्टिसे, वागयं सणमाइ, से तं जाणयसरीरभविअसरीरवइरित्तं दव्वसुअं, से तं नोआगमतो दव्वसुअं, से तं दव्वसुअं (सू० ३७)

अत्र निर्वचनम्—'जाणयसरीरभविअसरीरवइरित्तं दव्वसुअ'मित्यादि, यत्र ज्ञशरीरभव्यशरीरयोः सम्बन्धि अनन्तरोक्तस्वरूपं न घटते तत् ताभ्यां व्यतिरिक्तं–भिन्नं द्रव्यश्रुतं, किं पुनस्तदित्याह–'पत्तयपोत्थयलिहियं'ति पत्रकाणि–तलतालाद्यादिसंबन्धीनि तत्संघातनिष्पन्नास्तु पुस्तकाः, ततश्च पत्रकाणि च पुस्तकाश्च तेषु लिखितं पत्रकपुस्तकलिखितम्, अथवा 'पोत्थयं'ति पोतं–वस्त्रं पत्रकाणि च पोतं च तेषु लिखितं पत्रकपोतलिखितं ज्ञशरीरभव्यशरीरव्यतिरिक्तं द्रव्यश्रुतम्, अत्र च पत्रकादिलिखितस्य श्रुतस्य भाव-

१ प्रश्नोत्तरपूर्वं व्याख्याऽत्र या सा तथाविधादर्शानुसारेण.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [३७]

दीप अनुक्रम [४१]

श्रुतकारणत्वात् द्रव्यत्वमवसेयं, नोआगमत्वं तु आगमतो द्रव्यश्रुत इव आगमकारणस्यात्मदेहशब्दत्रयरूपस्याभावाद् भावनीयम् । तदेवमेकेन प्रकारेण ज्ञशरीरभव्यशरीरव्यतिरिक्तं द्रव्यश्रुतमुक्तं, साम्प्रतं तदेव प्रकारान्तरेण निरूपयितुमाह—'अहवे'त्यादि, अथवा श्रुतं पञ्चविधं प्रज्ञप्तं, तद्यथा—'अंडयमि'त्यादि, अत्राऽऽह–ननु श्रुते प्रक्रान्ते सूत्रस्य प्ररूपणमप्रस्तुतं, सत्यं, किन्तु प्राकृतशैलीमङ्गीकृत्य श्रुतस्याण्डजादिसूत्रस्य च सूत्रलक्षणेनैकेन शब्देनाभिधीयमानत्वसाम्यादिदमपि प्ररूपयतीत्यदोषः, प्रसङ्गतोऽण्डजादिसूत्रस्वरूपज्ञापनेन शिष्यव्युत्पत्तिश्चैवं कृता भवति, अत एव भावश्रुते प्रक्रान्ते नामश्रुतादिप्ररूपणमप्रस्तुतमित्यादयपि प्रेर्यमपास्तं, तस्यापि शिष्यव्युत्पादनादिफलत्वात्, न च भावश्रुतप्रतिपक्षस्य नामश्रुतादेः प्ररूपणमन्तरेण भावश्रुतस्य निर्दोषत्वादिस्वरूपनिश्चयः कर्तुं पार्यते, 'जे सव्वं जाणइ से एगं जाणइ'त्ति वचनादित्यलं विस्तरेण । अत्राऽऽद्यभेदज्ञापनार्थमाह—'से किं त'मित्यादि, अत्रोत्तरम्–'अंडयं हंसगब्भाइ'त्ति अण्डाज्जातमण्डजं हंसः–पतङ्गश्चतुरिन्द्रियो जीवविशेषः, गर्भस्तु तन्निर्वर्तितः कोसिकाकारो, हंसस्य गर्भो हंसगर्भः, तदुत्पन्नं सूत्रमण्डजमुच्यते, आदिशब्दः स्वभेदप्रख्यापनपरः । ननु यदि हंसगर्भोत्पन्नसूत्रमण्डजमुच्यते तर्हि सूत्रे 'अंडयं हंसगब्भाइ'त्ति सामानाधिकरण्यं विरुध्यते, हंसगर्भस्य प्रस्तुतसूत्रकारणत्वादेव, सत्यं, कारणे कार्योपचारात् तदविरोधः, कोशकारभवं सूत्रं चटकसूत्रमिति लोके प्रतीतमण्डजमुच्यत इति हृदयं, पञ्चेन्द्रियहंसगर्भसम्भवमित्यन्ये, 'से तमि'त्यादि निगमनम् । अथ द्वितीय-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भेद उच्यते–'से किं त'मित्यादि, अत्र निर्वचनम्–'बोंडयं फलिहमाइ'त्ति बोंडं वमनीफलं तस्माज्जातं बोण्डजं, फलिही-वमनी तस्याः फलमपि फलिहं कर्पासाश्रयं कोशकरूपं, तदिहापि कारणे कार्योपचाराद्बोण्डजं सूत्रमुच्यते इति भावः, 'से तमि'त्यादि निगमनम् । अथ तृतीयभेद उच्यते–'से किं तमि'त्यादि, अत्रोत्तरम्—'कीडयं पंचविहमि'त्यादि, कीटाज्जातं कीटजं–सूत्रं तत् पञ्चविधं प्रज्ञप्तं, तद्यथा–'पट्टे'त्ति पट्टसूत्रं मलयम् 'अंशुकं' चीनांशुकं कृमिरागम्, अत्र वृद्धव्याख्या–किल यत्र विषये पट्टसूत्रमुत्पद्यते, तत्रारण्ये वननिकुञ्जस्थाने मांसचीडादिरूपस्याऽऽमिषस्य पुञ्जाः क्रियन्ते, तेषां च पुञ्जानां पार्श्वतो निम्ना उन्नताश्च सान्तरा बहवः कीलका भूमौ निखायन्ते, तत्र वनान्तरेषु संचरन्तः पतङ्गकीटाः समागत्य मांसाद्यामिषोपभोगलुब्धाः कीलकान्तरेष्वितस्ततः परिभ्रमन्तो लालाः प्रमुञ्चन्ति, ताश्च कीलकेषु लग्नाः परिगृह्यन्ते, इत्येतत् पट्टसूत्रमभिधीयते, अनेनैव क्रमेण मलयविषयोत्पन्नं तदेव मलयम्, इत्थमेव चीनविषये बहिस्तादुत्पन्नं तदेवांशुकं, इत्थमेव चीनविषयोत्पन्नं तदेव चीनांशुकमभिधीयते, क्षेत्रविशेषाद्धि कीटविशेषस्तद्विशेषात् तु पट्टसूत्रादिव्यपदेश इति भावः । एवं क्वचिद्विषये मनुष्यादिशोणितं गृहीत्वा केनापि योगेन युक्तं भाजनसम्पुटे स्थाप्यते, तत्र च प्रभूताः कृमयः समुत्पद्यन्ते, ते च वाताभिलाषिणो भाजनच्छिद्रैर्निर्गत्य आसन्नं पर्यटन्तो यल्लालाजालमभिमुञ्चन्ति तत् कृमिरागं पट्टसूत्रमुच्यते, तच्च रक्तवर्णकृमिसमुत्थत्वात् स्वपरिणामत एव रक्तं भवति । अन्ये त्वभिदधति–यदा तत्र शोणिते कृमयः समुत्पन्ना भवन्ति तदा सकृमिकमेव तन्मलित्वा किट्टिसं परि-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [३७] दीप अनुक्रम [४१]	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[४५], चूलिकासूत्र-[२] अनुयोगद्वार मूलं एवं हेमचन्द्रसूरि-रचिता वृत्तिः

त्यज्य रसो गृह्यते, तत्र च कश्चिद् योगः प्रक्षिप्यते, ततस्तेन यद् रज्यते पट्टसूत्रं तत् कृमिरागमुच्यते, तच्च धौताद्यवस्थासु मनागपि कथञ्चिद्रागं न मुञ्चन्ति, 'से तमि'त्यादि निगमनम् । अथ चतुर्थो भेद उच्यते–'से किं तमि'त्यादि, अत्रोत्तरम्—'वालयं पंचविह'मित्यादि, वालेभ्यः–ऊरणिकादिलोमभ्यो जातं वालजं, तत् पञ्चविधं प्रज्ञप्तं, तद्यथा–ऊर्णाया इदमौर्णिकम्, उष्ट्राणामिदमौष्ट्रिकम्, एते द्वे अपि प्रतीते, ये मृगेभ्यो ह्रस्वका मृगाकृतयो बृहत्पुच्छा आटविकजीवविशेषास्तल्लोमनिष्पन्नं मृगलोमिकम्, उन्दुररोमनिष्पन्नं कौतवं, ऊर्णादीनां यदुद्धरितं किट्टिसं तन्निष्पन्नं सूत्रमपि किट्टिसम्, अथवा एतेषामेवोर्णादीनां द्विकादिसंयोगतो निष्पन्नं सूत्रं किट्टिसं, अथवा उक्तशेषाश्वादिलोमनिष्पन्नं किट्टिसं 'से तमि'त्यादि निगमनम् । अथ पञ्चमो भेदोऽभिधीयते—'से किं तमि'त्यादि, वल्काज्जातं वल्कजं, तच्च सणप्रभृति, क्वचित् पुनरतस्यादीति पाठः, तत्रातसीसूत्रं मालवादिदेशप्रसिद्धं, 'से तमि'त्यादि निगमनम् । उक्तं पञ्चविधमण्डजादिसूत्रं, तद्गणने चोक्तं ज्ञशरीरभव्यशरीरव्यतिरिक्तं द्रव्यश्रुतम्, अतस्तदपि निगमयति–'से तं जाणगे'त्यादि, एतद्गणने च समर्थितं नोआगमतो द्रव्यश्रुतमतस्तदपि निगमयति–'से तं नोआगमओ'इत्यादि, एतत्समर्थने च समर्थितं द्विविधमपि द्रव्यश्रुतमतस्तदपि निगमयति–'से तं दव्वसुअमि'त्यादि ॥ ३७ ॥ अथ भावश्रुतनिरूपणार्थमाह—

से किं तं भावसुअं ?, २ दुविहं पण्णत्तं, तंजहा–आगमतो अ नोआगमतो अ (सू० ३८)

अत्रोत्तरम्—'भावसुअं दुविहमि'त्यादि, विवक्षितपरिणामस्य भवनं भावः स चासौ श्रुतं चेति भाव-

॥ ३५ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	अत्र भावश्रुतस्य भेद-प्रभेदयुक्तं विस्तृतं वर्णनं क्रियते

श्रुतं भावप्रधानं वा श्रुतं भावश्रुतं, तद् द्विविधं प्रज्ञप्तम्–आगमतो नोआगमतश्च ॥ ३८ ॥ तत्राऽऽद्यभेदनिरूपणार्थमाह—

से किं तं आगमतो भावसुअं ?, २ जाणए उवउत्ते, से तं आगमतो भावसुअं (सू० ३९)

अत्रोत्तरं–श्रुतंपदार्थज्ञस्तत्र चोपयुक्त आगमतः–आगममाश्रित्य भावश्रुतं, श्रुतोपयोगपरिणामस्य सद्भावात् तस्य चाऽऽगमत्वादिति भावः, 'से तमि'त्यादि निगमनम् ॥ ३९ ॥ अथ द्वितीयभेद उच्यते—

से किं तं नोआगमतो भावसुअं ?, २ दुविहं पण्णत्तं, तंजहा–लोइअं लोगुत्तरिअं च (सू० ४०)

अत्रोत्तरम्—'नोआगमओ भावसुअं दुविहं पण्णत्तं, लोइयं लोउत्तरिअमि'त्यादि ॥ ४० ॥ अत्राऽऽद्यभेदनिरूपणार्थमाह—

से किं तं लोइअं नोआगमतो भावसुअं?, २ जं इमं अण्णाणिएहिं मिच्छदिट्ठीहिं सच्छंदबुद्धिमइविगप्पियं, तंजहा–भारहं रामायणं भीमासुरुक्कं कोडिल्लयं घोडयमुहं सगडभद्दिआउ कप्पासिअं णागसुहुमं कणगसत्तरी वेसियं वइसेसियं बुद्धसासणं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

काविलं लोगायतं सट्ठितंतं माढरपुराणवागरणनाडगाइ, अहवा बावत्तरिकलाओ चत्तारि वेआ संगोवंगा, से तं लोइयं नोआगमतो भावसुअं (सू० ४१)

अत्र निर्वचनम्—'लोइयं भावसुअं जं इममि'त्यादि, लोकैः प्रणीतं लौकिकं, किं पुनस्तदित्याह–यदिदमज्ञानिकैर्मिथ्यादृष्टिभिः स्वच्छन्दबुद्धिमतिविकल्पितं तल्लौकिकं भावश्रुतमिति सम्बन्धः, तत्राल्पज्ञानभावतोऽधनवदशीलवद् वा सम्यग्दृष्टयोऽप्यज्ञानिकाः प्रोच्यन्तेऽत आह–मिथ्यादृष्टिभिः स्वच्छन्दमतिबुद्धिविकल्पितम्, ईहावग्रहे बुद्धिः अपायधारणे तु मतिः, स्वच्छन्देन-स्वाभिप्रायेण तत्त्वतः सर्वज्ञप्रणीतार्थानुसारमन्तरेण बुद्धिमतिभ्यां विकल्पितं स्वच्छन्दबुद्धिमतिविकल्पितं-स्वबुद्धिविकल्पनाशिल्पिनिर्मितमित्यर्थः । तत्प्रकटनार्थमेवेदमाह—'तद्यथा–भारतमि'त्यादि, एतच्च भारतादिकं नाटकादिपर्यन्तं श्रुतं लोकप्रसिद्धिगम्यम्। अथ प्रकारान्तरेण लौकिकश्रुतनिरूपणार्थमाह—'अहवा बावत्तरिकलाओ' इत्यादि, तत्र कलनानि-वस्तुपरिज्ञानानि कलास्ताश्च द्विसप्ततिः समवायाङ्गादिग्रन्थप्रसिद्धाः, चत्वारश्च वेदाः (ग्रन्थाग्रम् १०००) सामवेदऋग्वेदयजुर्वेदाथर्वणवेदलक्षणाः साङ्गोपाङ्गाः, तत्राङ्गानि शिक्षा १ कल्प २ व्याकरण ३ च्छन्दो ४ निरुक्त ५-ज्योतिष्कायन ६ लक्षणानि षट्, उपाङ्गानि तद्व्याख्यानरूपाणि तैः सह वर्तन्ते इति साङ्गोपाङ्गाः । 'से तमि'त्यादि निगमनम् ॥ ४१ ॥ उक्तं नोआगमतो लौकिकं भावश्रुतम्, अथ लोकोत्तरिकं तदेवाऽऽह—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [४२]

दीप अनुक्रम [४६]

से किं तं लोउत्तरिअं नोआगमतो भावसुअं ?, २ जं इमं अरिहंतेहिं भगवंतेहिं उप्पण्णणाणदंसणधरेहिं तीयपच्चुप्पण्णमणागयजाणएहिं सव्वण्णूहिं सव्वदरिसीहिं तिलुक्कवहितमहितपूइएहिं अप्पडिहयवरणाणदंसणधरेहिं पणीअं दुवालसंगं गणिपिडगं, तंजहा-आयारो सूअगडो ठाणं समवाओ विवाहपण्णत्ती नायाधम्मकहाओ उवासगदसाओ अंतगडदसाओ अणुत्तरोववाइअदसाओ पण्हावागरणाइं विवागसुअं, दिट्ठीवाओ अ, से तं लोउत्तरियं नोआगमतो भावसुअं, से तं नोआगमतो भावसुअं, से तं भावसुअं (सू० ४२)

अनु. ७

लोकोत्तरैः–लोकप्रधानैरर्हद्भिः प्रणीतं लोकोत्तरिकं, किं पुनस्तदित्याह–'लोउत्तरियं भावसुअं जं इममि'त्यादि, यदिदमर्हद्भिर्द्वादशाङ्गं गणिपिटकं प्रणीतं तल्लोकोत्तरिकं भावश्रुतमिति सम्बन्धः, तद्यथा–'आयारो सुयगडमि'(डो इ)त्यादि, तत्र सदेवमनुजासुरलोकविरचितां पूजामर्हन्तीति अर्हन्तस्तैः, एवंभूताश्चातीर्थकरा अपि केवल्यादयो भवन्त्यतस्तीर्थकरग्रतिपत्तये आह–'भगवद्भिरि'ति, समस्तैश्वर्यनिरुपमरूपयशःश्रीधर्मप्रयत्नवद्भिरित्यर्थः, इत्थंभूताश्च अनाद्यप्रतिघज्ञानादिमन्तः केचित् कैश्चिदभ्युपगम्यन्ते, उक्तं चैतद्भादिभिः–"ज्ञानम-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रतिघं यस्य, वैराग्यं च जगत्पतेः । ऐश्वर्यं चैव धर्मश्च, सह सिद्धं चतुष्टयम् ॥ १ ॥" इत्यादि । अतस्तद्व्यवच्छेदार्थमाह–ज्ञानावरणक्षपणादिप्रकारेणोत्पन्ने न तु सहजे ज्ञानदर्शने धरन्तीत्युत्पन्नज्ञानदर्शनधरास्तैः, न च प्रस्तुतविशेषणव्यवच्छेद्या अप्येवंभूता एव, 'सह सिद्धं चतुष्टयमि'त्यादिवचनविरोधप्रसङ्गात्, तर्हि सुगता इत्थंभूता अपि भविष्यन्तीत्याशङ्क्याऽऽह–'तीयपच्चुप्पण्णे'त्यादि, अतीतवर्तमानभविष्यदर्थज्ञायकैरित्यर्थः, न च सुगतानामतीतभविष्यदर्थज्ञातृत्वसम्भवः, एकान्तक्षणभङ्गवादित्वेन तदसत्त्वाभ्युपगमाद्, असतां च ग्रहणेऽतिप्रसङ्गाद्, अथ सन्तानद्वारेण कालत्रयेऽप्यर्थानां सद्भावादतीताद्यर्थज्ञातृत्वं तेषामपि न विहन्यत इत्याशङ्क्याऽऽह—'सर्वदर्शिभि'रिति, सर्वम्-एकेन्द्रियद्वीन्द्रियजीवादि वस्तु केवलज्ञानेन जानन्तीति सर्वज्ञाः, तदेव सर्वं केवलदर्शनेन पश्यन्तीति सर्वदर्शिनस्तैः, शाक्यानां त्वतीताद्यर्थज्ञातृत्वेऽपि सर्वज्ञादित्वं नोपपद्यते, कतिपयधर्माद्यभीष्टपदार्थज्ञातृत्वस्यैव तेष्वभ्युपगमाद्, यत उक्तं तच्छिष्यैः—"सर्वं पश्यतु मा वाऽसाविष्टमर्थं तु पश्यतु । कीटसङ्ख्यापरिज्ञानं, तत्र नः क्वोपयुज्यते ? ॥ १ ॥" इत्यादि, यथोक्तगुणविशिष्टत्वात् 'तिलुक्कवहियमहिये'त्यादि, 'वहिय'त्ति विगलद्बहलानन्दाश्रुदृष्टिभिः सहर्षं निरीक्षिता यथावस्थितानन्यसाधारणगुणोत्कीर्तनलक्षणेन भावस्तवेन महिता–अभिष्टुताः सुगन्धिपुष्पप्रकरक्षेपादिना तु द्रव्यस्तवेन पूजिताः, तत एषां द्वन्द्वे त्रैलोक्येन–भवनपतिव्यन्तरनरविद्याधरवैमानिकादिसमुदायलक्षणेन वहि-

१ प्रत्यन्तरे नास्ति.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तमहितपूजितास्तैः, अत्राऽऽह–ननूत्पन्नज्ञानदर्शनधरैरित्युक्तम्, उत्पत्तिमत् सप्रतिघं दृष्टं यथा मूर्तेष्वव-ध्यादिज्ञानं, उत्पन्ने च तज्ज्ञानदर्शने अभ्युपगते, अतस्ताभ्यां ते सप्रतिघज्ञानिनः प्राप्नुवन्ति, तथा च पूर्वो-क्तसर्वज्ञत्वादिहानिरित्याशङ्क्याऽऽह–'अप्रतिहतवरज्ञानदर्शनधरै'रिति, समस्तावरणक्षयसम्भूतत्वादप्रति-हते–मूर्तामूर्तेषु समस्तवस्तुष्वस्खलिते अत एव वरे–प्रधाने केवलज्ञानदर्शनलक्षणे ज्ञानदर्शने धरन्ति ये ते तथा तैः, यत्त्ववध्यादेः सप्रतिघत्वं तन्नोत्पत्तिमत्त्वेन, किं तर्हि ?, आवरणसद्भावाद्, अतोऽप्रतिघकेवलज्ञानद-र्शने समस्तावरणक्षयसम्भूतत्वात्, तत्क्षयेऽपि सप्रतिघत्वाभ्युपगमेऽतिप्रसङ्गाद्, इदं च विशेषणं कस्याञ्चि-देव वाचनायां दृश्यते, न सर्वत्र, तदेवं यथोक्तप्रकारेण तावद् व्याख्यातान्यमूनि विशेषणानि, अन्यथा वा-ऽविरोधतः सुधिया व्याख्येयानि । तैरर्थकथनद्वारेण 'प्रणीतं' प्ररूपितं, किं तद् ?–'द्वादशाङ्गं श्रुतं' परमपुरुष-स्याङ्गानीवाङ्गानि द्वादश अङ्गानि–आचारादीनि यत्र तद् द्वादशाङ्गं, किंभूतं ?–'गणिपिटकं' गुणगणोऽस्या-स्तीति गणी–आचार्यस्तस्य पिटकं–सर्वस्वं गणिपिटकं, तद्यथा–आचार इत्यादि सुगमम् । अत्र द्वादशाङ्ग-श्रुतस्य चरणगुणसमन्वितस्य विवक्षितत्वान्नोआगमत्वं भावनीयं, देशस्य चरणगुणलक्षणस्यानागमत्वान्नो-शब्दस्य च देशप्रतिषेध(क)त्वेनाश्रयणाद्, एवं पूर्वत्रापि लौकिकभावश्रुते वाच्यम्, निगमयन्नाह—'से तं लोउत्तरिय'मित्यादि । एतद्गणने च समर्थितं द्विविधमपि नोआगमतो भावश्रुतम्, अतस्तदपि निगमयति —'से तं नोआगमतो भावसुअं' इत्यादि । एतद्गणने चोक्तं सर्वमपि भावश्रुतमतो निगमयति—'से तं भाव-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [४३] + गाथा ॥१॥

दीप अनुक्रम [४७-४९]

सुअ'मिति ॥ ४२ ॥ तदेवं स्वरूपत उक्तं भावश्रुतमनेनैव चात्राधिकार इत्यतोऽस्यैव पर्यायनिरूपणार्थमाह—

तस्स णं इमे एगट्ठिआ णाणाघोसा णाणावंजणा नामधेज्जा भवंति, तंजहा–सुअसुत्तगंथसिद्धंतसासणे आणवयण उवएसे । पन्नवण आगमेऽवि अ एगट्ठा पज्जवा सुत्ते ॥ १ ॥ (४) से तं सुअं (सू० ४३)

'तस्य' श्रुतस्य 'अमूनि' अनन्तरमेव वक्ष्यमाणतया प्रत्यक्षाणि 'एकार्थिकानि' तत्त्वत एकार्थविषयाणि 'नानाघोषाणि' पृथगभिन्नोदात्तादिस्वराणि 'नानाव्यञ्जनानि' पृथगभिन्नाक्षराणि 'नामधेयानि' पर्यायध्वनिरूपाणि भवन्ति, तद्यथा—'सुअ'गाहा, व्याख्या–गुरुसमीपे श्रुयत इति श्रुतम्, अर्थानां सूचनात् सूत्रं, विप्रकीर्णार्थग्रन्थनाद् ग्रन्थः, सिद्धं–प्रमाणप्रतिष्ठितमर्थमन्तं–संवेदननिष्ठारूपं नयतीति सिद्धान्तः, मिथ्यात्वाविरतिकषायादिप्रवृत्तजीवानां शासनात्–शिक्षणाच्छासनं, प्रवचनमिति पाठान्तरं, तत्रापि प्रशस्तं प्रधानं प्रथमं वा वचनं प्रवचनं, मोक्षार्थमाज्ञाप्यन्ते प्राणिनोऽनयेत्याज्ञा, उक्तिर्वचनं वाग्योग इत्यर्थः, हिताहितप्रवृत्तिनिवृत्त्युपदेशनादुपदेशः, यथावस्थितजीवादिपदार्थज्ञापनात् प्रज्ञापना, आचार्यपारम्पर्येणागच्छतीत्यागमः, आप्तवचनं वाऽऽगम इति, 'सूत्रे' सूत्रविषये एकार्थाः पर्याया इति गाथार्थः ॥ १ ॥ 'से तं सुअ'मित्यादि, तदेतन्नामादिभेदैरुक्तं श्रुतमित्यर्थः । [इति अनुयोगद्वारग्रन्थे श्रुताधिकारः कथितः ॥ ४३ ॥ अथ स्कन्धाधिकारः कथ्यते–]

साम्प्रतं यदुक्तं 'स्कन्धं निक्षेप्स्यामी'ति, तत्सम्पादनार्थमुपक्रमते—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[४५], चूलिकासूत्र-[२] अनुयोगद्वार मूलं एवं हेमचन्द्रसूरि-रचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [४४]

दीप अनुक्रम [५०]

से किं तं खंधे ?, २ चउव्विहे पण्णत्ते, तंजहा–नामखंधे ठवणाखंधे दव्वखंधे भाव-खंधे (सू० ४४)

अथ किं तत् स्कन्ध इत्युच्यते इति प्रश्ने निर्वचनमाह—'खंधे चउव्विहे' इत्यादि ॥ ४४ ॥

नामट्ठवणाओ पुव्वंभणिआणुक्कमेण भाणिअव्वाओ (सू० ४५)

अत्र नामस्कन्धस्थापनास्कन्धप्रतिपादकसूत्रं नामस्थापनावश्यकप्रतिपादकसूत्रव्याख्यानुसारेण स्वयमेव भावनीयम् ॥ ४५ ॥

से किं तं दव्वखंधे ?, २ दुविहे पण्णत्ते, तंजहा आगमतो अ नोआगमतो अ, से किं तं आगमओ दव्वखंधे ?, २ जस्स णं खंधेत्ति पयं सिक्खियं सेसं जहा दव्वाव-स्सए तहा भाणिअव्वं, नवरं खंधाभिलावो जाव से किं तं जाणयसरीरभविअसरी-रवइरित्ते दव्वखंधे ?, २ तिविहे पण्णत्ते, तंजहा–सच्चित्ते अचित्ते मीसए (सू० ४६)

द्रव्यस्कन्धसूत्रमपि भव्यशरीरद्रव्यस्कन्धसूत्रं यावद् द्रव्यावश्यकोक्तव्याख्यानुसारेणैव भावनीयं, प्राय-

१ गयाओ प्र.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अथ 'स्कन्ध'स्य नाम-आदि चत्वारः निक्षेपाः प्ररुप्यते

स्तुल्यवक्तव्यत्वादिति । 'से किं तं जाणयसरीरभविअसरीरवइरित्ते दव्वखंधे' इति प्रश्ने निर्वचनमाह—'जाणयसरीरभवियसरीरवइरित्ते दव्वखंधे तिविहे पन्नत्ते' इत्यादि, ज्ञशरीरभव्यशरीरव्यतिरिक्तद्रव्यस्कन्धस्त्रिविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा–सचित्तोऽचित्तो मिश्रः ॥ ४६ ॥ तत्राऽऽद्यभेदं जिज्ञासुः पृच्छति—

से किं तं सचित्ते दव्वखंधे ?, २ अणेगविहे पण्णत्ते, तंजहा–हयखंधे गयखंधे किन्नरखंधे किंपुरिसखंधे महोरगखंधे गंधव्वखंधे उसभखंधे से तं सचित्ते दव्वखंधे (सू०४७)

अत्रोत्तरम्—'सचित्तदव्वखंधे अणेगविहे पण्णत्ते' इत्यादि, चित्तं मनो विज्ञानमिति पर्यायाः, सह चित्तेन वर्तत इति सचित्तः, स चासौ द्रव्यस्कन्धश्चेति सचित्तद्रव्यस्कन्धः, 'अनेकविधो' व्यक्तिभेदतोऽनेकप्रकारः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—'हयस्कन्ध' इत्यादि, हयः–तुरगः स एव विशिष्टैकपरिणामपरिणतत्वात् स्कन्धो हयस्कन्धः, एवं गजस्कन्धादिष्वपि समासः, नवरं किन्नरकिम्पुरुषमहोरगा व्यन्तरविशेषाः 'उसभ'त्ति वृषभः, क्वचिद्गन्धर्वस्कन्धादीन्यधिकान्यप्युदाहरणानि दृश्यन्ते, सुगमानि च, नवरं 'पसुपसयविहगवानरखंधे'त्ति क्वचिद् दृश्यते, तत्र पशुः–छगलकः, पसयस्तु आटविको द्विखुरः चतुष्पदविशेषः, विहगः-पक्षी, वानरः-प्रतीतः, स्कन्धशब्दस्तु प्रत्येकं द्रष्टव्यः । इह च सचित्तस्कन्धाधिकाराज्जीवानामेव च परमार्थतः सचेतनत्वात् कथञ्चिच्छरीरैः सहाभेदे सत्यपि हयादीनां सम्बन्धिनो जीवा एव विवक्षिता न तु तदधिष्ठितशरीराणीति

॥ ३९ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सम्प्रदायः, न च जीवानां स्कन्धत्वं नोपपद्यते, प्रत्येकमसङ्ख्येयप्रदेशात्मकत्वेन तेषां स्कन्धत्वस्य सुप्रतीतत्वादिति, हयस्कन्धादीनामन्यतरेणैकेनाप्युदाहरणेन सिद्धं, किं प्रभूतोदाहरणाभिधानेनेति चेत्, सत्यं, किन्तु पृथग्भिन्नस्वरूपविजातीयस्कन्धबहुत्वाभिधानेनाऽऽत्माद्वैतवादं निरस्यति, तथाऽभ्युपगमे मुक्तेतरादिव्यवहारोच्छेदप्रसङ्गात्, 'से तमि'त्यादि निगमनम् ॥ ४७ ॥ अथाचित्तद्रव्यस्कन्धनिरूपणार्थमाह—

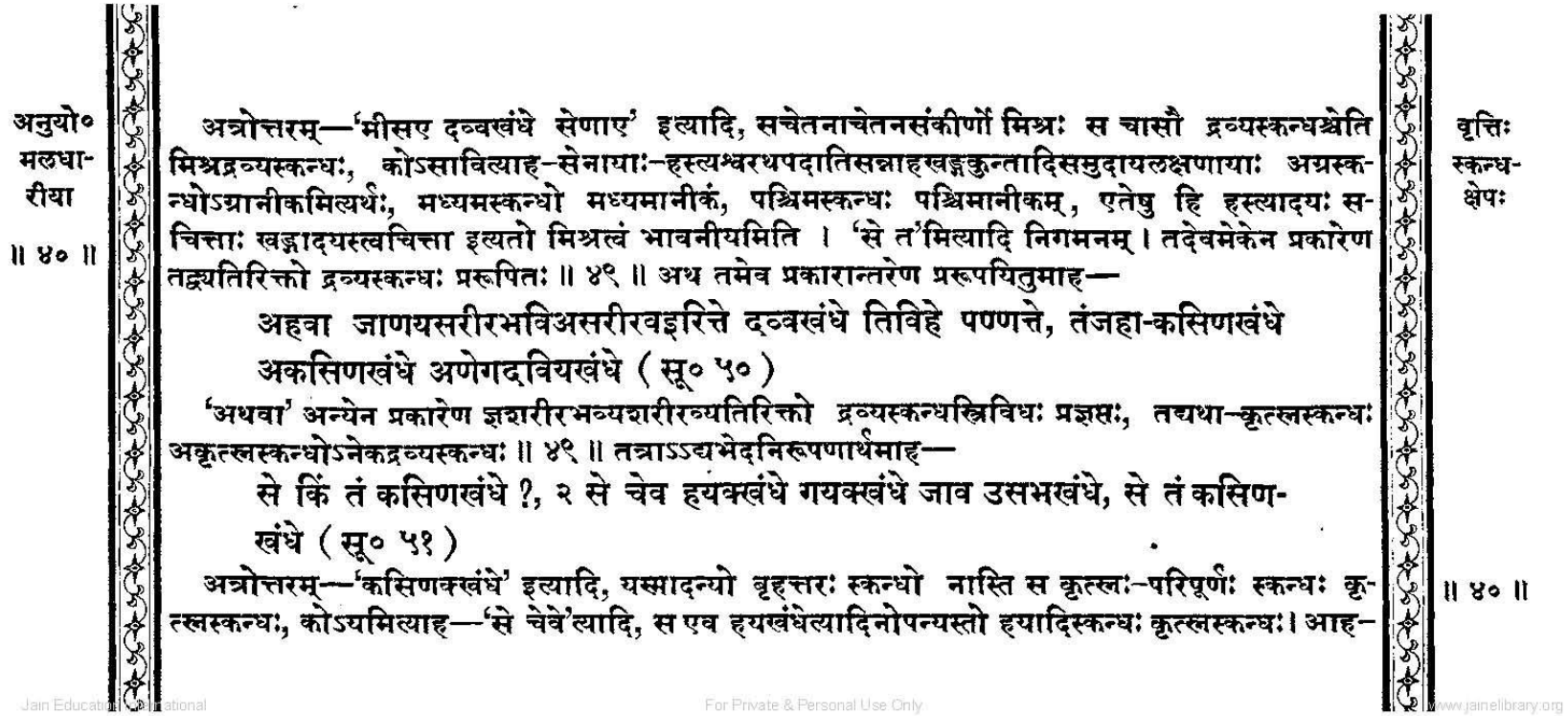
से किं तं अचित्ते दव्वखंधे ?, २ अणेगविहे पण्णत्ते, तंजहा–दुपएसिए तिपएसिए जाव दसपएसिए संखिज्जपएसिए असंखिज्जपएसिए अणंतपएसिए, से तं अचित्ते दव्वखंधे (सू० ४८)

अत्र निर्वचनम्—'अचित्तदव्वखंधे' इत्यादि, अविद्यमानचित्तोऽचित्तः स चासौ द्रव्यस्कन्धश्चेति समासः, अयमनेकविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा–द्विप्रदेशिकः स्कन्ध इत्यादि, तत्र प्रकृष्टः पुद्गलास्तिकायदेशः प्रदेशः परमाणुरित्यर्थः, द्वौ प्रदेशौ यत्र स द्विप्रदेशिकः स चासौ स्कन्धश्च द्विप्रेशिकस्कन्धः, एवमन्यत्रापि यथायोगं समासः । 'से त' मित्यादि निगमनम् ॥ ४८ ॥ अथ मिश्रद्रव्यस्कन्धनिरूपणायाऽऽह—

से किं तं मीसए दव्वखंधे ?, २ अणेगविहे पण्णत्ते, तंजहा–सेणाए अग्गिमे खंधे सेणाए मज्झिमे खंधे सेणाए पच्छिमे खंधे, से तं मीसए दव्वखंधे (सू० ४९)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [४९] दीप अनुक्रम [५५]	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[४५], चूलिकासूत्र-[२] अनुयोगद्वार मूलं एवं हेमचन्द्रसूरि-रचिता वृत्तिः



अनुयो० मलधारीया ॥ ४० ॥

अत्रोत्तरम्—'मीसए दव्वखंधे सेणाए' इत्यादि, सचेतनाचेतनसंकीर्णो मिश्रः स चासौ द्रव्यस्कन्धश्चेति मिश्रद्रव्यस्कन्धः, कोऽसावित्याह–सेनायाः–हस्त्यश्वरथपदातिसन्नाहखड्गकुन्तादिसमुदायलक्षणायाः अग्रस्कन्धोऽग्रानीकमित्यर्थः, मध्यमस्कन्धो मध्यमानीकं, पश्चिमस्कन्धः पश्चिमानीकम्, एतेषु हि हस्त्यादयः सचित्ताः खड्गादयस्त्वचित्ता इत्यतो मिश्रत्वं भावनीयमिति । 'से त'मित्यादि निगमनम् । तदेवमेकेन प्रकारेण तद्व्यतिरिक्तो द्रव्यस्कन्धः प्ररूपितः ॥ ४९ ॥ अथ तमेव प्रकारान्तरेण प्ररूपयितुमाह—

अहवा जाणयसरीरभविअसरीरवइरित्ते दव्वखंधे तिविहे पण्णत्ते, तंजहा-कसिणखंधे अकसिणखंधे अणेगदवियखंधे (सू० ५०)

'अथवा' अन्येन प्रकारेण ज्ञशरीरभव्यशरीरव्यतिरिक्तो द्रव्यस्कन्धस्त्रिविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा–कृत्स्नस्कन्धः अकृत्स्नस्कन्धोऽनेकद्रव्यस्कन्धः ॥ ४९ ॥ तत्राऽऽद्यभेदनिरूपणार्थमाह—

से किं तं कसिणखंधे ?, २ से चेव हयक्खंधे गयक्खंधे जाव उसभखंधे, से तं कसिणखंधे (सू० ५१)

अत्रोत्तरम्—'कसिणक्खंधे' इत्यादि, यस्मादन्यो बृहत्तरः स्कन्धो नास्ति स कृत्स्नः–परिपूर्णः स्कन्धः कृत्स्नस्कन्धः, कोऽयमित्याह—'से चेवे'त्यादि, स एव हयखंधेत्यादिनोपन्यस्तो हयादिस्कन्धः कृत्स्नस्कन्धः। आह–

वृत्तिः स्कन्धक्षेपः

॥ ४० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यद्येवं प्रकारान्तरत्वमसिद्धं, सचित्तस्कन्धस्यैव संज्ञान्तरेणोक्तत्वात्, नैतदेवं, प्राग् सचित्तद्रव्यस्कन्धाधिकारात् तथाऽसम्भविनोऽपि बुद्ध्या निष्कृष्य जीवा एवोक्ताः, इह तु जीवतदधिष्ठितशरीरावयवलक्षणः समुदायः कृत्स्नस्कन्धत्वेन विवक्षित इत्यतोऽभिधेयभेदात् सिद्धं प्रकारान्तरत्वम्। यद्येवं तर्हि हयादिस्कन्धस्य कृत्स्नत्वं नोपपद्यते, तदपेक्षया गजादिस्कन्धस्य बृहत्तरत्वात्, नैतदेवं, यतोऽसङ्ख्येयप्रदेशात्मको जीवस्तदधिष्ठिताश्च शरीरावयवा इत्येवंलक्षणः समुदायो हयादिस्कन्धत्वेन विवक्षितो जीवस्य चासङ्ख्येयप्रदेशात्मकतया सर्वत्र तुल्यत्वाद्गजादिस्कन्धस्य बृहत्तरत्वमसिद्धं, यदि हि जीवप्रदेशपुद्गलसमुदायः सामस्त्येन वर्त्तेत तदा स्याद्गजादिस्कन्धस्य बृहत्त्वं, तच्च नास्ति, समुदायबृद्ध्यभावात्, तस्मादितरेतरापेक्षया जीवप्रदेशपुद्गलसमुदायस्य हीनाधिक्याभावात् सर्वेऽपि हयादिस्कन्धाः परिपूर्णत्वात् कृत्स्नस्कन्धाः। अन्ये तु पूर्वं सचित्तस्कन्धविचारे जीवतदधिष्ठितशरीरावयवसमुदायः सचित्तस्कन्धोऽत्र तु शरीरात् बुद्ध्या पृथक्कृत्य जीव एव केवलः कृत्स्नस्कन्ध इति व्यत्ययं व्याचक्षते, अत्र च व्याख्याने प्रेर्यमेव नास्ति, हयगजादिजीवानां प्रदेशतो हीनाधिक्याभावेन कृत्स्नस्कन्धत्वस्य सर्वत्राविरोधादित्यलं प्रसङ्गेन ॥ ५१ ॥ 'से त' मित्यादि निगमनम्। अथाकृत्स्नस्कन्धनिरूपणार्थमाह—

से किं तं अकसिणखंधे ?, २ सो चेव दुपएसियाइखंधे जाव अणंतपएसिए खंधे, से तं अकसिणखंधे (सू० ५२)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्रोत्तरम्—'अकसिणखंधे से चेवे' त्यादि, न कृत्स्नोऽकृत्स्नः स चासौ स्कन्धश्चाकृत्स्नस्कन्धो यस्मादन्योऽपि बृहत्तरः स्कन्धोऽस्ति सोऽपरिपूर्णत्वादकृत्स्नस्कन्ध इत्यर्थः। कश्चायमित्याह—'से चेवे'त्यादि, स एव 'दुपएसिए खंधे तिपएसिए खंधे' इत्यादिना पूर्वमुपन्यस्तो द्विप्रदेशिकादिरकृत्स्नस्कन्ध इत्यर्थः, द्विप्रदेशिकस्य त्रिप्रदेशिकापेक्षयाऽकृत्स्नत्वात्, त्रिप्रदेशिकस्यापि चतुष्प्रदेशिकापेक्षयाऽकृत्स्नत्वाद्, एवं तावद्वाच्यं यावत् कात्स्न्यें नापद्यत इति । पूर्वं द्विप्रदेशिकादिः सर्वोत्कृष्टप्रदेशश्च स्कन्धः सामान्येनाचित्ततया प्रोक्तः, इह तु सर्वोत्कृष्टस्कन्धादधोवर्तिन एवोत्तरोत्तरापेक्षया पूर्वपूर्वतरा अकृत्स्नस्कन्धत्वेनोक्ता इति विशेषः । 'से त'मित्यादि निगमनम् ॥ ५२ ॥ अथानेकद्रव्यस्कन्धनिरूपणार्थमाह—

से किं तं अणेगदवियखंधे ?, २ तस्स चेव देसे अवचिए तस्स चेव देसे उवचिए, से तं अणेगदविअखंधे, से तं जाणयसरीरभवियसरीवइरित्ते दव्वखंधे, से तं नोआगमओ दव्वखंधे, से तं दव्वखंधे (सू० ५३)

अत्रोत्तरम्—'अणेगदवियखंधे तस्स चेवे'त्यादि, अनेकद्रव्यश्चासौ स्कन्धश्चेति समासः, तस्यैवेत्यत्रानुवर्तमानं स्कन्धमात्रं संबध्यते, ततश्च 'तस्यैव' यस्य कस्यचित् स्कन्धस्य यो 'देशो–'नखदन्तकेशादिलक्षणः 'अपचितो' जीवप्रदेशैर्विरहितो, यश्च तस्यैव 'देशः' पृष्ठोदरचरणादिलक्षण 'उपचितो' जीवप्रदेशैर्व्याप्त इत्यर्थः,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तयोर्यथोक्तदेशयोर्विशिष्टैकपरिणामपरिणतयोर्यो देहाख्यः समुदायः सोऽनेकद्रव्यस्कन्धः, सचेतनाचेतनानेकद्रव्यात्मकत्वादिति भावः । स चैवंभूतः सामर्थ्यात्तुरगादिस्कन्ध एव प्रतीयते । यद्येवं तर्हि कृत्स्नस्कन्धादस्य को विशेष इति चेद्, उच्यते, स किल यावानेव जीवप्रदेशानुगतस्तावानेव विवक्षितो, न तु जीवप्रदेशाव्यासनखाद्यपेक्षया, अयं तु नखाद्यपेक्षयाऽपीति विशेषः । पूर्वोक्तमिश्रस्कन्धादस्य तर्हि को विशेष इति चेद्, उच्यते, तत्र खड्गाद्यजीवानां हस्त्यादिजीवानां च पृथग्व्यवस्थितानां समूहकल्पनया मिश्रस्कन्धत्वमुक्तम् । अत्र तु जीवप्रयोगतो विशिष्टैकपरिणामपरिणतानां सचेतनाचेतनद्रव्याणामनेकद्रव्यस्कन्धत्वमिति विशेष इत्यलं प्रसङ्गेन । 'से त' मित्यादि निगमनम् । तदेवमुक्तो ज्ञशरीरभव्यशरीरव्यतिरिक्तो द्रव्यस्कन्धः, तद्गणने च समर्थितो नोआगमतो द्रव्यस्कन्धविचारः, तत्समर्थने च समर्थितो द्रव्यस्कन्ध इति ॥ ५३ ॥ अथ भावस्कन्धनिरूपणार्थमाह—

से किं तं भावखंधे ?, २ दुविहे पण्णत्ते, तंजहा-आगमओ अ नोआगमओ अ (सू० ५४)

अत्रोत्तरम्—'भावखंधे दुविहे' इत्यादि, भावश्चासौ स्कन्धश्च भावस्कन्धः, भावमाश्रित्य वा स्कन्धो भावस्कन्धः, स च द्विविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा–आगमतश्च नोआगमतश्च ॥ ५४ ॥

से किं तं आगमओ भावखंधे ?, २ जाणए उवउत्ते, से तं आगमओ भावखंधे (सू० ५५)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनुयो० मलधारीया ॥ ४२ ॥

तत्राऽऽगमतः स्कन्धपदार्थज्ञस्तत्र चोपयुक्तः तदुपयोगानन्यत्वाद्भावस्कन्धः ॥ ५५ ॥

से किं तं नोआगमओ भावखंधे ?, २ एएसिं चेव सामाइअमाइयाणं छण्हं अज्झयणाणं समुदयसमिइसमागमेणं आवस्सयसुअखंधे भावखंधेत्ति लब्भइ, से तं नोआगमओ भावखंधे, से तं भावखंधे (सू० ५६)

नोआगमतस्तु एतेषामेव प्रस्तुतावश्यकभेदानां सामायिकादीनां षण्णामध्ययनानां समुदायः, स चैतेषां विशकलितानामपि तथाविधदेवदत्तादीनामिव स्यादत उच्यते—समुदयस्य समितिः-नैरन्तर्येण मीलना, सा च नैरन्तर्यावस्थापितायःशलाकानामिव परस्परनिरपेक्षाणामपि स्यादत उच्यते–तस्याः समुदयसमितेर्यः समागमः–परस्परं सम्बद्धतया विशिष्टैकपरिणामः समुदयसमितिसमागमस्तेन निष्पन्नो य आवश्यकश्रुतस्कन्धः स भावस्कन्ध इति 'लभ्यते' प्राप्यते भवति इति हृदयम्। इदमुक्तं भवति–सामायिकादिषडध्ययनसंहतिनिष्पन्न आवश्यकश्रुतस्कन्धो मुखवस्त्रिकारजोहरणादिव्यापारलक्षणक्रियायुक्ततया विवक्षितो नोआगमतो भावस्कन्धः, नोशब्दस्य देशे आगमनिषेधपरत्वात् क्रियालक्षणस्य च देशस्यानागमत्वादिति भावः । 'से तमि'त्यादि निगमनम्। तदेवं प्रतिपादितो द्विविधोऽपि भावस्कन्ध इति निगमयति—'से तं भावखंधे'त्ति ॥५६॥ इदानीं त्वस्यैव एकार्थिकान्यभिधित्सुराह—

वृत्तिः स्कन्ध-क्षेपः ॥ ४२ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[४५], चूलिकासूत्र-[२] अनुयोगद्वार मूलं एवं हेमचन्द्रसूरि-रचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [५७] + गाथा ॥१॥

दीप अनुक्रम [६३-६५]

तस्स णं इमे एगट्ठिया णाणाघोसा णाणावंजणा नामधेज्जा भवंति, तंजहा–गण काए अ निकाए खंधे वग्गे तहेव रासी अ। पुंजे पिंडे निगरे संघाए आउल समूहे ॥ १ ॥ (५) से तं खंधे (सू० ५७)

गतार्थम्। 'गण काए'गाहेति, व्याख्या–मल्लादिगणवद्गणः, पृथिवीकायादिवत् कायः, षड्जीवनिकायवन्निकायः, व्यादिपरमाणुस्कन्धवत् स्कन्धः, गोवर्गवद् वर्गः, शालिधान्यादिराशिवद् राशिः, विप्रकीर्णपुञ्जीकृतधान्यादिपुञ्जवत् पुञ्जः, गुडादिपिण्डवत् पिण्डः, हिरण्यद्रव्यादिनिकरवन्निकरः, तीर्थादिषु सम्मीलितजनसङ्घातवत् सङ्घातः, राजगृहाङ्गणजनाकुलवदाकुलः, पुरादिजनसमूहवत् समूहः, एते भावस्कन्धस्य पर्यायवाचका ध्वनय इति गाथार्थः ॥ १ ॥ 'से तमि'त्यादि निगमनम् ।[इति स्कन्धाधिकारः कथितः ॥ ५७ ॥ अथ आवश्यकषडध्ययनविवरणं कथ्यते]

आवस्सगस्स णं इमे अत्थाहिगारा भवंति, तंजहा-सावज्जजोगविरई उक्कित्तण गुणवओ अ पडिवत्ती। खलिअस्स निंदणा वणतिगिच्छ गुणधारणा चेव ॥१॥ (६)(सू०५८)

आह—नन्वावश्यके किमिति षडध्ययनानि?, अत्रोच्यते, षडर्थाधिकारयोगात्, के पुनस्ते इत्याशङ्क्य तदुपदर्शनार्थमाह—'आवस्सगस्स णमि'त्यादि, आवश्यकस्य 'एते' वक्ष्यमाणा अर्थाधिकारा भवन्ति, तद्यथा—'सा-

अनु- ८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र आवश्यकस्य षड् अर्थाधिकाराः वर्णयते

वज्जजोग'गाहा, व्याख्या–प्रथमे सामायिकलक्षणे अध्ययने प्राणातिपातादिसर्वसावद्ययोगविरतिरर्थाधिकारः, 'उक्कित्तण'त्ति द्वितीये चतुर्विंशतिस्तवाध्ययने प्रधानकर्मक्षयकारणत्वाल्लब्धबोधिविशुद्धिहेतुत्वात् पुनर्बोधिलाभफलत्वात् सावद्ययोगविरत्युपदेशकत्वेनोपकारित्वाच्च तीर्थङ्कराणां गुणोत्कीर्तनार्थाधिकारः, 'गुणवओ य पडिवत्ति'त्ति गुणा–मूलोत्तरगुणरूपा व्रतपिण्डविशुद्ध्यादयो विद्यन्ते यस्य स गुणवाँस्तस्य प्रतिपत्तिः–वन्दनादिका कर्तव्येति तृतीये वन्दनाध्ययनेऽर्थाधिकारः, चशब्दात् पुष्टालम्बनेऽगुणवतोऽपि प्रतिपत्तिः कर्तव्येति द्रष्टव्यम्, उक्तं च—"परियाय परिस पुरिसं खेत्तं कालं च आगमं नाउं । कारणजाए जाए जहारिहं जस्स जं जोगं ॥ १ ॥" 'खलियस्स निंदण'त्ति स्खलितस्य–मूलोत्तरगुणेषु प्रमादाचीर्णस्य प्रत्यागतसंवेगस्य जन्तोर्विशुद्ध्यमानाध्यवसायस्याकार्यमिदमिति भावयतो निन्दा प्रतिक्रमणेऽर्थाधिकारः, 'वणतिगिच्छ'त्ति व्रणचिकित्सा कायोत्सर्गाध्ययनेऽर्थाधिकारः, इदमुक्तं भवति–चारित्रपुरुषस्य योऽयमतिचाररूपो भावव्रणस्तस्य दशविधप्रायश्चित्तभेषजेन कायोत्सर्गाध्ययने चिकित्सा प्रतिपाद्यते, 'गुणधारणा चेव'त्ति गुणधारणा प्रत्याख्यानाध्ययने अर्थाधिकारः, अयमत्र भावार्थः–मूलगुणोत्तरगुणप्रतिपत्तिस्तस्याश्च निरतिचारं सन्धारणं यथा भवति तथा प्रत्याख्यानाध्ययने प्ररूपणा करिष्यते, चशब्दादन्येऽप्यवान्तरार्थाधिकारा विज्ञेयाः, एवकारोऽवधारण इति गाथार्थः ॥ १ ॥ तदेवं यदादौ प्रतिज्ञातम् 'आवश्यकं निक्षेप्स्यामी'त्यादि, तत्रावश्यक-

१ पर्यायं पर्षदं पुरुषं क्षेत्रं कालं चागमं च ज्ञात्वा । कारणजाते जाते यथार्हं यस्य यद्योग्यम् ॥ १ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [५८] + गाथा ॥१॥

दीप अनुक्रम [६८-६९]

श्रुतस्कन्धलक्षणानि त्रीणि पदानि निक्षिप्तानि, साम्प्रतं त्वध्ययनपदमवसरायातमपि न निक्षिप्यते, वक्ष्यमाणनिक्षेपानुयोगद्वार ओघनिष्पन्ननिक्षेपे तस्य निक्षेप्स्यमानत्वाद्, अत्रापि भणने च ग्रन्थगौरवापत्तेरिति ॥ ५८ ॥ इदानीमावश्यकस्य यद्व्याख्यातं तच्च (यच्च) व्याख्येयं तदुपदर्शयन्नाह—

आवस्सयस्स एसो पिंडत्थो वण्णिओ समासेणं । एत्तो एक्केक्कं पुण अज्झयणं कित्तइस्सामि ॥ १ ॥ (७) तंजहा-सामाइअं चउवीसत्थओ वंदणयं पडिक्कमणं काउस्सग्गो पच्चक्खाणं। तत्थ पढमं अज्झयणं सामाइयं, तस्स णं इमे चत्तारि अणुओगदारा भवंति, तंजहा-उवक्कमे १ निक्खेवे २ अणुगमे ३ नए ४ (सू ५९)

व्याख्या—'आवश्यकस्य' आवश्यकपदाभिधेयस्य शास्त्रस्य 'एषः' पूर्वोक्तप्रकारः 'पिण्डार्थः' समुदायार्थो 'वर्णितः' कथितः 'समासेन' संक्षेपेण, इदमत्र हृदयम्–आवश्यकश्रुतस्कन्ध इति शास्त्रनाम पूर्वं व्याख्यातं, तच्च सान्वर्थं, ततश्च यथा सान्वर्थादाचारादिनामत एव तद्वाच्यशास्त्रस्य चारित्राद्याचारोऽत्राभिधास्यत इत्यादिलक्षणः समुदायार्थः प्रतिपादितो भवति, एवमत्राप्यावश्यकश्रुतस्कन्ध इति सान्वर्थनामकथनादेवावश्यं करणीयं सावद्ययोगविरत्यादिकं वस्त्वत्राभिधास्यत इति समुदायार्थः प्रतिपादितो भवति, अत ऊर्ध्वं पुनरेकैकमध्ययनं 'कीर्तयिष्यामि' भणिष्यामीति गाथार्थः ॥ १ ॥ तत्कीर्तनार्थमेवाऽऽह–तद्यथा–

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सामायिकं चतुर्विंशतिस्तवो वन्दनं प्रतिक्रमणं कायोत्सर्गः प्रत्याख्यानम् । 'तत्र' तेषु अनन्तरोद्दिष्टेषु षट्सु अध्ययनेषु मध्ये 'प्रथमम्' आद्यमध्ययनं सामायिकम्, आद्युपन्यासश्चास्य निःशेषचरणादिगुणाधारत्वेन प्रधानमुक्तिकारणत्वात्, उक्तं च—"सामायिकं गुणानामाधारः खमिव सर्वभावानाम् । न हि सामायिकहीनाश्चरणादिगुणान्विता येन ॥ १ ॥ तस्माज्जगाद भगवान् सामायिकमेव निरुपमोपायम् । शारीरमानसानेकदुःखनाशस्य मोक्षस्य ॥ २ ॥" तत्र बोधादेरधिकमयनं–प्रापणमध्ययनं प्रपञ्चतो वक्ष्यमाणशब्दार्थं, 'सामायिक'मित्यत्र यः सर्वभूतान्यात्मवत् पश्यति स रागद्वेषवियुक्तः समः तस्याऽऽयः–प्रतिक्षणं ज्ञानादिगुणोत्कर्षप्राप्तिः समायः, समो हि प्रतिक्षणमपूर्वैः ज्ञानदर्शनचरणपर्यायैर्भवाटवीभ्रमणहेतुसंक्लेशविच्छेदकैर्निरुपमसुखहेतुभिः संयुज्यते, समायः प्रयोजनमस्याध्ययनस्य ज्ञानक्रियासमुदायरूपस्येति सामायिकं, समाय एव सामायिकं, तस्य सामायिकस्य, 'ण'मिति वाक्यालङ्कारे, 'इमे'त्ति अमूनि वक्ष्यमाणलक्षणानि चत्वार्यनुयोगद्वाराणि भवन्ति, तत्राध्ययनार्थकथनविधिरनुयोगः, द्वाराणीव द्वाराणि महापुरस्येव सामायिकस्यानुयोगार्थं–व्याख्यानार्थं द्वाराण्यनुयोगद्वाराणि, अत्र नगरदृष्टान्तं वर्णयन्त्याचार्याः, यथा हि अकृतद्वारं नगरमनगरमेव भवति, निर्गमप्रवेशोपायाभावतोऽनधिगमनीयत्वात्, कृतैकद्विकादिद्वारमपि दुरधिगमं कार्यातिपत्तये च भवति, चतुर्मूलद्वारं तु प्रतिद्वारानुगतं सुखाधिगमं कार्यानतिपत्तये च संपद्यते, एवं सामायिकपुरमप्यर्थाधिगमोपायद्वारशून्यमशक्याधिगमं स्याद्, एकादिद्वारानुगतमपि दुरधिगमं भवेत्, सप्रभेदचतुर्द्वा-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रानुगतं तु सुखाधिगमं भवति, अतः फलवाँस्तदधिगमार्थो द्वारोपन्यासः । कानि पुनस्तानीति तद्दर्शनार्थमाह—'तद्यथे'त्यादि, तत्रोपक्रमणं–दूरस्थस्य वस्तुनस्तैः तैः प्रतिपादनप्रकारैः समीपमानीय निक्षेपयोग्यताकरणमुपक्रमः, उपक्रान्तं हि–उपक्रमान्तर्गतभेदैर्विचारितं हि निक्षिप्यते नान्यथेति भावः, उपक्रम्यते वा निक्षेपयोग्यं क्रियतेऽनेन गुरुवाग्योगेनेत्युपक्रमः, अथवा उपक्रम्यते अस्मिन् शिष्यश्रवणभावे सतीत्युपक्रमः, अथवा उपक्रम्यते अस्माद्विनीतविनेयविनयादित्युपक्रमः, विनयेनाराधितो हि गुरुर्निक्षेपयोग्यं शास्त्रं करोतीति भावः, तदेवं करणाधिकरणापादानकारकैर्गुरुवाग्योगादयोऽर्था भेदेनोक्ताः, यदि त्वेकोऽप्यन्यतरोऽर्थः करणादिकारकवाच्यत्वेन विवक्ष्यते तथापि न दोषः । एवं निक्षेपणं–शास्त्रादेर्नामस्थापनादिभेदैर्न्यसनं–व्यवस्थापनं निक्षेपः, निक्षिप्यते–नामादिभेदैर्व्यवस्थाप्यते अनेनास्मिन्नस्मादिति वा निक्षेपः, वाच्यार्थविवक्षा तथैव । एवमनुगमनं–सूत्रस्यानुकूलमर्थकथनमनुगमः, अथवा अनुगम्यते–व्याख्यायते सूत्रमनेनास्मिन्नस्मादिति वाऽनुगमः, वाच्यार्थविवक्षा तथैव । एवं नयनं नयो नीयते–परिच्छिद्यते अनेनास्मिन्नस्मादिति वा नयः, सर्वत्रानन्तधर्माध्यासिते वस्तुन्येकांशग्राहको बोध इत्यर्थः । अत्र चोपक्रान्तमेव निक्षेपयोग्यतामानीतमेव निक्षिप्यत इत्युपक्रमानन्तरं निक्षेप उपन्यस्तः, नामादिभेदैर्निक्षिप्तमेव चानुगम्यत इति निक्षेपानन्तरमनुगमः, अनुगम्यमानमेव च नयैर्विचार्यते नान्यथेति तदनन्तरं नय इति यथोक्तक्रमेणोपन्यासः फलवानिति ॥ ५९ ॥ तत्रोपक्रमो द्विधा, शास्त्रीय इतरश्च–लोकप्रसिद्धः, तत्रेतराभिधित्सया प्राह—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [६०]

दीप अनुक्रम [७०]

से किं तं उवक्कमे ?, २ छव्विहे पण्णत्ते, तंजहा–णामोवक्कमे ठवणोवक्कमे दव्वोवक्कमे खेत्तोवक्कमे कालोवक्कमे भावोवक्कमे, नामठवणाओ गयाओ, से किं तं दव्वोवक्कमे ?, २ दुविहे पण्णत्ते, तंजहा–आगमओ अ नोआगमओ अ, जाव जाणगसरीरभविअसरीरवइरित्ते दव्वोवक्कमे तिविहे पण्णत्ते, तंजहा–सचित्ते अचित्ते मीसए (सू० ६०)

'उवक्कमे छव्विहे पण्णत्ते'इत्यादि, अत्र क्वचिदेवं दृश्यते—'उवक्कमे दुविहे पण्णत्ते'इत्यादि, अयं च पाठ आधुनिकोऽयुक्तश्च, 'अहवा उवक्कमे छव्विहे पण्णत्ते' इत्यादिवक्ष्यमाणग्रन्थोपन्यासस्याघटमानताप्रसङ्गात्, यदि शास्त्रीयोपक्रमोऽत्र प्रतिज्ञातः स्यात्तदा वक्ष्यमाणसूत्रमेवं स्यात्—'से किं तं सत्थोवक्कमे ?, सत्थोवक्कमे छव्विहे पण्णत्ते' इत्यादि, न चैवं, तस्मान्नेह सूत्रे द्वैविध्यप्रतिज्ञा, किन्त्वितरोपक्रमभणनं चेतसि विकल्प्य यथानिर्दिष्टमेव सूत्रमुक्तमित्यलं विस्तरेण, प्रकृतं प्रस्तुमः–तत्र नामस्थापनोपक्रमव्याख्या नामस्थापनावश्यकव्याख्यानुसारेण कर्तव्या, द्रव्योपक्रमव्याख्याऽपि द्रव्यावश्यकवदेव यावत् 'से किं तं जाणयसरीरभविअसरीरवइरित्ते दव्वोवक्कमे?' इत्यादि, तत्र द्रव्यस्य-नटादेरुपक्रमणं-कालान्तरभाविनापि पर्यायेण सहेदानीमेवोपायविशेषतः संयोजनं द्रव्योपक्रमः अथवा द्रव्येण-घृतादिना द्रव्ये-भूम्यादौ द्रव्यतः–घृतादेरेवोपक्रमो द्रव्योपक्रम इत्यादिकारकयोजना विवक्षया कर्तव्येति । स च त्रिविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा–सचित्तद्रव्यविषयः सचित्तः, अचित्तद्रव्यविषयोऽचित्तः, मिश्रद्रव्यविषयस्तु मिश्रः, द्रव्योपक्रम इति वर्तते ॥ ६० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अथ 'उपक्रम'स्य नामादि षड् निक्षेपाः वर्णयते

से किं तं सचित्ते दव्वोवक्कमे ?, २ तिविहे पण्णत्ते, तंजहा–दुपए चउप्पए अपए, एक्किके पुण दुविहे पण्णत्ते, तंजहा–परिक्कमे अ वत्थुविणासे अ (सू० ६१)

तत्र सचित्तद्रव्योपक्रमस्त्रिविधः, तद्यथा–द्विपदानां–नटनर्तकादीनां चतुष्पदानाम्–अश्वहस्त्यादीनाम्, अपदानाम्–आम्रादीनां, तत्रैकैकः पुनरपि द्विधा–परिकर्मणि वस्तुविनाशे च, तत्रावस्थितस्यैव वस्तुनो गुणविशेषाधानं परिकर्म, तत्र परिकर्मणि परिकर्मविषयो द्रव्योपक्रमः, यदा तु वस्तुनो विनाश एवोपायविशेषैरुपक्रम्यते तदा वस्तुनाशविषयो द्रव्योपक्रमः, तत्र द्विपदानां नटनर्तकादीनां घृताद्युपयोगेन (यद्) बलवर्णादिकरणं कर्णस्कन्धवर्धनादिक्रिया वा स परिकर्मणि सचित्तद्रव्योपक्रमः ॥ ६१ ॥ द्विविधमप्येतमुपक्रमं बिभणिषुराह—

से किं तं दुपए उवक्कमे ?, २ नडाणं नट्टाणं जल्लाणं मल्लाणं मुट्ठियाणं वेलंबगाणं कहगाणं पवगाणं लासगाणं आइक्खगाणं लंखाणं मंखाणं तूणइल्लाणं तुंबवीणियाणं कावोयाणं[1] मागहाणं, से तं दुपए उवक्कमे (सू० ६२)

१ कावडिआणं प्र.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र निर्वचनम्—'दुपयाणं नडाण'मित्यादि, तत्र नाटकानां नाटयितारो नटास्तेषां, 'नट्टाणं'ति नृत्यविधायिनो नर्तकास्तेषां, 'जल्लाणं'ति जल्ला–वरत्राखेलकास्तेषां, राजस्तोत्रपाठकानामित्यन्ये, 'मल्लाणं'ति मल्लाः–प्रतीतास्तेषां, 'मुट्ठियाणं'ति मौष्टिका ये मुष्टिभिः प्रहरन्ति मल्लविशेषा एव तेषां, 'वेलंबगाणं'ति विडम्बका–विदूषका नानावेषादिकारिण इत्यर्थः तेषां, 'कहगाणं'ति कथकानां–प्रतीतानां 'पवगाणं'ति प्लवका ये उत्प्लवन्ते–गर्तादिकं झम्पाभिर्लङ्घयन्ति नद्यादिकं वा तरन्ति तेषां 'लासगाणं'ति लासका ये रासकान् गायन्ति तेषां, जयशब्दप्रयोक्तॄणां वा भाण्डानामित्यर्थः, 'आइक्खगाणं'ति ये शुभाशुभमाख्यान्ति ते आख्यायकास्तेषां, 'लंखाणं'ति ये महावंशाग्रमारोहन्ति ते लङ्घास्तेषां, 'मंखाणं'ति ये चित्रपटादिहस्ता भिक्षां चरन्ति ते मङ्खास्तेषां, 'तूणइल्लाणं'ति तूणाभिधानवाद्यविशेषवतां, 'तुंबवीणियाणं'ति वीणावादकानां, 'कावोयाणं'ति कावडिवाहकानां, 'मागहाणं'ति मङ्गलपाठकानाम्, एषां सर्वेषामपि यद् घृताद्युपयोगेन बलवर्णादिकरणं वर्णस्कन्धवर्द्धनादिक्रिया वा स परिकर्मणि सचित्तद्रव्योपक्रमः, यस्तु खड्गादिभिरेषां नाश एवोपक्रम्यते–संपाद्यते स वस्तुनाशे सचित्तद्रव्योपक्रम इति वाक्यशेषः । अन्ये तु शास्त्रगन्धर्वनृत्यादिकलासम्पादनमपि परिकर्मणि द्रव्योपक्रम इति व्याचक्षते, एतच्चायुक्तं, विज्ञानविशेषात्मकत्वात् शास्त्रादिपरिज्ञानस्य, तस्य च भावत्वादिति, अथवा यद्यात्मद्रव्यसंस्कारमात्रापेक्षया शरीरवर्णादिकरणवदित्थमुच्यते तर्ह्येतदप्यदुष्टमेवेति । 'से त'मित्यादि निगमनम् ॥ ६२ ॥ अथ चतुष्पदानां द्विविधमप्युपक्रमं बिभणिषुराह—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [६३]

दीप अनुक्रम [७३]

से किं तं चउप्पए उवक्कमे?, २ चउप्पयाणं आसाणं हत्थीणं इच्चाइ, से तं चउप्पए उवक्कमे (सू० ६३)

अत्र निर्वचनम्—'चउप्पयाणं आसाणं हत्थीण'मित्यादि, अश्वादयः प्रतीता एव, तेषां शिक्षागुणविशेषकरणं परिकर्मणि खड्गादिभिस्त्वेषां नाशोपक्रमणं वस्तुनाशे, सचित्तद्रव्योपक्रम इतीहापि वाक्यशेषः। 'से त'मित्यादि निगमनम् ॥ ६३ ॥ अथापदानां द्विविधमप्युपक्रमं बिभणिषुराह—

से किं तं अपए उवक्कमे?, २ अपयाणं अंबाणं अंबाडगाणं इच्चाइ, से तं अपओवक्कमे, से तं सचित्तदव्वोवक्कमे (सू० ६४)

अत्र निर्वचनम्—'अपयाणं अंबाणं अंबाडगाणमि'त्यादि, इहाऽऽम्रादयो देशप्रतीता एव, नवरं 'चाराणं'ति येषु चारकुलिका उत्पद्यन्ते ते चारवृक्षाः, आम्रादिशब्दैश्च वृक्षास्तत्फलानि वा गृह्यन्ते, तत्र वृक्षाणां वृक्षायुर्वेदोपदेशाद्वार्द्धक्यादिगुणापादनं तत्फलानां तु गर्तप्रक्षेपकोद्रवपलालस्थगनादिना आश्वेव पाकादिकरणं परिकर्मणि शस्त्रादिभिस्तु मूलत एव विनाशनं वस्तुनाशे, सचित्तद्रव्योपक्रम इत्यत्रापि वाक्यशेषः। 'से त'मित्यादि निगमनद्वयम् ॥ ६४ ॥ अथाचित्तद्रव्योपक्रमं विवक्षुराह—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [६५]

दीप अनुक्रम [७५]

से किं तं अचित्तदव्वोवक्कमे?, २ खंडाईणं गुडाईणं मच्छंडीणं, से तं अचित्तदव्वोवक्कमे (सू० ६५)

'अचित्तदव्वोवक्कमे'इत्यादि, खण्डादयः–प्रतीता एव, नवरं 'मच्छंडी' खण्डशर्करा एतेषां खण्डाद्यचित्तद्रव्याणामुपायविशेषतो माधुर्यादिगुणविशेषकरणं परिकर्मणि सर्वथा विनाशकरणं वस्तुनाशे, अचित्तद्रव्योपक्रम इत्यत्रापि वाक्यशेषः। 'से त'मित्यादि निगमनम् ॥ ६५ ॥ अथ मिश्रद्रव्योपक्रममाह—

से किं तं मीसए दव्वोवक्कमे?, २ से चेव थासगआयंसगाइमंडिए आसाइ, से तं मीसए दव्वोवक्कमे, से तं जाणयसरीरभविअसरीरवइरित्ते दव्वोवक्कमे, से तं नोआगमओ दव्वोवक्कमे, से तं दव्वोवक्कमे (सू० ६६)

स्थासकोऽश्वाभरणविशेषः, आदर्शस्तु वृषभादिग्रीवाभरणं, आदिशब्दात् कुङ्कुमादिपरिग्रहः। ततश्च तेषामश्वादीनामेडकान्तानां कुङ्कुमादिभिर्मण्डितानां स्थासकादिभिस्तु विभूषितानां यच्छिक्षादिगुणविशेषकरणं खड्गादिभिर्विनाशो वा स मिश्रद्रव्योपक्रम इति शेषः। अश्वादीनां सचेतनत्वात् स्थासकादीनामचेतनत्वात् मिश्रद्रव्यत्वमिह भावनीयम्। अत्र च संक्षिप्ततरा अपि वाचनाविशेषा दृश्यन्ते, तेऽप्युक्तानुसारेण भावनीयाः। 'से त'मित्यादि निगमनचतुष्टयम्। उक्तो द्रव्योपक्रमः ॥ ६६ ॥ इतः क्षेत्रोपक्रममभिधित्सुराह—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [६७]

दीप अनुक्रम [७७]

से किं तं खेत्तोवक्कमे ?, २ जण्णं हलकुलिआईहिं खेत्ताइं उवक्कमिज्जंति, से तं खेत्तोवक्कमे (सू० ६७)

क्षेत्रस्योपक्रमः–परिकर्मविनाशकरणं क्षेत्रोपक्रमः, स क इत्याह—'खेत्तोवक्कमे जं णं हलकुलिआईहिं खेत्ताइं उवक्कमिज्जंति'त्ति तत्र हलं–प्रतीतम्, अधोनिबद्धतिर्यक्तीक्ष्णलोहपट्टिकं, 'कुलिकं' लघुतरं काष्ठं तृणादिच्छेदार्थं यत् क्षेत्रे वाह्यते तत् मरुमण्डलादिप्रसिद्धं कुलिकमुच्यते, ततश्च यदत्र हलकुलिकादिभिः क्षेत्राण्युपक्रम्यन्ते–बीजवपनादियोग्यतामानीयन्ते स परिकर्मणि क्षेत्रोपक्रमः, आदिशब्दाद्गजेन्द्रबन्धनादिभिः क्षेत्राण्युपक्रम्यन्ते–विनाश्यन्ते स वस्तुनाशे क्षेत्रोपक्रमः, गजेन्द्रमूत्रपुरीषादिदग्धेषुहि क्षेत्रेषु बीजानामप्ररोहणाद् विनष्टानि क्षेत्राणि इति व्यपदिश्यन्ते। आह–यद्येवं क्षेत्रगतपृथिव्यादिद्रव्याणामेव एतौ परिकर्मविनाशौ, इत्थं च द्रव्योपक्रम एवायं, कथं क्षेत्रोपक्रम ? इति, सत्यं, किन्तु क्षेत्रमाकाशं तस्य चामूर्तत्वात् मुख्यतयोपक्रमो न संभवति, किन्तु तदाधेयद्रव्याणां पृथिव्यादीनां य उपक्रमः स क्षेत्रेऽपि उपचर्यते, दृश्यते च आधेयधर्मोपचार आधारे, यथा मञ्चाः क्रोशन्ति, उक्तं च—"खित्तमरूवं निच्चं न तस्स परिकम्मणं न य विणासो। आहेयगयवसेण उ करणविणासोवयारोऽत्थ ॥ १ ॥" इत्यादि, 'से त'मित्यादि निगमनम् ॥ ६७ ॥ इदानीं कालोपक्रमः, तत्र कालो द्रव्यपर्याय एव, द्रव्यपर्यायौ च मेचकमणिवत् संवलितरूपाविति द्रव्यो-

१ क्षेत्रमरूपं नित्यं न तस्य परिकर्म न च विनाशः। आधेयगतवशेनैव करणविनाशोपचारोऽत्र ॥ १ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पक्रमाभिधाने कालोपक्रम उक्त एव भवति, अथवा 'समयावलियमुहुत्ते'इत्यादिरूपस्य कालस्य स्वतन्त्रमेवोपक्रममभिधित्सुराह सूत्रकारः—

से किं तं कालोवक्कमे ?, २ जं णं नालिआईहिं कालस्सोवक्कमणं कीरइ, से तं कालोवक्कमे (सू० ६८)

कालस्योपक्रमः कालोपक्रमः, स क इत्याह—'जं णं नालिआईहिं कालस्स उवक्कमणं' णमिति वाक्यालङ्कारे, यदिह नालिकादिभिरादिशब्दात् शङ्कुच्छायानक्षत्रचारादिपरिग्रहस्तैः काल उपक्रम्यते, स कालोपक्रम इति शेषः, तत्र नालिका–ताम्रादिमयघटिका तया, शङ्कुच्छायादिना वा नक्षत्रचारादिना वा एतावत्पौरुष्यादिकालोऽतिक्रान्त इति यत् परिज्ञानं भवति स परिकर्मणि कालोपक्रमः, यथावत् परिज्ञानमेव हि तस्येह परिकर्म, यत्तु नक्षत्रादिचारैः कालस्य विनाशनं स वस्तुनाशे कालोपक्रमः, तथाहि–अनेन ग्रहनक्षत्रादिचारेण विनाशित कालो, न भविष्यन्त्यधुना धान्यादिसम्पत्तय इति वक्तारो भवन्ति, उक्तं च पूज्यैः—"छायाएँ नालियाए व परिकम्मं से जहत्थविन्नाणं । रिक्खाइयचारेहि य तस्स विणासो विवज्जासो ॥ १ ॥" इत्यादि, 'से त'मित्यादि निगमनम् ॥ ६८ ॥ अथ भावोपक्रमार्थमाह—

से किं तं भावोवक्कमे ?, २ दुविहे पण्णत्ते, तंजहा–आगमओ अ नोआगमओ अ,

१ छायया नालिकया वा परिकर्म तस्य यथार्थविज्ञानम् । ऋक्षादिकचारैश्च तस्य विनाशो विपर्यासः ॥ १ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [६९]

दीप अनुक्रम [७९]

आगमओ जाणए उवउत्ते, नोआगमओ दुविहे पण्णत्ते, तंजहा–पसत्थे अ अपसत्थे अ, तत्थ अपसत्थे डोडिणिगणिआअमच्चाईणं पसत्थे गुरुमाईणं, से तं नोआगमओ भावोवक्कमे, से तं भावोवक्कमे, से तं उवक्कमे (सू० ६९)

भावोपक्रमो द्विविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा–आगमतश्च नोआगमतश्च, तत्रोपक्रमशब्दार्थज्ञः तत्रोपयुक्तश्चागमतो भावोपक्रमः, 'से किं तं नोआगमओ'इत्यादि, अत्रोत्तरम्—'नोआगमओ भावोवक्कमे दुविहे'इत्यादि, इहाभिप्रायाख्यो जीवद्रव्यपर्यायो भावशब्देनाभिप्रेतः, उक्तं च—"भावाभिख्याः पञ्च स्वभावसत्तात्मयोन्यभिप्रायाः" ततश्च भावस्य परकीयाभिप्रायस्योपक्रमणं-यथावत् परिज्ञानं भावोपक्रमः, स च द्विविधः–प्रशस्तोऽप्रशस्तश्चेति, तत्राप्रशस्ताभिधित्सया आह—'से किं त'मित्यादि । अत्र निर्वचनम्—'अप्पसत्थे डोडिणिगणिआअमच्चाईणं'ति इदमिह तात्पर्यम्–ब्राह्मण्या वेश्यया अमात्येन च यत् परकीयभावस्य यथावत् परिज्ञानलक्षणमुपक्रमणं कृतं सोऽप्रशस्तभावोपक्रमः, संसारफलत्वात्, तत्र कथं ब्राह्मण्यादिभिः परभावोपक्रमणमकारीति ?, अत्रोच्यते, एकस्या ब्राह्मण्यास्तिस्रः पुत्रिकाः, तासां च परिणयनानन्तरं तथा करोमि यथैताः सुखिता भवन्तीति विचिन्त्य माता ज्येष्ठदुहितरं प्रत्यवोचत्–यदुत त्वयाऽऽवासभवनसमागमे स्वभर्ता

१ प्रश्नोत्तरलेखमूलकादर्शानुसारेण वृत्तिरत्र.

अनु. १

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कश्चिदपराधमुद्भाव्य मूर्ध्नि पादप्रहारेण हन्तव्यो, हतश्च यदनुतिष्ठति तन्ममाऽऽख्येयं, कृतं च तया तथैव, सोऽप्यतिस्नेहतरलितमना अयि प्रियतमे! पीडितस्ते सुकुमालश्चरणो भविष्यतीत्यभिधानपूर्वकं तस्याश्चरणोपमर्दनं चकार, असुं च व्यतिकरं सा मात्रे निवेदितवती, साऽप्युपक्रान्तजामातृभावा हृष्टा दुहितरं प्रत्यवादीत्–पुत्रिके! यद् रोचते तत् स्वदीयगृहे कुरु त्वं, न तवावचनकरो भर्ता भविष्यतीति। द्वितीयाऽपि तथैव शिक्षिता, तयाऽपि च तथैव स्वभर्ता शिरसि प्रहतः, केवलमसौ नैतच्छिष्टानां युज्यत इत्यादि किञ्चित् कोपं कृत्वा निवर्तितः, असुं च व्यतिकरं सा मात्रे निवेदितवती, हृष्टा पुत्रीं प्रत्यवादीत्–पुत्रिके! त्वद्भर्ता क्षणमेकं रुषित्वा[1] स्थास्यति। एवं च तृतीययाऽपि प्रहतः, केवलमसुना समुच्छलदतुच्छकोपेन उक्तम्–कुलीना त्वं?, यैवं शिष्टजनानुचितं चेष्टसे इत्याद्यभिधाय गाढं कुट्टयित्वा गृहान्निष्काशिता, तया चाऽऽगत्य सर्वं मात्रे निवेदितं, तयाऽपि विज्ञातजामातृभावया गत्वा तत्समीपे वत्स! कुलस्थितिरस्माकमियं यदुत प्रथमसमागमे वध्वा वरस्येत्थं कर्तव्यमित्यादि किञ्चिदभिधाय कथमप्यनुनयितोऽसौ, दुहिता च प्रोक्ता–वत्से! दुराराधस्ते भर्ता भविष्यति, परमदेवतावदप्रमत्तया समाराधनीय इति॥ तथैकस्मिन्नगरे चतुःषष्टिविज्ञानसहिता गणिका, तया च पराभिप्रायपरिज्ञानार्थं रतिभवनभित्तिषु स्वस्वव्यापारं कुर्वत्यः सर्वा अपि राजपुत्रादिजातयश्चित्रकर्मणि लेखिताः, तत्र च यः कश्चिद् राजपुत्रादिरागच्छति स तत्रैव कृताभ्यासतया स्वकीयस्वकीयव्यापारमेव

१ क्षणमेकं क्षषित्वा उपरतः, तस्मिँश्च तया मातुर्निवेदिते मात्रा प्रोक्तम्–वत्से! त्वमपि यथेष्टं त्वद्गृहे विजृम्भस्व, केवलं (इति पा.) २ नूनं प्र.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बाढं प्रशंसति, ततोऽसौ विलासिनी राजपुत्रादीनामन्यतरत्वेन तं विनिश्चित्य यथौचित्येनोपचरति, आनुकूल्येनोपचरिताश्च भुजङ्गाः प्रचुरतरमर्थजातं तस्यै प्रयच्छन्तीति ॥ तथैकस्मिन्नगरे कश्चिद्राजा अमात्येन सहाश्ववाहनिकायां निर्गतः, तत्र च पथि गच्छता राजतुरङ्गमेन कुत्रचित् खिलप्रदेशे प्रश्रवणमकारि, तच्च तत्प्रदेशे पृथिव्याः स्थिरत्वेन बद्धच्छिल्लरकं चिरेणाप्यशुष्कं व्यावर्तमानो राजा तथैव व्यवस्थितमद्राक्षीत्, चिरावस्थायिजलं शोभनमत्र प्रदेशे तडागं भवतीति चिन्तयँश्चिरमवलोकितवाँश्च, तदिङ्गिताकारपरिज्ञानकुशलतया चामात्येन राज्ञाऽभणितेनापि विदिततदभिप्रायेण खानितं तत्र प्रदेशे महासरः, तत्पाल्यां च रोपिताः सर्वर्तुकपुष्पफलसमृद्धयो नानाजातीयतरुनिवहाः, अन्यदा च तेनैव प्रदेशेन गच्छता भूपेन दृष्टं, पृष्टं चाहो! मानससरोवद्रमणीयकं केनेदं खानितम्?, अमात्यो जगाद–भवद्भिरेव, राजा सविस्मयं प्राह–कदा कश्च मयैतत्करणाय निरूपित इति, अतः सचिवो यथावृत्तं सर्वं कथितवान्, अहो! परचित्तोपलक्षकत्वममात्यस्येति विचिन्त्य परितुष्टो राजा तस्य वृत्तिं वर्द्धयामासेति ॥ तदेवमित्या(वमा)दिकः संसारफलोऽपरोऽप्यप्रशस्तभावोपक्रमः । अथ प्रशस्तभावोपक्रममाह—'पसत्थो गुरुमाईणं'ति, तत्र श्रुतादिनिमित्तं गुर्वादीनां यद्भावोपक्रमणं स प्रशस्तभावोपक्रमः । आह–नन्वनुयोगद्वारविचारोऽत्र प्रक्रान्तः, अनुयोगश्च व्याख्यानम्, ततश्च यदेव तदुपकारि किञ्चित् तदेव वक्तव्यं भवति, गुरुभावोपक्रमस्त्वप्रस्तुतो, व्याख्यानानुपकारित्वात्, तदेतदयुक्तं, गुरुभावोपक्रमस्यैव मुख्यव्याख्याङ्गत्वात्, उक्तं च—"गुर्वायत्ता यस्माच्छास्त्रारम्भा भवन्ति सर्वे-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ऽपि। तस्माद् गुर्वाराधनपरेण हितकाङ्क्षिणा भाव्यम् ॥ १ ॥" अन्यच्च–"जुत्तं गुरुमणगहणं नाऊण तयं जहट्ठियं तत्तो। जह होइ सुप्पसन्नं तह जइयव्वं गुणत्थीहिं ॥ १ ॥ गुरुचित्तायत्ताइं वक्खाणंगाइ जेण सव्वाइं। तेण जह सुप्पसन्नं होइ तयं तं तहा कुज्जा ॥ २ ॥ आगारिंगियकुसलं जइ सेयं वायसं वए पुज्जा। तह वि य से नवि कूडे विरहम्मि य कारणं पुच्छे ॥ ३ ॥ निवपुच्छिएण भणिओ गुरुणा गंगा कओमुही वहई?। संपाइयवं सीसो जह तह सव्वत्थ कायव्वं ॥ ४ ॥" इत्यादि। भवत्वेवं तर्हि भावोपक्रमस्य सार्थकत्वं, शेषास्तु नामस्थापनाद्रव्यादयुपक्रमा अनर्थका एव, नैतदेवं, यतो गुरोस्तथाविधप्रयोजनोत्पत्तौ तच्चित्तप्रसादनार्थमेवाशनपानवस्त्रपात्रौषधादि द्रव्यं व्याख्यास्थानादि क्षेत्रं प्रव्रज्यालग्नादिकालमुपक्रमतो विनेयस्य द्रव्यक्षेत्रकालोपक्रमा अपि सार्थका एव, नामस्थापनोपक्रमौ तु प्रकृतानुपयोगित्वेऽप्युपक्रमसाम्यादत्रोक्तौ, अथवा सर्वेऽप्यमी प्रकृतानुपयोगिनोऽप्यन्यत्रोपयोक्ष्यन्ते उपक्रमसाम्याच्चात्रोक्ता इत्यदोषः ॥ ६९ ॥ तदेवं लौकिकोपक्रमप्रकारेणोक्त उपक्रमः, साम्प्रतं तु तमेव शास्त्रीयोपक्रमलक्षणेन प्रकारान्तरेणाभिधित्सुराह—

१ युक्तं गुरुमनोग्रहणं ज्ञात्वा तकत् यथास्थितं ततः। यथा भवति सुप्रसन्नं तथा यतितव्यं गुणार्थिभिः ॥ १ ॥ गुरुचित्तायत्तानि व्याख्यानाङ्गानि येन सर्वाणि। तेन यथा सुप्रसन्नं भवति तकत्तत्तथा कुर्यात् ॥ २ ॥ आकारेङ्गितकुशलं यदि श्वेतं वायसं वदेयुः पूज्याः। नैव तेषां वचनं कूटयेत् विरहे च कारणं पृच्छेत् ॥ ३ ॥ नृपपृष्टेन भणितो गुरुणा गङ्गा कुतोमुखी वहति?। सम्पादितवान् शिष्यो यथा तथा सर्वत्र कर्तव्यम् ॥ ४ ॥

॥ ५० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [७०]

दीप अनुक्रम [८०]

अहवा उवक्कमे छव्विहे पण्णत्ते, तंजहा–आणुपुव्वी १ नामं २ पमाणं ३ वत्तव्वया ४ अत्थाहिगारे ५ समोआरे ६ (सू० ७०)

अथवा अनन्तरं यः प्रशस्तभावोपक्रमः उक्तः स हि द्विविधो द्रष्टव्यो–गुरुभावोपक्रमः शास्त्रभावोपक्रमश्च, शास्त्रलक्षणो भावः शास्त्रभावस्तस्योपक्रमः शास्त्रभावोपक्रमः, तत्रैकेन गुरुभावोपक्रमलक्षणेन प्रकारेणोक्तः, अथ द्वितीयेन शास्त्रभावोपक्रमलक्षणेन प्रकारान्तरेण तमभिधित्सुराह—'अहवा उवक्कमे' इत्यादि, 'अथवे'ति पक्षान्तरसूचकः, उपक्रमः प्रथमपातनापक्षे शास्त्रीयोपक्रमो द्वितीयपातनापक्षे तु शास्त्रभावोपक्रमः, 'षड्-विधः' षट्प्रकारः प्रज्ञप्तः, तद्यथा–आनुपूर्वी १ नाम २ प्रमाणं ३ वक्तव्यता ४ अर्थाधिकारः ५ समवतारः ६। एतेषां तु शब्दव्युत्पत्त्यादिस्वरूपं यथावसरं पुरस्तादेव वक्ष्यामः ॥ ७० ॥ तत्राऽऽनुपूर्वीस्वरूपनिरूपणा-र्थमाह—

से किं तं आणुपुव्वी ?, २ दसविहा पण्णत्ता, तंजहा–नामाणुपुव्वी १ ठवणाणुपुव्वी २ दव्वाणुपुव्वी ३ खेत्ताणुपुव्वी ४ कालाणुपुव्वी ५ उक्कित्तणाणुपुव्वी ६ गणणाणु-पुव्वी ७ संठाणाणुपुव्वी ८ सामाआरीआणुपुव्वी ९ भावाणुपुव्वी १० (सू० ७२)

अथ किं तदानुपूर्वीवस्त्विति प्रश्नार्थः । अत्र निर्वचनम्—'आणुपुव्वी दसविहे'त्यादि, इह हि पूर्वं प्रथ-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

***अत्र सूत्र क्रमांकने यत् (सू० ७२) मुद्रितं तत् मुद्रणदोषः, अत्र सूत्र क्रमांक ७१ एव वर्तते

उपक्रमस्य आनुपूर्वी आदि षड् भेदाः विस्तरेण वर्णयते

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[४५], चूलिकासूत्र-[२] अनुयोगद्वार मूलं एवं हेमचन्द्रसूरि-रचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [७१]

दीप अनुक्रम [८१]

अनुयो० मलधारीया ॥ ५१ ॥

ममादिरिति पर्यायाः, पूर्वस्य अनु–पश्चादनुपूर्वं, 'तस्य भाव' इति यण्प्रत्यये स्त्रियामीकारे चानुपूर्वी अनुक्रमोऽनुपरिपाटीति पर्यायाः, त्र्यादिवस्तुसंहतिरित्यर्थः । इयमनुपूर्वी 'दशविधा' दशप्रकारा प्रज्ञप्ता, तद्यथा–नामानुपूर्वी स्थापनानुपूर्वी द्रव्यानुपूर्वी क्षेत्रानुपूर्वी कालानुपूर्वी उत्कीर्तनानुपूर्वी गणनानुपूर्वी संस्थानानुपूर्वी सामाचार्यानुपूर्वी भावानुपूर्वीति ॥ ७१ ॥

नामठवणाओ गयाओ, से किं तं दव्वाणुपुव्वी ?, २ दुविहा पण्णत्ता, तंजहा–आगमओ अ नोआगमओ अ । से किं तं आगमओ दव्वाणुपुव्वी ?, २ जस्स णं आणुपुव्वित्ति पयं सिक्खियं ठियं जियं मियं परिजियं जाव नो अणुप्पेहाए, कम्हा ?, अणुवओगो दव्वमितिकट्टु, णेगमस्स णं एगो अणुवउत्तो आगमओ एगा दव्वाणुपुव्वी जाव कम्हा ? जइ जाणए अणुवउत्ते न भवइ, से तं आगमओ दव्वाणुपुव्वी । से किं तं नोआगमओ दव्वाणुपुव्वी ?, २ तिविहा पण्णत्ता, तंजहा–जाणयसरीरदव्वाणुपुव्वी भविअसरीरदव्वाणुपुव्वी जाणयसरीरभविअसरीरवइरित्ता दव्वाणुपुव्वी । से किं तं जाणयसरीरदव्वाणुपुव्वी ?, २ पयत्थाहिगारजाणयस्स जं स-

वृत्तिः उपक्रमाधि० ॥ ५१ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [७२]

दीप अनुक्रम [८२]

रीरयं ववगयचुयचाविचत्तदेहं सेसं जहा दव्वावस्सए तहा भाणिअव्वं, जाव से तं जाणयसरीरदव्वाणुपुव्वी । से किं तं भविअसरीरदव्वाणुपुव्वी ?, २ जे जीवे जोणीजम्मणनिक्खंते सेसं जहा दव्वावस्सए जाव से तं भविअसरीरदव्वाणुपुव्वी । से किं तं जाणयसरीरभविअसरीरवइरित्ता दव्वाणुपुव्वी ?, २ दुविहा पण्णत्ता, तंजहा–उवणिहिआ य अणोवणिहिआ य, तत्थ णं जा सा उवणिहिआ सा ठप्पा, तत्थ णं जा सा अणोवणिहिआ सा दुविहा पण्णत्ता, तंजहा–नेगमववहाराणं संगहस्स य (सू० ७२)

अत्र नामस्थापनानुपूर्वीसूत्रे नामस्थापनावश्यकसूत्रव्याख्यानुसारेण व्याख्येये, द्रव्यानुपूर्वीसूत्रमपि द्रव्यावश्यकवदेव भावनीयं, यावत् 'जाणयसरीरभविअसरीरवइरित्ता दव्वाणुपुव्वी दुविहे'त्यादि, तत्र निधानं निधिर्निक्षेपो न्यासो विरचना प्रस्तारः स्थापनेति पर्यायाः, तथा च लोके—'निधेहीदं निहितमिद'मित्यत्र निपूर्वस्य धागो निक्षेपार्थः प्रतीयत एव, उप-सामीप्येन निधिरुपनिधिः–एकस्मिन् विवक्षितेऽर्थे पूर्वं व्यवस्थापिते तत्समीप एवापरापरस्य वक्ष्यमाणपूर्वानुपूर्व्यादिक्रमेण यन्निक्षेपणं स उपनिधिरित्यर्थः, उपनिधिः प्रयो-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जनं यस्या आनुपूर्व्याः सा औपनिधिकीति प्रयोजनार्थे इकणप्रत्ययः, सामायिकाध्ययनादिवस्तूनां वक्ष्यमाणपूर्वानुपूर्व्यादिप्रस्तारप्रयोजना आनुपूर्वी औपनिधिकीत्युच्यत इति तात्पर्यम् । अनुपनिधिर्वक्ष्यमाणपूर्वानुपूर्व्यादिक्रमेणाविरचनं प्रयोजनमस्या इत्यनौपनिधिकी, यस्यां वक्ष्यमाणपूर्वानुपूर्व्यादिक्रमेण विरचना न क्रियते सा त्र्यादिपरमाणुनिष्पन्नस्कन्धविषया आनुपूर्वी अनौपनिधिकीत्युच्यते इति भावः । आह–नन्वानुपूर्वी परिपाटिरुच्यते, भवता च त्र्यणुकादिकोऽनन्ताणुकावसान एकैकः स्कन्धोऽनौपनिधिक्यानुपूर्वीत्वेनाभिप्रेतो, न च स्कन्धगतत्र्यादिपरमाणूनां नियता काचित् परिपाटिरस्ति, विशिष्टैकपरिणामपरिणतत्वात् तेषां, तत् कथमिहानुपूर्वीत्वं ?, सत्यं, किन्तु त्र्यादिपरमाणूनामादिमध्यावसानभावेन नियतपरिपाट्या व्यवस्थापनयोग्यताऽस्तीति योग्यतामाश्रित्यात्राप्यानुपूर्वीत्वं न विरुध्यते । 'तत्थ ण' मित्यादि, तत्र याऽसावौपनिधिकी द्रव्यानुपूर्वी सा स्थाप्या–सा न्यासिकी तिष्ठतु तावदल्पतरवक्तव्यत्वेन, तस्या उपरि वक्ष्यमाणत्वादिति भावः । अनौपनिधिकी तु पश्चान्निर्दिष्टाऽपि बहुतरवक्तव्यत्वेन प्रथमं व्याख्यायते, बहुतरवक्तव्यत्वे हि वस्तुनि प्रथममुच्यमानेऽल्पतरवक्तव्यवस्तुगतः कश्चिदर्थस्तन्मध्येऽप्युक्त एव लभ्यते इति गुणाधिक्यं पर्यालोच्य सूत्रकारोऽनौपनिधिक्याः स्वरूपं विवरीषुराह—'तत्थ ण' मित्यादि, तत्र याऽसावनौपनिधिकी द्रव्यानुपूर्वी सा नयवक्तव्यताश्रयणात् द्रव्यास्तिकनयमतेन द्विविधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा–नैगमव्यवहारयोः सङ्ग्रहस्य च, नैगमव्यवहारसंमता सङ्ग्रहसंमता चेत्यर्थः, अयमत्र भावार्थः–इहौघतः सप्त नया

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भवन्ति नैगमादयः, उक्तं च—"नैगमसङ्ग्रहव्यवहारऋजुसूत्रशब्दसमभिरूढैवंभूता नयाः" एते च द्रव्यास्तिकपर्यायास्तिकलक्षणे नयद्वयेऽन्तर्भाव्यन्ते, द्रव्यमेव परमार्थतोऽस्ति न पर्याया इत्यभ्युपगमपरो द्रव्यास्तिकः, पर्याया एव वस्तुतः सन्ति न द्रव्यमित्यभ्युपगमपरः पर्यायास्तिकः, तत्राऽऽद्यास्त्रयो द्रव्यास्तिकाः, शेषास्तु पर्यायास्तिकाः, पुनर्द्रव्यास्तिकोऽपि सामान्यतो द्विविधो–विशुद्धोऽविशुद्धश्च, तत्र नैगमव्यवहाररूपोऽविशुद्धः, सङ्ग्रहरूपस्तु विशुद्धः, कथम्!–यतो नैगमव्यवहारावनन्तपरमाण्वनन्तद्व्यणुकाद्यनेकव्यक्त्यात्मकं कृष्णाद्यनेकगुणाधारं त्रिकालविषयं वा विशुद्धं द्रव्यमिच्छतः, सङ्ग्रहश्च परमाण्वादिकं परमाण्वादिसाम्यादेकं तिरोभूतगुणकलापमविद्यमानपूर्वापरविभागं नित्यं सामान्यमेव द्रव्यमिच्छति, एतच्च किलानेकताद्यभ्युपगमकलङ्केनाकलङ्कितत्वाच्छुद्धं, ततः शुद्धद्रव्याभ्युपगमपरत्वादयमेव शुद्धः । अत्र च द्रव्यानुपूर्व्येव विचारयितुं प्रक्रान्ता, अतः शुद्धाशुद्धस्वरूपं द्रव्यास्तिकमतेनैवासौ दर्शयिष्यते न पर्यायास्तिकमतेन, पर्यायविचारस्याप्रक्रान्तत्वादित्यलं विस्तरेण ॥ ७२ ॥ तत्र नैगमव्यवहारसंमतामिमां दर्शयितुमाह—

से किं तं नेगमववहाराणं अणोवणिहिआ दव्वाणुपुव्वी ?, २ पंचविहा पण्णत्ता, तंजहा–अट्ठपयपरूवणया १ भंगसमुक्कित्तणया २ भंगोवदंसणया ३ समोआरे ४ अणुगमे ५ (सू० ७३)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र निर्वचनम्—'नेगमववहाराणं अणोवणिहिआ दव्वाणुपुव्वी पंचविहे'त्यादि, अर्थपदप्ररूपणतादिभिः पञ्चभिः प्रकारैर्विचार्यमाणत्वात् पञ्चविधा–पञ्चप्रकारा प्रज्ञप्ता, तद्यथा–अर्थपदप्ररूपणता भङ्गसमुत्कीर्तनता भङ्गोपदर्शनता समवतारोऽनुगमः । एभिः पञ्चभिः प्रकारैर्नैगमव्यवहारनयमतेन अनौपनिधिक्याः द्रव्यानुपूर्व्याः स्वरूपं निरूप्यत इतीह तात्पर्यम् । तत्र अर्यत इत्यर्थः–त्र्यणुकस्कन्धादिस्तद्युक्तं तद्विषयं वा पदमानुपूर्व्यादिकं तस्य प्ररूपणं–कथनं तद्भावोऽर्थपदप्ररूपणता, इयमानुपूर्व्यादिका संज्ञा अयं च तदभिधेयस्त्र्यणुकादिरर्थः संज्ञीत्येवं संज्ञासंज्ञिसम्बन्धकथनमात्रं प्रथमं कर्तव्यमिति भावार्थः । तेषामेवानुपूर्व्यादिपदानां समुदितानां वक्ष्यमाणन्यायेन सम्भविनो विकल्पा-भङ्गा उच्यन्ते, भज्यन्ते विकल्प्यन्ते इतिकृत्वा, तेषां समुत्कीर्तनं–समुच्चारणं भङ्गसमुत्कीर्तनं, तद्भावो भङ्गसमुत्कीर्तनता, आनुपूर्व्यादिपदनिष्पन्नानां प्रत्येकभङ्गानां द्व्यादिसंयोगभङ्गानां च समुच्चारणमित्यर्थः । तेषामेव सूत्रमात्रतया अनन्तरसमुत्कीर्तितभङ्गानां प्रत्येकं स्वाभिधेयेन त्र्यणुकाद्यर्थेन सहोपदर्शनं भङ्गोपदर्शनं, तद्भावो भङ्गोपदर्शनता । भङ्गसमुत्कीर्तने भङ्गकविषयं सूत्रमेव केवलमुच्चारणीयं, भङ्गोपदर्शने तु तदेव स्वविषयभूतेनार्थेन सहोच्चारयितव्यमिति विशेषः । तथा तेषामेवानुपूर्व्यादिद्रव्याणां स्वस्थानपरस्थानान्तर्भावचिन्तनप्रकारः समवतारः । तथा तेषामेव आनुपूर्व्यादिद्रव्याणां सत्पदप्ररूपणादिभिरनुयोगद्वारैरनुगमनं–विचारणमनुगमः ॥ ७३ ॥ तत्राऽऽद्यभेदं विवरीषुराह—

से किं तं नेगमववहाराणं अट्ठपयपरूवणया ?, २ तिपएसिए आणुपुव्वी चउप्पएसिए

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [७४]

दीप अनुक्रम [८४]

आणुपुव्वी जाव दसपएसिए आणुपुव्वी संखेज्जपएसिए आणुपुव्वी असंखिज्जपएसिए आणुपुव्वी अणंतपएसिए आणुपुव्वी, परमाणुपोग्गले अणाणुपुव्वी, दुपएसिए अवत्तव्वए, तिपएसिआ आणुपुव्वीओ जाव अणंतपएसिआओ आणुपुव्वीओ, परमाणुपोग्गला अणाणुपुव्वीओ, दुपएसिआइं अवत्तव्वयाइं, से तं णेगमववहाराणं अट्ठपयपरूवणया (सू० ७४)

अथ केयं नैगमव्यवहारयोः सम्मता अर्थपदप्ररूपणतेति, अत्रोत्तरमाह—'नेगमववहाराण'मित्यादि, तत्र त्रयः प्रदेशाः–परमाणुत्रयलक्षणा यत्र स्कन्धे सा आनुपूर्वीत्युच्यते, एवं यावदनन्ता अणवो यत्र सोऽनन्ताणुकः सोऽप्यानुपूर्वीत्युच्यते, 'परमाणुपोग्गले'त्ति एकः परमाणुः परमाण्वन्तरासंसक्तोऽनानुपूर्वीत्यभिधीयते, द्वौ प्रदेशौ यत्र स द्विप्रदेशिकः स्कन्धोऽवक्तव्यकमित्याख्यायते, बहवस्त्रिप्रदेशिकादयः स्कन्धा आनुपूर्व्यो, बहवश्चैकाकिपरमाणवोऽनानुपूर्व्यो, बहूनि च द्व्यणुकस्कन्धद्रव्याण्यवक्तव्यकानि । आनुपूर्व्यो प्रक्रान्तायामनानुपूर्व्यवक्तव्यकयोः प्ररूपणमसङ्गतमिति चेत्, न, तत्प्रतिपक्षत्वात्तयोरपि प्ररूपणीयत्वात्, प्रतिपक्षपरिज्ञाने च प्रस्तुतवस्तुनः सुखावसेयत्वादिति भावार्थः । इहाऽऽनुपूर्वी अनुपरिपाटिरिति पूर्वमुक्तं, सा च यत्रैवादिमध्यान्तलक्षणः सम्पूर्णो गणनानुक्रमोऽस्ति तत्रैवोपपद्यते, ना-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [७४]

दीप अनुक्रम [८४]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[४५], चूलिकासूत्र-[२] अनुयोगद्वार मूलं एवं हेमचन्द्रसूरि-रचिता वृत्तिः

अनुयो० मलधारीया ॥ ५४ ॥

न्यत्र, एतच्च त्रिप्रदेशिकादिस्कन्धेष्वेव, तथाहि–यस्मात् परमस्ति न पूर्वं स आदिः, यस्मात् पूर्वमस्ति न परं सोऽन्तः, तयोश्चान्तरं मध्यमुच्यते, अयं च संपूर्णो गणनानुक्रमस्त्रिप्रदेशादिस्कन्ध एव, न परमाणौ, तस्यैकद्रव्यत्वेनादिमध्यान्तव्यवहाराभावाद्, अत एवायमनानुपूर्वीत्वेनोक्तो, नापि द्व्यणुकस्कन्धः, तत्रापि मध्याभावेन सम्पूर्णगणनानुक्रमाभावाद्, अत्राऽऽह–ननु–पूर्वस्यानु पश्चादनुपूर्वं तस्य भाव आनुपूर्वीति पूर्वं व्याख्यातम्, एतच्च द्व्यणुकस्कन्धेऽपि घटत एव, परमाणुद्वयस्यापि परस्परापेक्षया पूर्वपश्चाद्भावस्य विद्यमानत्वात्, ततः सम्पूर्णगणनानुक्रमाभावेऽपि कस्मादयमप्यानुपूर्वी न भवति?, नैतदेवं, यतो यथा मेर्वादिके क्वचित् पदार्थे मध्येऽवधौ व्यवस्थापिते लोके पूर्वादिविभागः प्रसिद्धस्तथा यद्यत्रापि स्यात्तदा स्यादप्येवं, न चैवमत्रास्ति, मध्येऽवधिभूतस्य कस्यचिदभावतोऽसाङ्कर्येण पूर्वपश्चाद्भावस्यासिद्धत्वात्, यद्येवं परमाणुवद् द्व्यणुकस्कन्धोऽप्यनानुपूर्वीत्वेन कस्मान्नोच्यते?, सत्यं, किन्तु परस्परापेक्षया पूर्वपश्चाद्भावमात्रस्य सद्भावादेवमप्यभिधातुमशक्योऽसौ, तस्मादानुपूर्व्यनानुपूर्वीप्रकाराभ्यां वक्तुमशक्यत्वादवक्तव्यकमेव द्व्यणुकस्कन्धः, तस्माद्व्यवस्थितमिदम्–आदिमध्यान्तभावेनावधिभूतं मध्यवर्तिनमपेक्ष्यासाङ्कर्येण मुख्यस्य पूर्वपश्चाद्भावस्य सद्भावात् त्रिप्रदेशादिस्कन्ध एवाऽऽनुपूर्वी, परमाणुस्तूक्तयुक्त्याऽनानुपूर्वी, द्व्यणुकोऽवक्तव्यकः, इत्येवं संज्ञासंज्ञिसम्बन्धकथनरूपा अर्थपदप्ररूपणा कृता भवति। यद्येवं त्रिप्रदेशिका आनुपूर्व्य इत्यादिबहुवचननिर्देशः किमर्थः?, एकत्वमात्रेणैव संज्ञासंज्ञिसम्बन्धकथनस्य सिद्धत्वात्, सत्यं, किन्त्वानुपूर्व्यादिद्रव्याणां प्रतिभेद-

वृत्तिः उपक्रमाधि० ॥ ५४ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [७४]

दीप अनुक्रम [८४]

मनन्तव्यक्तिख्यापनार्थो नैगमव्यवहारयोरित्थंभूताभ्युपगमप्रदर्शनार्थश्च बहुत्वनिर्देश इत्यदोषः । अत्राऽऽह–नन्वनानुपूर्वीद्रव्यमेकेन परमाणुना निष्पद्यते, अवक्तव्यकद्रव्यं परमाणुद्वयेन, आनुपूर्वीद्रव्यं तु जघन्यतोऽपि परमाणुत्रयेणेति, इत्थं द्रव्यवृद्ध्या पूर्वानुपूर्वीक्रममाश्रित्य प्रथममनानुपूर्वी ततोऽवक्तव्यकं ततश्चाऽऽनुपूर्वीत्येवं निर्देशो युज्यते, पश्चानुपूर्वीक्रमाश्रयेण तु व्यत्ययेन युक्तः, तत् कथं क्रमद्वयमुल्लङ्घ्यान्यथा निर्देशः कृतः?, सत्यमेतत्, किन्त्वनानुपूर्व्यपि व्याख्याङ्गमिति ख्यापनार्थः, यदिवा व्यणुकचतुरणुकादीन्यानुपूर्वीद्रव्याण्यनानुपूर्व्यवक्तव्यकद्रव्येभ्यो बहूनि तेभ्योऽनानुपूर्वीद्रव्याण्यल्पानि तेभ्योऽप्यवक्तव्यकद्रव्याण्यल्पतराणीत्यत्रैव वक्ष्यते, ततश्चेत्थं द्रव्यहान्या पूर्वानुपूर्वीक्रमनिर्देश एवायमित्यलं विस्तरेण। 'से त'मित्यादि निगमनम् ॥ ७५ ॥

एआए णं नेगमववहाराणं अट्ठपयपरूवणयाए किं पओअणं?, एआए णं नेगमवव-हाराणं अट्ठपयपरूवणयाए भंगसमुक्कित्तणया कज्जइ (सू० ७५)

'एआए ण'मित्यादि, 'एतया' अर्थपदप्ररूपणतया किं प्रयोजनमिति, अत्राऽऽह—'एतया' अर्थपदप्ररूपणतया भङ्गसमुत्कीर्तना क्रियते, इदमुक्तं भवति–अर्थपदप्ररूपणतायां संज्ञासंज्ञिव्यवहारो निरूपितस्तस्मिंश्च सत्येवं भङ्गकाः समुत्कीर्तयितुं शक्यन्ते, नान्यथा, संज्ञामन्तरेण निर्विषयाणां भङ्गानां प्ररूपयितुमशक्यत्वात्, तस्माद् युक्तमुक्तम्-एतया–अर्थपदप्ररूपणतया भङ्गसमुत्कीर्तना क्रियत इति ॥ ७५ ॥ तामेव भङ्गसमुत्कीर्तनां निरूपयितुमाह—

अनु. १०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [७६]

दीप अनुक्रम [८६]

से किं तं नेगमववहाराणं भंगसमुक्कित्तणया ?, २ अत्थि आणुपुव्वी १ अत्थि अणाणुपुव्वी २ अत्थि अवत्तव्वए ३ अत्थि आणुपुव्वीओ ४ अत्थि अणाणुपुव्वीओ ५ अत्थि अवत्तव्वयाइं ६। अहवा अत्थि आणुपुव्वी अ अणाणुपुव्वी अ १ अहवा अत्थि आणुपुव्वी अ अणाणुपुव्वीओ अ २ अहवा अत्थि आणुपुव्वीओ अ अणाणुपुव्वी अ ३ अहवा अत्थि आणुपुव्वीओ अ अणाणुपुव्वीओ अ ४ अहवा अत्थि आणुपुव्वी अ अवत्तव्वए अ ५ अहवा अत्थि आणुपुव्वी अ अवत्तव्वयाइं च ६ अहवा अत्थि आणुपुव्वीओ अ अवत्तव्वए अ ७ अहवा अत्थि आणुपुव्वीओ अ अवत्तव्वयाइं च ८ अहवा अत्थि अणाणुपुव्वी अ अवत्तव्वए अ ९ अहवा अत्थि अणाणुपुव्वी अ अवत्तव्वयाइं च १० अहवा अत्थि अणाणुपुव्वीओ अ अवत्तव्वए अ ११ अहवा अत्थि अणाणुपुव्वीओ अ अवत्तव्वयाइं च १२। अहवा अत्थि आणुपुव्वी अ अणाणुपुव्वी अ अवत्तव्वए अ १ अहवा अत्थि आणुपुव्वी अ अणाणुपुव्वी अ अवत्तव्व-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [७६]

दीप अनुक्रम [८६]

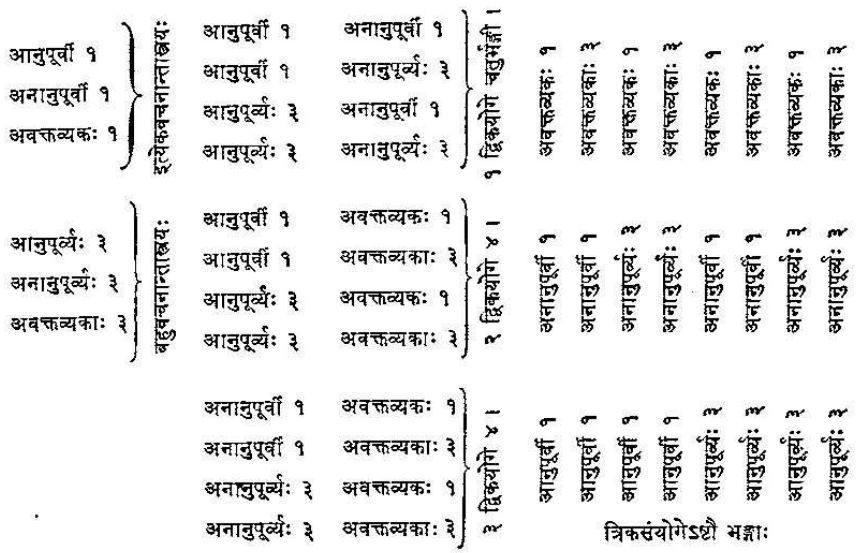
याइं च २ अहवा अत्थि आणुपुव्वी अ अणाणुपुव्वीओ अ अवत्तव्वए अ ३ अहवा अत्थि आणुपुव्वी अ अणाणुपुव्वीओ अ अवत्तव्वयाइं च ४ अहवा अत्थि आणुपुव्वी-ओ अ अणाणुपुव्वी अ अवत्तव्वए अ ५ अहवा अत्थि आणुपुव्वीओ अ अणाणुपुव्वी अ अवत्तव्वयाइं च ६ अहवा अत्थि आणुपुव्वीओ अ अणाणुपुव्वीओ अ अवत्तव्वए अ ७ अहवा अत्थि आणुपुव्वीओ अ अणाणुपुव्वीओ अ अवत्तव्वयाइं च ८ एए अड भंगा। एवं सव्वेऽवि छव्वीसं भंगा। से तं नेगमववहाराणं भंगसमुक्कित्त-णया (सू० ७६)

प्रश्नेऽत्र चानुपूर्व्यादिपदत्रयेणैकवचनान्तेन त्रयो भङ्गा भवन्ति, बहुवचनान्तेनापि तेन त्रय एव भङ्गाः, एवमेतेऽसंयोगतः प्रत्येकं भङ्गाः षड् भवन्ति, संयोगपक्षे तु पदत्रयस्यास्य त्रयो द्विकसंयोगाः, एकैकस्मिंस्तु द्विकसंयोगे एकवचनबहुवचनाभ्यां चतुर्भङ्गीसद्भावतः त्रिष्वपि द्विकयोगेषु द्वादश भङ्गाः संपद्यन्ते, त्रिकयो-गस्त्वत्रैक एव, तत्र च एकवचनबहुवचनाभ्यामष्टौ भङ्गाः सर्वेऽप्यमी षड्विंशतिः। अत्र स्थापना चेयम्—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनुयो० मलधा-रीया

॥ ५६ ॥



वृत्तिः उपक्र-माधि०

॥ ५६ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [७६]

दीप अनुक्रम [८६]

सर्वेऽपि षड्विंशतिरेव, एते चोत्तरं प्रयच्छता अनेनैव क्रमेण सूत्रेऽपि लिखिताः सन्तीति भावनीयाः। अथ किमर्थं भङ्गकसमुत्कीर्तनं क्रियत इति चेद्, उच्यते, इहानुपूर्व्यादिभिस्त्रिभिः पदैरेकवचनान्तबहुवचनान्तैः प्रत्येकचिन्तया संयोगचिन्तया च षड्विंशतिर्भङ्गाः संजायन्ते, तेषु च मध्ये येन केनचिद्भङ्गेन वक्ता द्रव्यं वक्तुमिच्छति तेन प्रतिपादयितुं सर्वानपि प्रतिपादनप्रकाराननेकरूपत्वान्नैगमव्यवहारनयाविच्छत इति प्रदर्शनार्थं भङ्गकसमुत्कीर्तनमिति। 'से त'मित्यादि निगमनम् ॥ ७६ ॥ उक्ता भङ्गसमुत्कीर्तनता, अथ भङ्गोपदर्शनतां प्रतिपिपादयिषुराह—

एआए णं नेगमववहाराणं भंगसमुक्कित्तणयाए किं पओअणं?, एआए णं नेगमववहाराणं भंगसमुक्कित्तणयाए भंगोवदंसणया कीरइ सू० (७७)

'एतया' भङ्गसमुत्कीर्तनतया किं प्रयोजनमिति, अत्रोत्तरमाह—'एआए ण'मित्यादि, 'एतया' भङ्गसमुत्कीर्तनतया भङ्गोपदर्शनता क्रियते, इदमुक्तं भवति—भङ्गसमुत्कीर्तनतायां भङ्गकसूत्रमुक्तं, भङ्गोपदर्शनतायां तस्यैव वाच्यं त्र्यणुकस्कन्धादिकं कथयिष्यते । तच्च सूत्रे समुत्कीर्तित एव कथयितुं शक्यते, वाचकमन्तरेण वाच्यस्य कथयितुमशक्यत्वाद्, अतो युक्तं भङ्गकसमुत्कीर्तनतायां भङ्गोपदर्शनताप्रयोजनम्। अत्राऽऽह— ननु भङ्गोपदर्शनतायां वाच्यस्य त्र्यणुकस्कन्धादेः कथनकाले आनुपूर्व्यादिसूत्रं पुनरप्युत्कीर्तयिष्यति, तत्

१ उत्कर्षयिष्यति प्र.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [७७]

दीप अनुक्रम [८७]

किं भङ्गसमुत्कीर्तनतया प्रयोजनमिति, सत्यं, किन्तु भङ्गसमुत्कीर्तनतासिद्धस्यैव सूत्रस्य भङ्गोपदर्शनतायां वाच्यवाचकभावसुखप्रतिपत्त्यर्थं प्रसङ्गतः पुनरपि समुत्कीर्तनं करिष्यते, न मुख्यतयेत्यदोषः, यथा हि 'संहिता च पदं चैवे'त्यादिव्याख्याक्रमे सूत्रं संहिताकाले समुच्चारितमपि पदार्थकथनकाले पुनरप्यर्थकथनार्थमुच्चार्यते तद्वदत्रापीति भावः ॥ ७७ ॥ अथ केयं पुनर्भङ्गोपदर्शनतेति प्रश्नपूर्वकं तामेव निरूपयितुमाह—

से किं तं नेगमववहाराणं भंगोवदंसणया ?, २ तिपएसिए आणुपुव्वी १ परमाणुपोग्गले अणाणुपुव्वी १ दुपएसिए अवत्तव्वए २, अहवा तिपएसिया आणुपुव्वीओ परमाणुपोग्गला अणाणुपुव्वीओ दुपएसिया अवत्तव्वयाइं ३, अहवा तिपएसिए अ परमाणुपुग्गले अ आणुपुव्वी अ अणाणुपुव्वी अ ४ चउभंगो, अहवा तिपएसिए य दुपएसिए अ आणुपुव्वी अ अवत्तव्वए य चउभंगो, अहवा परमाणुपोग्गले य दुपएसिए य अणाणुपुव्वी य अवत्तव्वए य चउभंगो १२, अहवा तिपएसिए अ पर-

१ द्वादशभङ्गकोल्लेखः प्र.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [७८]

दीप अनुक्रम [८८]

माणुपोग्गले अ दुपएसिए अ आणुपुव्वी अ अणाणुपुव्वी अ अवत्तव्वए अ १ अहवा तिपएसिए अ परमाणुपोग्गले अ दुपएसिआ य आणुपुव्वी अ अणाणुपुव्वी अ अवत्तव्वयाइं च २ अहवा तिपएसिए अ परमाणुपुग्गला अ दुपएसिए य आणुपुव्वी अ अणाणुपुव्वीओ अ अवत्तव्वए अ ३ अहवा तिपएसिए अ परमाणुपोग्गला य दुपएसिया अ आणुपुव्वी अ अणाणुपुव्वीओ अ अवत्तव्वयाइं च ४ अहवा तिपएसिआ य परमाणुपोग्गले अ दुपएसिए य आणुपुव्वीओ अ अणाणुपुव्वी अ अवत्तव्वए अ ५ अहवा तिपएसिआ य परमाणुपोग्गले अ दुपएसिआ य आणुपुव्वीओ अ अणाणुपुव्वी अ अवत्तव्वयाइं च ६ अहवा तिपएसिआ य परमाणुपोग्गला य दुपएसिए अ आणुपुव्वीओ अ अणाणुपुव्वीओ य अवत्तव्वए य ७ अहवा तिपएसिआ य परमाणुपोग्गला अ दुपएसिआ य आणुपुव्वीओ अ अणाणुपुव्वीओ अ अवत्तव्वयाइं च ८। से तं नेगमववहाराणं भंगोवदंसणया (सू० ७८)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [७८]

दीप अनुक्रम [८८]

अनुयो० मलधारीया ॥ ५८ ॥

'तिपएसिए आणुपुव्वी'त्ति त्रिप्रदेशिकोऽर्थः आनुपूर्वीत्युच्यते, त्रिप्रदेशिकस्कन्धलक्षणेनार्थेनानुपूर्वीति भङ्गको निष्पद्यत इत्यर्थः, एवं परमाणुपुद्गललक्षणोऽर्थोऽनानुपूर्वीत्युच्यते, द्विप्रदेशिकस्कन्धलक्षणः अर्थोऽवक्तव्यकमुच्यते, एवं बहवस्त्रिप्रदेशिका आनुपूर्व्यः बहवः परमाणुपुद्गला अनानुपूर्व्यो बहवो द्विप्रदेशिकस्कन्धा अवक्तव्यकानीति षण्णां प्रत्येकभङ्गानामर्थकथनम् । एवं द्विकसंयोगेऽपि त्रिप्रदेशिकस्कन्धः परमाणुपुद्गलश्चाऽऽनुपूर्व्यनानुपूर्वीत्वेनोच्यते, यदा त्रिप्रदेशिकस्कन्धः परमाणुपुद्गलश्च प्रतिपादयितुमभीष्टो भवति तदा 'अत्थि आणुपुव्वी अ अणाणुपुव्वी अ'इत्येवं भङ्गो निष्पद्यत इत्यर्थः, एवमर्थकथनपुरस्सराः शेषभङ्गा अपि भावनीयाः । अत्राह–नन्वर्थोऽप्यानुपूर्व्यादिपदानां व्यणुकस्कन्धादिकोऽर्थपदप्ररूपणतालक्षणे प्रथमद्वारे कथित एव तत्किमनेन ?, सत्यं, किन्तु तत्र पदार्थमात्रमुक्तम्, अत्र तु तेषामेवाऽऽनुपूर्व्यादिपदानां भङ्गकरचनासमादिष्टानामर्थः कथ्यत इत्यदोषो, नयमतवैचित्र्यप्रदर्शनार्थं वा पुनरित्थमर्थोपदर्शनमित्यलं विस्तरेण । 'से त'मित्यादि निगमनम् ॥ ७८ ॥ उक्ता भङ्गोपदर्शनता, अथ समवतारं बिभणिषुराह—

से किं तं समोआरे ?, २ नेगमववहाराणं आणुपुव्वीदव्वाइं कहिं समोअरंति ?, किं आणुपुव्वीदव्वेहिं समोअरंति ? अणाणुपुव्वीदव्वेहिं समोअरंति ? अवत्तव्वयदव्वेहिं समोअरंति ?, नेगमववहाराणं आणुपुव्वीदव्वाइं आणुपुव्वीदव्वेहिं समोअरंति नो

वृत्तिः उपक्रमाधि०

॥ ५८ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [७९]

दीप अनुक्रम [८९]

अणाणुपुव्वीदव्वेहिं समोअरंति नो अवत्तव्वयदव्वेहिं समोअरंति, नेगमववहाराणं अणाणुपुव्वीदव्वाइं कहिं समोअरंति ?, किं आणुपुव्वीदव्वेहिं समोअरंति ? अणाणुपुव्वीदव्वेहिं समोअरंति ? अवत्तव्वयदव्वेहिं समोअरंति ?, नो आणुपुव्वीदव्वेहिं समोअरंति अणाणुपुव्वीदव्वेहिं समोअरंति नो अवत्तव्वयदव्वेहिं समोअरंति, नेगमववहाराणं अवत्तव्वयदव्वाइं कहिं समोअरंति ?, किं आणुपुव्वीदव्वेहिं समोअरंति ? अणाणुपुव्वीदव्वेहिं समोअरंति ? अवत्तव्वयदव्वेहिं समोअरंति ?, नो आणुपुव्वीदव्वेहिं समोअरंति नो अणाणुपुव्वीदव्वेहिं समोअरंति अवत्तव्वयदव्वेहिं समोअरंति । से तं समोआरे (सू० ७९)

अथ कोऽयं समवतार इति प्रश्ने सत्याह—'समोआरे'त्ति, अयं समवतार उच्यत इति शेषः, कः पुनरयमित्याह—'नेगमववहाराणं आणुपुव्वीदव्वाइं कहिं समोयरंती'त्यादिप्रश्नः, अत्रोत्तरम्—'नेगमववहाराणं आणुपुव्वी' इत्यादि, आनुपूर्वीद्रव्याणि आनुपूर्वीद्रव्यलक्षणायां स्वजातावेव वर्तन्ते, न स्वजात्यतिक्रमेणेत्यर्थः, इदमुक्तं भवति–सम्यग्–अविरोधेनावतरणं–वर्तनं समवतारोऽविरोधवृत्तिता प्रोच्यते, सा च स्वजा-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [८०] + गाथा ॥१॥

दीप अनुक्रम [९०-९१]

तिवृत्तावेव स्यात्, परजातिवृत्तेर्विरुद्धत्वात्, ततो नानादेशादिवृत्तीन्यपि सर्वाण्यानुपुर्वीद्रव्याणि आनुपूर्वीद्रव्येष्वेव वर्तन्ते इति स्थितम् । एवमनानुपूर्व्यादीनामपि स्वस्थानावतारो भावनीयः । 'से त' मित्यादि निगमनम् ॥ ७९ ॥ उक्तः समवतारः, अथानुगमं बिभणिषुरुपक्रमते—

से किं तं अणुगमे ?, २ नवविहे पण्णत्ते, तंजहा–संतपयपरूवणया १ दव्वपमाणं च २ खित्त ३ फुसणा य ४ । कालो य ५ अंतरं ६ भाग ७ भाव ८ अप्पाबहुं चेव ॥ १ ॥ (८०)

अत्रोत्तरम्—'अणुगमे नवविहे' इत्यादि, तत्र सूत्रार्थस्यानुकूलमनुरूपं वा गमनं–व्याख्यानमनुगमः, अथवा सूत्रपठनादनु–पश्चाद्गमनं–व्याख्यानमनुगमः, यदिवा अनुसूत्रमर्थो गम्यते–ज्ञायते अनेनेत्यनुगमो–व्याख्यानमेवेत्यादन्यदपि वस्त्वविरोधेन स्वधिया वाच्यमिति । स च नवविधो–नवप्रकारो भवति, तदेव नवविधत्वं दर्शयति–'तद्यथे'त्युपदर्शनार्थः 'संतपय'गाहा, सदर्थविषयं पदं सत्पदं तस्य प्ररूपणं–प्रज्ञापनं सत्पदप्ररूपणं तस्य भावः सत्पदप्ररूपणता सा प्रथमं कर्तव्या, इदमुक्तं भवति–इह स्तम्भकुम्भादीनि पदानि सदर्थविषयाणि दृश्यन्ते, खरशृङ्गव्योमकुसुमादीनि त्वसदर्थविषयाणि, तत्राऽऽनुपूर्व्यादिपदानि किं स्तम्भादिपदानीव सदर्थविषयाण्याहोश्चित् (खित्) खरविषाणादिपदवत् असदर्थगोचराणीत्येतत् प्रथमं

॥ ५९ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पर्यालोचयितव्यं, तथा आनुपूर्व्यादिपदाभिधेयद्रव्याणां प्रमाणं–सङ्ख्यास्वरूपं प्ररूपणीयं, चः समुच्चये, एवमन्यत्रापि, तथा तेषामेव क्षेत्रं–तदाधारस्वरूपं प्ररूपणीयं, कियति क्षेत्रे तानि भवन्तीति चिन्तनीयमित्यर्थः, तथा स्पर्शना च वक्तव्या, कियत् क्षेत्रं तानि स्पृशन्तीति चिन्तनीयमित्यर्थः, तथा कालश्च तत्स्थितिलक्षणो वक्तव्यः, तथा अन्तरं–विवक्षितस्वभावपरित्यागे सति पुनस्तद्भावप्राप्तिविरहलक्षणं प्ररूपणीयं, तथा आनुपूर्वीद्रव्याणि शेषद्रव्याणां कतिभागे वर्तन्ते इत्यादिलक्षणो भागः प्ररूपणीयः, तथा आनुपूर्व्यादिद्रव्याणि कस्मिन् भावे वर्तन्ते इत्येवंरूपो भावः प्ररूपणीयः, तथा अल्पबहुत्वं चानुपूर्व्यादिद्रव्याणां द्रव्यार्थप्रदेशार्थोभयार्थताश्रयणेन परस्परं स्तोकबहुत्वचिन्तालक्षणं प्ररूपणीयम्, एवकारोऽवधारणे, एतावत्प्रकार एवानुगम इति गाथासमासार्थः ॥ १ ॥ ८० ॥ व्यासार्थं तु ग्रन्थकारः स्वयमेव विभणिषुराद्यावयवमधिकृत्याऽऽह—

नेगमववहाराणं आणुपुव्वीदव्वाइं किं अत्थि नत्थि ?, णियमा अत्थि, नेगमववहाराणं अणाणुपुव्वीदव्वाइं किं अत्थि णत्थि ?, णियमा अत्थि, नेगमववहाराणं अवत्तव्वगदव्वाइं किं अत्थि णत्थि ?, नियमा अत्थि (सू० ८१)

नैगमव्यवहारयोरानुपूर्वीशब्दाभिधेयानि द्रव्याणि व्यणुकस्कन्धादीनि किं सन्ति नेति प्रश्नः, अत्रोत्तरम् —'नियमा अत्थि' इति, एतदुक्तं भवति–नेदं खरशृङ्गादिवदानुपूर्वीपदमसदर्थगोचरम्, अतो नियमात् सन्ति

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [८१]

दीप अनुक्रम [९२]

तदभिधेयानि द्रव्याणि, तानि च त्र्यणुकस्कन्धादीनि पूर्वं दर्शितान्येव, एवमनानुपूर्व्यवक्तव्यकपक्षद्वयेऽपि वाच्यम् ॥ ८१ ॥ कृता सत्पदप्ररूपणा, अथ द्रव्यप्रमाणमभिधित्सुराह—

नेगमववहाराणं आणुपुव्वीदव्वाइं किं संखिज्जाइं असंखिज्जाइं अणंताइं ?, नो संखिज्जाइं नो असंखिज्जाइं अणंताइं, एवं अणाणुपुव्वीदव्वाइं अवत्तव्वगदव्वाइं च अणंताइं भाणिअव्वाइं (सू० ८२)

'नेगमववहाराणं आणुपुव्वीदव्वाइं किं संखेज्जाइ'मित्यादि, अयमत्र निर्वचनभावार्थः–इहानुपूर्व्यनानुपूर्व्यवक्तव्यकद्रव्याणि प्रत्येकमनन्तान्येकैकस्मिन्नप्याकाशप्रदेशे प्राप्यन्ते, किं पुनः सर्वलोके, अतः सङ्ख्येयासङ्ख्येयप्रकारद्वयनिषेधेन त्रिष्वपि स्थानेष्वानन्त्यमेव वाच्यमिति । न च वक्तव्यं कथमसङ्ख्येये लोके अनन्तानि द्रव्याणि तिष्ठन्ति ?, अचिन्त्यत्वात् पुद्गलपरिणामस्य, दृश्यते चैकगृहान्तर्वर्त्याकाशप्रदेशेष्वेकप्रदीपप्रभापरमाणुव्याप्तेष्वप्यनेकापरप्रदीपप्रभापरमाणूनां तत्रैवावस्थानं, न चाक्षिदृष्टेऽप्यर्थेऽनुपपत्तिः, अतिप्रसङ्गात् इत्यलं प्रपञ्चेन २ ॥ ८२ ॥ इदानीं क्षेत्रद्वारमुच्यते—

नेगमववहाराणं आणुपुव्वीदव्वाइं लोगस्स किं संखिज्जइभागे होज्जा असंखिज्जइभागे

१ अवतिष्ठन्ते प्र.

॥ ६० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [८३]

दीप अनुक्रम [९४]

होज्जा संखेज्जेसु भागेसु होज्जा असंखेज्जेसु भागेसु होज्जा सव्वलोए होज्जा ?, एगं दव्वं पडुच्च संखेज्जइभागे वा होज्जा असंखेज्जइभागे वा होज्जा संखेज्जेसु भागेसु वा होज्जा असंखिज्जेसु भागेसु वा होज्जा सव्वलोए वा होज्जा, णाणादव्वाइं पडुच्च नियमा सव्वलोए होज्जा। नेगमववहाराणं अणाणुपुव्वीदव्वाइं किं लोअस्स संखिज्जइभागे होज्जा [1]जाव सव्वलोए वा होज्जा ?, एगं दव्वं पडुच्च नो संखेज्जइभागे होज्जा असंखिज्जइभागे होज्जा नो संखेज्जेसु भागेसु होज्जा नो असंखेज्जेसु भागेसु होज्जा नो सव्वलोए होज्जा, णाणादव्वाइं पडुच्च नियमा सव्वलोए होज्जा, एवं अवत्तव्वगदव्वाइं [2]भाणिअव्वाइं (सू० ८३)

आनुपूर्वीद्रव्याणि किं लोकस्यैकस्मिन् सङ्ख्याततमे भागे 'होज्ज'न्ति आर्षत्वाद्भवन्ति अवगाहन्त इतियावत्, यदिवा एकस्मिन्नसङ्ख्याततमे भागे भवन्ति, उत बहुषु सङ्ख्येयेषु भागेषु भवन्ति, आहोश्विद्बहुष्वसङ्ख्येयेषु भागेषु भवन्त्यथ च सर्वलोके भवन्तीति पञ्च पृच्छास्थानानि, अत्र निर्वचनसूत्रस्येयं भावना–इहानुपू-

१ स्पष्टाः प्रश्नाः प्रश्नान्तरे २ दव्वाणिवि प्र.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनुयो० मलधारीया ॥ ६१ ॥

वीद्रव्याणि त्र्यणुकस्कन्धादीन्यनन्ताणुकस्कन्धपर्यवसानान्युक्तानि, तत्र च सामान्यत एकं द्रव्यमाश्रित्य तथाविधपरिणामवैचित्र्यात् किञ्चिल्लोकस्यैकस्मिन् सङ्ख्याततमे भागे भवति, एकं तत्सङ्ख्यातभागमवगाह्य तिष्ठतीत्यर्थः, अन्यत्तु तदसङ्ख्येयभागमवगाहते, अपरं तु बहूँस्तत्सङ्ख्येयान् भागानवगाह्य वर्तते, अन्यच्च बहूँस्तदसङ्ख्येयभागानवगाह्य तिष्ठतीति, 'सव्वलोए वा होज्ज'त्ति इहानन्तानन्तपरमाणुप्रचयनिष्पन्नं प्रज्ञापनादिप्रसिद्धाचित्तमहास्कन्धलक्षणमानुपूर्वीद्रव्यं समयमेकं सकललोकावगाहि प्रतिपत्तव्यमिति । कथं पुनरयमचित्तमहास्कन्धः सकललोकावगाही स्याद् ?, उच्यते, समुद्घातवर्तिकेवलिवत्, तथाहि–लोकमध्यव्यवस्थितोऽसौ प्रथमसमये तिर्यगसङ्ख्यातयोजनविस्तरं सङ्ख्यातयोजनविस्तरं वा ऊर्ध्वाधस्तु चतुर्दशरज्ज्वायतं विश्रसापरिणामेन वृत्तं दण्डं करोति, द्वितीये कपाटं, तृतीये मन्थानं, चतुर्थे लोकव्याप्तिं प्रतिपद्यते, पञ्चमे अन्तराणि संहरति, षष्ठे मन्थानं सप्तमे कपाटमष्टमे तु दण्डं संहृत्य खण्डशो भिद्यत इत्येके, अन्ये त्वन्यथापि व्याचक्षते, तत्तु विशेषावश्यकादवसेयमिति । वाशब्दः समुच्चये, एवं यथासम्भवमन्यत्रापि । 'णाणादव्वाइं पडुच्चे'त्यादि, नानाद्रव्याण्यानुपूर्वीपरिणामवन्ति प्रतीत्य प्रकृत्य वा अधिकृत्येत्यर्थः 'नियमात्' नियमेन सर्वलोके भवन्ति, न सङ्ख्येयादिभागेषु, यतः सर्वलोकाकाशस्य स प्रदेशोऽपि नास्ति यत्र सूक्ष्मपरिणामवन्त्यनन्तान्यानुपूर्वीद्रव्याणि न सन्तीति । अनानुपूर्व्यवक्तव्यकद्रव्येषु त्वेकं द्रव्यमाश्रित्य लोकस्यासङ्ख्येयभाग एव वृत्तिः, न सङ्ख्येयभागादिषु, यतोऽनानुपूर्वी तावत् परमाणुरुच्यते, स चैकाकाशप्रदेशावगाढ

वृत्तिः उपक्रमाधि०

॥ ६१ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [८३]

दीप अनुक्रम [९४]

एव भवति, अवक्तव्यकं तु द्व्यणुकस्कन्धः, स चैकप्रदेशावगाढो द्विप्रदेशावगाढो वा स्यादिति यथोक्तभाग-वृत्तितैवेति, नानाद्रव्यभावना पूर्ववद्, इत्युक्तं क्षेत्रद्वारम् ॥ ८३ ॥ साम्प्रतं स्पर्शनाद्वारमुच्यते—

नेगमववहाराणं आणुपुव्वीदव्वाइं लोगस्स किं संखेज्जइभागं फुसंति असंखेज्जइभागं फुसंति संखेज्जे भागे फुसंति असंखेज्जे भागे फुसंति सव्वलोगं फुसंति ?, एगं दव्वं पडुच्च लोगस्स संखेज्जइभागं वा फुसंति जाव सव्वलोगं वा फुसंति, णाणादव्वाइं पडुच्च निअमा सव्वलोगं फुसंति । णेगमववहाराणं अणाणुपुव्वीदव्वाइं लोअस्स किं संखेज्जइभागं फुसंति जाव सव्वलोगं फुसंति ?, एगं दव्वं पडुच्च नो संखिज्जइभागं फुसंति असंखिज्जइभागं फुसंति नो संखिज्जे भागे फुसंति नो असंखिज्जे भागे फुसंति नो सव्वलोअं फुसंति, णाणादव्वाइं पडुच्च नियमा सव्वलोअं फुसंति, एवं अवत्तव्वगदव्वाइं भाणिअव्वाइं (सू० ८४)

भावना क्षेत्रद्वारवदेव कर्तव्या, नवरं क्षेत्रस्पर्शनयोरयं विशेषः–क्षेत्रम्–अवगाहाक्रान्तप्रदेशमात्रं, स्पर्शना

१ स्पष्टानि उत्तराणि प्र.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तु षड्दिकैः प्रदेशैस्तद्बहिरपि भवति, तथा च परमाणुद्रव्यमाश्रित्य तावदवगाहनास्पर्शनयोरन्यत्रोक्तो भेदः– 'एगपएसोगाढं सत्तपएसा य से फुसण'त्ति, अस्यार्थः–परमाणुद्रव्यमवगाढं तावदेकस्मिन्नेवाकाशप्रदेशे, स्पर्शना तु 'से' तस्य सप्त प्रदेशा भवन्ति, षड्दिग्व्यवस्थितान् षट् प्रदेशान् यत्र चावगाहस्तं च स्पृशतीत्यर्थः, एवमन्यत्रापि क्षेत्रस्पर्शनयोर्भेदो भावनीयः। अत्र सौगताः प्रेरयन्ति–यदि परमाणोः षड्दिक्स्पर्शनाऽभ्युपगम्यते तर्ह्येकत्वमस्य हीयते, तथाहि–प्रष्टव्यमत्र, किं येनैव स्वरूपेणासौ पूर्वाद्यन्यतरदिशा सम्बद्धस्तेनैवान्यदिग्भिरुत स्वरूपान्तरेण ?, यदि तेनैव तदा अयं पूर्वदिक्सम्बन्धोऽयं चापरदिक्सम्बन्ध इत्यादिविभागो न स्यादु, एकस्वरूपत्वात्, विभागाभावे च षड्दिक्सम्बन्धवचनमुपप्लवत एव, अथापरो विकल्पः कल्प्यते तर्हि तस्य षट्स्वरूपापत्त्या एकत्वं विशीर्यते, उक्तं च—"दिग्भागभेदो यस्यास्ति, तस्यैकत्वं न युज्यत" इति, अत्र प्रतिविधीयते, इह परमाणुद्रव्यमादिमध्यान्त्यादिविभागरहितं निरंशमेकस्वरूपमिष्यते, अतः सांशवस्तुसम्भवित्वात् परोक्तं विकल्पद्वयं निरास्पदमेव, अथानभ्युपगम्यमानाऽपि परमाणोः सांशताऽनन्तरोक्तविकल्पबलेनापाद्यते, ननु भवन्तोऽपि तर्हि प्रष्टव्याः–क्वचिद् विज्ञानसन्ताने विवक्षितः कश्चिद्विज्ञानलक्षणक्षणः स्वजनकपूर्वक्षणस्य कार्यं स्वजन्योत्तरक्षणस्य कारणमित्यत्र सौगतानां तावदविप्रतिपत्तिः, तत्रेहापि (तत्रापि) विचार्यते-किमसौ येन स्वरूपेण पूर्वक्षणस्य कार्यं तेनैवोत्तरक्षणस्य कारणमुत स्वरूपान्तरेण ?, यद्याद्यः पक्षस्तर्हि यथा पूर्वापेक्षयाऽसौ कार्यं तथोत्तरापेक्षयापि स्यादु, यथा वा उत्तरापेक्षया कारणं तथा पूर्वापेक्षयाऽपि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [८४]

दीप अनुक्रम [९५]

स्याद्, एकस्वरूपत्वात् तस्येति, अथ द्वितीयः पक्षस्तर्हि तस्य सांशत्वप्रसङ्गोऽत्रापि दुर्वारः स्याद्, अथ निरंश एवासौ ज्ञानलक्षणक्षणोऽकार्यकारणरूपः तत्तद्वस्तुव्याप्तत्वात् तथा तथा व्यपदिश्यते, न पुनस्तस्यानेकस्वरूपत्वमस्ति, नन्वस्माकमपि नेदमुत्तरमतिदुर्लभं स्यात्, यतो द्रव्यतया निरंश एव परमाणुस्तथाविधाचिन्त्यपरिणामत्वात् दिक्षट्केन सह नैरन्तर्येणावस्थितत्वात् तस्य स्पर्शक उच्यते, न पुनस्तत्रांशैः काचित् स्पर्शना समस्तीति, अत्र बहु वक्तव्यं तच्चु नोच्यते, स्थानान्तरेषु चर्चितत्वादित्यलं विस्तरेण ॥ ८४ ॥ उक्तं स्पर्शनाद्वारम्, इदानीं कालद्वारं बिभणिषुराह—

णेगमववहाराणं आणुपुव्वीदव्वाइं कालओ केवच्चिरं होइ?, एगं दव्वं पडुच्च जहण्णेणं एगं समयं उक्कोसेणं असंखेज्जं कालं, णाणादव्वाइं पडुच्च णियमा सव्वद्धा, अणाणुपुव्वीदव्वाइं अवत्तव्वगदव्वाइं च एवं चेव भाणिअव्वाइं (सू० ८५)

नैगमव्यवहारयोरानुपूर्वीद्रव्याणि 'कालतः' कालमाश्रित्य 'कियच्चिरं' कियन्तं कालं 'भवन्ति' आनुपूर्वीत्वपर्यायेणावतिष्ठन्ते ?, अत्रोत्तरम्—'एगं दव्व'मित्यादि, इयमत्र भावना–परमाणुद्व्यादेरपरैकादिपरमाणुमीलनेऽपूर्वं किञ्चिदानुपूर्वीद्रव्यं समुत्पन्नं, ततः समयादूर्ध्वं पुनरप्येकाद्यणौ वियुक्तेऽपगतस्तद्भाव इत्येकमानुपूर्वीद्रव्यमधिकृत्य जघन्यतः समयोऽवस्थितिकालः, यदा तु तदेवासङ्ख्यातं कालं तद्भावेन स्थित्वाऽनन्तरोक्तस्व-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रूपेण वियुज्यते तदा उत्कृष्टतोऽसङ्ख्येयोऽवस्थितिकालः प्राप्यते, अनन्तं कालं पुनर्नावतिष्ठते, उत्कृष्टाया अपि पुद्गलसंयोगस्थितेरसङ्ख्येयकालत्वादिति । 'नानाद्रव्याणि' बहूनि पुनरानुपूर्वीद्रव्याण्यधिकृत्य सर्वाद्धा स्थितिर्भवति, नास्ति स कश्चित् कालो यत्रानुपूर्वीद्रव्यविरहितोऽयं लोकः स्यादिति भावः । अनानुपूर्वीअवक्तव्यकद्रव्येष्वपि जघन्यादिभेदभिन्न एतावानेवावस्थितिकालः, तथाहि—कश्चित् परमाणुरेकं समयमेकाकीभूत्वा ततः परमाण्वादिना अन्येन सह संयुज्यते, इत्थमेकमनानुपूर्वीद्रव्यमधिकृत्य जघन्यतः समयोऽवस्थितिकालः, यदा तु स एवासङ्ख्यातं कालं तद्भावेन स्थित्वा अन्येन परमाण्वादिना सह संयुज्यते तदोत्कृष्टतोऽसङ्ख्येयोऽवस्थितिकालः संप्राप्यते, नानाद्रव्यपक्षस्तु पूर्ववदेव भावनीयः । अवक्तव्यकद्रव्यमपि परमाणुद्वयलक्षणं यदा समयमेकं संयुक्तं स्थित्वा ततो वियुज्यते तदवस्थमेव वाऽन्येन परमाण्वादिना संयुज्यते तदा तस्यावक्तव्यकद्रव्यतया जघन्यतः समयोऽवस्थानं लभ्यते, यदा तु तदेवासङ्ख्यातं कालं तद्भावेन स्थित्वा विघटते तदवस्थमेव वाऽन्येन परमाण्वादिना संयुज्यते तदोत्कृष्टतः अवक्तव्यकद्रव्यतयाऽसङ्ख्यातं कालमवस्थानं प्राप्यते, नानाद्रव्यपक्षस्तु तथैव भावनीय इति ॥ ८५॥ उक्तं कालद्वारम्, अथान्तरद्वारं प्रतिपिपादयिषुराह—

णेगमववहाराणं आणुपुव्वीदव्वाणं अंतरं कालओ केवच्चिरं होइ?, एगं दव्वं पडुच्च जहन्नेणं एगं समयं उक्कोसेणं अणंतं कालं, नाणादव्वाइं पडुच्च णत्थि अंतरं । णेग-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [८६]

दीप अनुक्रम [९७]

मववहाराणं अणाणुपुव्वीदव्वाणं अन्तरं कालओ केवच्चिरं होइ?, एगं दव्वं पडुच्च जहण्णेणं एगं समयं उक्कोसेणं असंखेज्जं कालं, नाणादव्वाइं पडुच्च णत्थि अंतरं । णेगमववहाराणं अवत्तव्वगदव्वाणं अंतरं कालओ केवच्चिरं होइ? एगं दव्वं पडुच्च जहन्नेणं एगं समयं उक्कोसेणं अणंतं कालं, नाणादव्वाइं पडुच्च णत्थि अंतरं (सू० ८६)

नैगमव्यवहारयोरानुपूर्वीद्रव्याणामन्तरं कालतः कियच्चिरं भवतीति प्रश्नः, 'अन्तरं' व्यवधानं, तच्च क्षेत्रतोऽपि भवति यथा भूतलसूर्ययोरष्टौ योजनशतान्यन्तरमित्यतस्तद्व्यवच्छेदार्थमुक्तम्–'कालतः' कालमाश्रित्य, तदयमत्रार्थः–आनुपूर्वीद्रव्याण्यानुपूर्वीस्वरूपतां परित्यज्य कियता कालेन तान्येव पुनस्तथा भवन्ति, आनुपूर्वीत्वपरित्यागपुनर्लाभयोरन्तरे कियान् कालो भवतीत्यर्थः। अत्र निर्वचनम्—'एगं दव्वमित्यादि' इयमत्र भावना–इह विवक्षितं त्र्यणुकस्कन्धादिकं किमप्यानुपूर्वीद्रव्यं विश्रसापरिणामात् प्रयोगपरिणामाद्वा खण्डशो वियुज्य परित्यक्तानुपूर्वीभावं सञ्जातम्, एकस्माच समयादूर्ध्वं विश्रसादिपरिणामात् पुनस्तैरेव परमाणुभिस्तथैव तन्निष्पन्नमित्येवं जघन्यतः सर्वस्तोकतया एकं द्रव्यमाश्रित्याऽऽनुपूर्वीत्वपरित्यागपुनर्लाभयोरन्तरे समयः प्राप्यते, उत्कृष्टतः सर्वबहुतया पुनरन्तरमनन्तं कालं भवति, तथाहि–तदेव विवक्षितं किमप्यानुपूर्वीद्रव्यं तथैव भिन्नं, भित्त्वा च ते परमाणवोऽन्येषु परमाणुद्व्यणुकत्र्यणुकादिषु अनन्ताणुकस्कन्धपर्यन्तेषु अनन्तस्थानेषूत्कृष्टान्तरा-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [८६]

दीप अनुक्रम [९७]

अनुयो० मलधारीया ॥ ६४ ॥

धिकारादसकृत् प्रतिस्थानमुत्कृष्टां स्थितिमनुभवन्तः पर्यटन्ति, कृत्वा चेत्थं पर्यटनं कालस्यानन्तत्वाद् विश्रसादिपरिणामतो यदा तैरेव परमाणुभिस्तदेव विवक्षितमानुपूर्वीद्रव्यं निष्पद्यते तदाऽनन्त उत्कृष्टान्तरकालः प्राप्यते, नानाद्रव्याण्यधिकृत्य पुनर्नास्त्यन्तरं, न हि स कश्चित् कालोऽस्ति यत्र सर्वाण्यप्यानुपूर्वीद्रव्याणि युगपदानुपूर्वीभावं परित्यजन्ति, अनन्तानन्तैरानुपूर्वीद्रव्यैः सर्वदैव लोकस्याशून्यत्वादिति भावः । अनानुपूर्वीद्रव्यान्तरकालचिन्तायां 'एगं दव्वं पडुच्च जहन्नेणं एक्कं समयं'ति, इह यदा किञ्चिदनानुपूर्वीद्रव्यं परमाणुलक्षणमन्येन परमाणुद्व्यणुकत्र्यणुकादिना केनचिद् द्रव्येण सह संयुज्य समयादूर्ध्वं वियुज्य पुनरपि तथास्वरूपमेव भवति तदा समयलक्षणो जघन्यान्तरकालः प्राप्यते, 'उक्कोसेणं असंखेज्जं कालं'ति तदेवानानुपूर्वीद्रव्यं यदा अन्येन परमाणुद्व्यणुकत्र्यणुकादिना केनचिद् द्रव्येण सह संयुज्यते, तत्संयुक्तं चासङ्ख्येयं कालं स्थित्वा वियुज्य पुनस्तथास्वरूपमेव भवति तदाऽसङ्ख्यात उत्कृष्टान्तरकालो लभ्यते । अत्राह–ननु अनानुपूर्वीद्रव्यं यदा अनन्तानन्तपरमाणुप्रचितस्कन्धेन सह संयुज्यते, तत्संयुक्तं चासङ्ख्येयं कालमवतिष्ठते, ततोऽसौ स्कन्धो भिद्यते, भिन्ने च तस्मिन् यस्तस्माल्लघुस्कन्धो भवति तेनापि सह संयुक्तमसङ्ख्यातं कालमवतिष्ठते, पुनस्तस्मिन्नपि भिद्यमाने यस्तस्माल्लघुतरः स्कन्धो भवति तेनापि संयुक्तमसङ्ख्येयं कालमवतिष्ठते, पुनस्तस्मिन्नपि भिद्यमाने यस्तस्माल्लघुतमः स्कन्धो भवति तेनापि संयुक्तमसङ्ख्येयं कालमवतिष्ठते, इत्येवं तत्र भिद्यमाने क्रमेण कदाचिदनन्ता अपि स्कन्धाः संभाव्यन्ते, तत्र च प्रतिस्कन्धसंयुक्तमनानुपूर्वीद्रव्यं

वृत्तिः उपक्रमाधि० ॥ ६४ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [८६]

दीप अनुक्रम [९७]

यदा यथोक्तां स्थितिमनुभूय तत एकाक्येव भवति तदा तस्य यथोक्तानन्तस्कन्धस्थित्यपेक्षया अनन्तोऽपि कालोऽन्तरे प्राप्यते, किमित्यसङ्ख्येय एवोक्तः ?, अत्रोच्यते, स्यादेवं, हन्त यदि संयुक्तोऽणुरेतावन्तं कालं तिष्ठेद्, एतच्च नास्ति, पुद्गलसंयोगस्थितेरुत्कृष्टतोऽप्यसङ्ख्येयकालत्वादित्युक्तमेव, अथ ब्रूयाद्–यस्मिन्नेव स्कन्धे संयुज्यतेऽसौ परमाणुः स चेत्स्कन्धोऽसङ्ख्येयकालाद्विद्यते तर्ह्येतावतैव चरितार्थः पुद्गलसंयोगासङ्ख्येयकालनियमो, विवक्षितपरमाणुद्रव्यस्य तु वियोगो मा भूदपीति, नैतदेवं, यस्यान्येन संयोगो जातस्तस्यासङ्ख्येयकालाद् वियोगश्चिन्त्यते, यदि च परमाण्वाश्रयः स्कन्धो वियुज्यते तर्हि परमाणोः किमायातं?, तस्यान्यसंयोगस्य तदवस्थत्वात्, तस्मादणुत्वेनासौ संयुक्तोऽसङ्ख्येयकालादणुत्वेनैव वियोजनीय इति यथोक्त एवान्तरकालो न त्वनन्त इति, कथं पुनरणुत्वेनैव तस्य वियोगश्चिन्तनीय इति चेत् सूत्रप्रामाण्यात्, प्रस्तुतसूत्रे व्याख्याप्रज्ञस्यादिषु च परमाणोः पुनः परमाणुभवनेऽसङ्ख्येयरूपस्यैवान्तरकालस्योक्तत्वादित्यलं विस्तरेण। 'नाणादव्वाइं पडुच्चे'त्यादि पूर्ववद्भावनीयम् । अवक्तव्यकद्रव्याणामन्तरचिन्तायाम् 'एगं दव्वं पडुच्चे'त्यादि, अत्र भावना–इह कश्चिद् द्विप्रदेशिकः स्कन्धो विघटितः, स्वतन्त्रं परमाणुद्वयं जातं, समयं चैकं तथा स्थित्वा पुनस्ताभ्यामेव परमाणुभ्यां द्विप्रदेशिकः स्कन्धो निष्पन्नः, अथवा विघटित एव द्विप्रदेशिकः स्कन्धोऽन्येन परमाण्वादिना संयुज्य समयादूर्ध्वं पुनस्तथैव वियुक्त इत्यवक्तव्यकस्य पुनरप्यवक्तव्यकभवने उभयथाऽपि समयोऽन्तरे लभ्यते, 'उक्कोसेणं अणंतं कालं' इति, कथम् ?, अत्रोच्यते, अवक्तव्यकद्रव्यं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

किमपि विघटितं विशकलितपरमाणुद्वयं जातं, तच्चानन्तैः परमाणुभिरनन्तैर्द्व्यणुकस्कन्धैरनन्तैस्त्र्यणुकस्कन्धैर्यावदनन्तैरनन्ताणुकस्कन्धैः सह क्रमेण संयोगमासाद्य उत्कृष्टान्तराधिकाराच्च प्रतिस्थानमसकृदुत्कृष्टां संयोगस्थितिमनुभूय कालस्यानन्तत्वात् यदा पुनरपि तथैव द्व्यणुकस्कन्धतया संयुज्यते तदा अवक्तव्यकैकद्रव्यस्य पुनस्तथाभवने अनन्तोऽन्तरकालः प्राप्यते, नानाद्रव्यपक्षभावना लोके सर्वदैव तद्भावात् पूर्ववद् वक्तव्या ॥ ८६ ॥ उक्तमन्तरद्वारम्, साम्प्रतं भागद्वारं निर्दिदिक्षुराह—

णेगमववहाराणं आणुपुव्वीदव्वाइं सेसदव्वाणं कइभागे होज्जा ? किं संखिज्जइभागे होज्जा असंखिज्जइभागे होज्जा संखेज्जेसु भागेसु होज्जा असंखेज्जेसु भागेसु होज्जा ?, नो संखिज्जइभागे होज्जा नो असंखिज्जइभागे होज्जा नो संखेज्जेसु भागेसु होज्जा नियमा असंखेज्जेसु भागेसु होज्जा । णेगमववहाराणं अणाणुपुव्वीदव्वाइं सेसदव्वाणं कइभागे होज्जा किं संखिज्जइभागे होज्जा असंखिज्जइभागे होज्जा संखेज्जेसु भागेसु होज्जा असंखेज्जेसु भागेसु होज्जा ?, नो संखेज्जइभागे होज्जा नो असंखेज्जइभागे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [८७]

दीप अनुक्रम [९८]

होज्जा नो संखेज्जेसु भागेसु होज्जा असंखेज्जेसु भागेसु होज्जा । एवं अवत्तव्वगदव्वा-
णिवि भाणिअव्वाणि (सू० ८७)

नैगमव्यवहारयोरव्यणुकस्कन्धादीन्यनन्ताणुकस्कन्धपर्यन्तानि सर्वाण्यप्यानुपूर्वीद्रव्याणि शेषद्रव्याणां समस्तानामनानुपूर्व्यवक्तव्यकद्रव्यलक्षणानां 'कइभागे होज्ज'त्ति कतिभागे भवन्तीत्यर्थः, किं सङ्ख्यातमे भागे भवन्ति, यथा असत्कल्पनया शतस्य विंशतिमिताः, किमसङ्ख्यातमे भागे भवन्ति ?, यथा शतस्यैव दश, अथ सङ्ख्यातेषु भागेषु भवन्ति ?, यथा शतस्यैव चत्वारिंशत् षष्टिर्वा, किमसङ्ख्यातेषु भागेषु भवन्ति, यथा शतस्यैवाशीतिरिति प्रश्नः, अत्र निर्वचनम्—'नो संखेज्जइभागे होज्जा'इत्यादि, नियमात् 'असंखेज्जेसु भागेसु होज्ज'त्ति, इह तृतीयार्थे सप्तमी, ततश्चानुपूर्वीद्रव्याणि शेषेभ्योऽनानुपूर्व्यवक्तव्यकद्रव्येभ्योऽसङ्ख्येयैर्भागैरधिकानि, भवन्तीति वाक्यशेषो द्रष्टव्यः, ततश्चायमर्थः प्रतिपत्तव्यः–आनुपूर्वीद्रव्याणि शेषद्रव्येभ्योऽसङ्ख्येयगुणानि, शेषद्रव्याणि तु तदसङ्ख्येयभागे वर्तन्ते, न पुनः शतस्याशीतिरिवानुपूर्वीद्रव्याणि शेषेभ्यः स्तोकानीति, कस्मादेवं व्याख्यायते ?, स्तोकान्यपि तानि भवन्त्विति चेत्, नैतदेवम्, अघटमानत्वात्, तथाहि–अनानुपूर्व्यवक्तव्यकद्रव्येषु एकाकिनः परमाणुपुद्गला द्व्यणुकाश्च स्कन्धा इत्येतावन्त्येव द्रव्याणि लभ्यन्ते, शेषाणि तु व्यणुकस्कन्धादीन्यनन्ताणुकस्कन्धपर्यन्तानि द्रव्याणि समस्तान्यप्यानुपूर्वीरूपाण्येव,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तानि च पूर्वेभ्योऽसङ्ख्येयगुणानि, यत उक्तम्—"एएसि णं भंते! परमाणुपोग्गलाणं संखिज्जपएसियाणं असंखेज्जपएसियाणं अणंतपएसियाण य खंधाणं कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा?, गोयमा! सव्वत्थोवा अणंतपएसिया खंधा, परमाणुपोग्गला अणंतगुणा, संखिज्जपएसिआ खंधा संखिज्जगुणा, असंखेज्जपएसिया खंधा असंखेज्जगुणा" तदत्र सूत्रे पुद्गलजातेः सर्वस्या अपि सकाशादसङ्ख्यातप्रदेशिकाः स्कन्धा असङ्ख्यातगुणा उक्ताः, ते चाऽऽनुपूर्व्यामन्तर्भवन्ति, अतस्तदपेक्षया आनुपूर्वीद्रव्याणि शेषात् समस्तादपि द्रव्यादसङ्ख्यातगुणानि, किं पुनरनानुपूर्व्यवक्तव्यकद्रव्यमात्रात्, ततो यथोक्तमेव व्याख्यानं कर्तव्यमित्यलं विस्तरेण । 'अणाणुपुव्वीदव्वाइ'मित्यादि, इहानानुपूर्वीद्रव्याण्यवक्तव्यकद्रव्याणि च शेषद्रव्याणां यथाऽसङ्ख्यातितम एव भागे भवन्ति, न शेषभागेषु, तथाऽनन्तरोक्तन्यायादेव भावनीयमिति ॥ ८७ ॥ उक्तं भागद्वारं, साम्प्रतं भावद्वारमाह—

णेगमववहाराणं आणुपुव्वीदव्वाइं कतरंमि भावे होज्जा? किं उदइए भावे होज्जा उवसमिए भावे होज्जा खइए भावे होज्जा खओवसमिए भावे होज्जा पारिणामिए भावे

१ एतेषां भदन्त! परमाणुपुद्गलानां सङ्ख्येयप्रदेशिकानामसङ्ख्येयप्रदेशिकानामनन्तप्रदेशिकानां च स्कन्धानां के केभ्योऽल्पा वा बहुका वा तुल्या वा विशेषाधिका वा?, गौतम! सर्वस्तोका अनन्तप्रदेशिकाः स्कन्धाः परमाणुपुद्गला अनन्तगुणाः सङ्ख्येयप्रदेशिकाः स्कन्धाः सङ्ख्येयगुणाः असङ्ख्येयप्रदेशिकाः स्कन्धा असङ्ख्येयगुणाः.

॥ ६६ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

होज्जा संनिवाइए भावे होज्जा ?, णियमा साइपारिणामिए भावे होज्जा, अणाणुपुव्वी-दव्वाणि अवत्तव्वगदव्वाणि अ एवं चेव भाणिअव्वाणि (सू० ८८)

णेगमववहाराणमित्यादि प्रश्नः, अत्र चौदयिकादिभावानां शब्दार्थौ भावार्थश्च विस्तरेणोपरिष्टात् स्वस्थान एव वक्ष्यते, अत्र निर्वचनसूत्रे 'नियमा साइपारिणामिए भावे होज्ज'त्ति परिणमनं–द्रव्यस्य तेन तेन रूपेण वर्तनं–भवनं परिणामः, स एव पारिणामिकः, तत्र भवस्तेन वा निर्वृत्त इति वा पारिणामिकः, स च द्विविधः–सादिरनादिश्च, तत्र धर्मास्तिकायाद्यरूपिद्रव्याणामनादिः परिणामः, अनादिकालात्तद्द्रव्यत्वेन तेषां परिणतत्वाद्, रूपिद्रव्याणां तु सादिः परिणामः, अभ्रेन्द्रधनुरादीनां तथापरिणतेरनादित्वाभावाद्, एवं च स्थिते 'नियमाद्' अवश्यंतयाऽऽनुपूर्वीद्रव्याणि सादिपारिणामिक एव भावे भवन्ति, आनुपूर्वीत्वपरिणतेरनादित्वासम्भवात्, विशिष्टैकपरिणामेन पुद्गलानामसङ्ख्येयकालमेवावस्थानादिति भावः । अनानुपूर्व्यवक्तव्यकद्रव्येष्वपीत्थमेव भावना कार्या इति ॥ ८८ ॥ उक्तं भावद्वारम्, इदानीमल्पबहुत्वद्वारं विभणिषुराह—

एएसिं णं भंते ! णेगमववहाराणं आणुपुव्वीदव्वाणं अणाणुपुव्वीदव्वाणं अवत्तव्वगदव्वाणं य दव्वट्ठयाए पएसट्ठयाए दव्वट्ठपएसट्ठयाए कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा

अनु. १२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [८९]

दीप अनुक्रम [१००]

बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?, गोयमा ! सव्वत्थोवाइं णेगमववहाराणं अवत्तव्वगदव्वाइं दव्वट्ठयाए अणाणुपुव्वीदव्वाइं दव्वट्ठयाए विसेसाहिआइं आणुपुव्वीदव्वाइं दव्वट्ठयाए असंखेज्जगुणाइं, पएसट्ठयाए णेगमववहाराणं सव्वत्थोवाइं अणाणुपुव्वीदव्वाइं अपएसट्ठयाए अवत्तव्वगदव्वाइं पएसट्ठयाए विसेसाहिआइं आणुपुव्वीदव्वाइं पएसट्ठयाए अणंतगुणाइं, दव्वट्ठपएसट्ठयाए सव्वत्थोवाइं णेगमववहाराणं अवत्तव्वगदव्वाइं दव्वट्ठयाए अणाणुपुव्वीदव्वाइं दव्वट्ठयाए अपएसट्ठयाए विसेसाहिआइं अवत्तव्वगदव्वाइं पएसट्ठयाए विसेसाहिआइं आणुपुव्वीदव्वाइं दव्वट्ठयाए असंखेज्जगुणाइं ताइं चेव पएसट्ठयाए अणंतगुणाइं, से तं अणुगमे, से तं नेगमववहाराणं अणोवणिहिआ दव्वाणुपुव्वी (सू० ८९)

द्रव्यमेवार्थो द्रव्यार्थः तस्य भावो द्रव्यार्थता तया, द्रव्यत्वेन इत्यर्थः, प्रकृष्टो–निरंशो देशः प्रदेशः स चासावर्थश्च प्रदेशार्थः तस्य भावः प्रदेशार्थता तया, परमाणुत्वेनेति भावः, द्रव्यार्थप्रदेशार्थतया तु यथोक्तोभयरूपतयेति भावः, तदयमर्थः–एतेषां भदन्त! आनुपूर्व्यादिद्रव्याणां मध्ये 'कयरे कयरेहिंतो'त्ति कतराणि कान्याश्रित्य

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

द्रव्यापेक्षया प्रदेशापेक्षया उभयापेक्षया वाऽल्पानि विशेषहीनत्वादिना बहूनि असङ्ख्येयगुणत्वादिना तुल्यानि समसङ्ख्यत्वेन विशेषाधिकानि किञ्चिदाधिक्येनेति, वाशब्दाः पक्षान्तरवृत्तिद्योतकाः, इति पृष्टेवाचः क्रमवर्तित्वाद् द्रव्यार्थतापेक्षया तावदुत्तरमुच्यते, तत्र–'सव्वत्थोवाइं नेगमववहाराणं अवत्तव्वगदव्वाइं दव्वट्ठयाए'त्ति नैगमव्यवहारयोः द्रव्यार्थतामपेक्ष्य तावदवक्तव्यकद्रव्याणि सर्वेभ्योऽन्येभ्यः स्तोकानि सर्वस्तोकानि, अनानुपूर्वीद्रव्याणि तु द्रव्यार्थतामेवापेक्ष्य विशेषाधिकानि, कथम् ?, वस्तुस्थितिस्वभावाद्, उक्तं च—" एएसि णं भंते! परमाणुपोग्गलाणं दुपएसियाण खंधाणं कयरे कयरेहिंतो बहुया ?, गोयमा ! दुपएसिएहिंतो खंधेहिंतो परमाणुपोग्गला बहुग"त्ति, तेभ्योऽपि आनुपूर्वीद्रव्याणि द्रव्यार्थतयैवासङ्ख्येयगुणानि, यतोऽनानुपूर्वीद्रव्येष्ववक्तव्यकद्रव्येषु च परमाणुलक्षणं द्व्यणुकस्कन्धलक्षणं चैकैकमेव स्थानं लभ्यते, आनुपूर्वीद्रव्येषु तु त्र्यणुकस्कन्धादीन्येकोत्तरवृद्ध्याऽनन्ताणुकस्कन्धपर्यन्तान्यनन्तानि स्थानानि प्राप्यन्ते, अतः स्थानबहुत्वादानुपूर्वीद्रव्याणि पूर्वेभ्योऽसङ्ख्यातगुणानि। ननु यदि तेषु स्थानान्यनन्तानि तर्ह्यनन्तगुणानि पूर्वेभ्यस्तानि कस्मान्न भवन्तीति चेत्, नैवं, यतोऽनन्ताणुकस्कन्धाः केवलानानुपूर्वीद्रव्येभ्योऽप्यनन्तभागवर्तित्वात् स्वभावादेव स्तोका इति न किञ्चित्तैरिह वर्द्धते, अतो वस्तुवृत्त्या किलासङ्ख्यातान्येव तेषु स्थानानि प्राप्यन्ते, तदपेक्षया त्वसङ्ख्यातगुणान्येव तानि, एतच्च पूर्वं भागद्वारे लिखितप्रज्ञापनासूत्रात् सर्वं भावनीयमित्यलं

१ एतेषां भदन्त ! परमाणुपुद्गलानां द्विप्रदेशिकानां स्कन्धानां कतरे कतरेभ्यो बहुकाः ?, गौतम ! द्विप्रदेशिकेभ्यः स्कन्धेभ्यः परमाणुपुद्गला बहुकाः.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [८९]

दीप अनुक्रम [१००]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[४५], चूलिकासूत्र-[२] अनुयोगद्वार मूलं एवं हेमचन्द्रसूरि-रचिता वृत्तिः

विस्तरेण । उक्तं द्रव्यार्थतया अल्पबहुत्वम्, इदानीं प्रदेशार्थतया तदेवाऽऽह—'पएसट्ठयाए सव्वत्थोवाइं नेगमववहाराण'मित्यादि, नैगमव्यवहारयोः प्रदेशार्थतया अल्पबहुत्वे चिन्त्यमाने अनानुपूर्वीद्रव्याणि सर्वेभ्यः स्तोकानि, कुत इत्याह—'अपएसट्ठयाए'त्ति प्रदेशलक्षणस्यार्थस्य तेष्वभावादित्यर्थः, यदि हि तेषु प्रदेशाः स्युस्तदा द्रव्यार्थतायामिव प्रदेशार्थतायामप्यवक्तव्यकापेक्षयाऽधिकत्वं स्यात्, न चैतदस्ति 'परमाणुरप्रदेश' इति वचनाद्, अतः सर्वस्तोकान्येतानि, ननु यदि प्रदेशार्थता तेषु नास्ति तर्हि तया विचारोऽपि तेषां न युक्त इति चेत्, नैतदेवं, प्रकृष्टः–सर्वसूक्ष्मः पुद्गलास्तिकायस्य देशो निरंशो भागः प्रदेश इति व्युत्पत्तेः प्रतिपरमाणु प्रदेशार्थताऽभ्युपगम्यत एव, आत्मव्यतिरिक्तप्रदेशान्तरापेक्षया त्वप्रदेशार्थतेत्यदोषः, अवक्तव्यकद्रव्याणि प्रदेशार्थतयाऽनानुपूर्वीद्रव्येभ्यो विशेषाधिकानि, यतः किलासत्कल्पनया अवक्तव्यकद्रव्याणां षष्टिः अनानुपूर्वीद्रव्याणां तु शतं, ततो द्रव्यार्थताविचारे एतानीतरापेक्षया विशेषाधिकान्युक्तानि, अत्र तु प्रदेशार्थताविचारेऽनानुपूर्वीद्रव्याणां निष्प्रदेशत्वात् तदेव शतमवस्थितम् अवक्तव्यकद्रव्याणां त्विह प्रत्येकं द्विप्रदेशत्वाद् द्विगुणितानां विंशत्युत्तरं प्रदेशशतं जायत इति तेषामितरेभ्यः प्रदेशार्थतया विशेषाधिकत्वं भावनीयम् । आनुपूर्वीद्रव्याणि प्रदेशार्थतया अवक्तव्यकद्रव्येभ्योऽनन्तगुणानि भवन्ति, कथम् ?, यतो द्रव्यार्थतयाऽपि तावदेतानि पूर्वेभ्योऽसङ्ख्यातगुणान्युक्तानि, यदा तु सङ्ख्यातप्रदेशिकस्कन्धानामसङ्ख्यातप्रदेशिकस्कन्धानामनन्ताणुकस्कन्धानां च सम्बन्धिनः सर्वेऽपि प्रदेशा विवक्ष्यन्ते तदा महानसौ राशिर्भव-

॥ ६८ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [८९]

दीप अनुक्रम [१००]

तीति प्रदेशार्थतयाऽमीषां पूर्वेभ्योऽनन्तगुणत्वं भावनीयम्। उक्तं प्रदेशार्थतयाऽल्पबहुत्वम्, इदानीमुभयार्थतामाश्रित्य तदाह—'दव्वट्ठपएसट्ठयाए'इत्यादि, इहोभयार्थताधिकारेऽपि यदेवाल्पं तदेवादौ दर्श्यते, अवक्तव्यकद्रव्याणि च सर्वाल्पानि इति प्रथममेवोक्तम्, 'सव्वत्थोवाइं णेगमववहाराणं अवत्तव्वगदव्वाइं दव्वट्ठयाए'त्ति(च), अपरं चोभयार्थताधिकारेऽपि 'अणाणुपुव्वीदव्वाइं दव्वट्ठयाए'इत्यादि यदुक्तम् 'अपएसट्ठयाए'त्ति, तदात्मव्यतिरिक्तप्रदेशान्तराभावतोऽनानुपूर्वीद्रव्याणामप्रदेशिकत्वादिति मन्तव्यं, ततश्चेदमुक्तं भवति–द्रव्यार्थतया अप्रदेशार्थतया च विशिष्टान्यनानुपूर्वीद्रव्याण्यवक्तव्यकद्रव्येभ्यो विशेषाधिकानि, शेषभावना तु प्रत्येकचिन्तावत् सर्वा कार्या। आह–यद्येवं प्रत्येकचिन्तायामेव प्रस्तुतोऽर्थः सिद्धः किमनयोभयार्थताचिन्तयेति चेत्, नैवं, यत आनुपूर्वीद्रव्येभ्यस्तत्प्रदेशाः कियताऽप्यधिका इति प्रत्येकचिन्तायां न निश्चितम्, अत्र तु 'ताइं चेव पएसट्ठयाए अणंतगुणाइं' इत्यनेन तन्निर्णीतमेव, ततोऽनवगतार्थप्रतिपादनार्थत्वात् प्रत्येकावस्थातो भिन्नैवोभयावस्था वस्तूनामिति दर्शनार्थत्वाच्च युक्तमेवोभयार्थताचिन्तनमित्यदोषः। तदेवमुक्तो नवविधोऽप्यनुगम इति निगमयति–'से तं अणुगमे'त्ति। तद्गुणने च समर्थिता नैगमव्यवहारयोरनौपनिधिकी द्रव्यानुपूर्वी इति निगमयति—'से तं नैगमे'त्यादि ॥ ८९ ॥ व्याख्याता नैगमव्यवहारनयमतेन अनौपनिधिकी द्रव्यानुपूर्वी, साम्प्रतं संग्रहनयमतेन तामेव व्याचिख्यासुराह—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [९०]

दीप अनुक्रम [१०१]

अनुयो० मलधारीया ॥ ६९ ॥

से किं तं संगहस्स अणोवणिहिआ दव्वाणुपुव्वी ?, २ पंचविहा पण्णत्ता, तंजहा– अट्ठपयपरूवणया १ भंगसमुक्कित्तणया २ भंगोवदंसणया ३ समोआरे ४ अणुगमे ५ (सू० ९०)

सामान्यमात्रसंग्रहणशीलः संग्रहो नयः, अथ तस्य संग्रहनयस्य किं तद्वस्त्वनौपनिधिकी द्रव्यानुपूर्वीति प्रश्नः, आह–ननु नैगमसंग्रहव्यवहारेत्यादिसूत्रक्रमप्रामाण्यान्नैगमानन्तरं संग्रहस्योपन्यासो युक्तः, तत्किमिति व्यवहारमपि निर्दिश्य ततोऽयमुच्यत इति, सत्यं, किन्तु नैगमव्यवहारयोरत्र तुल्यमतत्वाल्लाघवार्थं युगपत् तन्निर्देशं कृत्वा पश्चात् संग्रहो निर्दिष्ट इत्यदोषः। अत्र निर्वचनमाह—'संगहस्स अणोवणिहिया दव्वाणुपुव्वी पंचविहा पण्णत्त'त्ति, संग्रहनयमतेनाप्यनौपनिधिकी द्रव्यानुपूर्वी–प्राग्निरूपितशब्दार्थो पञ्चभिरर्थपदप्ररूपणतादिभिः प्रकारैर्विचार्यमाणत्वात् पञ्चविधा–पञ्चप्रकारा प्रज्ञप्ता। तदेव दर्शयति—'तंजहे'त्यादि, अत्र व्याख्या पूर्ववदेव ॥ ९० ॥

से किं तं संगहस्स अट्ठपयपरूवणया ?, २ तिपएसिए आणुपुव्वी चउप्पएसिए आणुपुव्वी जाव दसपएसिए आणुपुव्वी संखिज्जपएसिए आणुपुव्वी असंखिज्जपएसिए

वृत्तिः उपक्रमाधि०

॥ ६९ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [९१]

दीप अनुक्रम [१०२]

आणुपुव्वी अणंतपएसिए आणुपुव्वी परमाणुपोग्गले अणाणुपुव्वी दुपएसिए अवत्त-
व्वए, से तं संगहस्स अट्ठपयपरूवणया (सू० ९१)

यावत् 'तिपएसिए आणुपुव्वी'इत्यादि, इह पूर्वमेकस्त्रिप्रदेशिक आनुपूर्वी अनेके त्रिप्रदेशिका आनुपूर्व्य इत्याद्युक्तम्, अत्र तु संग्रहस्य सामान्यवादित्वात् सर्वेऽपि त्रिप्रदेशिका एकैवाऽऽनुपूर्वी, इमां चात्र युक्तिमयमभिधत्ते–त्रिप्रदेशिकाः स्कन्धास्त्रिप्रदेशिकत्वसामान्याद् व्यतिरेकिणोऽव्यतिरेकिणो वा?, यद्याद्यः पक्षस्तर्हि ते त्रिप्रदेशिकाः स्कन्धाः त्रिप्रदेशिका एव न भवन्ति, तत्सामान्यव्यतिरिक्तत्वात्, द्विप्रदेशिकादिवदिति, अथ चरमः पक्षस्तर्हि सामान्यमेव ते, तदव्यतिरेकात्, तत्स्वरूपवत्, सामान्यं चैकस्वरूपमेवेति सर्वेऽपि त्रिप्रदेशिका एकैवानुपूर्वी, एवं चतुष्प्रदेशिकत्वसामान्याव्यतिरेकात् सर्वेऽपि चतुष्प्रदेशिका एकैवानुपूर्वी, एवं यावदनन्तप्रदेशिकत्वसामान्याव्यतिरेकात् सर्वेऽप्यनन्तप्रदेशिका एकैवाऽऽनुपूर्वी इत्यविशुद्धसंग्रहनयमतं, विशुद्धसंग्रहनयमतेन तु सर्वेषां त्रिप्रदेशिकादीनामनन्ताणुकपर्यन्तानां स्कन्धानामानुपूर्वीत्वसामान्याव्यतिरेकाद्व्यतिरिक्ते चानुपूर्वीत्वाभावप्रसङ्गात् सर्वाऽप्येकैवानुपूर्वीति । एवमनानुपूर्वीत्वसामान्याव्यतिरेकात् सर्वेऽपि परमाणुपुद्गला एकैवानानुपूर्वी, तथाऽवक्तव्यकत्वसामान्याव्यतिरेकात् सर्वेऽपि द्विप्रदेशिकस्कन्धा एकमेवावक्तव्यकमिति सामान्यवादित्वेन सर्वत्र बहुवचनाभावः, 'से त'मित्यादि निगमनम् ॥ ९१ ॥ भङ्गसमुत्कीर्तनतां निर्दिदिक्षुराह—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [९१]

दीप अनुक्रम [१०२]

एआए णं संगहस्स अट्ठपयपरूवणयाए किं पओअणं ?, एआए णं संगहस्स अट्ठपयपरूवणयाए संगहस्स भंगसमुक्कित्तणया कज्जइ ॥ से किं तं संगहस्स भंगसमुक्कित्तणया ?, २ अत्थि आणुपुव्वी १ अत्थि अणाणुपुव्वी २ अत्थि अवत्तव्वए ३, अहवा अत्थि आणुपुव्वी अ अणाणुपुव्वी अ ४ अहवा अत्थि आणुपुव्वी अ अवत्तव्वए अ ५ अहवा अत्थि अणाणुपुव्वी अ अवत्तव्वए अ ६ अहवा अत्थि आणुपुव्वी अ अणाणुपुव्वी अ अवत्तव्वए अ ७, एवं सत्त भंगा, से तं संगहस्स भंगसमुक्कित्तणया ॥ एआए णं संगहस्स भंगसमुक्कित्तणयाए किं पओयणं ?, एयाए णं संगहस्स भंगसमुक्कित्तणयाए संगहस्स भंगोवदंसणया कीरइ (सू० ९२)

अत्रापि व्याख्या कृतैव द्रष्टव्या यावत् 'अत्थि आणुपुव्वी'त्यादि, इहैकवचनान्तास्त्रय एव प्रत्येकभङ्गाः, सामान्यवादित्वेन व्यक्तिबहुत्वाभावतो बहुवचनाभावाद्, आनुपूर्व्यादिपदत्रयस्य च त्रयो द्विकसंयोगा भवन्ति, एकैकस्मिंश्च द्विकयोगे एकवचनान्त एक एव भङ्गः, त्रिकयोगेऽपि एक एवैकवचनान्त इति, सर्वेऽपि सप्त-भङ्गाः संपद्यन्ते, शेषास्त्वेकोनविंशतिर्बहुवचनसम्भवित्वान्न भवन्ति। अत्र स्थापना–आनुपूर्वी १ अनानु-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [९२]

दीप अनुक्रम [१०४]

पूर्वी १ अवक्तव्यक १ इति त्रयः प्रत्येकभङ्गाः, आनुपूर्वी १ अनानुपूर्वी १ इति प्रथमो द्विकयोगः, आनुपूर्वी १ अवक्तव्यक १ इति द्वितीयो द्विकयोगः, अनानुपूर्वी अवक्तव्यक इति तृतीयो द्विकयोगः, आनुपूर्वी १ अनानुपूर्वी १ अवक्तव्यक १ इति त्रिकयोगः, एवमेते सप्त भङ्गाः। 'से त'मित्यादि निगमनम् ॥ ९२ ॥ भङ्गोपदर्शनतां बिभणिषुराह—

से किं तं संगहस्स भंगोवदंसणया ?, २ तिपएसिया आणुपुव्वी परमाणुपोग्गला अणाणुपुव्वी दुपएसिया अवत्तव्वए, अहवा तिपएसिया य परमाणुपोग्गला य आणुपुव्वी य अणाणुपुव्वी य, अहवा तिपएसिया य दुपएसिया य आणुपुव्वी य अवत्तव्वए य अहवा परमाणुपोग्गला य दुपएसिया य अणाणुपुव्वी य अवत्तव्वए य अहवा तिपएसिया य परमाणुपोग्गला य दुपएसिया य आणुपुव्वी य अणाणुपुव्वी य अवत्तव्वए य, से तं संगहस्स भंगोवदंसणया (सू० ९३)

से किं तं संगहस्स समोयारे ?, २ संगहस्स आणुपुव्वीदव्वाइं कहिं समोयरंति ?, किं आणुपुव्वीदव्वेहिं समोयरंति ? अणाणुपुव्वीदव्वेहिं समोयरंति ? अवत्तव्वगदव्वेहिं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [९४]

दीप अनुक्रम [१०५]

समोयरंति ?, संगहस्स आणुपुव्वीदव्वाइं आणुपुव्वीदव्वेहिं समोयरंति नो अणाणुपुव्वीदव्वेहिं समोयरंति नो अवत्तव्वगदव्वेहिं समोयरंति, एवं दोन्निवि सट्ठाणे सट्ठाणे समोयरंति, से तं समोयारे (सू० ९४)

अत्रापि सप्तभङ्गास्त एवार्थकथनपुरस्सरा भावनीयाः, भावार्थस्तु सर्वः पूर्ववत्, 'से त'मित्यादि निगमनम् । अथ समवतारामिधित्सया प्राह—'से किं तं संगहस्स समोयारे'इत्यादि, इदं च द्वारं पूर्ववन्निखिलं भावनीयम् ॥ ९३–९४ ॥ अथानुगमं व्याचिख्यासुराह—

से किं तं अणुगमे ?, २ अट्ठविहे पन्नत्ते, तंजहा—संतपयपरूवणया दव्वपमाणं च खित्त-फुसणा य । कालो य अंतरं भाग भावे अप्पाबहुं नत्थि ॥ १ ॥ संगहस्स आणुपुव्वीदव्वाइं किं अत्थि णत्थि ?, नियमा अत्थि, एवं दोन्निवि । संगहस्स आणुपुव्वीदव्वाइं किं संखिज्जाइं असंखेज्जाइं अणंताइं ?, नो संखेज्जाइं नो असंखेज्जाइं नो अणंताइं नियमा एगो रासी, एवं दोन्निवि । संगहस्स आणुपुव्वीदव्वाइं लोगस्स कइभागे होज्जा ? किं संखेज्जइभागे होज्जा असंखेज्जइभागे होज्जा संखेज्जेसु भागेसु होज्जा असं-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [९५] + गाथा ||१||

दीप अनुक्रम [१०६--१०८]

खेज्जेसु भागेसु होज्जा सव्वलोए होज्जा ?, नो संखेज्जइभागे होज्जा नोअसंखेज्जइभागे होज्जा नो संखेज्जेसु भागेसु होज्जा नो असंखेज्जेसु भागेसु होज्जा नियमा सव्वलोए होज्जा, एवं दोन्निवि । संगहस्स आणुपुव्वीदव्वाइं लोगस्स किं संखेज्जइभागं फुसंति असंखेज्जइभागं फुसंति संखिज्जे भागे फुसंति असंखिज्जे भागे फुसंति सव्वलोगं फुसंति ?, नो संखेज्जइभागं फुसंति जाव नियमा सव्वलोगं फुसंति, एवं दोन्निवि । संगहस्स आणुपुव्वीदव्वाइं कालओ केवच्चिरं होंति ?, सव्वद्धा, एवं दोण्णिवि । संगहस्स आणुपुव्वीदव्वाणं कालतो केवच्चिरं अंतरं होंति ?, नत्थि अंतरं, एवं दोण्णिवि । संगहस्स आणुपुव्वीदव्वाइं सेसदव्वाणं कइभागे होज्जा ? किं संखेज्जइभागे होज्जा असंखेज्जइभागे होज्जा संखेज्जेसु भागेसु होज्जा असंखेज्जेसु भागेसु होज्जा ?, नो संखेज्जइभागे होज्जा नो असंखेज्जइभागे होज्जा नो संखेज्जेसु भागेसु होज्जा नो असंखेज्जेसु भागेसु होज्जा नियमा तिभागे होज्जा, एवं दोन्निवि ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [९५] + गाथा ॥१॥

दीप अनुक्रम [१०६--१०८]

अनुयो० मलधारीया ॥ ७२ ॥

संगहस्स आणुपुव्वीदव्वाइं कयरंमि भावे होज्जा ?, नियमा साइपारिणामिए भावे होज्जा, एवं दोन्निवि। अप्पाबहुं नत्थि। से तं अणुगमे, से तं संगहस्स अणोवणिहिया दव्वाणुपुव्वी, से तं अणोवणिहिया दव्वाणुपुव्वी (सू० ९५)

अत्रोत्तरम्—'अणुगमे अट्ठविहे पन्नत्ते'इति पूर्वं नवविध उक्तोऽत्र त्वष्टविध एव, अल्पबहुत्वद्वाराभावात्, तदेवाष्टविधत्वं दर्शयति-तद्यथेत्युपदर्शनार्थः, 'संतपय'गाहा, इयं पूर्वं व्याख्यातैव, नवरं 'अप्पाबहुं नत्थि' संग्रहस्य सामान्यवादित्वात् सामान्यस्य च सर्वत्रैकत्वादल्पबहुत्वविचारोऽत्र न संभवतीत्यर्थः। तत्र सत्पदप्ररूपणताभिधानार्थमाह—'संगहस्से'त्यादि, ननु संग्रहविचारे प्रक्रान्ते आनुपूर्वीद्रव्याणि सन्तीत्यनुपपन्नम्, आनुपूर्वीसामान्यस्यैवैकस्य तेनास्तित्वाभ्युपगमात्, सत्यं, मुख्यरूपतया सामान्यमेवास्ति, गुणभूतं च व्यवहारमात्रनिबन्धनं द्रव्यबाहुल्यमप्यसौ वदतीत्यदोषः; शेषभावना पूर्ववदिति। द्रव्यप्रमाणद्वारे यदुक्तं 'नियमा एगो रासि'त्ति, अत्राह–ननु यदि सङ्ख्येयादिस्वरूपाणि एतानि न भवन्ति तर्ह्येको राशिरित्यपि नोपपद्यते, द्रव्यबाहुल्ये सति तस्योपपद्यमानत्वाद्, व्रीह्यादिराशिषु तथैव दर्शनात्, सत्यं, किन्त्वेको राशिरिति वदतः कोऽभिप्रायः ?, बहूनामपि तेषामानुपूर्वीत्वसामान्येनैकेन क्रोडीकृतत्वादेकत्वमेव, किं च–यथा विशिष्टैकपरिणामपरिणते स्कन्धे तदारम्भकावयवानां बाहुल्येऽप्येकतैव मुख्या, तद्वदत्राऽऽनुपूर्वीद्रव्यबाहुल्येऽपि

वृत्तिः उपक्रमाधि० ॥ ७२ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[४५], चूलिकासूत्र-[२] अनुयोगद्वार मूलं एवं हेमचन्द्रसूरि-रचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [९५] + गाथा ॥१॥

दीप अनुक्रम [१०६--१०८]

तत्सामान्यस्यैकरूपत्वादेकत्वमेव मुख्यमसौ नयः प्रतिपद्यते, तद्वशेनैव तेषामानुपूर्वीत्वसिद्धेः, अन्यथा तद्भावप्रसङ्गात्, तस्मान्मुख्यस्यैकत्वस्यानेन कक्षीकृतत्वात् सङ्ख्येयरूपतादिनिषेधो गुणभूतानि द्रव्याण्याश्रित्य राशिभावोऽपि न विरुध्यते, एवमन्यत्रापि भावनीयमित्यलं प्रपञ्चेन। क्षेत्रद्वारे 'नियमा सव्वलोए होज्ज'त्ति आनुपूर्वीसामान्यस्यैकत्वात् सर्वलोकव्यापित्वाच्चेति भावनीयम्, एवमितरद्वयेऽप्यभ्यूह्यमिति। स्पर्शनाद्वारमप्येवमेव चिन्तनीयमिति। कालद्वारेऽपि तत्सामान्यस्य सर्वदाऽव्यवच्छिन्नत्वात् त्रयाणामपि सर्वाद्धाऽवस्थानं भावनीयमिति, अत एवान्तरद्वारे नास्त्यन्तरमित्युक्तं, तद्भावव्यवच्छेदस्य कदाचिदप्यभावादिति। भागद्वारे 'नियमा तिभागे होज्ज'त्ति त्रयाणां राशीनामेको राशिस्त्रिभाग एव वर्तत इति भावः, यत्तु राशिगतद्रव्याणां पूर्वोक्तमल्पबहुत्वं तदत्र न गण्यते, द्रव्याणां प्रस्तुतनयमते व्यवहारसंवृत्तिमात्रेणैव सत्त्वादिति। भावद्वारे 'सादिपारिणामिए भावे होज्ज'त्ति यथा आनुपूर्व्यादिद्रव्याणामेतद्भाववर्तित्वं पूर्वं भावितं तथाऽत्रापि भावनीयं, तेषां यथास्वं सामान्यादव्यतिरिक्तत्वादिति। अल्पबहुत्वद्वारासम्भवस्तूक्त एव, इति समर्थितोऽनुगमः, तत्समर्थने च समर्थिता संग्रहमतेनानौपनिधिकी द्रव्यानुपूर्वी, तत्समर्थने च व्याख्याता सर्वथाऽपीयम्, अतः 'से त'मित्यादि निगमनत्रयम् ॥ ९५ ॥ गताऽनौपनिधिकीद्रव्यानुपूर्वी, साम्प्रतं प्रागुद्दिष्टामेवौपनिधिकीं तां व्याचिख्यासुराह—

अनु. १३

१ आनुपूर्वीसामान्यस्यैकरूपत्वात् एकत्वमेव मुख्यमसौ नयः प्रतिपद्यते, तद्वशेनैव तेषामानुपूर्वीद्वारमपि (प्र.) इदमेकत्वबोधनाय टीप्पितमभविष्यदिति लक्षयित्वोपेक्षितम्.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [९६]

दीप अनुक्रम [१०९]

से किं तं उवणिहिया दव्वाणुपुव्वी ?, २ तिविहा पन्नत्ता, तंजहा–पुव्वाणुपुव्वी पच्छाणुपुव्वी अणाणुपुव्वी य (सू० ९६)

अथ केयं प्रागनिर्णीतशब्दार्थमात्रा औपनिधिकी द्रव्यानुपूर्वीति प्रश्नः, अत्र निर्व्वचनम्–औपनिधिकी-द्रव्यानुपूर्वी त्रिविधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा–पूर्व्वानुपूर्वीत्यादि, उपनिधिर्निक्षेपो विरचनं प्रयोजनमस्या इत्यौपनिधिकी द्रव्यविषयाऽऽनुपूर्वी–परिपाटिर्द्रव्यानुपूर्वी, सा त्रिप्रकारा, तत्र विवक्षितधर्म्मास्तिकायादिद्रव्यविशेषसमुदाये यः पूर्वः–प्रथमस्तस्मादारभ्यानुपूर्वी–अनुक्रमः परिपाटिः निक्षिप्यते विरच्यते यस्यां सा पूर्वानुपूर्वी, तत्रैव यः पाश्चात्यः–चरमस्तस्मादारभ्य व्यत्ययेनैवानुपूर्वी–परिपाटिः विरच्यते यस्यां सा निरुक्तविधिना पश्चानुपूर्वी, न आनुपूर्वी अनानुपूर्वी, यथोक्तप्रकारद्वयातिरिक्तस्वरूपेत्यर्थः ॥ ९६ ॥ तत्राद्यभेदं तावन्निरूपयितुं प्रश्नमाह—

से किं तं पुव्वाणुपुव्वी ?, २ धम्मत्थिकाए अधम्मत्थिकाए आगासत्थिकाए जीवत्थिकाए पोग्गलत्थिकाए अद्धासमए, से तं पुव्वाणुपुव्वी । से किं तं पच्छाणुपुव्वी ?, २ अद्धासमए पोग्गलत्थिकाए जीवत्थिकाए आगासत्थिकाए अहम्मत्थिकाए धम्मत्थि-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [९७]

दीप अनुक्रम [११०]

काए, से तं पच्छाणुपुव्वी। से किं तं अणाणुपुव्वी?, २ एयाए चेव एगाइआए एगुत्तरिआए छगच्छगयाए सेढीए अण्णमण्णब्भासो दूरूवूणो से तं अणाणुपुव्वी (सू०९७)

इह च द्रव्यानुपूर्व्यधिकाराद् धर्मास्तिकायादीनामेव च द्रव्यत्वादित्थं निर्वचनमाह—'धम्मत्थिकाए' इत्यादि, तत्र जीवपुद्गलानां स्वत एव गतिक्रियापरिणतानां तत्स्वभावधारणाद् धर्मः, अस्तयः–प्रदेशास्तेषां कायः–सङ्घातोऽस्तिकायः, धर्म्मश्चासावस्तिकायश्चेति समासः, सकललोकव्याप्यसङ्ख्येयप्रदेशात्मकोऽमूर्तद्रव्यविशेष इत्यर्थः, जीवपुद्गलानामेव तथैव गतिपरिणतानां तत्स्वभावाधारणादधर्मः, जीवपुद्गलानां स्थित्युपष्टम्भकारक इत्यर्थः, शेषं धर्मास्तिकायवत् सर्वं, सर्वभावावकाशनादाकाशम्, आ–मर्यादया तत्संयोगेऽपि स्वकीयस्वरूपेऽवस्थानतः सर्वथा तत्स्वरूपत्वाप्राप्तिलक्षणया प्रकाशन्ते–स्वभावलाभेन अवस्थितिकरणेन च दीप्यन्ते पदार्थसार्थो यत्र तदाकाशमिति, अथवा आ–अभिविधिना सर्वात्मना तत्संयोगानुभवनलक्षणेन काशन्ते–तत्रैव दीप्यन्ते पदार्था यत्र तदाकाशमिति भावः, तच्च तदस्तिकायश्चेति आकाशास्तिकायः, लोकालोकव्याप्यनन्तप्रदेशात्मकोऽमूर्तद्रव्यविशेष इत्यर्थः, जीवन्ति जीविष्यन्ति जीवितवन्त इति जीवाः ते च तेऽस्तिकायाश्चेति समासः, प्रत्येकमसंख्येयप्रदेशात्मकसकललोकभाविनानाजीवद्रव्यसमूह इत्यर्थः, पूरणगलनधर्म्माणः पुद्गलाः–परमाण्वादयोऽनन्ताणुकस्कन्धपर्यन्ताः, ते हि कुतश्चिद्द्रव्याद्गलन्ति–वियुज्यन्ते किञ्चित्तु द्रव्यं तत्संयोगतः पूरयन्तीति भावः, ते च तेऽस्तिकायाश्चेति समासः, अद्धाशब्दः कालवचनः

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समयः सङ्केतादिवाचकोऽप्यस्ति ततो विशिष्यते–अद्धारूपः समयोऽद्धासमयः, वक्ष्यमाणपट्टसाटिकादिपाटनदृष्टान्तसिद्धः सर्वसूक्ष्मः पूर्वापरकोटिविप्रमुक्तो वर्तमान एकः कालांश इत्यर्थः, अत एवात्र अस्तिकायत्वाभावः, बहुप्रदेशत्व एव तद्भावाद्, अत्र त्वतीतानागतयोर्विनष्टानुत्पन्नत्वेन वर्तमानस्यैकस्यैव कालप्रदेशस्य सद्भावात्, नन्वेवमावलिकादिकालाभावः, समयबहुत्व एव तदुपपत्तेरिति चेद्, भवतु तर्हि को निवारयिता?, 'समयावलियमुहुत्ता दिवसमहोरत्तपक्खमासा य' इत्याद्यागमविरोध इति चेत्, नैवम्, अभिप्रायापरिज्ञानाद्, व्यवहारनयमतेनैव तत्र तत्सत्त्वाभ्युपगमाद्, अत्र तु निश्चयनयमतेन तदसत्त्वप्रतिपादनात्, न हि पुद्गलस्कन्धे परमाणुसङ्घात इवावलिकादिषु समयसङ्घातः कश्चिद्वस्थितः समस्तीति तदसत्त्वमसौ प्रतिपद्यत इत्यलं चर्चयेति । अत्र च जीवपुद्गलानां गत्यन्यथाऽनुपपत्तेर्धर्मास्तिकायस्य तेषामेव स्थित्यन्यथाऽनुपपत्तेरधर्मास्तिकायस्य सत्त्वं प्रतिपत्तव्यं, न च वक्तव्यं तद्गतिस्थिती च भविष्यतो धर्माधर्मास्तिकायौ च न भविष्यत इति प्रतिबन्धाभावादेनकान्तिकतेति, तावन्तरेणापि तद्भवनेऽलोकेऽपि तत्प्रसङ्गात्, यदि तु अलोकेऽपि तद्गतिस्थिती स्यातां तदाऽलोकस्यानन्तत्वाल्लोकान्निर्गत्य जीवपुद्गलानां तत्र प्रवेशादेकद्वित्र्यादिजीवपुद्गलयुक्तः सर्वथा तच्छून्यो वा कदाचिल्लोकः स्यात्, न चैतदृष्टमिष्टं वेत्याद्यन्यदपि दूषणजालमस्ति, न चोच्यते ग्रन्थविस्तरभयादिति । आकाशं तु जीवादिपदार्थानामाधारान्य-

१ समय आवलिका मुहूर्त्तो दिवसोऽहोरात्रं पक्षो मासश्च.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [९७]

दीप अनुक्रम [११०]

थाऽनुपपत्तेरस्तीति श्रद्धेयं, न च धर्माधर्मास्तिकायावेव तदाधारौ भविष्यत इति वक्तव्यं, तयोस्तद्गतिस्थितिसाधकत्वेनोक्तत्वात्, न चान्यसाध्यं कार्यमन्यः साधयति, अतिप्रसङ्गादिति। घटादिज्ञानगुणस्य प्रतिप्राणि स्वसंवेदनसिद्धत्वाज्जीवस्यास्तित्वमवसातव्यं, न च गुणिनमन्तरेण गुणसत्ता युक्ता, अतिप्रसङ्गात्, न च देह एवास्य गुणी युज्यते, यतो ज्ञानममूर्त्तं चिद्रूपं सदैवेन्द्रियगोचरातीतत्वादिधर्म्मोपेतम्, अतः तस्यानुरूप एव कश्चिद्गुणी समन्वेषणीयः, स च जीव एव न तु देहो, विपरीतत्वाद्, यदि पुनरननुरूपोऽपि गुणानां गुणी कल्प्यते तर्ह्यनवस्था, रूपादिगुणानामप्याकाशादेर्गुणित्वकल्पनाप्रसङ्गादिति। पुद्गलास्तिकायस्य तु घटादिकार्यान्यथानुपपत्तेः प्रत्यक्षत्वाच्च सत्त्वं प्रतीतमेवेति। कालोऽप्यस्ति बकुलाशोकचम्पकादिषु पुष्पफलप्रदानस्यानियमेनादर्शनाद्, यस्तु तत्र नियामकः स काल इति, स्वभावादेव तु तद्भवने 'नित्यं सत्त्वमसत्त्वं वे'त्यादिदूषणप्रसङ्गः, अत्र बहु वक्तव्यं तत्तु नोच्यते, ग्रन्थदुरवगमताभयादिति। आह–धर्मास्तिकायस्य प्राथम्यमधर्मास्तिकायादीनां तु तदनन्तरं क्रमेणेत्थं निर्देशः कुतः सिद्धो? येनात्र पूर्वानुपूर्वीरूपता स्यादिति, अत्रोच्यते, आगमे इत्थमेव पठितत्वात्, तत्रापि कथमित्थमेव पाठ इति चेद्, उच्यते, धर्मास्तिकाय इत्यत्र यदाद्यं धर्मेति पदं तस्य माङ्गलिकत्वाद्धर्मास्तिकायस्य प्रथममुपन्यासः, ततस्तत्प्रतिपक्षत्वादधर्मास्तिकायस्य, ततस्तदाधारत्वादाकाशास्तिकायस्य, ततः स्वाभाविकामूर्तत्वसाम्याज्जीवास्तिकायस्य, ततस्तदुपयोगित्वात् पुद्गलास्तिकायस्य, ततो जीवाजीवपर्यायत्वात् तदनन्तरमद्धासमयस्योपन्यास इति पूर्वानुपूर्वीसिद्धिरिति। अथ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [९७]

दीप अनुक्रम [११०]

पश्चानुपूर्वीं निरूपयितुमाह—'से किं तं पच्छाणुपुव्वी'त्यादि, पाश्चात्यादारभ्य प्रतिलोमं व्यत्ययेनैवानुपूर्वी–परिपाटिः क्रियते यस्यां सा पश्चानुपूर्वी, अत्रोदाहरणमुत्क्रमेण, इदमेवाऽऽह—'अट्ठासमये'त्यादि, गतार्थमेव। अथानानुपूर्वीं निरूपयति—'से किं त'मित्यादि, अत्र निर्वचनम्—'अणाणुपुव्वी एयाए चेवे'त्यादि, न विद्यते आनुपूर्वी–यथोक्तपरिपाटिद्वयरूपा यस्यां सा अनानुपूर्वी, विवक्षितपदानामनन्तरोक्तक्रमद्वयमुल्लङ्घ्य परस्परासदृशैः सम्भवद्भिर्भङ्गकैर्यस्यां विरचना क्रियते साऽनानुपूर्वीत्यर्थः, का पुनरियमित्याह—'अन्नमन्नब्भासो'त्ति, अन्योऽन्यं–परस्परमभ्यासो–गुणनमन्योऽन्याभ्यासः 'दूरूवोणो'त्ति द्विरूपन्यूनः आद्यन्तरूपरहितः अनानुपूर्वीति सण्टङ्कः, कस्यां विषये योऽसावभ्यास इत्याह—'श्रेण्यां' पङ्क्तौ, कस्यां पुनः श्रेण्यामित्याह—'एयाए चेवे'ति, 'अस्यामेव' अनन्तराधिकृतधर्मास्तिकायादिसम्बन्धिन्यां, कथंभूतायामित्याह–एक आदिर्यस्यां सा एकादिकी, एकैक उत्तरः प्रवर्द्धमानो यस्यां सा एकोत्तरा तस्यां, पुनः कथंभूतायामित्याह—'छगच्छगयाए'त्ति, षण्णां गच्छः–समुदायः षड्गच्छस्तं गता–प्राप्ता षड्गच्छगता तस्यां, धर्मास्तिकायादिवस्तुषट्कविषयायामित्यर्थः, आदौ व्यवस्थापितैककायाः पर्यन्ते न्यस्तषट्काया धर्मास्तिकायादिवस्तुषट्कविषयायाः पङ्क्त्या परस्परगुणने भङ्गकसङ्ख्या भवति सा आद्यन्तभङ्गकद्वयरहिता अनानुपूर्वीति भावार्थः। तत्रोर्ध्वाधः किलैककादयः षट्पर्यन्ता अङ्काः स्थापिताः, तत्र चैककेन द्विके गुणिते जातौ द्वावेव, ताभ्यां त्रिको गुणितो जाताः षट्, तैरपि चतुष्ककोः गुणितो जाता चतुर्विंशतिः, पञ्चकस्य तु तद्गुणने जातं विंशं शतं, षट्कस्य तद्गुणने जातानि विंशत्य-

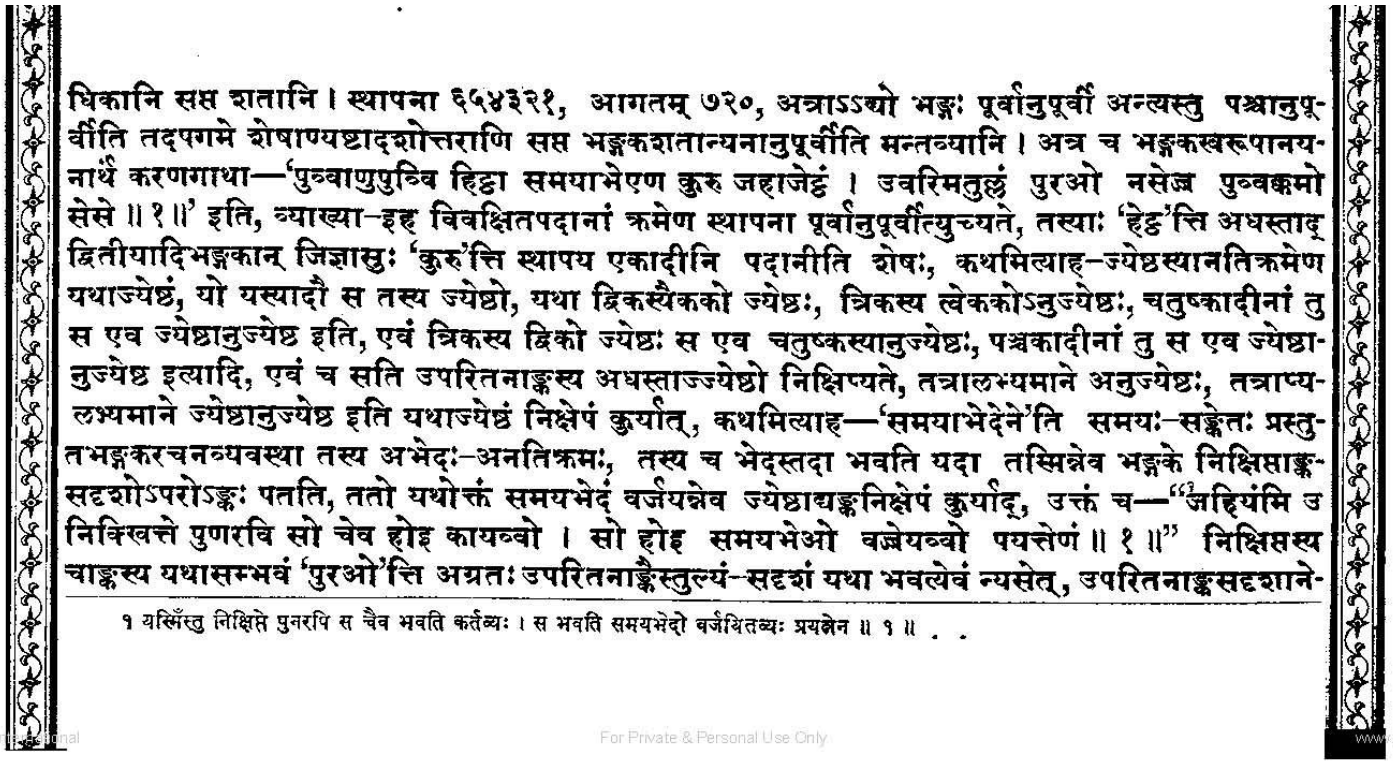
॥ ७५ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [९७]

दीप अनुक्रम [११०]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[४५], चूलिकासूत्र-[२] अनुयोगद्वार मूलं एवं हेमचन्द्रसूरि-रचिता वृत्तिः



धिकानि सप्त शतानि। स्थापना ६५४३२१, आगतम् ७२०, अत्राऽऽद्यो भङ्गः पूर्वानुपूर्वी अन्त्यस्तु पश्चानुपूर्वीति तदपगमे शेषाण्यष्टादशोत्तराणि सप्त भङ्गकशतान्यनानुपूर्वीति मन्तव्यानि। अत्र च भङ्गकस्वरूपानयनार्थं करणगाथा—'पुव्वाणुपुव्वि हिट्ठा समयाभेएण कुरु जहाजेट्ठं। उवरिमतुल्लं पुरओ नसेज्ज पुव्वक्कमो सेसे ॥ १ ॥' इति, व्याख्या–इह विवक्षितपदानां क्रमेण स्थापना पूर्वानुपूर्वीत्युच्यते, तस्याः 'हेट्ठ'त्ति अधस्ताद् द्वितीयादिभङ्गकान् जिज्ञासुः 'कुरु'त्ति स्थापय एकादीनि पदानीति शेषः, कथमित्याह–ज्येष्ठस्यानतिक्रमेण यथाज्येष्ठं, यो यस्यादौ स तस्य ज्येष्ठो, यथा द्विकस्यैकको ज्येष्ठः, त्रिकस्य त्वेककोऽनुज्येष्ठः, चतुष्कादीनां तु स एव ज्येष्ठानुज्येष्ठ इति, एवं त्रिकस्य द्विको ज्येष्ठः स एव चतुष्कस्यानुज्येष्ठः, पञ्चकादीनां तु स एव ज्येष्ठानुज्येष्ठ इत्यादि, एवं च सति उपरितनाङ्कस्य अधस्ताज्ज्येष्ठो निक्षिप्यते, तत्रालभ्यमाने अनुज्येष्ठः, तत्राप्यलभ्यमाने ज्येष्ठानुज्येष्ठ इति यथाज्येष्ठं निक्षेपं कुर्यात्, कथमित्याह—'समयाभेदेने'ति समयः–सङ्केतः प्रस्तुतभङ्गकरचनव्यवस्था तस्य अभेदः–अनतिक्रमः, तस्य च भेदस्तदा भवति यदा तस्मिन्नेव भङ्गके निक्षिप्ताङ्कसदृशोऽपरोऽङ्कः पतति, ततो यथोक्तं समयभेदं वर्जयन्नेव ज्येष्ठाद्यङ्कनिक्षेपं कुर्याद्, उक्तं च—"जहियंमि उ निक्खित्ते पुणरवि सो चेव होइ कायव्वो। सो होइ समयभेओ वज्जेयव्वो पयत्तेणं ॥ १ ॥" निक्षिप्तस्य चाङ्कस्य यथासम्भवं 'पुरओ'त्ति अग्रतः उपरितनाङ्कैस्तुल्यं–सदृशं यथा भवत्येवं न्यसेत्, उपरितनाङ्कसदृशाने-

१ यस्मिँस्तु निक्षिप्ते पुनरपि स चैव भवति कर्तव्यः। स भवति समयभेदो वर्जयितव्यः प्रयत्नेन ॥ १ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वाङ्कान्निक्षेपेदित्यर्थः, 'पुव्वक्कमो सेसे'त्ति स्थापितशेषानङ्कान्निक्षिसाङ्कस्य यथासम्भवं पृष्ठतः पूर्वक्रमेण स्थापयेदित्यर्थः, यः सङ्ख्यया लघुरेककादिः स प्रथमं स्थाप्यते वस्तुतया महान् द्विकादिः स पश्चादिति पूर्वक्रमः, पूर्वानुपूर्वीलक्षणे प्रथमभङ्गके इत्थमेव दृष्टत्वादिति भाव इत्यक्षरघटना। भावार्थस्तु दिग्मात्रदर्शनार्थं सुखाधिगमाय च त्रीणि पदान्याश्रित्य तावद् दर्श्यते–तेषां च परस्पराभ्यासे षड् भङ्गका भवन्ति, ते चैवमानीयन्ते–पूर्वानुपूर्वीलक्षणस्तावत् प्रथमो भङ्गः, तद्यथा–१२३, अस्याश्च पूर्वानुपूर्व्या अधस्ताद् भङ्गकरचने क्रियमाणे एककस्य तावज्ज्येष्ठ एव नास्ति, द्विकस्य तु विद्यते एकः, स तदधो निक्षिप्यते, तस्य चाग्रतस्त्रिको दीयते, 'उवरिमतुल्ल'मित्यादिवचनात्, पृष्ठतस्तु स्थापितशेषो द्विको दीयते, ततोऽयं द्वितीयो भङ्गः २१३, अत्र च द्विकस्य विद्यते एकको ज्येष्ठः, परं नासौ तदधस्तान्निक्षिप्यते, अग्रतः सदृशाङ्कपातेन समयभेदप्रसङ्गाद्, एकस्य तु ज्येष्ठ एव नास्ति, त्रिकस्य तु विद्यते द्विको ज्येष्ठः, स तदधस्तान्निक्षिप्यते, अत्र चाग्रभागस्य तावदसम्भव एव, पृष्ठतस्तु स्थापितशेषावेककत्रिकौ क्रमेण स्थाप्येते 'पुव्वक्कमो सेसे'त्तिवचनात्, ततस्तृतीयोऽयं भङ्गः १३२, अत्राप्येककस्य ज्येष्ठ एव नास्ति, त्रिकस्य ज्येष्ठो द्विको, न च निक्षिप्यते, अग्रे सदृशाङ्कपातेन समयभेदापत्तेः, ततोऽस्यैवानुज्येष्ठ एकः स्थाप्यते, अग्रतस्तु द्विकः 'उवरिमतुल्ल'मित्यादिवचनात्, पृष्ठतस्तु स्थापितशेषस्त्रिको दीयते इति चतुर्थोऽयं भङ्गः ३१२, एवमनया दिशा पञ्चमषष्ठावप्यभ्यूह्यौ, सर्वेषां चामीषामियं स्थापना—अत्राप्याद्यभङ्गस्य पूर्वानुपूर्वीत्वादन्त्यस्य च पश्चानुपूर्वीत्वान्मध्यमा एव चत्वारोऽनानुपूर्वीत्वेन मन्तव्याः, एवमनया दिशा

॥ ७६ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[४५], चूलिकासूत्र-[२] अनुयोगद्वार मूलं एवं हेमचन्द्रसूरि-रचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [९७]

दीप अनुक्रम [११०]

१२३ चतुरादिपदसम्भविनोऽपि भङ्गा भावनीयाः, भूयांसश्चेहोत्तराध्ययनटीकादिनिर्दिष्टा प्रस्तुतभङ्गानयनो-
१३२ पायाः सन्ति, न चोच्यन्तेऽतिविस्तरभयात्, तदर्थिना तु तत एवावधारणीयाः। तदिदमत्र तात्पर्यम्–
३१२ पूर्वानुपूर्व्यां तावद्धर्मास्तिकायस्य प्रथमत्वमेव, तदनुक्रमेणाधर्मास्तिकायादीनां द्वितीयादित्वं, पश्चानु-
२३१ पूर्व्यां त्वद्धासमयस्य प्रथमत्वं, पुद्गलास्तिकायादीनां तु प्रतिलोमतया द्वितीयादित्वम्, अनानुपूर्व्यां त्व-
३२१ नियमेन क्वचिद्भङ्गके कस्यचित् प्रथमादित्वमित्यलं विस्तरेण। 'से त'मित्यादि निगमनम् ॥ ९७ ॥ तदेव-
मत्र पक्षे धर्मास्तिकायादीनि षडपि द्रव्याणि पूर्वानुपूर्व्यादित्वेनोदाहृतानि, साम्प्रतं त्वेकमेव पुद्गलास्तिका-
यमुदाहर्तुमाह—

अहवा उवणिहिआ दव्वाणुपुव्वी तिविहा प० तं०–पुव्वाणुपुव्वी पच्छाणुपुव्वी अ-
णाणुपुव्वी, से किं तं पुव्वाणुपुव्वी?, २ परमाणुपोग्गले दुपएसिए तिपएसिए जाव
दसपएसिए संखिज्जपएसिए असंखिज्जपएसिए अणंतपएसिए से तं पुव्वाणुपुव्वी,
से किं तं पच्छाणुपुव्वी?, २ अणंतपएसिए असंखिज्जपएसिए संखिज्जपएसिए जाव
दसपएसिए जाव तिपएसिए दुपएसिए परमाणुपोग्गले से तं पच्छाणुपुव्वी, से
किं तं अणाणुपुव्वी?, २ एआए चेव एगाइआए एगुत्तरिआए अणंतगच्छगयाए से-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [९८]

दीप अनुक्रम [१११]

ढीए अन्नमण्णंब्भासो दुरूवूणो से तं अणाणुपुव्वी, से तं उवणिहिआ दव्वाणुपुव्वी, से तं जाणगवइरित्ता[1] दव्वाणुपुव्वी, से तं नोआगमओ दव्वाणुपुव्वी, से तं दव्वाणुपुव्वी (सू० ९८)

अत्र चापैनिधिक्या द्रव्यानुपूर्व्या ज्ञातमपि त्रैविध्यं यत्पुनरप्युपन्यस्तं तत्प्रकारान्तरभणनप्रस्तावादेवेति मन्तव्यम्। 'अणंतगच्छगयाए'त्ति अत्रैकोत्तरवृद्धिमत्स्कन्धानामनन्तत्वादनन्तानां गच्छः–समुदायोऽनन्तगच्छस्तं गता अनन्तगच्छगता तस्याम्, अत एव भङ्गा अत्रानन्ता एवावसेया इति। शेषभावना च सर्वा पूर्वोक्तानुसारतः स्वयमप्यवसेयेति। आह–ननु यथैकः पुद्गलास्तिकायो निर्द्धार्य पुनरपि पूर्वानुपूर्व्यादित्वेनोदाहृतः, एवं शेषा अपि प्रत्येकं किमिति नोदाह्रियन्ते?, अत्रोच्यते, द्रव्याणां क्रमः–परिपाट्यादिलक्षणः पूर्वानुपूर्व्यादिविचार इह प्रक्रान्तः, स च द्रव्यबाहुल्ये सति संभवति, धर्माधर्माकाशास्तिकायेषु च पुद्गलास्तिकायवन्नास्ति प्रत्येकं द्रव्यबाहुल्यम्, एकैकद्रव्यत्वात्तेषां, जीवास्तिकाये त्वनन्तजीवद्रव्यात्मकत्वादस्ति द्रव्यबाहुल्यं, केवलं परमाणुद्विप्रदेशिकादिद्रव्याणामिव जीवद्रव्याणां पूर्वानुपूर्व्यादित्वनिबन्धनः प्रथमपाश्चात्यादिभावो नास्ति, प्रत्येकमसङ्ख्येयप्रदेशत्वेन सर्वेषां तुल्यप्रदेशत्वात्, परमाणुद्विप्रदेशिकादिद्रव्याणां तु विष-

१ प्रत्यन्तरे नास्ति.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [९८]

दीप अनुक्रम [१११]

मप्रदेशिकत्वादिति, अद्धासमयस्यैकत्वादेव तदसम्भव इत्यलमतिचर्चितेन । तदेवं समर्थिता औपनिधिकी द्रव्यानुपूर्वी, तत्समर्थने च समर्थिता प्रागुद्दिष्टा द्विप्रकाराऽपि द्रव्यानुपूर्वी, ततः 'से त'मित्यादि निगमनानि, इति द्रव्यानुपूर्वी समाप्ता ॥ ९८ ॥ उक्ता द्रव्यानुपूर्वी, अथ प्रागुद्दिष्टामेव क्षेत्रानुपूर्वीं व्याचिख्यासुराह—

से किं तं खेत्ताणुपुव्वी?, २ दुविहा पण्णत्ता, तंजहा–उवणिहिआ य अणोवणिहिआ य (सू० ९९) तत्थ णं जा सा उवणिहिआ सा ठप्पा, तत्थ णं जा सा अणोवणिहिआ सा दुविहा पण्णत्ता, तंजहा-णेगमववहाराणं संगहस्स य (सू० १००)

इह क्षेत्रविषया आनुपूर्वी क्षेत्रानुपूर्वी, का पुनरियमित्यत्र निर्वचनं–क्षेत्रानुपूर्वी द्विविधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा–औपनिधिकी–पूर्वोक्तशब्दार्था अनौपनिधिकी च, तत्र या सा औपनिधिकी सा स्थाप्या, अल्पवक्तव्यत्वादुपरि वक्ष्यत इत्यर्थः, तत्र याऽसावनौपनिधिकी सा नयवक्तव्यताश्रयणाद् द्विविधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा–नैगमव्यवहारयोः सङ्ग्रहस्य च, सम्मतेति शेषः ॥ १०० ॥ तत्र नैगमव्यवहारसम्मतां तावद्दर्शयितुमाह—

से किं तं णेगमववहाराणं अणोवणिहिआ खेत्ताणुपुव्वी?, २ पंचविहा पण्णत्ता, तं-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१०१] + गाथा ||१||

दीप अनुक्रम [११४--११६]

अनुयो० मलधारीया ॥ ७८ ॥

जहा–अट्ठपयपरूवणया भंगसमुक्कित्तणया भंगोवदंसणया समोआरें अणुगमे, से किं तं णेगमववहाराणं अट्ठपयपरूवणया?, २ तिपएसोगाढे आणुपुव्वी जाव दसपएसोगाढे आणुपुव्वी जाव संखिज्जपएसोगाढे आणुपुव्वी असंखिज्जपएसोगाढे आणुपुव्वी, एगपएसोगाढे अणाणुपुव्वी, दुपएसोगाढे अवत्तव्वए, तिपएसोगाढा आणुपुव्वीओ जाव दसपएसोगाढा आणुपुव्वीओ जाव असंखिज्जपएसोगाढा आणुपुव्वीओ एगपएसोगाढा अणाणुपुव्वीओ दुपएसोगाढा अवत्तव्वगाइं, से तं णेगमववहाराणं अट्ठपयपरूवणया। एआए णं णेगमववहाराणं अट्ठपयपरूवणयाए किं पओअणं?, एयाए णेगमववहाराणं अट्ठपयपरूवणयाए णेगमववहाराणं भंगसमुक्कित्तणया कज्जइ। से किं तं णेगमववहाराणं भंगसमुक्कित्तणया?, २ अत्थि आणुपुव्वी अत्थि अणाणुपुव्वी अत्थि अवत्तव्वए, एवं दव्वाणुपुव्विगमेणं खेत्ताणुपुव्वीएऽवि ते चेव छव्वीसं भंगा भाणिअव्वा, जाव से तं णेगमववहाराणं भंगसमुक्कित्तणया। एआए णं णेगमववहाराणं भंगसमु-

वृत्तिः उपक्रमाधि० ॥ ७८ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१०१] + गाथा ॥१॥

दीप अनुक्रम [११४--११६]

अनु. १४

क्कित्तणयाए किं पओअणं?, एआए णं णेगमववहाराणं भंगसमुक्कित्तणयाए णेगमववहाराणं भंगोवदंसणया कज्जइ। से किं तं णेगमववहाराणं भंगोवदंसणया?, २ तिपएसोगाढे आणुपुव्वी एगपएसोगाढे अणाणुपव्वी दुपएसोगाढे अवत्तव्वए तिपएसोगाढा आणुपुव्वीओ एगपएसोगाढा अणाणुपुव्वीओ दुपएसोगाढा अवत्तव्वगाइं, अहवा तिपएसोगाढे अ एगपएसोगाढे अ आणुपुव्वी अ अणाणुपुव्वी अ एवं तहा चेव दव्वाणुपुव्विगमेणं छव्वीसं भंगा भाणिअव्वा जाव से तं णेगमववहाराणं भंगोवदंसणया। से किं तं समोआरे?, २ णेगमववहाराणं आणुपुव्वीदव्वाइं कहिं समोअरंति? किं आणुपुव्वीदव्वेहिं समोअरंति अणाणुपुव्वीदव्वेहिं समोअरंति? अवत्तव्वगदव्वेहिं समोअरंति?, आणुपुव्वीदव्वाइं आणुपुव्वीदव्वेहिं समोअरंति नो अणाणुपुव्वीदव्वेहिं नो अवत्तव्वयदव्वेहिं समोयरंति, एवं तिण्णिवि सट्ठाणे समोअरंतित्ति भाणिअव्वं, से तं समोआरे। से किं तं अणुगमे?, २ नवविहे पण्णत्ते, तं-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१०१] + गाथा ॥१॥

दीप अनुक्रम [११४--११६]

अनुयो० मलधारीया ॥ ७९ ॥

जहा–संतपयपरूवणया जाव अप्पाबहुं चेव ॥ १ ॥ णेगमववहाराणं आणुपुव्वीदव्वाइं किं अत्थि णत्थि?, णियमा अत्थि, एवं दुण्णिवि । णेगमववहाराणं आणुपुव्विदव्वाइं किं संखिज्जाइं असंखिज्जाइं अणंताइं?, नो संखिज्जाइं असंखिज्जाइं नो अणंताइं, एवं दुण्णिवि ॥

इह व्याख्या यथा द्रव्यानुपूर्व्यो तथैव कर्तव्या, विशेषं तु वक्ष्यामः, तत्र 'तिपएसोगाढे आणुपुव्वि'त्ति, त्रिषु–नभःप्रदेशेष्ववगाढः–स्थितः त्रिप्रदेशावगाढरूपणुकादिकोऽनन्ताणुकपर्यन्तो द्रव्यस्कन्ध एवानुपूर्वी, ननु यदि द्रव्यस्कन्ध एवानुपूर्वी कथं तर्हि तस्य क्षेत्रानुपूर्वीत्वं?, सत्यं, किन्तु क्षेत्रप्रदेशत्रयावगाहपर्यायविशिष्टोऽसौ द्रव्यस्कन्धो गृहीतो नाविशिष्टः, ततोऽत्र क्षेत्रानुपूर्व्यधिकारात् क्षेत्रावगाहपर्यायस्य प्राधान्यात् सोऽपि क्षेत्रानुपूर्वीति न दोषः, प्रदेशत्रयलक्षणस्य क्षेत्रस्यैवात्र मुख्यं क्षेत्रानुपूर्वीत्वं, तदधिकारादेव, किन्तु तदवगाढं द्रव्यमपि तत्पर्यायस्य प्राधान्येन विवक्षितत्वात् क्षेत्रानुपूर्वीत्वेन न विरुध्यत इति भावः, यद्येवं तर्हि मुख्यं क्षेत्रं परित्यज्य किमिति तदवगाढद्रव्यस्यानुपूर्व्यादिभावश्चिन्त्यते?, उच्यते, 'संतपयपरूवणये'त्यादिवक्ष्यमाणबहुतरविचारविषयत्वेन द्रव्यस्य शिष्यमतिव्युत्पादनार्थत्वात्, क्षेत्रस्य तु नित्यत्वेन सदावस्थितमानत्वादचलत्वाच्च प्रायो वक्ष्यमाणविचारस्य सुप्रतीतत्वेन तथाविधशिष्यमतिव्युत्पत्त्यविषयत्वाद्,

वृत्तिः उपक्रमाधि० ॥ ७९ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१०१] + गाथा ॥१॥

दीप अनुक्रम [११४--११६]

एवमन्यदपि कारणमभ्यूह्यमित्यलं विस्तरेण । एवं चतुष्प्रदेशावगाढादिष्वपि भावना कार्या, यावदसङ्ख्यातप्रदेशावगाढा आनुपूर्वीति, असङ्ख्यातप्रदेशेषु चावगाढोऽसङ्ख्याताणुकोऽनन्ताणुको वा द्रव्यस्कन्धो मन्तव्यो, यतः पुद्गलद्रव्याणामवगाहमित्थं जगद्गुरवः प्रतिपादयन्ति–परमाणुराकाशस्यैकस्मिन्नेव प्रदेशेऽवगाहते, द्विप्रदेशिकादयोऽसङ्ख्यातप्रदेशिकान्तास्तु स्कन्धाः प्रत्येकं जघन्यत एकस्मिन्नाकाशप्रदेशेऽवगाहन्ते, उत्कृष्टतस्तु यत्र स्कन्धे यावन्तः परमाणवो भवन्ति स तावत्स्वेव नभःप्रदेशेष्ववगाहते, अनन्ताणुकस्कन्धस्तु जघन्यतस्तथैव उत्कृष्टतस्त्वसङ्ख्येयेष्वेव नभःप्रदेशेष्ववगाहते, नानन्तेषु, लोकाकाशस्यैवासङ्ख्येयप्रदेशत्वात्, अलोकाकाशे च द्रव्यस्यावगाहाभावादित्यलं प्रसङ्गेन, प्रकृतमुच्यते । तत्रानुपूर्वीप्रतिपक्षत्वादनानुपूर्व्यादिस्वरूपमाह—'एगपएसोगाढे अणाणुपुव्वि'त्ति, एकस्मिन्नभःप्रदेशे अवगाढः–स्थित एकप्रदेशावगाढः परमाणुसङ्घातः स्कन्धसङ्घातश्च क्षेत्रतोऽनानुपूर्वीति मन्तव्यः, 'दुप्पएसोगाढे अवत्तव्वए'त्ति, प्रदेशद्वयेऽवगाढो द्विप्रदेशिकादिस्कन्धः क्षेत्रतोऽवक्तव्यकं, शेषो बहुवचननिर्देशादिको ग्रन्थो यथाऽधस्ताद् द्रव्यानुपूर्व्यां व्याख्यातस्तथेहापि तदुक्तानुसारतो व्याख्येयो, यावद् द्रव्यप्रमाणद्वारे 'णेगमववहाराणं आणुपुव्वीदव्वाइं किं संखेज्जाइं' इत्यादि प्रश्नः, अत्रोत्तरम्—'नो संखेज्जाइ'मित्यादि, त्र्यादिप्रदेशविभागावगाढानि द्रव्याणि क्षेत्रत आनुपूर्वीत्वेन निर्दिष्टानि, त्र्यादिप्रदेशविभागाश्चासङ्ख्यातप्रदेशात्मके लोकेऽसङ्ख्याता भवन्ति, अतो द्रव्यतया बहूनामपि क्षेत्रावगाहमपेक्ष्य तुल्यप्रदेशावगाढानामेकत्वात् क्षेत्रानुपूर्व्यामसङ्ख्यातान्येवानुपूर्वीद्रव्याणि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१०१] + गाथा ॥१॥

दीप अनुक्रम [११४--११६]

अनुयो० मलधारीया ॥ ८० ॥

भवन्तीति भावः, एवमेकप्रदेशावगाढं बहुपि द्रव्यं क्षेत्रत एकैवानानुपूर्वीत्युक्तं, लोके च प्रदेशा असङ्ख्याता भवन्ति, अतस्तत्तुल्यसङ्ख्यत्वादनानुपूर्वीद्रव्याण्यप्यसङ्ख्येयानीति, एवं प्रदेशद्वयेऽवगाढं बहुपि द्रव्यं क्षेत्रत एकमेवावक्तव्यकमुक्तं, द्विप्रदेशात्मकाश्च विभागा लोकेऽसङ्ख्याता भवन्त्यतस्तान्यप्यसङ्ख्येयानीति ॥ क्षेत्रद्वारे निर्वचनसूत्रे—

णेगमववहाराणं आणुपुव्वीदव्वाइं लोगस्स किं संखिज्जइभागे होज्जा असंखिज्जइभागे होज्जा जाव सव्वलोए होज्जा?, एगं दव्वं पडुच्च लोगस्स संखिज्जइभागे वा होज्जा असंखिज्जइभागे वा होज्जा संखेज्जेसु असंखेज्जेसु भागेसु वा होज्जा देसूणे वा लोए होज्जा, नाणादव्वाइं पडुच्च नियमा सव्वलोए होज्जा, णेगमववहाराणं अणाणुपुव्वीदव्वाणं पुच्छाए एगदव्वं पडुच्च नो संखिज्जइभागे होज्जा असंखिज्जइभागे होज्जा नो संखेज्जेसु नो असंखेज्जेसु नो सव्वलोए होज्जा, नाणादव्वाइं पडुच्च नियमा सव्वलोए होज्जा, एवं अवत्तव्वगदव्वाणिवि भाणिअव्वाणि ॥

इह स्कन्धद्रव्याणां विचित्ररूपत्वात् कश्चित् स्कन्धो लोकस्य सङ्ख्येयं भागमवगाह्य तिष्ठति, अन्यस्त्वस

वृत्तिः उपक्रमाधि०

॥ ८० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[४५], चूलिकासूत्र-[२] अनुयोगद्वार मूलं एवं हेमचन्द्रसूरि-रचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१०१] + गाथा ॥१॥

दीप अनुक्रम [११४--११६]

ङ्ख्येयम्, अन्यस्तु सङ्ख्येयाँस्तद्भागानवगाह्य वर्तते, अन्यस्त्वसङ्ख्येयानित्यतस्तत्स्कन्धद्रव्यापेक्षया सङ्ख्येयादिभागवर्तित्वं भावनीयं, विशिष्टक्षेत्रावगाहो (ग्रन्थाग्रम् २०००) पलक्षितानां स्कन्धद्रव्याणामेव क्षेत्रानुपूर्वीत्वेनोक्तत्वादिति भावः। 'देसूणे वा लोए होज्ज'त्ति, देशोने वा लोके आनुपूर्वीद्रव्यं भवेदिति, अत्राऽऽह-नन्वचित्तमहास्कन्धस्य सर्वलोकव्यापकत्वं पूर्वमुक्तं, तस्य च समस्तलोकवर्त्यसङ्ख्येयप्रदेशलक्षणायां क्षेत्रानुपूर्व्यामवगाढत्वात् परिपूर्णस्यापि क्षेत्रानुपूर्वीत्वं न किञ्चिद् विरुध्यते, अतस्तदपेक्षं क्षेत्रतोऽप्यानुपूर्वीद्रव्यं सर्वलोकव्यापि प्राप्यते, किमिति देशोनलोकव्यापिता प्रोच्यते?, सत्यं, किन्तु लोकोऽयमानुपूर्व्यनानुपूर्व्यवक्तव्यकद्रव्यैः सर्वदैवाशून्य एवैष्टव्य इति समयस्थितिः, यदि चात्राऽऽनुपूर्व्याः सर्वलोकव्यापिता निर्दिश्येत तदाऽनानुपूर्व्यवक्तव्यकद्रव्याणां निरवकाशतयाऽभावः प्रतीयते(येत), ततोऽचित्तमहास्कन्धपूरितेऽपि लोके जघन्यतोऽप्येकः प्रदेशोऽनानुपूर्वीविषयत्वेन प्रदेशद्वयं चावक्तव्यकविषयत्वेन विवक्ष्यते, आनुपूर्वीद्रव्यस्य तत्र सत्त्वेऽप्यप्राधान्यविवक्षणादनानुपूर्व्यवक्तव्यकयोस्तु प्राधान्यविवक्षणादिति भावः, ततोऽनेन प्रदेशत्रयलक्षणेन देशेन हीनोऽत्र लोकः प्रतिपादित इत्यदोषः, उक्तं च पूर्वमुनिभिः"[1]महखंधापुण्णेविअवत्तव्वगणाणुपुव्विदव्वाइं। जद्देसोगाढाइं तद्देसेणं स लोगूणो ॥ १ ॥" ननु यद्येवं तर्हि द्रव्यानुपूर्व्यामपि सर्वलोकव्यापित्वमानुपूर्वीद्रव्यस्य यदुक्तं तदसङ्गतं प्राप्नोति, अनानुपूर्व्यवक्तव्यकद्रव्याणामनवकाशत्वेन

१ महास्कन्धापूर्णेऽपि अवक्तव्यकानानुपूर्वीद्रव्याणि। यद्देशावगाढानि तद्देशेन स लोको नः ॥ १ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[४५], चूलिकासूत्र-[२] अनुयोगद्वार मूलं एवं हेमचन्द्रसूरि-रचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१०१] + गाथा ॥१॥

दीप अनुक्रम [११४--११६]

तत्राप्यभावप्रतीतिप्रसङ्गात्, सर्वकालं च तेषामप्यवस्थितिप्रतिपादनात्, नैतदेवं, यतो द्रव्यानुपूर्व्यां द्रव्याणामेवानुपूर्व्यादिभाव उक्तो, न क्षेत्रस्य, तस्य तत्रानधिकृतत्वाद्, द्रव्याणां चानुपूर्व्यादीनां परस्परभिन्नानामप्येकत्रापि क्षेत्रेऽवस्थानं न किञ्चिद्विरुध्यते, एकापवरकान्तर्गतानेकप्रदीपप्रभावस्थानदृष्टान्तादिसिद्धत्वात्, अतो न तत्र कस्याप्यनवकाशः, अत्र तु द्रव्याणामौपचारिक एवानुपूर्व्यादिभावो मुख्यस्तु क्षेत्रस्यैव, क्षेत्रानुपूर्व्यधिकारात्, ततो यदि लोकप्रदेशाः सामस्त्येनैवानुपूर्व्या क्रोडीकृताः स्युस्तदा किमन्यदनानुपूर्व्यवक्तव्यकतया प्रतिपद्येत?, यस्त्विहैव येष्वाकाशप्रदेशेष्वानुपूर्व्यस्तेष्वेवेतरयोरपि सद्भावः कथयिष्यते स द्रव्यावगाहभेदेन क्षेत्रभेदस्य विवक्षणाद्, अत्र तु तदविवक्षणादिति, तस्मादनानुपूर्व्यवक्तव्यकविषयप्रदेशत्रयलक्षणेन देशेन लोकस्योनता विवक्षितेति, अथवा आनुपूर्वीद्रव्यस्य स्वावयवरूपा देशाः कल्प्यन्ते, यथा पुरुषस्याङ्गुल्यादयः, ततश्च विवक्षिते कस्मिंश्चिद्देशे देशिनोऽसद्भावो विवक्ष्यते, यथा पुरुषस्यैवाङ्गुलीदेशे, देशित्वस्यैव तत्र प्राधान्येन विवक्षितत्वादिति भावः, न च वक्तव्यं देशिनो देशो न कश्चिद्भिन्नो दृश्यते, एकान्ताभेदे देशमात्रस्य देशिमात्रस्य चाभावप्रसङ्गात्, ततश्च समस्तलोकक्षेत्रावगाहपर्यायस्य प्राधान्याश्रयणादत्राचित्तमहास्कन्धस्याऽऽनुपूर्वीत्वेऽपि देशोन एव लोकः, स्वकीयैकस्मिन् देशे तस्याभावविवक्षणात्, तस्मिंश्चानुपूर्व्यव्यासदेशे इतरयोरवकाशः सिद्धो भवतीति भावः, न च देशदेशिभावः कल्पनामात्रं, सम्मत्यादिन्यायनिर्दिष्टयुक्तिसिद्धत्वादित्यलं प्रसङ्गेन, 'नाणादव्वाइ'मित्यादि, व्यादिप्रदेशावगाढद्रव्यभेदतोऽ-

॥ ८१ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[४५], चूलिकासूत्र-[२] अनुयोगद्वार मूलं एवं हेमचन्द्रसूरि-रचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१०१] + गाथा ॥१॥

दीप अनुक्रम [११४--११६]

त्राऽऽनुपूर्वीणां नानात्वं, तैश्च व्यादिप्रदेशावगाढैर्द्रव्यभेदैः सर्वोऽपि लोको व्याप्त इति भावः। अत्रानानुपूर्वी-चिन्तायामेकद्रव्यं प्रतीत्य लोकस्यासङ्ख्येयभागवर्तित्वमेव, एकप्रदेशावगाढस्यैवानानुपूर्वीत्वेन प्रतिपादनाद्, एकप्रदेशस्य च लोकासङ्ख्येयभागवर्तित्वादिति, 'नाणादव्वाइं पडुच्च नियमा सव्वलोए होज्ज'त्ति, एकैकप्रदेशावगाढैरपि द्रव्यभेदैः समस्तलोकव्याप्तेरिति एवम् 'अवत्तव्वगदव्वाणिवि'त्ति, अवक्तव्यकद्रव्यमप्येकं लोकासङ्ख्येयभाग एव वर्तते, द्विप्रदेशावगाढस्यैवावक्तव्यकत्वेनाभिधानात्, प्रदेशद्वयस्य च लोकासङ्ख्येयभागवर्तित्वादिति, तथा प्रत्येकं द्विप्रदेशावगाढैरपि द्रव्यभेदैः समस्तलोकव्याप्तैर्नानाद्रव्याणामत्रापि सर्वलोकव्यापित्वमवसेयमिति। अत्राह–नन्वानुपूर्व्यादिद्रव्याणि त्रीण्यपि सर्वलोकव्यापीनीत्युक्तानि, ततश्च येष्वेवाकाशप्रदेशेष्वानुपूर्वी तेष्वेवेतरयोरपि सद्भावः प्रतिपादितो भवति, कथं चैतत् परस्परविरुद्धं भिन्नविषयं व्यपदेशत्रयमेकस्य स्यात् ?, अत्रोच्यते, इह व्यादिप्रदेशावगाढाद् द्रव्याद्भिन्नमेव तावदेकप्रदेशावगाढं, ताभ्यां च भिन्नं द्विप्रदेशावगाढं, ततश्चाधेयस्यावगाहकद्रव्यस्य भेदादाधारस्याप्यवगाह्यस्य भेदः स्यादेव, तथा च व्यपदेशभेदो युक्त एव, अनन्तधर्माध्यासिते च वस्तुनि तत्तत्सहकारिसन्निधानात्तत्तद्धर्माभिव्यक्तौ दृश्यत एव समकालं व्यपदेशभेदो, यथा खड्गकुन्तकवचादियुक्ते देवदत्ते खड्गी कुन्ती कवचीत्यादिरिति, इह क्वचिद् वाचनान्तरे "अणाणुपुव्वीदव्वाइं अवत्तव्वगदव्वाणि य जहेव हिट्ठे"ति अतिदेश एव दृश्यते, तत्र 'हेट्ठे'ति

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१०१] + गाथा ||१||

दीप अनुक्रम [११४--११६]

अनुयो० मलधारीया ॥ ८२ ॥

यथाऽधस्ताद् द्रव्यानुपूर्व्यामनयोः क्षेत्रमुक्तं तथाऽत्रापि ज्ञातव्यमित्यर्थः, तच्च व्याख्यातमेव, इत्येवमन्यत्रापि यथासम्भवं वाचनान्तरमवगन्तव्यमिति ॥ गतं क्षेत्रद्वारं,

णेगमववहाराणं आणुपुव्वीदव्वाइं लोगस्स किं संखेज्जइभागं फुसंति असंखिज्जइभागं फुसंति संखेज्जे भागे फुसंति जाव सव्वलोअं फुसंति?, एगं दव्वं पडुच्च संखिज्जइभागं वा फुसइ संखिज्जइभागे असंखिज्जइभागे संखेज्जे भागे वा असंखेज्जे भागे वा देसूणं वा लोगं फुसइ, णाणादव्वाइं पडुच्च णियमा सव्वलोअं फुसंति, अणाणुपुव्वीदव्वाइं अवत्तव्वगदव्वाइं च जहा खेत्तं नवरं फुसणा भाणियव्वा ॥

स्पर्शनाद्वारमपि चेत्थमेव निखिलं भावनीयं, नवरमत्र कस्याश्चिद्वाचनाया अभिप्रायेणानुपूर्व्यामेकद्रव्यस्य सङ्ख्येयभागादारभ्य यावद्देशोनलोकस्पर्शना भवतीति ज्ञायते, अन्यस्यास्त्वभिप्रायेण सङ्ख्येयभागादारभ्य यावत् सम्पूर्णलोकस्पर्शना स्यादित्यवसीयते, एतच्च द्वयमपि बुध्यत एव, यतो यदि मुख्यतया क्षेत्रप्रदेशानामानुपूर्वीत्वमङ्गीक्रियते तदा अनानुपूर्व्यवक्तव्यकयोर्निरवकाशताप्रसङ्गात् पूर्ववद्देशोनता लोकस्य वाच्या, अथानुपूर्वीरूपे क्षेत्रेऽवगाढत्वादचित्तमहास्कन्धस्यैवानुपूर्वीत्वं तर्हि द्रव्यानुपूर्व्यामिवात्रापि सम्पूर्णता लोकस्य वाच्येति, न चात्रानुपूर्व्या सकलस्यापि लोकस्य स्पृष्टत्वादितरयोरवकाशाभाव इति वक्तव्यम्, एकै-

वृत्तिः उपक्रमाधि० ॥ ८२ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कप्रदेशरूपे द्विप्रदेशरूपे च क्षेत्रेऽवगाढानां प्रत्येकमसङ्ख्येयानां द्रव्यभेदानां सद्भावस्तयोरपि प्रत्येकमसङ्ख्येयभेदयोर्लोके सद्भावाद्, द्रव्यावगाहभेदेन च क्षेत्रभेदस्येह विवक्षितत्वादिति भावः, वृद्धबहुमतश्चायमपि पक्षो लक्ष्यते, तत्त्वं तु केवलिनो विदन्ति । क्षेत्रस्पर्शनयोस्तु विशेषः प्राग् निदर्शित एवेति, गतं स्पर्शनाद्वारम्, अथ कालद्वारं—

णेगमववहाराणं आणुपुव्वीदव्वाइं कालओ केवच्चिरं होइ?, एवं तिण्णिवि, एगं दव्वं पडुच्च जहन्नेणं एगं समयं उक्कोसेणं असंखिज्जं कालं, नाणादव्वाइं पडुच्च णियमा सव्वद्धा ॥

तत्र क्षेत्रावगाहपर्यायस्य प्राधान्यविवक्षया त्र्यादिप्रदेशावगाढद्रव्याणामेवानुपूर्व्यादिभावः पूर्वमुक्तः, अतस्तेषामेवावगाहस्थितिकालं चिन्तयन्नाह—'एगं दव्वं पडुचे'त्यादि, अत्र भावना—इह द्विप्रदेशावगाढस्य वा एकप्रदेशावगाढस्य वा द्रव्यस्य परिणामवैचित्र्यात् प्रदेशत्रयाद्यवगाहभवने आनुपूर्वीव्यपदेशः सञ्जातः, समयं चैकं तद्भावमनुभूय पुनस्तथैव द्विप्रदेशावगाढमेकप्रदेशावगाढं वा तद्द्रव्यं संजातमित्यानुपूर्व्याः समयो जघन्यावगाहस्थितिः, यदा तु तदेव द्रव्यमसंख्येयं कालं तद्भावमनुभूय पुनस्तथैव द्विप्रदेशावगाढमेकप्रदेशावगाढं वा जायते तदा उत्कृष्टतया असङ्ख्येयोऽवगाहस्थितिकालः सिद्ध्यति, अनन्तस्तु न भवति, विवक्षितै-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१०१] + गाथा ॥१॥

दीप अनुक्रम [११४--११६]

अनुयो० मलधारीया ॥ ८३ ॥

कद्रव्यस्यैकावगाहेनोत्कृष्टतोऽप्यसङ्ख्यातकालमेवावस्थानादिति, नानाद्रव्याणि तु 'सर्वाद्धा' सर्वकालमेव भवन्ति, द्व्यादिप्रदेशावगाढद्रव्यभेदानां सदैवावस्थानादिति, एवं यदा समयमेकं किञ्चिद् द्रव्यमेकस्मिन् प्रदेशेऽवगाढं स्थित्वा ततो द्व्यादिप्रदेशावगाढं भवति तदाऽनानुपूर्व्याः समयो जघन्यावगाहस्थितिः, यदा तु तदेवासङ्ख्यातं कालं तद्रूपेण स्थित्वा ततो द्व्यादिप्रदेशावगाढं भवति तदोत्कृष्टतोऽसङ्ख्येयोऽवगाहस्थितिकालः, नानाद्रव्याणि तु सर्वकालम्, एकप्रदेशावगाढद्रव्यभेदानां सर्वदैव सद्भावादिति, अवक्तव्यकस्य तु द्विप्रदेशावगाढस्य समयादूर्ध्वमेकस्मिँरुयादिषु वा प्रदेशेष्ववगाहप्रतिपत्तौ जघन्यः समयोऽवगाहस्थितिः, असङ्ख्येयकालादूर्ध्वं द्विप्रदेशावगाहं परित्यजत उत्कृष्टतोऽसङ्ख्येयोऽवगाहस्थितिकालः सिद्ध्यति, नानाद्रव्याणि तु सर्वकालं, द्विप्रदेशावगाढद्रव्यभेदानां सदैव भावादिति, एवं समानवक्तव्यत्वादतिदिशति— 'एवं दोण्णिवि'त्ति । इदानीमन्तरद्वारम्—

णेगमववहाराणं आणुपुव्वीदव्वाणमंतरं कालओ केवच्चिरं होइ ?, तिण्हंपि एगं दव्वं पडुच्च जहण्णेणं एक्कं समयं उक्कोसेणं असंखेज्जं कालं, नाणादव्वाइं पडुच्च णत्थि अंतरं ॥

'जहण्णेणं एक्कं समयं'ति, अत्र भावना–इह यदा त्र्यादिप्रदेशावगाढं किमप्यानुपूर्वीद्रव्यं समयमेकं तस्मा-

वृत्तिः उपक्रमाधि०

॥ ८३ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१०१] + गाथा ॥१॥

दीप अनुक्रम [११४--११६]

द्विवक्षितक्षेत्रादन्यत्रावगाहं प्रतिपद्य पुनरपि केवलमन्यद्द्रव्यसंयुक्तं वा तेष्वेव विवक्षितव्याद्याकाशप्रदेशेष्ववगाहते तदैकानुपूर्वीद्रव्यस्य समयो जघन्योऽन्तरकालः प्राप्यते, 'उक्कोसेणं असंखेज्जं कालं'ति तदेव यदाऽन्येषु क्षेत्रप्रदेशेष्वसङ्ख्येयं कालं परिभ्रम्य केवलमन्यद्द्रव्यसंयुक्तं वा समागत्य पुनरपि तेष्वेव विवक्षितव्याद्याकाशप्रदेशेष्ववगाहते तदोत्कृष्टतोऽसङ्ख्येयोऽन्तरकालः प्राप्यते, न पुनर्द्रव्यानुपूर्व्यामिवानन्तो, यतो द्रव्यानुपूर्व्यां विवक्षितद्रव्यादन्ये द्रव्यविशेषा अनन्ताः प्राप्यन्ते, तैश्च सह क्रमेण संयोगे उक्तोऽनन्तः कालः, अत्र तु विवक्षितावगाहक्षेत्रादन्यत् क्षेत्रमसङ्ख्येयमेव, प्रतिस्थानं चावगाहनामाश्रित्य संयोगस्थितिरत्राप्यसङ्ख्येयकालैव, ततश्चासङ्ख्येये क्षेत्रे परिभ्रमता द्रव्येण पुनरपि केवलेनान्यसंयुक्तेन वाऽसङ्ख्येयकालात्तेष्वेव नभःप्रदेशेष्वागत्यावगाहनीयं, न च वक्तव्यमसङ्ख्येयेऽपि क्षेत्रे पौनः पुन्येन तत्रैव परिभ्रमणे कस्मादनन्तोऽपि कालो नोक्त इति?, यत इहासङ्ख्येयक्षेत्रेऽसङ्ख्येयकालमेवान्यत्र तेन पर्यटितव्यं, तत ऊर्ध्वं पुनस्तस्मिन्नेव विवक्षितक्षेत्रे नियमादवगाहनीयं, वस्तुस्थितिस्वाभाव्यादिति तावदेकीयं व्याख्यानमादर्शितम् । अन्ये तु व्याचक्षते–यस्मात् व्यादिप्रदेशलक्षणाद्विवक्षितक्षेत्रात् तदानुपूर्वीद्रव्यमन्यत्र गतं, तस्य क्षेत्रस्य स्वभावादेवासङ्ख्येयकालादूर्ध्वं तेनैवानुपूर्वीद्रव्येण वर्णगन्धरसस्पर्शसङ्ख्यादिधर्मैः सर्वथा तुल्येनान्येन वा तथाविधाधेयेन संयोगे सति नियमात् तथाभूताधारतोपपत्तेरसङ्ख्येय एवान्तरकाल इति, तत्त्वं तु केवलिनो विदन्ति, गम्भीरत्वात् सूत्रप्रवृत्तेरिति । 'नाणादव्वाइं'इत्यादि, न हि व्यादिप्रदेशावगाढानुपूर्वीद्रव्याणि युगपत् सर्वा-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ण्यपि तद्भावं विहाय पुनस्तथैव जायन्त इति कदाचिदपि सम्भवति, असङ्ख्येयानां तेषां सर्वदैवोक्तत्वादिति भावः । अनानुपूर्व्यवक्तव्यकद्रव्येष्वप्यसावेवैकानेकद्रव्याश्रया अन्तरकालवक्तव्यता, केवलमनानुपूर्वीद्रव्यस्यैकप्रदेशावगाढस्यावक्तव्यकद्रव्यस्य तु द्विप्रदेशावगाढस्य पुनस्तथाभवनेऽन्तरकालश्चिन्तनीयः, शेषा तु व्याख्याद्वयभावना सर्वाऽपि तथैवेति ॥ उक्तमन्तरद्वारम्, साम्प्रतं भागद्वारमुच्यते—

णेगमववहाराणं आणुपुव्वीदव्वाइं सेसदव्वाणं कइभागे होज्जा ?, तिण्णिवि जहा दव्वाणुपुव्वीए ॥

तत्र यथा द्रव्यानुपूर्व्यो तथाऽत्राप्यानुपूर्वीद्रव्याणि अनानुपूर्व्यवक्तव्यकलक्षणेभ्यः शेषद्रव्येभ्योऽसङ्ख्येयैर्भागैरधिकानि, शेषद्रव्याणि तु तेषामसङ्ख्येयभागे वर्तन्त इति । अत्राह–ननु त्र्यादिप्रदेशावगाढानि द्रव्यानुपूर्व्यां एकैकप्रदेशावगाढान्यनानुपूर्व्यो द्विद्विप्रदेशावगाढान्यवक्तव्यकानीति प्राक् प्रतिज्ञातम्, एतानि चानुपूर्व्यादीनि सर्वस्मिन्नपि लोके सन्त्यतो युक्त्या विचार्यमाणान्यानुपूर्वीद्रव्याण्येव स्तोकानि ज्ञायन्ते, तथाहि–असत्कल्पनया किल लोके त्रिंशत् प्रदेशाः, तत्र चानानुपूर्वीद्रव्याणि त्रिंशदेव, अवक्तव्यकानि तु पञ्चदश, आनुपूर्वीद्रव्याणि तु यदि सर्वस्तोकतया त्रिप्रदेशनिष्पन्नानि गण्यन्ते तथापि दशैव भवन्तीति शेषेभ्यः स्तोकान्येव प्राप्नुवन्ति, कथमसङ्ख्येयगुणानि स्युरिति ?, अत्रोच्यते, एकस्मिन्नानुपूर्वीद्रव्ये ये नभःप्र-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[४५], चूलिकासूत्र-[२] अनुयोगद्वार मूलं एवं हेमचन्द्रसूरि-रचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१०१] + गाथा ॥१॥

दीप अनुक्रम [११४--११६]

देशा उपयुज्यन्ते ते यद्यन्यस्मिन्नपि नोपयुज्येरँस्तदा स्यादेवं, तच्च नास्ति, यत एकस्मिन्नपि प्रदेशत्रयनिष्पन्ने आनुपूर्वीद्रव्ये ये त्रयः प्रदेशास्त एवान्योन्यरूपतयाऽवगाढेनाधेयद्रव्येणाक्रान्ताः सन्तः प्रत्येकमनेकेषु त्रिकसंयोगेषु गण्यन्ते, प्रतिसंयोगमाधेयद्रव्यस्य भेदात्, तद्भेदे चाधारभेदादिति भावः, एवमन्यान्यपि चतुष्प्रदेशावगाढाद्याधेयेनाध्यासितत्वात्त एवानेकेषु चतुष्कसंयोगेष्वनेकेषु पञ्चकसंयोगेषु यावदनेकेष्वसङ्ख्येयकसंयोगेषु प्रत्येकमुपयुज्यन्ते, एवं चतुरादिप्रदेशनिष्पन्नेष्वप्यानुपूर्वीद्रव्येषु ये चतुरादयः प्रदेशास्तेषामप्यन्यान्यसंयोगोपयोगिता भावनीया, तस्मादसङ्ख्येयप्रदेशात्मके खस्थित्या व्यवस्थिते लोके यावन्तस्त्रिकसंयोगादयोऽसङ्ख्येयकसंयोगपर्यन्ताः संयोगा जायन्ते तावन्त्यानुपूर्वीद्रव्याणि भवन्ति, प्रतिसंयोगमाधेयद्रव्यस्य भेदेनावस्थितिसद्भावाद्, आधेयभेदे चाधारभेदात्, न हि नभःप्रदेशा येनैव स्वरूपेणैकस्मिन्नाधेये उपयुज्यन्ते तेनैव स्वरूपेणाधेयान्तरेऽपि, आधेयैकताप्रसङ्गाद्, एकस्मिन्नाधारस्वरूपे तदवगाहाभ्युपगमाद्, घटे तत्स्वरूपवत्, तस्मात्त्र्यादिसंयोगानां लोके बहुत्वादानुपूर्वीणां बहुत्वं भावनीयम्, अवक्तव्यकानि तु स्तोकानि, द्विकसंयोगानां तत्र स्तोकत्वाद्, अनानुपूर्व्योऽपि स्तोका एव, लोकप्रदेशसङ्ख्यमात्रत्वाद्। अत्र सुखप्रतिपत्त्यर्थं लोके किल पञ्चाकाशप्रदेशाः कल्प्यन्ते, तद्यथा–⁘, अत्रानानुपूर्व्यस्तावत् पञ्चैव प्रतीताः, अवक्तव्यकानि त्वष्टौ, द्विकसंयोगानामिहाष्टानामेव सम्भवाद्, आनुपूर्व्यस्तु षोडश संभवन्ति, दशानां त्रिकसंयोगानां पञ्चानां चतुष्कसंयोगानामेकस्य तु पञ्चकयोगस्येह लाभाद्, दश त्रिकयोगाः कथमिह लभ्यन्ते?

अनु. १५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१०१] + गाथा ॥१॥

दीप अनुक्रम [११४--११६]

अनुयो० मलधारीया ॥ ८५ ॥

इति चेद्, उच्यते, षट् तावत् मध्यव्यवस्थापितेन सह लभ्यन्ते चत्वारस्तु त्रिकसंयोगा दिग्व्यवस्थापितैश्चतुर्भिरेव केवलैरिति, चतुष्कयोगास्तु चत्वारो मध्यव्यवस्थापितेन सह लभ्यन्ते, एकस्तु तन्निरपेक्षैर्दिग्व्यवस्थितैरेवेति सर्वे पञ्च, पञ्चकयोगस्तु प्रतीत एवेति, तदेवं प्रदेशपञ्चकप्रस्तारेऽप्यानुपूर्वीणां बाहुल्यं दृश्यते, अत एव तदनुसारेण सद्भावतोऽसङ्ख्येयप्रदेशात्मके लोकेऽत्रानुपूर्वीद्रव्याणां शेषेभ्योऽसङ्ख्यातगुणत्वं भावनीयमित्यलं विस्तरेण। उक्तं भागद्वारम्, साम्प्रतं भावद्वारम्—

णेगमववहाराणं आणुपुव्वीदव्वाइं कयरंमि भावे होज्जा?, णियमा साइपारिणामिए भावे होज्जा, एवं दोण्णिवि।

तत्र च द्रव्याणां त्र्यादिप्रदेशावगाहपरिणामस्य एकप्रदेशावगाहपरिणामस्य द्विप्रदेशावगाहपरिणामस्य च सादिपारिणामिकत्वात् त्रयाणामपि सादिपारिणामिकभाववर्त्तित्वं भावनीयमिति। अल्पबहुत्वद्वारे—

एएसि णं भंते! णेगमववहाराणं आणुपुव्वीदव्वाणं अणाणुपुव्वीदव्वाणं अवत्तव्वगदव्वाण य दव्वट्ठयाए पएसट्ठयाए दव्वट्ठपएसट्ठयाए कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा बहुआ वा तुल्ला वा विसेसाहिआ वा?, गोयमा! सव्वत्थोवाइं णेगमववहाराणं अवत्तव्वग-

वृत्तिः उपक्रमाधि०

॥ ८५ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१०१] + गाथा ||१||

दीप अनुक्रम [११४--११६]

दव्वाइं दव्वट्ठयाए अणाणुपुव्वीदव्वाइं दव्वट्ठयाए विसेसाहियाइं आणुपुव्वीदव्वाइं दव्वट्ठयाए असंखेज्जगुणाइं, पएसट्ठयाए सव्वत्थोवाइं णेगमववहाराणं अणाणुपुव्वीदव्वाइं अपएसट्ठयाए अवत्तव्वगदव्वाइं पएसट्ठयाए विसेसाहियाइं आणुपुव्वीदव्वाइं पएसट्ठयाए असंखेज्जगुणाइं, दव्वट्ठपएसट्ठयाए सव्वत्थोवाइं णेगमववहाराणं अवत्तव्वगदव्वाइं दव्वट्ठयाए अणाणुपुव्वीदव्वाइं दव्वट्ठयाए अपएसट्ठयाए विसेसाहिआइं अवत्तव्वगदव्वाइं पएसट्ठयाए विसेसाहियाइं आणुपुव्वीदव्वाइं दव्वट्ठयाए असंखेज्जगुणाइं ताइं चेव पएसट्ठयाए असंखेज्जगुणाइं, से तं अणुगमे । से तं णेगमववहाराणं अणोवणिहिआ खेत्ताणुपुव्वी (सू० १०१)

इह द्रव्यगणनं द्रव्यार्थता प्रदेशगणनं प्रदेशार्थता उभयगणनं तूभयार्थता, तत्रानुपूर्व्यो विशिष्टद्रव्यावगाहोपलक्षिताकाशादिनभःप्रदेशसमुदायास्तावद् द्रव्याणि समुदायारम्भकास्तु प्रदेशाः, अनानुपूर्व्यो त्वेकैकप्रदेशावगाहिद्रव्योपलक्षिताः सकलनभःप्रदेशाः प्रत्येकं द्रव्याणि, प्रदेशास्तु न संभवन्ति, एकैकप्रदेशद्रव्ये हि प्रदेशान्तरायोगाद्, अवक्तव्यकेषु तु यावन्तो लोके द्विकयोगाः संभवन्ति तावन्ति प्रत्येकं द्रव्याणि तदा-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१०१] + गाथा ॥१॥

दीप अनुक्रम [११४--११६]

अनुयो० मलधारीया ॥ ८६ ॥

रम्भकास्तु प्रदेशा इति, शेषा त्वत्र व्याख्या द्रव्यानुपूर्वीवत् कर्तव्येति, नवरं 'सव्वत्थोवाइं णेगमववहाराणं अवत्तव्वगदव्वाइ'मित्यादि, अत्राह–ननु यदा पूर्वोक्तयुक्त्या एकैको नभःप्रदेशोऽनेकेषु द्विकसंयोगेषूपयुज्यते तदा अनानुपूर्वीद्रव्येभ्योऽवक्तव्यकद्रव्याणामेव बाहुल्यमवगम्यते, यतः पूर्वोक्तायामपि पञ्चप्रदेशनभःकल्पनायामवक्तव्यकद्रव्याणामेवाष्टसङ्ख्योपेतानां पञ्चसङ्ख्येभ्योऽनानुपूर्वीद्रव्येभ्यो बाहुल्यं दृष्टं, तत्कथमत्र व्यत्ययः प्रतिपाद्यते?, सत्यम्, अस्त्येतत् केवलं लोकमध्ये, लोकपर्यन्तवर्तिनिष्कुटगतास्तु ये कण्टकाकृतयो विश्रेण्या निर्गता एकाकिनः प्रदेशास्ते विश्रेणिव्यवस्थितत्वादवक्तव्यकत्वायोग्या इत्यनानुपूर्वीसङ्ख्यायामेवान्तर्भवन्ति, अतो लोकमध्यगतां निष्कुटगतां च प्रस्तुतद्रव्यसङ्ख्यां मीलयित्वा यदा केवली चिन्तयति तदाऽवक्तव्यकद्रव्याण्येव स्तोकानि, अनानुपूर्वीद्रव्याणि तु तेभ्यो विशेषाधिकतां प्रतिपद्यन्ते, अत्र निष्कुटस्थापना '४४४,' अत्र विश्रेणिलिखितौ द्वौ अवक्तव्यकायोग्यौ द्रष्टव्याविति, एवम्भूताश्च किलामी सर्वलोकपर्यन्तेषु बहवः सन्तीत्यनानुपूर्वीणां बाहुल्यमित्यलं विस्तरेण । आनुपूर्वीद्रव्याणां तु तेभ्योऽसङ्ख्यातगुणत्वं भावितमेव, शेषं द्रव्यानुपूर्व्यनुसारेण भावनीयं, नवरमुभयार्थतांविचारे आनुपूर्वीद्रव्याणि स्वद्रव्येभ्यः प्रदेशार्थतयाऽसङ्ख्येयगुणानि, कथम्?, एकैकस्य तावद् द्रव्यस्य त्र्यादिभिरसङ्ख्येयान्तैर्नभःप्रदेशैरारब्धत्वात्, नभःप्रदेशानां च समुदितानामप्यसङ्ख्येयत्वादिति । 'से त'मित्यादि निगमनद्वयम् ॥१०१॥ उक्ता नैगमव्यवहारमतेनानौपनिधिकी क्षेत्रानुपूर्वी, अथ तामेव संग्रहमतेन बिभणिषुराह—

वृत्तिः उपक्र० माधि०

॥ ८६ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१०२] + गाथा ||१||

दीप अनुक्रम [११७--११९]

से किं तं संगहस्स अणोवणिहिआ खेत्ताणुपुव्वी?, २ पंचविहा पण्णत्ता, तंजहा– अट्ठपयपरूवणया भंगसमुक्कित्तणया भंगोवदंसणया समोआरे अणुगमे, से किं तं संगहस्स अट्ठपयपरूवणया?, २ तिपएसोगाढे आणुपुव्वी चउप्पएसोगाढे आणुपुव्वी जाव दसपएसोगाढे आणुपुव्वी संखिज्जपएसोगाढे आणुपुव्वी असंखिज्जपएसोगाढे आणुपुव्वी एगपएसोगाढे अणाणुपुव्वी दुपएसोगाढे अवत्तव्वए, से तं संगहस्स अट्ठपयपरूवणया। एआए णं संगहस्स अट्ठपयपरूवणयाए किं पओअणं?, संगहस्स अट्ठपयपरूवणयाए संगहस्स भंगसमुक्कित्तणया कज्जइ, से किं तं संगहस्स भंगसमुक्कित्तणया?, २ अत्थि आणुपुव्वी अत्थि अणाणुपुव्वी अत्थि अवत्तव्वए, अहवा अत्थि आणुपुव्वी अ अणाणुपुव्वी अ एवं जहा दव्वाणुपुव्वीए संगहस्स तहा भाणिअव्वं जाव से तं संगहस्स भंगसमुक्कित्तणया। एआए णं संगहस्स भंगसमुक्कित्तणयाए किं पओअणं?, एआए णं संगहस्स भंगसमुक्कित्तणयाए संगहस्स भंगो-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१०२] + गाथा ॥१॥

दीप अनुक्रम [११७--११९]

वदंसणया कज्जइ, से किं तं संगहस्स भंगोवदंसणया?, २ तिपएसोगाढे आणुपुव्वी एगपएसोगाढे अणाणुपुव्वी दुपएसोगाढे अवत्तव्वए अहवा तिपएसोगाढे अ एगपएसोगाढे अ आणुपुव्वी अ अणाणुपुव्वी अ एवं जहा दव्वाणुपुव्वीए संगहस्स तहा खेत्ताणुपुव्वीए वि भाणिअव्वं जाव से तं संगहस्स भंगोवदंसणया। से किं तं समोआरे?, २ संगहस्स आणुपुव्वीदव्वाइं कहिं समोअरंति? किं आणुपुव्वीदव्वेहिं समोअरंति अणाणुपुव्वीदव्वेहिं अवत्तव्वगदव्वेहिं?, तिण्णिवि सट्ठाणे समोअरंति, से तं समोआरे। से किं तं अणुगमे?, २ अट्ठविहे पण्णत्ते, तंजहा–संतपयपरूवणया जाव अप्पाबहुं नत्थि ॥ २ ॥ संगहस्स आणुपुव्वीदव्वाइं किं अत्थि णत्थि?, नियमा अत्थि, एवं तिण्णिवि, सेसगदाराइं जहा दव्वाणुपुव्वीए संगहस्स तहा खेत्ताणुपुव्वीए वि भाणिअव्वाइं, जाव से तं अणुगमे। से तं संगहस्स अणोवणिहिआ खेत्ताणुपुव्वी। से तं अणोवणिहिआ खेत्ताणुपुव्वी (सू० १०२)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[४५], चूलिकासूत्र-[२] अनुयोगद्वार मूलं एवं हेमचन्द्रसूरि-रचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१०२] + गाथा ॥१॥

दीप अनुक्रम [११७--११९]

इह संग्रहाभिमतद्रव्यानुपूर्व्यनुसारेण निखिलं भावनीयं, नवरं क्षेत्रप्राधान्यादत्र 'तिपएसोगाढा आणुपुव्वी जाव असंखेज्जपएसोगाढा आणुपुव्वी एगपएसोगाढा अणाणुपुव्वी दुपएसोगाढा अवत्तव्वए' इत्यादि वक्तव्यं, शेषं तथैवेति ॥ १०२ ॥ उक्ता अनौपनिधिकी क्षेत्रानुपूर्वी, अथौपनिधिकीं तां निर्दिदिक्षुराह—

से किं तं उवणिहिआ खेत्ताणुपुव्वी ?, २ तिविहा पण्णत्ता, तंजहा—पुव्वाणुपुव्वी पच्छाणुपुव्वी अणाणुपुव्वी । से किं तं पुव्वाणुपुव्वी ?, २ अहोलोए तिरिअलोए उड्ढलोए, से तं पुव्वाणुपुव्वी । से किं तं पच्छाणुपुव्वी ?, २ उड्ढलोए तिरिअलोए अहोलोए, से तं पच्छाणुपुव्वी । से किं तं अणाणुपुव्वी ?, २ एआए चेव एगाइआए एगुत्तरिआए तिगच्छगयाए सेढीए अन्नमन्नब्भासो दुरूवूणो, से तं अणाणुपुव्वी ।

अत्र व्याख्या पूर्ववत् कर्तव्या, नवरं तत्र द्रव्यानुपूर्व्यधिकारात् धर्मास्तिकायादिद्रव्याणि पूर्वानुपूर्व्यादिस्वेनोदाहृतानि, अत्र तु क्षेत्रानुपूर्व्यधिकारादधोलोकादिक्षेत्रविशेषा इति, इह चोर्ध्वाधश्चतुर्दशरज्ज्वायतस्य विस्तरतस्त्वनियतस्य पञ्चास्तिकायमयस्य लोकस्य त्रिधा परिकल्पनेऽधोलोकादिविभागाः सम्पद्यन्ते, तत्रास्यां रत्नप्रभायां बहुसमभूभागे मेरुमध्ये नभःप्रतरद्वयेऽष्टप्रदेशो रुचकः समस्ति, तस्य च प्रतरद्वयस्य मध्ये एक-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[४५], चूलिकासूत्र-[२] अनुयोगद्वार मूलं एवं हेमचन्द्रसूरि-रचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१०४] + गाथा ॥१-४॥

दीप अनुक्रम [१२०--१२५]

अनुयो० मलधारीया ॥ ८८ ॥

स्मादधस्तनप्रतरादारभ्याधोऽभिमुखं नव योजनशतानि परिहृत्य परतः सातिरेकसप्तरज्ज्वायतोऽधोलोकः, तत्र लोक्यते–केवलिप्रज्ञया परिच्छिद्यत इति लोकः, अधोव्यवस्थितो लोकोऽधोलोकः, अथवा अधःशब्दोऽशुभपर्यायः, तत्र च क्षेत्रानुभावाद् बाहुल्येनाशुभ एव परिणामो द्रव्याणां जायते, अतोऽशुभपरिणामवद्द्रव्ययोगादधः-अशुभो लोकोऽधोलोकः, उक्तं च—"[1]अहव अहोपरिणामो खेत्तणुभावेण जेण ओसण्णं। असुभो अहोत्ति भणिओ दव्वाणं तेणऽहोलोगो ॥ १ ॥"त्ति, तस्यैव रुचकप्रतरद्वयस्य मध्ये एकस्मादुपरितनप्रतरादारभ्योर्ध्वं नव योजनशतानि परिहृत्य परतः किञ्चिदूनसप्तरज्ज्वायत ऊर्ध्वलोकः, ऊर्ध्वम्–उपरि व्यवस्थापितो लोकः ऊर्ध्वलोकः, अथवा ऊर्ध्वशब्दः शुभपर्यायः, तत्र च क्षेत्रस्य शुभत्वात्तदनुभावाद् द्रव्याणां प्रायः शुभा एव परिणामा भवन्ति, अतः शुभपरिणामवद्द्रव्ययोगादूर्ध्वं–शुभो लोक ऊर्ध्वलोकः, उक्तं च—"[2]उड्ढंति उवरि जं चिय सुभखित्तं खेत्तओ य दव्वगुणा। उप्पज्जंति सुभा वा तेण तओ उड्ढलोगोत्ति ॥ १ ॥" तयोश्चाधोलोकोर्ध्वलोकयोर्मध्ये अष्टादशयोजनशतानि तिर्यग्लोकः, समयपरिभाषया तिर्यग्–मध्ये व्यवस्थितो लोकस्तिर्यग्लोकः, अथवा तिर्यक्शब्दो मध्यमपर्यायः, तत्र च क्षेत्रानुभावात् प्रायो मध्यमपरिणामवन्त्येव द्रव्याणि संभवन्ति, अतस्तद्योगात्तिर्यङ्-मध्यमो लोकस्तिर्यग्लोकः, अथवा स्वकीयोर्ध्वाधोभा-

१ अथवा अधःपरिणामः क्षेत्रानुभावेन येनोत्सन्नम्। अशुभोऽध इति भणितः द्रव्याणां तेनाधोलोकः ॥ १ ॥ २ ऊर्ध्वमिति उपरि यदेव शुभक्षेत्रं क्षेत्रतश्च द्रव्यगुणाः। उत्पद्यन्ते शुभा वा तेन सक ऊर्ध्वलोक इति ॥ १ ॥

वृत्तिः उपक्रमाधि०

॥ ८८ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

*** सूत्रस्य क्रमांकने मुद्रणदोषत्वात् सू० '१०३' स्थाने '१०४' इति क्रमः मुद्रितं. तत् कारणात् अत्र मया अपि '१०४' इति लिखितम्

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[४५], चूलिकासूत्र-[२] अनुयोगद्वार मूलं एवं हेमचन्द्रसूरि-रचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१०४] + गाथा ॥१-४॥

दीप अनुक्रम [१२०--१२५]

गात्तिर्यग्भाग एवातिविशालतयाऽत्र प्रधानम्, अतस्तेन व्यपदेशः कृतः, तिर्यग्भागप्रधानो लोकस्तिर्यग्लोकः, उक्तं च—"मज्झणुभावं खेत्तं जं तं तिरियंति वयणपज्जवओ। भण्णइ तिरियं विसालं अतो व तं तिरियलोगोत्ति ॥ १ ॥" 'वयणपज्जवओ'त्ति मध्यानुभाववचनस्य तिर्यग्ध्वनेः पर्यायतामाश्रित्येत्यर्थः। अत्र च जघन्यपरिणामवद्द्रव्ययोगतो जघन्यतया गुणस्थानकेषु मिथ्यादृष्टेरिवादावेवाधोलोकस्योपन्यासः, तदुपरि मध्यमद्रव्यवत्त्वात् मध्यमतया तिर्यग्लोकस्य, तदुपरिष्टादुत्कृष्टद्रव्यवत्त्वादूर्ध्वलोकस्योपन्यास इति पूर्वानुपूर्वीत्वसिद्धिः, पश्चानुपूर्वी तु व्यत्ययेन प्रतीतैव, अनानुपूर्व्यां तु पदत्रयस्य षड् भङ्गा भवन्ति, ते च पूर्वं दर्शिता एव, शेषभावना त्विह प्राग्वदेवेति। अत्र च क्वचिद्वाचनान्तरे एकप्रदेशावगाढादीनां असङ्ख्यातप्रदेशावगाढान्तानां प्रथमं पूर्वानुपूर्व्यादिभाव उक्तो दृश्यते, सोऽपि क्षेत्रानुपूर्व्यधिकारादविरुद्ध एव, सुगमत्वाच्चोक्तानुसारेण भावनीय इति ॥ साम्प्रतं वस्त्वन्तरविषयत्वेन पूर्वानुपूर्व्यादिभावं दिदर्शयिषुरधोलोकादीनां च भेदपरिज्ञाने शिष्यव्युत्पत्तिं पश्यन्नाह—

अहोलोअखेत्ताणुपुव्वी तिविहा पण्णत्ता, तंजहा—पुव्वाणुपुव्वी पच्छाणुपुव्वी अणाणुपुव्वी। से किं तं पुव्वाणुपुव्वी?, २ रयणप्पभा सक्करप्पभा वालुअप्पभा पंकप्पभा

१ मध्यानुभावं क्षेत्रं यत् तत्तिर्यगिति वचनपर्यवात्। भण्यते तिर्यग् विशालमतो वा स तिर्यग्लोक इति ॥ १ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	*** सूत्रस्य क्रमांकने मुद्रणदोषत्वात् सू० '१०३' स्थाने '१०४' इति क्रमः मुद्रितं. तत् कारणात् अत्र मया अपि '१०४' इति लिखितम्

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[४५], चूलिकासूत्र-[२] अनुयोगद्वार मूलं एवं हेमचन्द्रसूरि-रचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१०४] + गाथा ॥१-४॥

दीप अनुक्रम [१२०--१२५]

अनुयो० मलधारीया ॥ ८९ ॥

धूमप्पभा तमप्पभा तमतमप्पभा, से तं पुव्वाणुपुव्वी । से किं तं पच्छाणुपुव्वी ?, २ तमतमा जाव रयणप्पभा, से तं पच्छाणुपुव्वी । से किं तं अणाणुपुव्वी ?, २ एआए चेव एगाइआए एगुत्तरिआए सत्तगच्छगयाए सेढीए अन्नमन्नब्भासो दुरूवूणो, से तं अणाणुपुव्वी । तिरिअलोअखेत्ताणुपुव्वी तिविहा पण्णत्ता, तंजहा–पुव्वाणुपुव्वी पच्छाणुपुव्वी अणाणुपुव्वी ।

'अहोलोयखेत्ताणुपुव्वी तिविहे'त्यादि, अधोलोकक्षेत्रविषया आनुपूर्वी २, औपनिधिकीति प्रक्रमाल्लभ्यते, सा त्रिविधा प्रज्ञप्ता, तद्यथेत्यादि, शेषं पूर्ववद्भावनीयं यावद्रत्नप्रभेत्यादि, इन्द्रनीलादिबहुविधरत्नसम्भवान्न-रकवर्ज्जप्रायो रत्नानां प्रभा–ज्योत्स्ना यस्यां सा रत्नप्रभा, एवं शर्कराणाम्–उपलखण्डानां प्रभा–प्रकाशनं स्वरूपेणावस्थानं यस्यां सा शर्कराप्रभा, वालुकाया वालिकाया वा–परुषपांशूत्कररूपायाः प्रभा–स्वरूपाव-स्थितिर्यस्यां सा वालुकाप्रभा वालिकाप्रभा वेति, पङ्कस्य प्रभा यस्यां सा पङ्कप्रभा, पङ्काभद्रव्योपलक्षिते-त्यर्थः, धूमस्य प्रभा यस्यां सा धूमप्रभा, धूमाभद्रव्योपलक्षितेत्यर्थः, तमसः प्रभा यस्यां सा तमःप्रभा, कृष्ण-द्रव्योपलक्षितेत्यर्थः, क्वचित्तमेति पाठः, तत्रापि तमोरूपद्रव्ययुक्तत्वात्तमा इति, महातमसः प्रभा यस्यां सा महातमःप्रभा, अतिकृष्णद्रव्योपलक्षितेत्यर्थः, क्वचित्तमतमेति पाठः, तत्राप्यतिशयवत्तमस्तमस्तमस्तद्रूपद्र-

वृत्तिः उपक्र-माधि०

॥ ८९ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

*** सूत्रस्य क्रमांकने मुद्रणदोषत्वात् सू० '१०३' स्थाने '१०४' इति क्रमः मुद्रितं. तत् कारणात् अत्र मया अपि '१०४' इति लिखितम्

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[४५], चूलिकासूत्र-[२] अनुयोगद्वार मूलं एवं हेमचन्द्रसूरि-रचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१०४] + गाथा ||१-४||

दीप अनुक्रम [१२०--१२५]

व्ययोगात् तमस्तमा इति, अत्र प्रज्ञापकप्रत्यासन्नेति रत्नप्रभाया आदावुपन्यासः कृतः, ततः परं व्यवहितव्यवहिततरादित्वात् क्रमेण शर्कराप्रभादीनामिति पूर्वानुपूर्वीत्वं, व्यत्ययेन पश्चानुपूर्वीत्वम्, अमीषां च सप्तानां पदानां परस्पराभ्यासे पञ्च सहस्राणि चत्वारिंशदधिकानि भङ्गानां भवन्ति, तानि चाद्यन्तभङ्गकद्वयरहितान्यनानुपूर्व्यो द्रष्टव्यानीति, शेषभावना पूर्ववदिति

से किं तं पुव्वाणुपुव्वी?, २ जंबूदीवे लवणे धायइकालोअ पुक्खरे वरुणे। खीरघयखोअनंदी अरुणवरे कुंडले रुअगे ॥ १ ॥ आभरणवत्थगंधे उप्पलतिलए अ पुढविनिहिरयणे। वासहरदहनईओ विजया वक्खारकप्पिंदा ॥ २ ॥ कुरुमंदरआवासा कूडा नक्खत्तचंदसूरा य। देवे नागे जक्खे भूए अ सयंभुरमणे अ ॥ ३ ॥ से तं पुव्वाणुपुव्वी। से किं तं पच्छाणुपुव्वी?, २ सयंभूरमणे अ जाव जंबूदीवे, से तं पच्छाणुपुव्वी। से किं तं अणाणुपुव्वी?, २ एआए चेव एगाइआए एगुत्तरिआए असंखेज्जगच्छगयाए सेढीए अण्णमण्णब्भासो दुरूवूणो, से तं अणाणुपुव्वी।

तिर्यग्लोके क्षेत्रानुपूर्व्यां 'जंबूदीवे' इत्यादिगाथाव्याख्या द्वाभ्यां प्रकाराभ्यां स्थानतः [illegible]

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

*** सूत्रस्य क्रमांकने मुद्रणदोषत्वात् सू० '१०३' स्थाने '१०४' इति क्रमः मुद्रितं. तत् कारणात् अत्र मया अपि '१०४' इति लिखितम्

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[४५], चूलिकासूत्र-[२] अनुयोगद्वार मूलं एवं हेमचन्द्रसूरि-रचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१०४] + गाथा ॥१-४॥

दीप अनुक्रम [१२०--१२५]

अनुयो० मलधारीया ॥ ९० ॥

हेतुत्वलक्षणाभ्यां प्राणिनः पान्तीति द्वीपाः–जन्त्वावासभूतक्षेत्रविशेषाः, सह मुद्रया–मर्यादया वर्तन्त इति समुद्राः–प्रचुरजलोपलक्षिताः क्षेत्रविशेषा एव, एते च तिर्यग्लोके प्रत्येकमसङ्ख्येया भवन्ति, तत्र समस्तद्वीपसमुद्राभ्यन्तरभूतत्वेनादौ तावज्जम्बूवृक्षेणोपलक्षितो द्वीपो जम्बूद्वीपः, ततस्तं परिक्षिप्य स्थितो लवणरसास्वादनीरपूरितः समुद्रो लवणसमुद्रः, एकदेशेन समुदायस्य गम्यमानत्वाद्, एवं पुरस्तादपि यथासम्भवं द्रष्टव्यं, 'धायइ कालो य'त्ति, ततो लवणसमुद्रं परिक्षिप्य स्थितो धातकीवृक्षखण्डोपलक्षितो द्वीपो धातकीखण्डः, तत्परितोऽपि शुद्धोदकरसास्वादः कालोदः समुद्रः, तं च परिक्षिप्य स्थितः पुष्करैः–पद्मवरैरुपलक्षितो द्वीपः पुष्करवरद्वीपः, तत्परितोऽपि शुद्धोदकरसास्वाद एव पुष्करोदः समुद्रः, अनयोश्च द्वयोरप्येकेनैव पदेनात्र संग्रहो द्रष्टव्यः 'पुक्खरे'त्ति, एवमुत्तरत्रापि, ततो 'वरुणो'त्ति वरुणवरो द्वीपस्ततो वारुणीरसास्वादो वारुणोदः समुद्रः, 'खीर'त्ति क्षीरवरो द्वीपः क्षीररसास्वादः क्षीरोदः समुद्रः, 'घय'त्ति घृतवरो द्वीपः घृतरसास्वादो घृतोदः समुद्रः, 'खोय'त्ति इक्षुवरो द्वीपः इक्षुरसास्वाद एवेक्षुरसः समुद्रः, इत ऊर्ध्वं सर्वेऽपि समुद्राः द्वीपसदृशनामानो मन्तव्याः, अपरं च स्वयम्भूरमणवर्जाः सर्वेऽपीक्षुरसास्वादाः, तत्र द्वीपनामान्यमूनि, तद्यथा नन्दी–समृद्धिस्तया ईश्वरो द्वीपो नन्दीश्वरः, एवमरुणवरः अरुणावासः कुण्डलवरः शङ्खवरः रुचकवर इत्येवं षड् द्वीपनामानि चूर्णौ लिखितानि दृश्यन्ते, सूत्रे तु 'नन्दी अरुणवरे कुण्डले रुयगे' इत्येतस्मिन् गाथादले चत्वार्येव तान्युपलभ्यन्ते, अतः चूर्णिलिखि-

वृत्तिः उपक्रमाधि० ॥ ९० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

*** सूत्रस्य क्रमांकने मुद्रणदोषत्वात् सू० '१०३' स्थाने '१०४' इति क्रमः मुद्रितं. तत् कारणात् अत्र मया अपि '१०४' इति लिखितम्

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[४५], चूलिकासूत्र-[२] अनुयोगद्वार मूलं एवं हेमचन्द्रसूरि-रचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१०४] + गाथा ॥१-४॥

दीप अनुक्रम [१२०--१२५]

तानुसारेण रुचकस्त्रयोदशः, सूत्रलिखितानुसारतस्तु स एवैकादशो भवति, तत्त्वं तु केवलिनो विदन्तीति गाथार्थः ॥ इदानीमनन्तरोक्तद्वीपसमुद्राणामवस्थितिस्वरूपप्रतिपादनार्थं शेषाणां तु नामाभिधानार्थमाह— "जंबुद्दीवाओ खलु निरन्तरा सेसया असंखइमा । भुयगवरकुसवराविय कोंचवराभरणमाई य ॥ १ ॥" इति, व्याख्या–एते पूर्वोक्ताः सर्वेऽपि जम्बूद्वीपादारभ्य 'निरन्तरा' नैरन्तर्येण व्यवस्थिताः, न पुनरमीषामन्तरेऽपरो द्वीपः कश्चनापि समस्तीति भावः, ये तु शेषका भुजगवरादय इत ऊर्ध्वं वक्ष्यन्ते ते प्रत्येकमसङ्ख्यातमा द्रष्टव्याः, तथाहि—'भुजगवरे'ति पूर्वोक्ताद् रुचकवराद् द्वीपादसङ्ख्येयान् द्वीपसमुद्रान् गत्वा भुजगवरो नाम द्वीपः समस्ति, 'कुसवर'त्ति ततोऽप्यसङ्ख्येयाँस्तान् गत्वा कुशवरो नाम द्वीपः समस्ति, अपिचेति समुच्चये, 'कोंचवरे'त्ति ततोऽप्यसङ्ख्येयाँस्तानतिक्रम्य क्रौञ्चवरो नाम द्वीपः समस्ति, 'आभरणमाई य'त्ति एवमसङ्ख्येयान् द्वीपसमुद्रानुल्लङ्घ्याऽऽभरणादयश्च–आभरणादिनामसदृशनामानश्च द्वीपा वक्तव्याः, समुद्रास्तु तत्सदृशनामान एव भवन्तीत्युक्तमेवेति गाथार्थः ॥ इयं च गाथा कस्याञ्चिद्वाचनायां न दृश्यत एव, केवलं क्वापि वाचनाविशेषे दृश्यते, टीकाचूर्ण्योस्तु तद्व्याख्यानमुपलभ्यत इत्यस्माभिरपि व्याख्यातेति । तानेवाभरणादीनाह—'आभरणवत्थे'त्यादि गाथाद्वयम्, असङ्ख्येयानाम् असङ्ख्येयानां द्वीपानामन्ते आभरणवस्त्रगन्धोत्पलतिलकादिपर्यायसदृशनामक एकैकोऽपि द्वीपस्तावद्वक्तव्यो यावदन्ते स्वयम्भूरमणो द्वीपः, शुद्धोदकरसः स्वयम्भूरमण एव समुद्र इति गाथाद्वयभावार्थः ॥ ननु यद्येवं तर्ह्यसङ्ख्येयान् द्वीपानतिक्रम्य ये

अनु. १६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

*** सूत्रस्य क्रमांकने मुद्रणदोषत्वात् सू० '१०३' स्थाने '१०४' इति क्रमः मुद्रितं. तत् कारणात् अत्र मया अपि '१०४' इति लिखितम्

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[४५], चूलिकासूत्र-[२] अनुयोगद्वार मूलं एवं हेमचन्द्रसूरि-रचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१०४] + गाथा ॥१-४॥

दीप अनुक्रम [१२०--१२५]

अनुयो० मलधा-रीया ॥ ९१ ॥

वर्तन्ते तेषामेव द्वीपानामेतानि नामान्याख्यातानि, ये त्वन्तरालेषु द्वीपास्ते किंनामका इति वक्तव्यं?, सत्यं, लोके पदार्थानां शङ्खध्वजकलशस्वस्तिकश्रीवत्सादीनि यावन्ति शुभनामानि तैः सर्वैरप्युपलक्षितास्तेषु द्वीपाः प्राप्यन्त इति स्वयमेव द्रष्टव्यं, यत उक्तम्—"दीवसमुद्दा णं भंते! केवइया नामधिज्जेहिं पण्णत्ता?, गोयमा! जावइया लोए सुभा नामा सुभा रूवा सुभा गंधा सुभा रसा सुभा फासा एवइया णं दीवसमुद्दा नामधिज्जेहिं पण्णत्ता" इति, सङ्ख्या तु सर्वेषामसङ्ख्येयस्वरूपा 'उद्धारसागराणं अड्ढाईज्जाण जत्तिया समया। दुगुणादुगुणपवित्थर दीवोदहि रज्जु एवइया' ॥ १ ॥ इति गाथाप्रतिपादिता द्रष्टव्या, तदेवमत्र क्रमोपन्यासे पूर्वानुपूर्वी व्यत्ययेन पश्चानुपूर्वी, अनानुपूर्वी त्वमीषामसङ्ख्येयानां पदानां परस्पराभ्यासे येऽसङ्ख्येया भङ्गा भवन्ति भङ्गकद्वयोना तत्स्वरूपा द्रष्टव्येति ॥

उड्ढलोअखेत्ताणुपुव्वी तिविहा पण्णत्ता, तंजहा–पुव्वाणुपुव्वी पच्छाणुपुव्वी अणाणुपुव्वी। से किं तं पुव्वाणुपुव्वी?, २ सोहम्मे ईसाणे सणंकुमारे माहिंदे बंभलोए लंतए महासुक्के सहस्सारे आणए पाणए आरणे अच्चुए गेवेज्जविमाणे अणुत्तरविमाणे

१ द्वीपसमुद्रा भदन्त! कियन्तो नामधेयैः प्रज्ञप्ताः?, गौतम! यावन्ति लोके शुभानि नामानि शुभानि रूपाणि शुभा गन्धाः शुभा रसाः शुभा स्पर्शा इयन्तो द्वीपसमुद्रा नामधेयैः प्रज्ञप्ताः. २ उद्धारसागराणामर्धतृतीयानां यावन्तः समयाः। द्विगुणद्विगुणप्रविस्तारा द्वीपोदधयो रज्ज्वामियन्तः ॥ १ ॥

वृत्तिः उपक्रमाधि०

॥ ९१ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

*** सूत्रस्य क्रमांकने मुद्रणदोषत्वात् सू० '१०३' स्थाने '१०४' इति क्रमः मुद्रितं. तत् कारणात् अत्र मया अपि '१०४' इति लिखितम्

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[४५], चूलिकासूत्र-[२] अनुयोगद्वार मूलं एवं हेमचन्द्रसूरि-रचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१०४] + गाथा ||१-४||

दीप अनुक्रम [१२०--१२५]

ईसिपब्भारा, से तं पुव्वाणुपुव्वी । से किं तं पच्छाणुपुव्वी?, २ ईसिपब्भारा जाव सोहम्मे, से तं पच्छाणुपुव्वी । से किं तं अणाणुपुव्वी?, २ एआए चेव एगाइआए एगुत्तरिआए पन्नरसगच्छगयाए सेढीए अन्नमन्नब्भासो दुरूवूणो, से तं अणाणुपुव्वी । अहवा उवणिहिआ खेत्ताणुपुव्वी तिविहा पण्णत्ता, तंजहा–पुव्वाणुपुव्वी पच्छाणुपुव्वी अणाणुपुव्वी, से किं तं पुव्वाणुपुव्वी?, २ एगपएसोगाढे दुपएसोगाढे दसपएसोगाढे संखिज्जपएसोगाढे जाव असंखिज्जपएसोगाढे, से तं पुव्वाणुपुव्वी । से किं तं पच्छाणुपुव्वी?, २ असंखिज्जपएसोगाढे संखिज्जपएसोगाढे जाव एगपएसोगाढे, से तं पच्छाणुपुव्वी। से किं तं अणाणुपुव्वी?, २ एआए चेव एगाइआए एगुत्तरिआए असंखिज्जगच्छगयाए सेढीए अन्नमन्नब्भासो दुरूवूणो, से तं अणाणुपुव्वी । से तं उवणिहिआ खेत्ताणुपुव्वी । से तं खेत्ताणुपुव्वी (सू० १०४)

ऊर्ध्वलोकक्षेत्रानुपूर्व्यां 'सोहम्मे'त्यादि, सकलविमानप्रधानसौधर्मावतंसकाभिधानविमानविशेषोपलक्षि-

१ द्वादश देवलोकाः ग्रैवेयका अनुत्तरा ईषत्प्राग्भारा च.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

*** सूत्रस्य क्रमांकने मुद्रणदोषत्वात् सू० '१०३' स्थाने '१०४' इति क्रमः मुद्रितं. तत् कारणात् अत्र मया अपि '१०४' इति लिखितम्

प्रत सूत्रांक [१०४] + गाथा ||१-४||

दीप अनुक्रम [१२०--१२५]

तत्वात् सौधर्मः, एवं सकलविमानप्रधानेशानावतंसकविमानविशेषोपलक्षित ईशानः, एवं तत्तद्विमानावतंसकप्राधान्येन तत्तन्नाम वाच्यं, यावत् सकलविमानप्रधानाच्युतावतंसकाभिधानविमानविशेषोपलक्षितोऽच्युतः, लोकपुरुषस्य ग्रीवाविभागे भवानि विमानानि ग्रैवेयकानि, नैषामन्यान्युत्तराणि विमानानि सन्तीत्यनुत्तरविमानानि, ईषद्भाराक्रान्तपुरुषवन्नता अन्तेष्विवतीषत्प्राग्भारेति, अत्र प्रज्ञापकप्रत्यासत्तेरादौ सौधर्मस्योपन्यासः, ततो व्यवहितादिरूपत्वात् क्रमेणेशानादीनामिति पूर्वानुपूर्वीत्वं, शेषभावना तु पूर्वोक्तानुसारतः कर्तव्येति क्षेत्रानुपूर्वी समाप्ता ॥ १०४ ॥ उक्ता क्षेत्रानुपूर्वी, साम्प्रतं प्रागुद्दिष्टामेव क्रमप्राप्तां कालानुपूर्वीं व्याचिख्यासुराह—

से किं तं कालाणु०?, २ दुविहा पण्णत्ता, तंजहा–उवणिहिआ य अणोवणिहिआ य (सू० १०५)। तत्थ णं जा सा उवणिहिआ सा ठप्पा, तत्थ णं जा सा अणोवणिहिआ सा दुविहा पण्णत्ता, तंजहा–णेगमववहाराणं संगहस्स य (सू० १०६)। से किं तं णेगमववहाराणं अणोवणिहिआ कालाणु०?, २ पंचविहा पण्णत्ता, तंजहा –अट्ठपयपरूवणया भंगसमुक्कित्तणया भंगोवदंसणया समोआरे अणुगमे (सू० १०७)। से किं तं णेगमववहाराणं अट्ठपयरूवणया?, २ तिसमयट्ठिइए आणु० जाव दससम-

॥ ९२ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

*** सूत्रस्य क्रमांकने मुद्रणदोषत्वात् सू० '१०३' स्थाने '१०४' इति क्रमः मुद्रितं. तत् कारणात् अत्र मया अपि '१०४' इति लिखितम्

प्रत सूत्रांक [१०५--११२]

दीप अनुक्रम [१२६--१३५]

यट्ठिईए आणु० संखिज्जसमयट्ठिईए आणु० असंखिज्जसमयट्ठिईए आणु०, एगसमयट्ठिईए अणाणु० दुसमयट्ठिईए अवत्तव्वए, तिसमयठिइआओ आणुपुव्वीओ एगसमयट्ठिईआओ अणाणु०ओ दुसमयट्ठिइआ अवत्तव्वगाइं, से तं णेगमववहाराणं अट्ठुपयपरूवणया। एआए णं णेगमववहाराणं अट्ठुपयपरूवणयाए किं पओअणं?, एआए णं णेगमववहाराणं अट्ठुपयपरूवणयाए णेगमववहाराणं भंगसमुक्कित्तणया कज्जइ (सू० १०८)। से किं तं णेगमववहाराणं भंगसमुक्कित्तणया?, २ अत्थि आणु० अत्थि अणाणु० अत्थि अवत्तव्वए, एवं दव्वाणुपुव्वीगमेणं कालाणुपुव्वीएवि ते चेव छव्वीसं भंगा भाणिअव्वा जाव से तं णेगमववहाराणं भंगसमुक्कित्तणया। एआए णं णेगमववहाराणं भंगसमुक्कित्तणयाए किं पओअणं?, एआए णं णेगमववहाराणं भंगसमुक्कित्तणयाए णेगमववहाराणं भंगोवदंसणया कज्जई (सू० १०९)। से किं तं णेगमववहाराणं भंगोवदंसणया?, २ तिसमयट्ठिईए आणु० एगसमयट्ठिईए अणाणु०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[४५], चूलिकासूत्र-[२] अनुयोगद्वार मूलं एवं हेमचन्द्रसूरि-रचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१०५--११२] + गाथा ॥१॥

दीप अनुक्रम [१२६--१३५]

दुसमयट्ठिईए अवत्तव्वए, तिसमयट्ठिईआ आणुपुव्वीओ एगसमट्ठिइआ अणाणुपुव्वीओ दुसमयट्ठिईआ अवत्तव्वगाइं, अहवा तिसमयट्ठिईए अ एगसमयट्ठिईए अ आणु० अणाणु० अ, एवं तहा चेव दव्वाणु० गमेणं छव्वीसं भंगा भाणिअव्वा, जाव से तं णेगमववहाराणं भंगोवदंसणया (सू० ११०)। से किं तं समोआरे? २ णेगमववहाराणं आणु०दव्वाइं कहिं समोअरंति? किं आणु०दव्वेहिं समोअरंति? अणाणु०दव्वेहिं?, एवं तिण्णिवि सट्ठाणे समोअरंति इति भाणिअव्वं। से तं समोआरे (सू० १११)। से किं तं अणुगमे?, २ णवविहे पण्णत्ते, तंजहा–संतपयपरूवणया जाव अप्पाबहुं चेव ॥ १ ॥ णेगमववहाराणं आणुपुव्वीदव्वाइं किं अत्थि णत्थि?, नियमा तिण्णिवि अत्थि। णेगमववहाराणं आणु०दव्वाइं किं संखेज्जाइं असंखेज्जाइं अणंताइं?, तिण्णिवि नो संखिज्जाइ असंखेज्जाइं नो अणंताइं

अत्राक्षरगमनिका यथा द्रव्यानुपूर्व्यां तथा कर्तव्या, यावत् 'तिसमयट्ठिईए आणुपुव्वी'त्यादि, त्रयः समयाः स्थितिर्यस्य परमाणुद्व्यणुकत्र्यणुकाद्यनन्ताणुकस्कन्धपर्यन्तस्य द्रव्यविशेषस्य स त्रिसमयस्थितिर्द्रव्यवि-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[४५], चूलिकासूत्र-[२] अनुयोगद्वार मूलं एवं हेमचन्द्रसूरि-रचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१०५--११२] + गाथा ॥१॥

दीप अनुक्रम [१२६--१३५]

शेष आनुपूर्वीति, आह–ननु यदि द्रव्यविशेष एवात्राप्यानुपूर्वी कथं तर्हि तस्य कालानुपूर्वीत्वं?, नैतदेवम्, अभिप्रायापरिज्ञानाद्, यतः समयत्रयलक्षणकालपर्यायविशिष्टमेव द्रव्यं गृहीतं, ततश्च पर्यायपर्यायिणोः कथञ्चिद्भेदात् कालपर्यायस्य चेह प्राधान्येन विवक्षितत्वाद् द्रव्यस्यापि विशिष्टस्य कालानुपूर्वीत्वं न दुष्यति, मुख्यं समयत्रयस्यैवात्रानुपूर्वीत्वं, किन्तु तद्विशिष्टद्रव्यस्यापि तदभेदोपचारात्तदुक्त इति भावः, एवं चतुःसमयस्थित्यादिष्वपि वाच्यं, यावद्दश समयाः स्थितिर्यस्य परमाण्वादिद्रव्यसङ्घातस्य स तथा, सङ्ख्येयाः समयाः स्थितिर्यस्य परमाण्वादेः स तथा, असङ्ख्येयाः समयाः स्थितिर्यस्य परमाण्वादेः स तथा, अनन्तास्तु समया द्रव्यस्य स्थितिरेव न भवति, स्वाभाव्याद्, इत्युक्तमेवेति, शेषा बहुवचननिर्देशादिभावना पूर्ववदेव, एकसमयस्थितिकं परमाण्वाद्यनन्ताणुकस्कन्धपर्यन्तं द्रव्यमनानुपूर्वी, द्विसमयस्थितिकं तु तदेवावक्तव्यकमिति, शेषं पूर्वोक्तानुसारेण सर्वं भावनीयं, यावद् द्रव्यप्रमाणद्वारे 'नो संखेज्जाइं असंखेज्जाइं नो अणंताइं' इति, अस्य भावना–इह त्र्यादिसमयस्थितिकानि परमाण्वादिद्रव्याणि लोके यद्यपि प्रत्येकमनन्तानि प्राप्यन्ते तथाऽपि समयत्रयलक्षणायाः स्थितेरेकस्वरूपत्वात् कालस्य चेह प्राधान्येन द्रव्यबहुत्वस्य गुणीभूतत्वात् त्रिसमयस्थितिकैरनन्तैरप्येकमेवानुपूर्वीद्रव्यम्, एवं चतुःसमयलक्षणायाः स्थितेरेकत्वादनन्तैरपि चतुःसमयस्थितिकद्रव्यैरेकमेवानुपूर्वीद्रव्यम्, एवं समयवृद्ध्या तावन्नेयं यावदसङ्ख्येयसमयलक्षणायाः स्थितेरेकत्वादनन्तैरप्यसङ्ख्येयसमयस्थितिकैर्द्रव्यैरेकमेवानुपूर्वीद्रव्यमिति, एवमसङ्ख्येयान्येवात्रानुपूर्वीद्रव्याणि भवन्ति, एव-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनुयो० मलधारीया ॥ ९४ ॥

मनानुपूर्व्यवक्तव्यकद्रव्याण्यपि प्रत्येकमसङ्ख्येयानि वाच्यानि, अत्राह–नन्वेकसमयस्थितिकद्रव्यस्यानानुपूर्वीत्वं द्विसमयस्थितिकस्य त्ववक्तव्यकत्वमुक्तं, तत्र यद्यप्येकद्विसमयस्थितीनि परमाण्वादिद्रव्याणि लोके प्रत्येकमनन्तानि लभ्यन्ते तथाऽप्यनन्तरोक्तत्वादुक्तयुक्त्यैव समयलक्षणाया द्विसमयलक्षणायाश्च स्थितेरेकैकरूपत्वाद् द्रव्यबाहुल्यस्य च गुणीभूतत्वादेकमेवानानुपूर्वीद्रव्यमेकमेव चावक्तव्यकद्रव्यं वक्तुं युज्यते, न तु प्रत्येकमसङ्ख्येयत्वम्, अथ द्रव्यभेदेन भेदोऽङ्गीक्रियते तर्हि प्रत्येकमानन्त्यप्रसक्तिः, एकसमयस्थितीनां द्विसमयस्थितीनां च द्रव्याणां प्रत्येकमनन्तानां लोके सद्भावादिति, सत्यमेतत्, किन्त्वेकसमयस्थितिकमपि यदवगाहभेदेन वर्तते तदिह भिन्नं विवक्ष्यते, एवं द्विसमयस्थितिकमप्यवगाहभेदेन भिन्नं चिन्त्यते, लोके चासङ्ख्येया अवगाहभेदाः सन्ति, प्रत्यवगाहं चैकद्विसमयस्थितिकानेकद्रव्यसम्भवादनानुपूर्व्यवक्तव्यकद्रव्याणामाधारक्षेत्रभेदात् प्रत्येकमसङ्ख्येयत्वं न विहन्यते इति, अनया दिशाऽतिगहनमिदं सूक्ष्मधिया पर्यालोचनीयमिति। क्षेत्रद्वारे

णेगमववहाराणं आणु०दव्वाइं लोगस्स किं संखिज्जइभागे होज्जा? असंखिज्जइभागे होज्जा? संखेज्जेसु भागेसु वा होज्जा? असंखेज्जेसु भागेसु वा होज्जा? सव्वलोए वा होज्जा?, एगं दव्वं पडुच्च संखेज्जइभागे वा होज्जा असंखेज्जइभागे वा होज्जा संखेज्जेसु

वृत्तिः उपक्रमाधि० ॥ ९४ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वा भागेसु होज्जा असंखेज्जेसु वा भागेसु होज्जा देसूणे वा लोए होज्जा?, नाणाद-व्वाइं पडुच्च नियमा सव्वलोए होज्जा, एवं अणाणुपुव्वीदव्वं, आएसंतरेण वा सव्वपुच्छासु होज्जा, एवं अवत्तव्वगदव्वाणि वि जहा खेत्ताणुपुव्वीए। फुसणा कालाणुपुव्वीएवि तहा चेव भाणिअव्वा।

'एगं दव्वं पडुच्च लोगस्सासंखेज्जइभागे होज्जा, जाव देसूणे वा लोगे होज्ज'त्ति, इह त्र्यादिसमयस्थितिक-द्रव्यस्य तत्तदवगाहसम्भवतः सङ्ख्येयादिभागवर्तित्वं भावनीयं, यदा त्र्यादिसमयस्थितिकः सूक्ष्मपरिणामः स्कन्धो देशोने लोकेऽवगाहते तदैकस्यानुपूर्वीद्रव्यस्य देशोनलोकवर्तित्वं भावनीयं, अन्ये तु 'पदेसूणे वा लोगे होज्ज'त्ति पाठं मन्यन्ते, तत्राप्ययमेवार्थः, प्रदेशस्यापि विवक्षया देशत्वादिति, सम्पूर्णेऽपि लोके कस्मादिदं न प्राप्यत इति चेद्, उच्यते, सर्वलोकव्यापी अचित्तमहास्कन्ध एव प्राप्यते, स च तद्व्यापितया एकमेव समयमवतिष्ठते, तत ऊर्ध्वमुपसंहारस्योक्तत्वात्, न चैकसमयस्थितिकमानुपूर्वीद्रव्यं भवितुमर्हति, त्र्यादिस-मयस्थितिकत्वेन तस्योक्तत्वात्, तस्मात्र्यादिसमयस्थितिकमन्यद् द्रव्यं नियमादेकेनापि प्रदेशेनोन एव लोके-ऽवगाहत इति प्रतिपत्तव्यम्। अत्राह–नन्वचित्तमहास्कन्धोऽप्येकसमयस्थितिको न भवति, दण्डाद्यवस्था-समयगणनेन तस्याप्यष्टसमयस्थितिकत्वाद्, एवं च सति तस्याप्यानुपूर्वीत्वात् सम्पूर्णलोकव्यापित्वं युज्यते-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[४५], चूलिकासूत्र-[२] अनुयोगद्वार मूलं एवं हेमचन्द्रसूरि-रचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१०५--११२] + गाथा ॥१॥

दीप अनुक्रम [१२६--१३५]

ऽत्र वक्तुमिति, नैतदेवम्, अवस्थाभेदेन वस्तुभेदस्येह विवक्षितत्वात्, भिन्नाश्च परस्परं दण्डकपाटाद्यवस्थाः, ततस्तद्भेदेन वस्तुनोऽपि भेदाद् अन्यदेव दण्डकपाटाद्यवस्थाद्रव्येभ्यः सकललोकव्याप्यचित्तमहास्कन्धद्रव्यं, तच्चैकसमयस्थितिकमिति न तस्यानुपूर्वीत्वम्, एतच्चानन्तरमेव पुनर्वक्ष्यत इत्यलं विस्तरेण। अथवा यथा क्षेत्रानुपूर्व्यां तथाऽत्रापि सर्वलोकव्यापिनोऽप्यचित्तमहास्कन्धस्य विवक्षामात्रमाश्रित्य एकस्मिन्नभःप्रदेशेऽप्राधान्याद्देशोनलोकवर्तित्वं वाच्यम्, एकसमयस्थितिकस्यानानुपूर्वीद्रव्यस्य द्विसमयस्थितिकावक्तव्यकस्य च तत्र प्रदेशे प्राधान्याश्रयणादिति भावः, एवमन्यदपि आगमाविरोधतो वक्तव्यमिति। 'नाणादव्वाइं पडुच्च णियमा सव्वलोए होज्ज'त्ति, त्र्यादिसमयस्थितिकद्रव्याणां सर्वलोकेऽपि भावादिति भावनीयम्। अनानुपूर्वीद्रव्यचिन्तायां यथा क्षेत्रानुपूर्व्यां तथा अत्राप्येकद्रव्यं लोकस्यासङ्ख्येयभाग एव वर्तते, कथमिदम्?, उच्यते, यत्कालत एकसमयस्थितिकं तत्क्षेत्रतोऽप्येकप्रदेशावगाढमेवेहानानुपूर्वीत्वेन विवक्ष्यते, तच्च लोकासङ्ख्येयभाग एव भवति, 'आएसंतरेण वा सव्वपुच्छासु होज्ज'त्ति, अस्य भावना–इहाचित्तमहास्कन्धस्य दण्डाद्यवस्थाः परस्परं भिन्नाः, आकारादिभेदात्, द्वित्रिचतुःप्रदेशकादिस्कन्धवत्, ततश्च ता एकैकसमयवृत्तित्वात् पृथगनानुपूर्वीद्रव्याणि, तेषु च मध्ये किमपि कियत्यपि क्षेत्रे वर्तत इत्यनया विवक्षया किलैकमनानुपूर्वीद्रव्यं मतान्तरेण सङ्ख्येयभागादिकासु पञ्चस्वपि पृच्छासु लभ्यते, एतच्च सूत्रेषु प्रायो न दृश्यते, टीकाचूर्ण्योस्त्वेवं व्याख्यातमुपलभ्यत इति। नानाद्रव्याणि तु सर्वस्मिन्नपि लोके भवन्ति, एकसमयस्थितिक-

॥ ९५ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[४५], चूलिकासूत्र-[२] अनुयोगद्वार मूलं एवं हेमचन्द्रसूरि-रचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१०५--११२] + गाथा ॥१॥

दीप अनुक्रम [१२६--१३५]

द्रव्याणां सर्वत्र भावादिति । अवक्तव्यकद्रव्यचिन्तायां क्षेत्रानुपूर्व्यामिषैकद्रव्यं लोकस्यासङ्ख्येयभाग एव वर्तते, कथमिति?, उच्यते, यत्कालतो द्विसमयस्थितिकं तत् क्षेत्रतो द्विप्रदेशावगाढमेवेहावक्तव्यकत्वेन गृह्यते, तच्च लोकासङ्ख्येयभाग एव स्याद्, अथवा द्विसमयस्थितिकं द्रव्यं स्वभावादेव लोकस्यासङ्ख्येयभाग एवावगाहते, न परतः, आदेशान्तरेण वा 'महाखंधवज्जमन्नदव्वेसु आइल्लचउपुच्छासु होज्ज'त्ति, अस्य हृदयं–मतान्तरेण किल द्विसमयस्थितिकमपि द्रव्यं किञ्चिल्लोकस्य सङ्ख्येयभागेऽवगाहते किञ्चित्त्वसङ्ख्येये अन्यत्तु सङ्ख्येयेषु तद्भागेष्ववगाहते अपरं त्वसङ्ख्येयेष्विति, महास्कन्धं वर्जयित्वा शेषद्रव्याण्याश्रित्य यथोक्तस्वरूपास्वाद्यासु चतसृषु पृच्छास्वेकमवक्तव्यकद्रव्यं लभ्यते, महास्कन्धस्य त्वष्टसमयस्थितित्वेनोक्तत्वान्न द्विसमयस्थितिकत्वसम्भव इति तद्वर्जनम्, अत एव सर्वलोकव्यापिलक्षणायाः पञ्चमपृच्छाया अत्रासम्भवः, महास्कन्धस्यैव सर्वलोकव्यापकत्वात्, तस्य चावक्तव्यकत्वायोगादिति । एतदपि सूत्रं वाचनान्तरे क्वचिदेव दृश्यते । नानाद्रव्याणि तु सर्वलोके भवन्ति, द्विसमयस्थितीनां सर्वत्र भावादिति । गतं क्षेत्रद्वारं, स्पर्शनाद्वारमप्येवमेव भावनीयं । कालद्वारे

णेगमववहाराणं आणुपुव्वीदव्वाइं कालओ केवच्चिरं होंति?, एगं दव्वं पडुच्च जहण्णेणं तिण्णि समया उक्कोसेणं असंखेज्जं कालं, नाणादव्वाइं पडुच्च सव्वद्धा,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

णेगमववहाराणं अणाणुपुव्वीदव्वाइं कालओ केवच्चिरं होइ?, एगं दव्वं पडुच्च अजहन्नमणुक्कोसेणं एक्कं समयं नाणादव्वाइं पडुच्च सव्वद्धा, अवत्तव्वगदव्वाणं पुच्छा, एगं दव्वं पडुच्च अजहण्णमणुक्कोसेणं एक्कं समयं नाणादव्वाइं पडुच्च सव्वद्धा।

'एगं दव्वं पडुच्च जहण्णेणं तिण्णि समय'त्ति, जघन्यतोऽपि त्रिसमयस्थितिकस्यैवानुपूर्वीत्वेनोक्तत्वादिति भावः। 'उक्कोसेणं असंखेज्जं कालं'ति असङ्ख्येयकालात् परत एकेन परिणामेन द्रव्यावस्थानस्यैवाभावादिति हृदयम्। नानाद्रव्याणि तु सर्वकालं भवन्ति, प्रतिप्रदेशं लोकस्य सर्वदा तैरशून्यत्वादिति। अनानुपूर्व्यवक्तव्यकचिन्तायाम्–'अजहन्नमणुक्कोसेणं'ति जघन्योत्कृष्टचिन्तामुत्सृज्येत्यर्थः, न हि एकसमयस्थितिकस्यैवानानुपूर्वीत्वे द्विसमयस्थितिकस्यैव चावक्तव्यकत्वेऽभ्युपगम्यमाने जघन्यतोत्कृष्टचिन्ता सम्भवतीति भावः, नानाद्रव्याणि तूभयत्रापि सर्वकालं भवन्ति, प्रतिप्रदेशं तैरपि सर्वदा लोकस्याशून्यत्वादिति ॥ अन्तरद्वारे

णेगमववहाराणं आणुपुव्वीदव्वाणमंतरं कालओ केवच्चिरं होइ?, एगं दव्वं पडुच्च जहण्णेणं एगं समयं उक्कोसेणं दो समया नाणादव्वाइं पडुच्च नत्थि अंतरं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

णेगमववहाराणं अणाणुपुव्वीदव्वाणमंतरं कालओ केवचिरं होइ ?, एगं दव्वं पडुच्च जहण्णेणं दो समया उक्कोसेणं असंखेज्जं कालं, णाणादव्वाइं पडुच्च णत्थि अंतरं। णेगमववहाराणं अवत्तव्वगदव्वाणं पुच्छा, एगं दव्वं पडुच्च जहण्णेणं एगं समयं उक्कोसेणं असंखेज्जं कालं, णाणादव्वाइं पडुच्च णत्थि अंतरं। भागभावअप्पाबहुं चेव जहा खेत्ताणुपुव्वीए तहा भाणिअव्वाइं, जाव से तं अणुगमे । से तं णेगमववहाराणं अणोवणिहिआ कालाणुपुव्वी (सू० ११२)

'एगं दव्वं पडुच्च जहण्णेणं एक्कं समयं'ति, अत्र भावना–इह त्र्यादिसमयस्थितिकं विवक्षितं किञ्चिदेकमानुपूर्वीद्रव्यं तं परिणामं परित्यज्य यदा परिणामान्तरेण समयमेकं स्थित्वा पुनस्तेनैव परिणामेन त्र्यादिसमयस्थितिकं जायते तदा जघन्यतया समयोऽन्तरे लभ्यते, 'उक्कोसेणं दो समय'त्ति, तदेव यदा परिणामान्तरेण द्वौ समयौ स्थित्वा पुनस्तमेव त्र्यादिसमयस्थितियुक्तं प्राक्तनं परिणाममासादयति तदा द्वौ समयावुत्कृष्टतोऽन्तरे भवतः, यदि पुनः परिणामान्तरेण क्षेत्रादिभेदतः समयद्वयात्परतोऽपि तिष्ठेत्तदा तत्राप्यानुपूर्वीत्वमनुभवेत्, ततोऽन्तरमेव न स्यादिति भावः । नानाद्रव्याणां तु नास्त्यन्तरं, सर्वदा लोकस्य तद-

अनु. १७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[४५], चूलिकासूत्र-[२] अनुयोगद्वार मूलं एवं हेमचन्द्रसूरि-रचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१०५--११२] + गाथा ||१||

दीप अनुक्रम [१२६--१३५]

अनुयो० मलधारीया ॥ ९७ ॥

शून्यत्वादिति । अनानुपूर्वीचिन्तायां 'एगं दव्वं पडुच्च जहण्णेणं दो समय'त्ति, एकसमयस्थितिकं द्रव्यं यदा परिणामान्तरेण समयद्वयमनुभूय पुनस्तमेवैकसमयस्थितिकं परिणाममासादयति तदा समयद्वयं जघन्योऽन्तरकालः, यदि तु परिणामान्तरेणाप्येकमेव समयं तिष्ठेत् तदा अन्तरमेव न स्यात्, तत्राप्यनानुपूर्वीत्वाद्, अथ समयद्वयात् परतस्तिष्ठेत्तदा जघन्यत्वं न स्यादिति भावः । 'उक्कोसेणं असंखेज्जं कालं'ति, तदेव यदा परिणामान्तरेणासङ्ख्येयकालमनुभूय पुनरेकसमयस्थितिकं परिणाममनुभवति तदोत्कृष्टतोऽसङ्ख्येयोऽन्तरकालः प्राप्यते । आह–ननु यदि च अन्यान्यद्रव्यक्षेत्रसम्बन्धे तस्यानन्तोऽपि कालोऽन्तरे लभ्यते किमित्यसङ्ख्येय एवोक्तः ?, सत्यं, किन्तु कालानुपूर्वीप्रक्रमात् कालस्यैवेह प्राधान्यं कर्तव्यं, यदि त्वन्यान्यद्रव्यक्षेत्रसम्बन्धतोऽन्तरकालबाहुल्यं क्रियते तदा तद्द्वारेणैवान्तरकालस्य बहुत्वकरणात्तयोर्द्वयोरेव प्राधान्यमाश्रितं स्यान्न कालस्य, तस्मादेकस्मिन्नेव परिणामान्तरे यावान् कश्चिदुत्कृष्टः कालो लभ्यते स एवान्तरे चिन्त्यते, स चासङ्ख्येय एव, ततः परमेकेन परिणामेन वस्तुनोऽवस्थानस्यैव निषिद्धत्वादित्येवं भगवतः सूत्रस्य विवक्षावैचित्र्यात् सर्वं पूर्वमुत्तरत्र चागमाविरोधेन भावनीयमिति । नानाद्रव्याणां तु नास्त्यन्तरं, प्रतिप्रदेशं लोके सर्वदा तल्लाभादिति । अवक्तव्यकद्रव्यचिन्तायां 'जहण्णेणं एगं समयं'ति, द्विसमयस्थितिकं किञ्चिद्वक्तव्यकद्रव्यं परिणामान्तरेण समयमेकं स्थित्वा यदा पूर्वानुभूतमेव द्विसमयस्थितिकपरिणाममासादयति तदा समयो जघन्यान्तरकालः । 'उक्कोसेणं असंखेज्जं कालं'ति, तदेव यदा परिणामान्तरेणासङ्ख्येयं

वृत्तिः उपक्रमाधि० ॥ ९७ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कालं स्थित्वा पुनस्तमेव पूर्वानुभूतं परिणाममासादयति तदाऽसङ्ख्यात उत्कृष्टान्तरकालो भवति, आक्षेपपरिहारावत्राप्यनानुपूर्वीवत् द्रष्टव्याविति । नानाद्रव्यान्तरं तु नास्ति, सर्वदा लोके तद्भावादिति । उक्तमन्तरद्वारं, भागद्वारे तु यथा द्रव्यक्षेत्रानुपूर्व्योस्तथैवानुपूर्वीद्रव्याणि शेषद्रव्येभ्योऽसङ्ख्येयैर्भागैरधिकानि व्याख्येयानि, शेषद्रव्याणि त्वानुपूर्वीद्रव्याणामसङ्ख्येयभाग एव वर्तन्त इति, भावना त्वित्थं कर्तव्या–इहानानुपूर्व्यामेकसमयस्थितिलक्षणमेकमेव स्थानं लभ्यते, अवक्तव्यकेष्वपि द्विसमयस्थितिलक्षणमेकमेव तल्लभ्यते, आनुपूर्व्यां तु त्रिसमयचतुःसमयपञ्चसमयस्थित्यादीन्येकोत्तरवृद्ध्याऽसङ्ख्येयसमयस्थित्यन्तान्यसङ्ख्येयानि स्थानानि लभ्यन्त इत्यानुपूर्वीद्रव्याणामसङ्ख्येयगुणत्वम्, इतरयोस्तु तदसङ्ख्येयभागवर्तित्वमिति । भावद्वारे सादिपारिणामिकभाववर्तित्वं त्रयाणामपि पूर्ववद्भावनीयम् । अल्पबहुत्वद्वारे सर्वस्तोकान्यवक्तव्यकद्रव्याणि, द्विसमयस्थितिकद्रव्याणां स्वभावत एव स्तोकत्वाद्, अनानुपूर्वीद्रव्याणि तु तेभ्यो विशेषाधिकानि, एकसमयस्थितिकद्रव्याणां निसर्गत एव पूर्वेभ्यो विशेषाधिकत्वाद्, आनुपूर्वीद्रव्याणां तु पूर्वेभ्योऽसङ्ख्यातगुणत्वं भागद्वारे भावितमेव, शेषं तु क्षेत्रानुपूर्व्यामुक्तानुसारतः सर्वं वाच्यमिति। अत एव केषुचिद्वाचनान्तरेषु भागादिद्वारत्रयं क्षेत्रानुपूर्व्यतिदेशेनैव निर्दिष्टं दृश्यते, न तु विशेषतो लिखितमिति । 'से त'मित्यादि निगमनम्। उक्ता नैगमव्यवहारनयमतेनानौपनिधिकी कालानुपूर्वी, अथ संग्रहनयमतेन तामेव व्याचिख्यासुराह—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[४५], चूलिकासूत्र-[२] अनुयोगद्वार मूलं एवं हेमचन्द्रसूरि-रचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [११३--११४]

दीप अनुक्रम [१३६--१३७]

से किं तं संगहस्स अणोवणिहिआ कालाणुपुव्वी ?, २ पंचविहा पण्णत्ता, तंजहा– अट्ठपयपरूवणया भंगसमुक्कित्तणया भंगोवदंसणया समोआरे अणुगमे (सू० ११३)। से किं तं संगहस्स अट्ठपयपरूवणया ?, २ एआइं पंचवि दाराइं जहा खेत्ताणुपुव्वीए संगहस्स तहा कालाणु० एवि भाणिअव्वाणि, णवरं ठिइअभिलावो, जाव से तं अणुगमे । से तं संगहस्स अणोवणिहिआ कालाणु० (सू० ११४) ।

यथा क्षेत्रानुपूर्व्यामियं संग्रहमतेन प्राग्निर्दिष्टा तथाऽत्रापि वाच्या, नवरं 'तिसमयट्ठिइआ आणुपुव्वी जाव असंखेज्जसमयठिइआ आणुपुव्वी'त्यादि अभिलापः कार्यः, शेषं तु तथैवेति ॥ ११४ ॥ उक्ता संग्रहमतेनाप्यनौपनिधिकी कालानुपूर्वी, तथा च सति अवसितस्तद्विचारः, इदानीं प्रागुद्दिष्टामेवौपनिधिकीं तां निर्दिदिक्षुराह—

से किं तं उवणिहिआ कालाणुपुव्वी ?, २ तिविहा पण्णत्ता, तंजहा–पुव्वाणु० पच्छाणु०अणाणु०। से किं तं पुव्वाणु० ?, २ समए आवलिआ आण पाणू थोवे लवे मुहुत्ते

॥ ९८ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अथ 'समय' गणितं प्रकाश्यते

प्रत सूत्रांक [११५]

दीप अनुक्रम [१३८]

अहोरत्ते पक्खे मासे उऊ अयणे संवच्छरे जुगे वाससए वाससहस्से वाससयसहस्से पुव्वंगे पुव्वे तुडिअंगे तुडिए अडडंगे अडडे अववंगे अववे हुहुअंगे हुहुए उप्पलंगे उप्पले पउमंगे पउमे णलिणंगे णलिणे अत्थिनिऊरंगे अत्थिनिऊरे अउअंगे अउए नउअंगे नउए पउअंगे पउए चूलिअंगे चूलिआ सीसपहेलिअंगे सीसपहेलिआ पलिओवमे सागरोवमे ओसप्पिणी उस्सप्पिणी पोग्गलपरिअट्टे अतीतद्धा अणागतद्धा सव्वद्धा, से तं पुव्वाणु०। से किं तं पच्छाणु०?, २ सव्वद्धा अणागतद्धा जाव समए, से तं पच्छाणु०। से किं तं अणाणु०?, २ एआए चेव एगाइआए एगुत्तरिआए अणंतगच्छगयाए सेढीए अण्णमण्णब्भासो दुरूवूणो, से तं अणाणुपुव्वी। अहवा उवणिहिआ कालाणुपुव्वी तिविहा पण्णत्ता, तंजहा–पुव्वाणुपुव्वी पच्छाणुपुव्वी अणाणुपुव्वी। से किं तं पुव्वाणुपुव्वी?, २ एगसमयठिइए दुसमयठिइए तिसमयठिइए जाव दससमयठिइए संखिज्जसमयठिइए असंखिज्जसमयठिइए, से तं पुव्वाणुपुव्वी।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [११५]

दीप अनुक्रम [१३८]

से किं तं पच्छाणुपुव्वी ? २ असंखिज्जसमयट्ठिइए जाव एगसमयट्ठिइए, से तं पच्छाणुपुव्वी । से किं तं अणाणुपुव्वी ?, २ एआए चेव एगाइआए एगुत्तरिआए असंखिज्जगच्छगयाए सेढीए अन्नमन्नब्भासो दुरूवूणो, से तं अणाणुपुव्वी । से तं उवणिहिआ कालाणुपुव्वी, से तं कालाणुपुव्वी (सू० ११५)

एकः समयः स्थितिर्यस्य द्रव्यविशेषस्य स तथा, एवं यावदसङ्ख्येयाः समयाः स्थितिर्यस्य स तथेति पूर्वानुपूर्वी, शेषभावना त्वत्र पूर्वोक्तानुसारेण सुकरैव । अथ कालविचारस्य प्रस्तुतत्वात्समयादेश्च कालत्वेन प्रसिद्धत्वाद् अनुषङ्गतो विनेयानां समयादिकालपरिज्ञानदर्शनाच्च तद्विषयत्वेनैव प्रकारान्तरेण तामाह— 'अहवे'त्यादि, तत्र समयो–वक्ष्यमाणस्वरूपः सर्वसूक्ष्मः कालांशः, स च सर्वप्रमाणानां प्रभवत्वात् प्रथमं निर्दिष्टः १, तैरसङ्ख्येयैर्निष्पन्ना आवलिका २, सङ्ख्येया आवलिकाः 'आण'त्ति आणः, एक उच्छ्वास इत्यर्थः ३, ता एव सङ्ख्येया निःश्वासः, अयं च सूत्रेऽनुक्तोऽपि द्रष्टव्यः, स्थानान्तरप्रसिद्धत्वादिति ४, द्वयोरपि कालः 'पाणु'त्ति एकः प्राणुरित्यर्थः ५, सप्तभिः प्राणुभिः स्तोकः ६, सप्तभिः स्तोकैर्लवः ७, सप्तसप्तत्या लवानां मुहूर्तः ८, त्रिंशता मूहूर्तैरहोरात्रं ९, तैः पञ्चदशभिः पक्षः १०, ताभ्यां द्वाभ्यां मासः ११, मासद्वयेन ऋतुः १२, ऋतुत्रयमानमयनम् १३, अयनद्वयेन संवत्सरः १४, पञ्चभिस्तैर्युगं १५, विंशत्या युगैर्वर्षशतं १६, तैर्दश-

॥ ९९ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [११५]

दीप अनुक्रम [१३८]

भिर्वर्षसहस्रं १७, तेषां शतेन वर्षशतसहस्रं, लक्षमित्यर्थः १८, चतुरशीत्या च लक्षैः पूर्वाङ्गं भवति १९, तदपि चतुरशीतिलक्षैर्गुणितं पूर्वं भवति २०, तच्च सप्ततिकोटिलक्षाणि षट्पञ्चाशच्च कोटिसहस्राणि वर्षाणाम्, उक्तं च—"[1]पुव्वस्स उ परिमाणं सयरी खलु हुंति कोडिलक्खाउ । छप्पण्णं च सहस्सा बोद्धव्वा वासकोडीणं ॥ १ ॥" स्थापना ७०५६०००००००००, इदमपि चतुरशीत्या लक्षैर्गुणितं त्रुटिताङ्गं भवति २१, एतदपि चतुरशीत्या लक्षैर्गुणितं त्रुटितं भवति २२, तदपि चतुरशीत्या लक्षैर्गुणितमटटाङ्गं २३, एतदपि तेनैव गुणकारेण गुणितमटटम् २४, एवं सर्वत्र पूर्वः पूर्वो राशिश्चतुरशीतिलक्षस्वरूपेण गुणकारेण गुणित उत्तरोत्तरराशिरूपतां प्रतिपद्यत इति प्रतिपत्तव्यं, ततश्च अववाङ्गं २६ अववं २६ हूहुकाङ्गं २७ हूहुकं २८ उत्पलाङ्गं २९ उत्पलं ३० पद्माङ्गं ३१ पद्मं ३२ नलिनाङ्गं ३३ नलिनं ३४ अर्थनिपूराङ्गं ३५ अर्थनिपूरं ३६ अयुताङ्गं ३७ अयुतं ३८ नयुताङ्गं ३९ नयुतं ४० प्रयुताङ्गं ४१ प्रयुतं ४२ चूलिकाङ्गं ४३ चूलिका ४४ शीर्षप्रहेलिकाङ्गं ४५, एवमेते राशयश्चतुरशीतिलक्षस्वरूपेण गुणकारेण यथोत्तरं वृद्धा द्रष्टव्यास्तावद् यावदिदमेव शीर्षप्रहेलिकाङ्गं चतुरशीत्या लक्षैर्गुणितं शीर्षप्रहेलिका भवति ४६, अस्याः स्वरूपमङ्कतोऽपि दर्श्यते ७५८२६३२५३०७३०१०२४११५७९७३५६९९७५६९६४०६२१८९६६८४८०८०१८३२९६ अग्रे च चत्वारिंशं शून्यशतं १४०, तदेवं शीर्षप्रहेलिकायां सर्वाण्यमूनि चतुर्णवत्यधिकशतसङ्ख्यान्यङ्कस्थानानि भवन्ति, अनेन चैतावता कालमा-

[1] पूर्वस्य तु परिमाणं सप्ततिः खलु भवन्ति कोटीलक्षाः । षट्पञ्चाशच्च सहस्राणि बोद्धव्याः वर्षकोटीनाम् ॥ १ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [११५]

दीप अनुक्रम [१३८]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[४५], चूलिकासूत्र-[२] अनुयोगद्वार मूलं एवं हेमचन्द्रसूरि-रचिता वृत्तिः

नेन केषाञ्चिद् रत्नप्रभानारकाणां भवनपतिव्यन्तरसुराणां सुषमदुष्षमारकसम्भविनां नरतिरश्चां च यथासम्भवमायूंषि मीयन्ते, एतस्माच्च परतोऽपि सङ्ख्येयः कालोऽस्ति, किंत्वनतिशयिनामसंव्यवहार्यत्वात् सर्वपाद्युपमयाऽत्रैव वक्ष्यमाणत्वाच्च नेहोक्तः, किं तर्हि ?, उपमामात्रप्रतिपाद्यानि पल्योपमादीन्येव, तत्र पल्योपमसागरोपमे–अत्रैव वक्ष्यमाणस्वरूपे, दशसागरोपमकोटाकोटिमाना त्ववसर्पिणी, तावन्मानैवोत्सर्पिणी, अनन्ता उत्सर्पिण्यवसर्पिण्यः पुद्गलपरावर्तः, अनन्तास्ते अतीताद्धा, तावन्मानैवानागताद्धा, अतीतानागतवर्तमानकालस्वरूपा सर्वाद्धेत्येषा पूर्वानुपूर्वी, शेषभावना तु पूर्वोक्तानुसारतः सुकरैव, यावत् कालानुपूर्वी समाप्ता ॥ ११४ ॥ साम्प्रतं प्राग्निर्दिष्टामेवोत्कीर्तनानुपूर्वीं बिभणिषुराह—

से किं तं उक्कित्तणाणुपुव्वी ?, २ तिविहा पण्णत्ता, तंजहा–पुव्वाणुपुव्वी पच्छाणुपुव्वी अणाणुपुव्वी । से किं तं पुव्वाणुपुव्वी ?, २ उसभे अजिए संभवे अभिणंदणे सुमती पउमप्पहे सुपासे चंदप्पहे सुविही सीतले सेज्जंसे वासुपुज्जे विमले अणंते धम्मे संती कुंथू अरे मल्ली मुणिसुव्वए णमी अरिट्ठणेमी पासे वद्धमाणे, से तं पुव्वाणुपुव्वी । से किं तं पच्छाणुपुव्वी ?, २ वद्धमाणे जाव उसभे, से तं पच्छाणुपुव्वी । से किं तं अणाणुपुव्वी ?, २ एआए चेव एगाइआए एगुत्तरिआए चउवीसगच्छग-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र सूत्रान्ते ॥११५॥ मुद्रितं तथा वृत्त्यन्ते ॥११४॥ मुद्रितं, अनन्तर सूत्रान्ते ॥११६॥ मुद्रितं, तत् कारणात् मया ॥११५॥ क्रम स्विकृतम्

प्रत सूत्रांक [११६]

दीप अनुक्रम [१३९]

याए सेढीए अण्णमण्णब्भासो दुरूवूणो, से तं अणाणुपुव्वी । से तं उक्कित्तणाणुपुव्वी (सू० ११६)

उत्कीर्तनं-संशब्दनमभिधानोच्चारणं तस्यानुपूर्वी–अनुपरिपाटिः सा पूर्वानुपूर्व्यादिभेदेन त्रिविधा, तत्र ऋषभः प्रथमसुत्पन्नत्वात् पूर्वमुत्कीर्त्यते, तदनन्तरं क्रमेण अजितादय इति पूर्वानुपूर्वी, शेषभावना तु पूर्ववद्, अत्राह–ननु औपनिधिक्या द्रव्यानुपूर्व्या अस्याश्च को भेदः?, उच्यते, तत्र द्रव्याणां विन्यासमात्रमेव पूर्वानुपूर्व्यादिभावेन चिन्तितम्, अत्र तु तेषामेव तथैवोत्कीर्तनं क्रियत इत्येतावन्मात्रेण भेद इति, भवत्वेवं, किन्त्वावश्यकस्य प्रस्तुतत्वादुत्कीर्तनमपि सामायिकाद्ध्ययनानामेव युक्तं, किमित्यप्रक्रान्तानां ऋषभादीनां तद्विहितमिति?, सत्यं, किन्तु सर्वव्यापकं प्रस्तुतशास्त्रमित्यादावेवोक्तं, तदर्शनार्थमृषभादिसूत्रान्तरोपादानं, भगवतां च तीर्थप्रणेतृत्वात् तत्स्मरणस्य समस्तश्रेयःफलकल्पपादपत्वाद् युक्तं तन्नामोत्कीर्तनं, तद्विषयत्वेन चोक्तमुपलक्षणत्वादन्यत्रापि द्रष्टव्यमिति, शेषं भावितार्थं यावत् से तमित्यादि निगमनम् ॥ ११६ ॥

इदानीं पूर्वोद्दिष्टामेव गणनानुपूर्वीमाह—

से किं तं गणणाणुपुव्वी?, २ तिविहा पण्णत्ता, तंजहा–पुव्वाणुपुव्वी पच्छाणुपुव्वी अणाणुपुव्वी। से किं तं पुव्वाणुपुव्वी?, २ एगो दस सयं सहस्सं दससहस्साइं सय-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [११७]

दीप अनुक्रम [१४०]

सहस्सं दससयसहस्साइं कोडी दसकोडीओ कोडीसयं दसकोडिसयाइं, से तं पुव्वाणुपुव्वी। से किं तं पच्छाणुपुव्वी?, २ दसकोडिसयाइं जाव एक्को, से तं पच्छाणुपुव्वी। से किं तं अणाणुपुव्वी?, २ एआए चेव एगाइआए एगुत्तरिआए दसकोडिसयगच्छगयाए सेढीए अन्नमन्नब्भासो दुरूवूणो, से तं अणाणुपुव्वी। से तं गणणाणुपुव्वी (सू० ११७)

गणनं–परिसङ्ख्यानं एकं द्वे त्रीणि चत्वारि इत्यादि, तस्य आनुपूर्वी–परिपाटिर्गणनानुपूर्वी, अत्रोपलक्षणमात्रमुदाहर्तुमाह—'एगे'त्यादि सुगमम्, उपलक्षणमात्रं चेदमतोऽन्येऽपि सम्भविनः सङ्ख्याप्रकारा अत्र द्रष्टव्याः, उत्कीर्तनानुपूर्व्यां नाममात्रोत्कीर्तनमेव कृतम्, अत्र त्वेकादिसङ्ख्याभिधानमिति भेदः। 'से त'मित्यादि निगमनम्॥ ११७॥ अथ प्रागुद्दिष्टामेव संस्थानानुपूर्वीमाह—

से किं तं संठाणाणुपुव्वी?, २ तिविहा पण्णत्ता, तंजहा–पुव्वाणुपुव्वी पच्छाणुपुव्वी अणाणुपुव्वी। से किं तं पुव्वाणुपुव्वी?, २ समचउरंसे निग्गोहमंडले सादी खुज्जे वामणे हुंडे, से तं पुव्वाणुपुव्वी। से किं तं पच्छाणुपुव्वी?, २ हुंडे जाव समचउरंसे,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [११८]

दीप अनुक्रम [१४१]

से तं पच्छाणुपुव्वी । से किं तं अणाणुपुव्वी ?, २ एआए चेव एगाइआए एगुत्तरिआए छगच्छगयाए सेढीए अन्नमन्नब्भासो दुरूवूणो, से तं अणाणुपुव्वी । से तं संठाणाणुपुव्वी (सू० ११८)

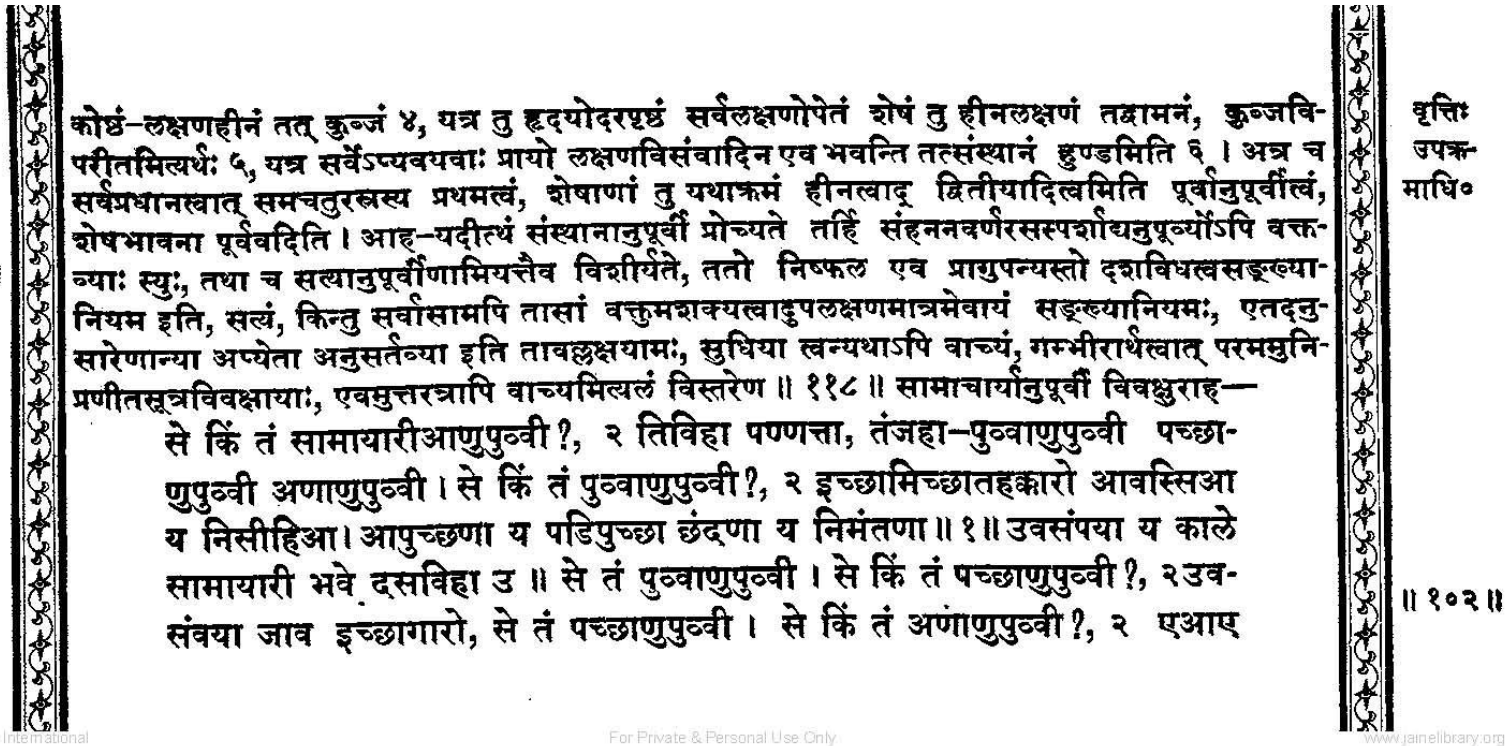
आकृतिविशेषाः संस्थानानि तानि च जीवाजीवसम्बन्धित्वेन द्विधा भवन्ति, तत्रेह जीवसम्बन्धीनि, तत्रापि पञ्चेन्द्रियसम्बन्धीनि वक्तुमिष्टानि, अतस्तान्याह—'समचउरंसे'त्यादि, तत्र समाः–शास्त्रोक्तलक्षणाविसंवादिन्यश्चतुर्दिग्वर्तिनः अवयवरूपाश्चतस्रोऽस्रयो यत्र तत् समासान्तात्प्रत्यये समचतुरस्रं संस्थानं, तुल्यारोहपरिणाहः सम्पूर्णलक्षणोपेताङ्गोपाङ्गावयवः स्वाङ्गुलाष्टाधिकशतोच्छ्रयः सर्वसंस्थानप्रधानः पञ्चेन्द्रियजीवशरीराकार विशेष इत्यर्थः १, नाभेरुपरि न्यग्रोधवन्मण्डलम्–आद्यसंस्थानलक्षणयुक्तत्वेन विशिष्टाकारं न्यग्रोधमण्डलं, न्यग्रोधो–वटवृक्षः, यथा चायमुपरि वृत्ताकारतादिगुणोपेतत्वेन विशिष्टाकारो भवत्यधस्तु न तथा, एवमेतदपीति भावः २, सह आदिना–नाभेरधस्तनकायलक्षणेन वर्तत इति सादि, ननु सर्वमपि संस्थानमादिना सहैव वर्तते ततो निरर्थकं सादित्वविशेषणं, सत्यं, किं त्वत एव विशेषणवैफल्यप्रसङ्गादाद्यसंस्थानलक्षणयुक्त आदिरिह गृह्यते, ततस्तथाभूतेन आदिना सह यद्वर्तते नाभेस्तूपरितनकाये आद्यसंस्थानलक्षणविकलं तत्सादीति तात्पर्यम् ३, यत्र पाणिपादशिरोग्रीवं समग्रलक्षणपरिपूर्णं शेषं तु हृदयोदरपृष्ठलक्षणं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [११८]

दीप अनुक्रम [१४१]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[४५], चूलिकासूत्र-[२] अनुयोगद्वार मूलं एवं हेमचन्द्रसूरि-रचिता वृत्तिः



अनुयो० मलधारीया ॥ १०२ ॥

कोष्ठं–लक्षणहीनं तत् कुब्जं ४, यत्र तु हृदयोदरपृष्ठं सर्वलक्षणोपेतं शेषं तु हीनलक्षणं तद्वामनं, कुब्जविपरीतमित्यर्थः ५, यत्र सर्वेऽप्यवयवाः प्रायो लक्षणविसंवादिन एव भवन्ति तत्संस्थानं हुण्डमिति ६ । अत्र च सर्वप्रधानत्वात् समचतुरस्रस्य प्रथमत्वं, शेषाणां तु यथाक्रमं हीनत्वाद् द्वितीयादित्वमिति पूर्वानुपूर्वीत्वं, शेषभावना पूर्ववदिति । आह–यदीत्थं संस्थानानुपूर्वी प्रोच्यते तर्हि संहननवर्णरसस्पर्शानुपूर्व्योऽपि वक्तव्याः स्युः, तथा च सत्यानुपूर्वीणामियत्तैव विशीर्यते, ततो निष्फल एव प्रागुपन्यस्तो दशविधत्वसङ्ख्यानियम इति, सत्यं, किन्तु सर्वासामपि तासां वक्तुमशक्यत्वादुपलक्षणमात्रमेवायं सङ्ख्यानियमः, एतदनुसारेणान्या अप्येता अनुसर्तव्या इति तावल्लक्षयामः, सुधिया त्वन्यथाऽपि वाच्यं, गम्भीरार्थत्वात् परमर्षिप्रणीतसूत्रविवक्षायाः, एवमुत्तरत्रापि वाच्यमित्यलं विस्तरेण ॥ ११८ ॥ सामाचार्यानुपूर्वीं विवक्षुराह—

से किं तं सामायारीआणुपुव्वी ?, २ तिविहा पण्णत्ता, तंजहा–पुव्वाणुपुव्वी पच्छाणुपुव्वी अणाणुपुव्वी । से किं तं पुव्वाणुपुव्वी ?, २ इच्छामिच्छातहक्कारो आवस्सिआ य निसीहिआ। आपुच्छणा य पडिपुच्छा छंदणा य निमंतणा ॥ १ ॥ उवसंपया य काले सामायारी भवे दसविहा उ ॥ से तं पुव्वाणुपुव्वी । से किं तं पच्छाणुपुव्वी ?, २ उवसंवया जाव इच्छागारो, से तं पच्छाणुपुव्वी । से किं तं अणाणुपुव्वी ?, २ एआए

वृत्तिः उपक्रमाधि०

॥ १०२ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [११९] + गाथा ॥१॥

दीप अनुक्रम [१४२--१४४]

चेव एगाइआए एगुत्तरिआए दसगच्छगयाए सेढीए अन्नमन्नब्भासो दुरूवूणो, से तं अणाणुपुव्वी, से तं सामायारीआणुपुव्वी (सू० ११९)

तत्र समाचरणं समाचारः–शिष्टजनाचरितः क्रियाकलापस्तस्य भाव इति (उपमाने वतिः ५०९ तत्त्वौ भावे ५१० ष्यण् च ५११ इति का० रू०) ष्यणप्रत्यये स्त्रियामीकारे च सामाचारी, सा च त्रिविधा–ओघनिर्युक्त्यभिहितार्थरूपा ओघसामाचारी १, इच्छामिच्छाद्यर्थविषया दशधा सामाचारी २, निशीथकल्पाद्यभिहितप्रायश्चित्तपदविभागविषया पदविभागसामाचारी ३, उक्तं च—"[1]सामायारी तिविहा ओहे दसहा पयविभागे"त्ति, तत्रेह दशधा सामाचारीमाश्रित्योक्तम्—'इच्छामिच्छातहक्कारो'इत्यादि, अत्र कारशब्दः प्रत्येकमभिसम्बध्यते, ततश्चैषणमिच्छा-विवक्षितक्रियाप्रवृत्त्यभ्युपगमस्तया करणमिच्छाकारः, आज्ञाबलाभियोगरहितो व्यापार इत्यर्थः १, मिथ्या–असदेतद् यन्मयाऽऽचरितमित्येवं करणं मिथ्याकारः, अकृत्ये कस्मिँश्चित् कृते मिथ्यावितथमिदं न पुनर्यथा भगवद्भिरुक्तं तथैवैतन्मच्चेष्टितमतो दुष्कृतं–दुराचीर्णम् इत्येवमसत्क्रियानिवृत्त्यभ्युपगमो मिथ्याकार इति तात्पर्यम् २, सूत्रव्याख्यानादौ प्रस्तुते गुरुभिः कस्मिँश्चिद् वचस्युदीरिते सति यथा भवन्तः प्रतिपादयन्ति तथैवैतदित्येवंकरणं तथाकारः, अविकल्पगुर्वाज्ञाभ्युपगम इत्यर्थः ३, अवश्यकर्तव्यमावश्यकं तत्र भवा आवश्यकी–ज्ञानाद्यालम्बनेनोपाश्रयात् बहिरवश्यंगमने समुपस्थिते अवश्यंकर्त-

अनु. १८

[1] सामाचारी त्रिविधा ओघे दशधा पदविभागे इति.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[४५], चूलिकासूत्र-[२] अनुयोगद्वार मूलं एवं हेमचन्द्रसूरि-रचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [११९] + गाथा ॥१॥

दीप अनुक्रम [१४२--१४४]

व्यमिदमतो गच्छाम्यहमित्येवं गुरुं प्रति निवेदना आवश्यकीति हृदयं ४, निषेधे भवा नैषेधिकी उपाश्रयाद्बहिः कर्तव्यव्यापारेष्ववसितेषु पुनस्तत्रैव प्रविशतः साधोः शेषसाधूनामुत्रासादिदोषपरिजिहीर्षया बहिर्व्यापारनिषेधेनोपाश्रयप्रवेशसूचनान्नैषेधिकीति परमार्थः ५, भदन्त! करोमीदमित्येवं गुरोः प्रच्छनमाप्रच्छना ६, एकदा पृष्टेन गुरुणा नेदं कर्तव्यमित्येवं निषिद्धस्य विनेयस्य किञ्चिद्विलम्ब्य ततश्चेदं चेदं चेह कारणमस्यतो यदि पूज्या आदिशन्ति तदा करोमीत्येवं गुरोः पुनः प्रच्छनं प्रतिप्रच्छना, अथवा ग्रामादौ प्रेषितस्य गमनकाले पुनः प्रच्छनं प्रतिप्रच्छना ७, छन्द'छदि संवरण'इत्यस्यानेकार्थत्वात् कुरु ममानुग्रहं परिभुङ्क्ष्वेदमित्येवं पूर्वानीताशनादिपरिभोगविषये साधूनामुत्साहना छन्दना ८, इदं वस्तु लब्ध्वा ततोऽहं तुभ्यं दास्यामीत्येवमद्यापि[1]यगृहीतेनाशनादिना साधूनामामन्त्रणं निमन्त्रणा, उक्तं च—पुव्वगहिएण छंदण निमंतणा होई अगहिएणं"ति ९, त्वदीयोऽहमित्येवं श्रुताद्यर्थमन्यदीयसत्ताभ्युपगम उपसम्पदिति १०। एवं एते दशप्रकाराः काले यथास्वं प्रस्तावे विधीयमाना दशविधा सामाचारीति गाथार्थः ॥ इह धर्मस्यापरोपतापमूलत्वादिच्छाकारस्याज्ञाबलाभियोगलक्षणपरोपतापवर्जकत्वात् प्राधान्यात् प्रथममुपन्यासः, अपरोपतापकेनापि च कथञ्चित् स्खलने मिथ्यादुष्कृतं दातव्यमिति तदनन्तरं मिथ्याकारस्य, एतौ च गुरुवचनप्रतिपत्तावेव ज्ञातुं शक्यौ, गुरुवचनं च तथाकारकरणेनैव सम्यक् प्रतिपन्नं भवतीति तदनन्तरं तथाकारस्य, प्रतिपन्नगुरुवचनेन चोपाश्रयाद्बहि-

१ पूर्वगृहीतेन छन्दना निमन्त्रणा भवत्यगृहीतेन.

॥ १०३ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [११९] + गाथा ॥१॥

दीप अनुक्रम [१४२--१४४]

निर्गच्छता गुरुपृच्छापूर्वकं निर्गन्तव्यमिति तथाकारानन्तरं तत्पृच्छारूपाया आवश्यकयाः, बहिर्निर्गतेन च नैषेधिकीपूर्वकं पुनः प्रविष्टव्यमिति तदनन्तरं नैषेधिक्याः, उपाश्रयप्रविष्टेन च गुरुमापृच्छ्य सकलमनुष्ठेयमिति तदनन्तरमापृच्छनायाः, आपृष्टे च निषिद्धे पुनः प्रष्टव्यमिति तदनन्तरं प्रतिपृच्छनायाः, प्रतिप्रश्ने चानुज्ञाते-नाशनाद्यानीय तत्परिभोगाय साधव उत्साहनीया इति तदनन्तरं छन्दनायाः, एषा च गृहीत एवाशनादौ स्याद् अगृहीते तु निमन्त्रणैवेति तदनन्तरं निमन्त्रणायाः, इयं च सर्वोऽपि निमन्त्रणापर्यन्ता सामाचारी गुरूपस-म्पदमन्तरेण न ज्ञायत इति तदनन्तरमुपसम्पद उपन्यास इति पूर्वानुपूर्वीत्वसिद्धिरिति । शेषं पूर्ववदिति ॥ ११९ ॥ अथ भावानुपूर्वीमाह—

से किं तं भावाणुपुव्वी?, २ तिविहा पण्णत्ता, तंजहा–पुव्वाणुपुव्वी पच्छाणुपुव्वी अणाणुपुव्वी । से किं तं पुव्वाणुपुव्वी?, २ उदइए उवसमिए खाइए खओवसमिए पारिणामिए संनिवाइए, से तं पुव्वाणुपुव्वी । से किं तं पच्छाणुपुव्वी?, २ सन्निवाइए जाव उदइए, से तं पच्छाणुपुव्वी । से किं तं अणाणुपुव्वी?, २ एआए चेव एगा-इआए एगुत्तरिआए छगच्छगयाए सेढीए अन्नमन्नब्भासो दुरूवूणो, से तं अणाणु-पुव्वी । से तं भावाणुपुव्वी, से तं आणुपुव्वी, आणुपुव्वीत्ति पदं समत्तं (सू० १२०)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इह तेन तेन रूपेण भवनानि भावाः–वस्तुपरिणामविशेषाः–औदयिकादयः, अथवा तेन तेन रूपेण भवन्तीति भावास्त एव, यद्वा भवन्ति तैः तेभ्यस्तेषु वा सत्सु प्राणिनस्तेन तेन रूपेणेति भावा यथोक्ता एव, तेषामानुपूर्वी–परिपाटिर्भावानुपूर्वी, औदयिकादीनां तु स्वरूपं पुरस्तान्न्यक्षेण वक्ष्यते, अत्र च नारकादिगतिरौदयिको भाव इति वक्ष्यते, तस्यां च सत्यां शेषभावाः सर्वेऽपि यथासम्भवं प्रादुर्भवन्तीति शेषभावाधारत्वेन प्रधानत्वादौदयिकस्य प्रथममुपन्यासः, ततश्च शेषभावपञ्चकस्य मध्ये औपशमिकस्य, स्तोकविषयत्वात् स्तोकतया प्रतिपादयिष्यत इति तदनन्तरमौपशमिकस्य, ततो बहुविषयत्वात् क्षायिकस्य, ततो बहुतरविषयत्वात् क्षायोपशमिकस्य, ततो बहुतमविषयत्वात् पारिणामिकस्य, ततोऽप्येषामेव भावानां द्विकादिसंयोगसमुत्थत्वात् सान्निपातिकस्योपन्यास इति पूर्वानुपूर्वीक्रमसिद्धिरिति । शेषं पूर्वोक्तानुसारेण भावनीयम् । तदेवमुक्ताः प्रागुद्दिष्टा दशाप्यानुपूर्वीभेदाः, तद्गणने चोपक्रमप्रथमभेदलक्षणा आनुपूर्वी समाप्ता ॥१२०॥

साम्प्रतमुपक्रमस्यैव प्रागुद्दिष्टं द्वितीयं भेदं व्याचिख्यासुराह—

से किं तं णामे?, णामे दसविहे पण्णत्ते, तंजहा–एगणामे दुणामे तिणामे चउणामे पंचणामे छणामे सत्तणामे अट्ठणामे णवणामे दसणामे (सू० १२१)

इह जीवगतज्ञानादिपर्यायाजीवगतरूपादिपर्यायानुसारेण प्रतिवस्तु भेदेन नमति–तदभिधायकत्वेन प्रवर्तत

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अथ उपक्रमस्य द्वितिय-भेदः 'नाम'स्य भेद-प्रभेदानाम् वर्णनं आरभ्यते

इति नाम, वस्त्वभिधानमित्यर्थः, उक्तं च–"[1]जं वत्थुणोऽभिहाणं पज्जयभेयाणुसारियं नामं। पइभेअं जं नमई पइभेअं जाइ जं भणिअं ॥ १ ॥" इदं च दशप्रकारं कथमित्याह–'एगनामे' इत्यादि, इह येन केनचिन्नाम्ना एकेनापि सता सर्वेऽपि विवक्षितपदार्था अभिधातुं शक्यन्ते तदेकनामोच्यते, यकाभ्यां तु नामभ्यां द्वाभ्यामपि सर्वे विवक्षितवस्तुजातमभिधानद्वारेण संगृह्यते तद् द्विनाम, यैस्तु त्रिभिर्नामभिः सर्वेऽपि विवक्षितपदार्था अभिधातुं शक्यन्ते तत् त्रिनाम, यैस्तु चतुर्भिर्नामभिः सर्वं विवक्षितं वस्त्वभिधीयते तच्चतुर्नाम, एवमनया दिशा ज्ञेयं, यावद् यैर्दशभिर्नामभिः सर्वं विवक्षितं वस्तु प्रतिपाद्यते तद् दशनामेति ॥ १२१ ॥ तत्र 'यथोद्देशं निर्देश' इत्येकनामोदाहरन्नाह—

से किं तं एगणामे ?, २–णामाणि जाणि काणिवि दव्वाण गुणाण पज्जवाणं च ।
तेसिं आगमनिहसे नामंति परूविआ सण्णा ॥ १ ॥ से तं एगणामे (सू० १२२)

'नामाणि गाहा' व्याख्या–'द्रव्याणां' जीवाजीवभेदानां 'गुणानां' ज्ञानादीनां रूपादीनां च तथा 'पर्यायाणां' नारकत्वादीनामेकगुणकृष्णत्वादीनां च नामानि–अभिधानानि यानि कानिचिल्लोके रूढानि, तद्यथा–जीवो जन्तुरात्मा प्राणीत्यादि, आकाशं नभस्तारापथो व्योमाम्बरमित्यादि, तथा ज्ञानं बुद्धिर्बोध इत्यादि, तथा रूपं रसो गन्ध इत्यादि, तथा नारकस्तिर्यङ् मनुष्य इत्यादि, एकगुणकृष्णो द्विगुणकृष्ण इत्यादि, तेषां सर्वेषामप्य-

१ यद्वस्तुनोऽभिधानं पर्यायभेदानुसारिकं नाम । प्रतिभेदं यन्नमति प्रतिभेदं याति यद्भणितम् ॥ १ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१२२] + गाथा ॥१॥

दीप अनुक्रम [१४७--१४९]

भिधानानामागम एव निकषो–हेमरजतकल्पजीवादिपदार्थस्वरूपपरिज्ञानहेतुत्वात् कषपट्टकस्तस्मिन्नामेत्येवंरूपा संज्ञा–आख्या प्ररूपिता–व्यवस्थापिता, सर्वाण्यपि जीवो जन्तुरित्याद्यभिधानानि नामत्वसामान्याव्यभिचारादेकेन नामशब्देनोच्यन्त इति भावः, तदेवमिहैकेनाप्यनेन नामशब्देन सर्वाण्यपि लोकरूढाभिधानानि वस्तूनि प्रतिपाद्यन्त इत्येतदेकनामोच्यते, एकं सन्नामैकनामेतिकृत्वा इति गाथार्थः । 'से तं एगणामे'त्ति निगमनम् ॥ १२२ ॥

से किं तं दुनामे ?, २ दुविहे पण्णत्ते, तंजहा–एगक्खरिए अ अणेगक्खरिए अ, से किं तं एगक्खरिए ?, २ अणेगविहे पण्णत्ते, तंजहा–ह्रीः श्रीः धीः स्त्री, से तं एगक्खरिए । से किं तं अणेगक्खरिए ?, २ कन्ना वीणा लता माला, से तं अणेगक्खरिए । अहवा दुनामे दुविहे पण्णत्ते, तंजहा–जीवनामे अ अजीवनामे अ, से किं तं जीवणामे ?, २ अणेगविहे पण्णत्ते, तंजहा–देवदत्तो जण्णदत्तो विण्हुदत्तो सोमदत्तो, से तं जीवनामे । से किं तं अजीवनामे ?, २ अणेगविहे पण्णत्ते, तंजहा–घडो पडो कडो रहो, से तं अजीवनामे । अहवा दुनामे दुविहे पण्णत्ते, तंजहा–विसेसिए अ अविसेसिए अ । अ-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विसेसिए दव्वे विसेसिए जीवदव्वे अजीवदव्वे अ,अविसेसिए जीवदव्वे विसेसिए णेरइए तिरिक्खजोणीए मणुस्से देवे,अविसेसिए णेरइए विसेसिए रयणप्पहाए सक्करप्पहाए वालुअप्पहाए पंकप्पहाए धूमप्पहाए तमाए तमतमाए, अविसेसिए रयणप्पहापुढविणेरइए विसेसिए पज्जत्तए अ अपज्जत्तए अ, एवं जाव अविसेसिए तमतमापुढवीणेरइए विसेसिए पज्जत्तए अ अपज्जत्तए अ। अविसेसिए तिरिक्खजोणिए विसेसिए एगिंदिए बेइंदिए तेइंदिए चउरिंदिए पंचिंदिए, अविसेसिए एगिंदिए विसेसिए पुढविकाइए आउकाइए तेउकाइए वाउकाइए वणस्सइकाइए, अविसेसिए पुढविकाइए विसेसिए सुहुमपुढविकाइए अ बादरपुढविकाइए अ, अविसेसिए सुहुमपुढविकाइए विसेसिए पज्जत्तयसुहुमपुढविकाइए अ अपज्जत्तयसुहमपुढविकाइए अ, अविसेसिए अ बादरपुढविकाइए विसेसिए पज्जत्तयबादरपुढविकाइए अ अपज्जत्तयबादरपुढविकाइए अ, एवं आउकाइए तेउकाइए वाउकाइए वणस्सइकाइए अविसेसिअविसेसिअपज्ज-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१२३]

दीप अनुक्रम [१५०]

अनुयो० मलधारीया ॥ १०६ ॥

त्तयअपज्जत्तयभेदेहिं भाणिअव्वा । अविसेसिए बेइंदिए विसेसिए पज्जत्तयबेइंदिए अ अपज्जत्तयबेइंदिए अ, एवं तेइंदिअचउरिंदिआवि भाणिअव्वा । अविसेसिए पंचिंदिअतिरिक्खजोणिए विसेसिए जलयरपंचिंदियतिरिक्खजोणिए थलयरपंचिंदिअतिरिक्खजोणिए खयरपंचिंदिअतिरिक्खजोणिए अ, अविसेसिए जलयरपंचिंदिअतिरिक्खजोणिए विसेसिए संमुच्छिमजलयरपंचिंदिअतिरिक्खजोणिए अ गब्भवक्कंतिअजलयरपंचिंदिअतिरिक्खजोणिए अ, अविसेसिए संमुच्छिमजलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिए विसेसिए अ पज्जत्तयसंमुच्छिमजलयरपंचिंदिअतिरिक्खजोणिए अ अपज्जत्तयसंमुच्छिमजलयरपंचिंदिअतिरिक्खजोणिए, अविसेसिए गब्भवक्कंतियजलयरपंचिंदिअतिरिक्खजोणिए विसेसिए पज्जत्तयगब्भवक्कंतिअजलयरपंचिंदिअतिरिक्खजोणिए अ अपज्जत्तयगब्भवक्कंतिअजलयरपंचिंदिअतिरिक्खजोणिए अ, अविसेसिए थलयरपंचिंदिअतिरिक्खजोणिए विसेसिए चउप्पयथलयरपंचिंदिअतिरिक्खजोणिए

वृत्तिः उपक्रमाधि०

॥ १०६ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अ परिसप्पथलयरपंचिंदिअतिरिक्खजोणिए अ, अविसेसिए चउप्पयथलयरपं० विसेसिए संमुच्छिमचउप्पयथलयरपंचिंदिअतिरिक्खजोणिए अ गब्भवक्कंतिअचउप्पयथलयरपंचिंदिअतिरिक्खजोणिए अ, अविसेसिए संमुच्छिमचउप्पयथलयर० विसेसिए पज्जत्तयसंमुच्छिमचउप्पयथलयरपंचिंदिअतिरिक्खजोणिए अ अपज्जत्तयसंमुच्छिमचउप्पयथलयरपंचिंदिअतिरिक्खजोणिए अ, अविसेसिए गब्भवक्कंतिअचउप्पयथलयरपंचिंदिअ० विसेसिए पज्जत्तयगब्भवक्कंतिअचउप्पयथलयरपंचिंदिअतिरिक्खजोणिए अ अपज्जत्तयगब्भवक्कंतिअचउप्पयथलयरपंचिंदिअतिरिक्खजोणिए अ, अविसेसिए परिसप्पथलयर० विसेसिए उरपरिसप्पथलयरपंचिंदिअतिरिक्खजोणिए अ भुअपरिसप्पथलयरपंचिंदिअतिरिक्खजोणिए अ, एतेऽवि संमुच्छिमा पज्जत्तगा अपज्जत्तगा य गब्भवक्कंतिआवि पज्जत्तगा अपज्जत्तगा य भाणिअव्वा । अविसेसिए खहयरपंचिंदिअ० विसेसिए संमुच्छिमखहयरपंचिंदिअतिरिक्खजोणिए अ गब्भवक्कंतिअखहयरपंचिंदिअ-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तिरिक्खजोणिए अ, अविसेसिए संमुच्छिमखहयरपंचिं० विसेसिए पज्जत्तयसंमुच्छिमखहयरपंचिंदिअतिरिक्खजोणिए अ अपज्जत्तयसंमुच्छिमखहयरपंचिंदिअतिरिक्खजोणिए, अविसेसिए गब्भवक्कंतिअखहयरपंचिं० विसेसिए पज्जत्तयगब्भवक्कंतिअखहयरपंचिंदियतिरिक्खजोणिए अ अपज्जत्तयगब्भवक्कंतिअखहयरपंचिंदिअतिरिक्खजोणिए य। अविसेसिए मणुस्से विसेसिए संमुच्छिममणुस्से अ गब्भवक्कंतिअमणुस्से अ, अविसेसिए संमुच्छिममणुस्से विसेसिए पज्जत्तगसंमुच्छिममणुस्से अ अपज्जत्तगसंमुच्छिममणुस्से अ, अविसेसिए गब्भवक्कंतिअमणुस्से विसेसिए कम्मभूमिओ य अकम्मभूमिओ य अंतरदीवओ य संखिज्जवासाउय असंखिज्जवासाउय पज्जत्तापज्जत्तओ। अविसेसिए देवे विसेसिए भवणवासी वाणमंतरे जोइसिए वेमाणिए अ, अविसेसिए भवणवासी विसेसिए असुरकुमारे नागकु० सुवण्णकु० विज्जुकु० अग्गिकु० दीवकु० उदधिकु० दिसाकु० वाउकु० थणिअकुमारे, सव्वेसिंपि अविसेसिअविसेसिअअपज्जत्तगपज्जत्तगभेदा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भाणिअव्वा । अविसेसिए वाणमंतरे विसेसिए पिसाए भूए जक्खे रक्खसे किण्णरे किंपुरिसे महोरगे गंधव्वे, एतेसिंपि अविसेसिअविसेसिअपज्जत्तयअपज्जत्तगभेदा भाणिअव्वा। अविसेसिए जोईसिए विसेसिए चंदे सूरे गहगणे नक्खत्ते तारारूवे, एतेसिंपि अविसेसियविसेसियअपज्जत्तयपज्जत्तयभेआ भाणिअव्वा । अविसेसिए वेमाणिए विसेसिए कप्पोवगे अ कप्पातीतगे अ, अविसेसिए कप्पोवगे विसेसिए सोहम्मए ईसाणए सणंकुमारए माहिंदए बंभलोए लंतयए महासुक्कए सहस्सारए आणयए पाणयए आरणए अच्चुयए, एतेसिंपि अविसेसिअविसेसिअअपज्जत्तगपज्जत्तगभेदा भाणिअव्वा । अविसेसिए कप्पातीतए विसेसिए गेवेज्जए अ अणुत्तरोववाइए अ, अविसेसिए गेवेज्जए विसेसिए हेट्ठिमहेट्ठिमगेवेज्जए हेट्ठिममज्झिमगेवेज्जए हिट्ठिमउवरिमगेवेज्जए, अविसेसिए मज्झिमगेविज्जए विसेसिए हिट्ठिममज्झिमगेविज्जए मज्झिममज्झिमगेवेज्जए मज्झिमउवरिमगेवेज्जए, अविसेसिए उवरिमगेवेज्जए विसेसिए उवरिमहेट्ठिमगे-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१२३]

दीप अनुक्रम [१५०]

वेज्जए उवरिममज्झिमगेवेज्जए उवरिमउवरिमगेवेज्जए अ, एतेसिंपि सव्वेसिं अविसेसिअविसेसिअपज्जत्तगापज्जत्तगभेदा भाणिअव्वा । अविसेसिए अणुत्तरोववाइए विसेसिए विजयए वेजयंतए जयंतए अपराजिअए सव्वट्ठसिद्धए अ, एतेसिंपि सव्वेसिं अविसेसिअविसेसिअपज्जत्तगापज्जत्तगभेदा भाणिअव्वा । अविसेसिए अजीवदव्वे विसेसिए धम्मत्थिकाए अधम्मत्थिकाए आगासत्थिकाए पोग्गलत्थिकाए अद्धासमए अ, अविसेसिए पोग्गलत्थिकाए विसेसिए परमाणुपोग्गले दुपएसिए तिपएसिए जाव अणंतपएसिए अ, से तं दुनामे (सू० १२३)

यत एवेदं द्विनामात एव द्विविधं–द्विप्रकारं, तद्यथा–एकं च तदक्षरं च तेन निर्वृत्तमेकाक्षरिकम्, अनेकानि च तान्यक्षराणि च तैर्निर्वृत्तमनेकाक्षरिकं, चकारौ समुच्चयार्थौ, तत्रैकाक्षरिके ह्रीः–लज्जा देवताविशेषो वा, श्रीः–देवताविशेषः, धीः–बुद्धिः, स्त्री-योषिदिति, अनेकाक्षरिके-कन्येत्यादि, उपलक्षणं चेदं बलाकापताकादीनां त्र्याद्यक्षरनिष्पन्ननाम्नामिति, तदेवं यदस्ति वस्तु तत् सर्वमेकाक्षरेण वा नाम्नाऽभिधीयतेऽनेकाक्षरेण वा, अतोऽनेन नामद्वयेन विवक्षितस्य सर्वस्यापि वस्तुजातस्याभिधानाद् द्विनामोच्यते, द्विरूपं सत् सर्वस्य नाम

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

द्विनाम, द्वयोर्वा नाम्नोः समाहारो द्विनाममिति। एतदेव प्रकारान्तरेणाह–'अहवा दुनामे'इत्यादि, जीवस्य नाम जीवनाम अजीवस्य नाम अजीवनाम, अत्रापि यदस्ति तेन जीवनाम्नाऽजीवनाम्ना वा भवितव्यमिति जीवाजीवनामभ्यां विवक्षितसर्ववस्तुसङ्ग्रहो भावनीयः, शेषं सुगमं। पुनरेतदेवान्यथा प्राह–'अहवा दुनामे'इत्यादि, द्रव्यमित्यविशेषनाम जीवे अजीवे च सर्वत्र सद्भावात्, जीवद्रव्यमजीवद्रव्यमिति च विशेषनाम, एकस्य जीव एवान्यस्य त्वजीव एव सद्भावादिति, ततः पुनरुत्तरापेक्षया जीवद्रव्यमित्यविशेषनाम, नारकस्तिर्यङ्गित्यादि तु विशेषनाम, पुनरप्युत्तरापेक्षया नारकादिकमविशेषनाम रत्नप्रभायां भवो रात्नप्रभ इत्यादि तु विशेषनाम, एवं पूर्वं पूर्वमविशेषनाम उत्तरोत्तरं तु विशेषनाम सर्वत्र भावनीयं, शेषं सुगमं, नवरं सम्मूर्च्छन्तितथाविधकर्मोदयाद् गर्भमन्तरेणैवोत्पद्यन्त इति सम्मूर्च्छिमाः, गर्भे व्युत्क्रान्तिः–उत्पत्तिर्येषां ते गर्भव्युत्क्रान्तिकाः, उरसा भुजाभ्यां च परिसर्प्पन्ति–गच्छन्तीति विषधरगोधानकुलादयः सामान्येन परिसर्पाः, विशेषस्तूरसा परिसर्पन्तीत्युरःपरिसर्पाः सर्पादय एव, भुजाभ्यां परिसर्पन्तीति भुजपरिसर्पाः–गोधानकुलादय एव, शेषं सुखोन्नेयं। तदेवमुक्ताः सामान्यविशेषनामभ्यां जीवद्रव्यस्य सम्भविनो भेदाः, साम्प्रतं प्रागुद्दिष्टमजीवद्रव्यमपि भेदतस्तथैवोदाहर्तुमाह–'अविसेसिए अजीवदव्वे'इत्यादि, गतार्थं, तदेवं यदस्ति वस्तु तत्सर्वं सामान्यनाम्ना विशेषनाम्ना वा अभिधीयते, एवमन्यत्रापि द्विनामत्वं भावनीयं, 'से तं दुनामे'त्ति निगमनम् ॥ १२३ ॥

अनु. १९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१२४]

दीप अनुक्रम [१५१--१५८]

से किं तं तिनामे ?, २ तिविहे पण्णत्ते, तंजहा–दव्वणामे गुणणामे पज्जवणामे अ। से किं तं दव्वणामे ?, २ छव्विहे पण्णत्ते, तंजहा–धम्मत्थिकाए अधम्मत्थिकाए आगासत्थिकाए जीवत्थिकाए पुग्गलत्थिकाए अद्धासमए अ, से तं दव्वनामे। किं तं गुणणामे ?, २ पंचविहे पण्णत्ते, तंजहा–वण्णणामे गंधणामे रसणामे फासणामे संठाणणामे। से किं तं वण्णणामे ?, २ पंचविहे पण्णत्ते, तंजहा–कालवण्णनामे नीलवण्णनामे लोहिअवण्णनामे हालिद्दवण्णनामे सुक्किल्लवण्णणामे, से तं वण्णनामे। से किं तं गंधनामे ?, २ दुविहे पण्णत्ते, तंजहा–सुरभिगंधनामे अ दुरभिगंधनामे अ, से तं गंधनामे। से किं तं रसनामे ?, २ पंचविहे पण्णत्ते, तंजहा–तित्तरसणामे कडुअरसणामे कसायरसणामे अंबिलरसणामे महुररसणामे अ, से तं रसणामे। से किं तं फासणामे ?, २ अट्ठविहे पण्णत्ते, तंजहा–कक्खडफासणामे मउअफा० गरुअफा० लहुअफा० सीतफासणामे उसिणफासणामे णिद्धफा० लुक्खफासणामे, से तं फासणामे। से

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

किं तं संठाणनामे ?, २ पंचविहे पण्णत्ते, तंजहा–परिमंडलसंठाणनामे वट्टसं० तंससं० चउरंससं० आयतसंठाणणामे, से तं संठाणनामे, से तं गुणणामे ।

यत एवेदं त्रिनाम तत एव त्रिविधं–त्रिप्रकारं, द्रव्यनामादिभेदात्, तत्र द्रवति–गच्छति ताँस्तान् पर्यायान् प्राप्नोतीति द्रव्यं तस्य नाम धर्मास्तिकाय इत्यादि, धर्मास्तिकायादयश्च प्राक् व्याख्याता एव, गुण्यन्ते–संख्यायन्ते इति गुणास्तेषां नाम गुणनाम, 'वण्णनामे' इत्यादि, तत्र वर्ण्यते–अलङ्क्रियते वस्त्वनेनेति वर्णः–कृष्णादिःपञ्चधा प्रतीत एव, कपिशादयस्त्वेतत्संयोगेनैवोत्पद्यन्ते न पुनः सर्वथा एतद्विलक्षणा इति नेहोदाहृताः, गन्ध्यते–आघ्रायत इति गन्धस्तस्य नाम गन्धनाम, स च द्विविधः–सुरभिर्दुरभिश्च, तत्र सौमुख्यकृत् सुरभिः, वैमुख्यकृद् दुरभिः, अत्राप्युभयसंयोगजः पृथग्नोक्तः, एतत्संसर्गजत्वादेव भेदाविवक्षणात्, रस्यते–आस्वाद्यत इति रसस्तस्य नाम रसनाम, स च तिक्तकटुकषायाम्लमधुरभेदात् पञ्चविधः, तत्र श्लेष्मादिदोषहन्ता निम्बाद्याश्रितस्तिक्तो रसः, तथा च भिषक्शास्त्रम्–"श्लेष्माणमरुचिं पित्तं, तृषं कुष्ठं विषं ज्वरम् । हन्यात् तिक्तो रसो बुद्धेः, कर्ता मात्रोपसेवितः ॥ १ ॥" गलामयादिप्रशमनो मरिचनागराद्याश्रितः कटुः, उक्तं च—"कटुर्गलामयं शोफं, हन्ति युक्त्योपसेवितः । दीपनः पाचको रुच्यो, बृंहणोऽतिकफापहः ॥ २ ॥" रक्तदोषाद्यपहर्ता बिभीतकामलककपित्थाद्याश्रितः कषायः, आह च—"रक्तदोषं कफं पित्तं, कषायो हन्ति

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१२४]

दीप अनुक्रम [१५१--१५८]

सेवितः । रूक्षः शीतो गुणग्राही, रोचकश्च स्वरूपतः ॥ ३ ॥" अग्निदीपनादिकृदम्लीकाद्याश्रितोऽम्लः, पठ्यते च—"अम्लोऽग्निदीप्तिकृत् स्निग्धः, शोफपित्तकफापहः । क्लेदनः पाचनो रुच्यो, मूढवातानुलोमकः ॥ ४ ॥" पित्तादिप्रशमनः खण्डशर्कराद्याश्रितो मधुरः, तथा चोक्तम्—"पित्तं वातं विषं हन्ति, धातुवृद्धिकरो गुरुः । जीवनः केशकृद्बालवृद्धक्षीणौजसां हितः ॥ ५ ॥" इत्यादि, स्थानान्तरे स्तम्भिताहारबन्धविध्वंसादिकर्तृ सिन्धुलवणाद्याश्रितो लवणोऽपि रसः पठ्यते, स चेह नोदाहृतो, मधुरादिसंसर्गजत्वात् तद्भेदेन विवक्षणात्, सम्भाव्यते च तत्र माधुर्यादिसंसर्गः, सर्वरसानां लवणप्रक्षेप एव स्वादुत्वप्रतिपत्तेरित्यलं विस्तरेण । स्पृश्यत इति स्पर्शः–कर्कशादिरष्टविधः, तत्र स्तब्धताकारणं दृषदादिगतः कर्कशः, सन्नतिकारणं तिनिशलतादिगतो मृदुः, अधःपतनहेतुरयोगोलकादिगतो गुरुः, प्रायस्तिर्यगूर्द्ध्वाधोगमनहेतुरर्कतूलादिनिश्रितो लघुः, देहस्तम्भादिहेतुः प्रालेयाद्याश्रितः शीतः, आहारपाकादिकारणं वह्न्याद्यनुगत उष्णः, पुद्गलद्रव्याणां मिथः संयुज्यमानानां बन्धनिबन्धनं तैलादिस्थितः स्निग्धः, तेषामेवाबन्धनिबन्धनं भस्माद्याधारो रूक्षः, एतत्संसर्गजास्तु नोक्ताः, एष्वेवान्तर्भावादिति । संस्थानस्वरूपं तु प्रतीतमेव ।

से किं तं पज्जवणामे ?, २ अणेगविहे पण्णत्ते, तंजहा–एगगुणकालए दुगुणकालए तिगुणकालए जाव दसगुणकालए संखिज्जगुणकालए असंखिज्जगुणकालए अनंत-

॥ ११० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१२४]

दीप अनुक्रम [१५१--१५८]

गुणकालए, एवं नीललोहिअहालिद्दसुक्किल्लावि भाणिअव्वा। एगगुणसुरभिगंधे दुगुणसुरभिगंधे तिगुणसुण जाव अणंतगुणसुरभिगंधे, एवं दुरभिगंधोऽवि भाणिअव्वो। एगगुणतित्ते जाव अणंतगुणतित्ते, एवं कडुअकसागअंबिलमहुरावि भाणिअव्वा। एगगुणकक्खडे जाव अणंतगुणकक्खडे, एवं मउअगरुअलहुअसीतउसिणणिद्धलुक्खावि भा०, से तं पज्जवणामे।

परिः–समन्तादवन्ति–अपगच्छन्ति न तु द्रव्यवत् सर्वदैवावतिष्ठन्त इति पर्यवाः, अथवा परिः–समन्तादवनानि–गमनानि द्रव्यस्यावस्थान्तरप्राप्तिरूपाणि पर्यवाः–एकगुणकालत्वादयस्तेषां नाम पर्यवनाम, यत्र तु पर्यायनामेति पाठः, तत्र परिः–समन्तादयन्ते–अपगच्छन्ति न पुनर्द्रव्यवत् सर्वदैव तिष्ठन्तीति पर्यायाः, अथवा परिः–सामस्त्येन एति–अभिगच्छति व्याप्नोति वस्तुतामिति पर्यायाः–एकगुणकालत्वादय एव, तेषां नाम पर्यायनामेति, तत्रेह गुणशब्दोऽंशपर्यायः, ततश्च सर्वस्यापि त्रैलोक्यगतकालत्वस्यासत्कल्पनया पिण्डितस्य य एकः–सर्वजघन्यो गुणः–अंशस्तेन कालकः परमाण्वादिरेकगुणकालकः–सर्वजघन्यकृष्ण इति। द्वाभ्यां गुणाभ्यां–तदंशाभ्यां कालकः परमाण्वादिरेव द्विगुणकालकः, एवं तावन्नेयं यावदनन्तैर्गुणैस्तदंशैः कालकोऽनन्तगुणकालकः स एवेति, एवमुक्तानुसारेणैकगुणनीलकादीनामेकगुणसुरभिगन्धादीनां च सर्वत्र भावना

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कार्येति। आह–गुणपर्यायय्योः कः प्रतिविशेषः?, उच्यते, सदैव सहवर्तित्वाद्वर्णगन्धरसादयः सामान्येन गुणा उच्यन्ते, न हि मूर्ते वस्तुनि वर्णादिकमात्रं कदाचिदपि व्यवच्छिद्यते, एकगुणकालत्वादयस्तु द्विगुणकालत्वाद्यवस्थायां निवर्तन्त एवेति, अतः क्रमवृत्तित्वात् पर्यायाः, उक्तं च–"सहवर्तिनो गुणा यथा जीवस्य चैतन्यामूर्तत्वादयः, क्रमवर्तिनः पर्याया यथा तस्यैव नारकत्वतिर्यक्त्वादयः" इति, ननु यद्येवं तर्हि वर्णादिसामान्यस्य भवतु गुणत्वं, तद्विशेषाणां तु कृष्णादीनां न स्याद्, अनियतत्वात् तेषां, सत्यं, वर्णादिसामान्यभेदानामपि कृष्णनीलादीनां प्रायः प्रभूतकालं सहवर्तित्वात् गुणत्वं विवक्षितमित्यलं विस्तरेण। आह भवत्वेवं, किन्तु पुद्गलास्तिकायद्रव्यस्यैव संबन्धिनो गुणपर्यायाः किमिति गुणपर्यायनामत्वेनोदाहृताः?, न धर्मास्तिकायादीनां, न च वक्तव्यं–तेषां ते न सन्तीति, धर्माधर्माकाशजीवकालद्रव्येष्वपि यथाक्रमं गतिस्थित्यवगाहोपयोगवर्त्तनादिगुणानां प्रत्येकमनन्तानामगुरुलघुपर्यायाणां च प्रसिद्धत्वात्, सत्यं, किन्त्विन्द्रियप्रत्यक्षगम्यत्वात् सुप्रतिपाद्यतया पुद्गलद्रव्यस्यैव गुणपर्याया उदाहृता न शेषाणामित्यलं विस्तरेण, तस्माद् यत्किमपि नाम तेन सर्वेणापि द्रव्यनाम्ना गुणनाम्ना पर्यायनाम्ना वा भवितव्यं, नातः परं किमपि नामास्ति, ततः सर्वस्यैवानेन संग्रहात् त्रिनामैतदुच्यत इति।

तं पुण णामं तिविहं इत्थी पुरिसं णपुंसगं चेव। एएसिं तिण्हंपि अ अंतंमि अ परूवणं वोच्छं ॥१॥

तत्पुनर्नाम द्रव्यादीनां सम्बन्धि सामान्येन सर्वमपि स्त्रीपुंनपुंसकलिङ्गेषु वर्तमानत्वात् त्रिविधं–त्रिप्रकारं,

॥ १११ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तत्र स्त्रीलिङ्गे नदी महीत्यादि, पुंल्लिङ्गे घटः पट इत्यादि, नपुंसके दधि मधित्यादि, एषां च स्त्रीलिङ्गवृत्त्यादीनां त्रयाणामपि नाम्नां प्राकृतशैल्या उच्चार्यमाणानामन्ते यान्याकारादीन्यक्षराणि भवन्ति तत्प्ररूपणाद्वारेण लक्षणं निर्दिदिक्षुरुत्तरार्द्धमाह–'एएसि'मित्यादि, गतार्थमेवेति गाथार्थः ॥

तत्थ पुरिसस्स अंता आईऊओ हवंति चत्तारि। ते चेव इत्थिआओ हवंति ओकारपरिहीणा ॥२॥

'तत्र' तस्मिन् त्रिविधे नाम्नि 'पुरुषस्य' पुंल्लिङ्गवृत्तेर्नाम्नः 'अन्ता'अन्तवर्तीन्यक्षराणि चत्वारि भवन्ति, तद्यथा–आकार ईकार ऊकार ओकारश्चेत्यर्थः, एतानि विहाय नापरं प्राकृतपुंल्लिङ्गवृत्तेर्नाम्नोऽन्तेऽक्षरं सम्भवतीत्यर्थः, स्त्रीलिङ्गवृत्तेर्नाम्नोऽप्यन्ते ओकारवर्जान्येतान्येवाकारेकारोकारलक्षणानि त्रीणि अक्षराणि भवन्ति नापरमिति, अत्र चानन्तरगाथायां इत्थीपुरिसमिति निर्दिश्यापि यदिहादौ पुंल्लिङ्गनाम्नो लक्षणकथनं तत्पुरुषप्राधान्यख्यापनार्थमिति गाथार्थः ॥

अंतिअ इंतिअ उंतिअ अंताउ णपुंसगस्स बोद्धव्वा। एतेसिं तिण्हंपि अ वोच्छामि निदंसणे एत्तो॥३॥

नपुंसकवृत्तिनाम्नां त्वन्ते अंकारः इंकार उंकारश्चेत्येतान्येव त्रीण्यक्षराणि भवन्ति नापरं। एतेषां च त्रयाणामपि निदर्शनम्–उदाहरणं प्रत्येकं वक्ष्यामीति गाथार्थः॥ तदेवाह—

आगारंतो राया ईगारंतो गिरी अ सिहरी अ। ऊगारंतो विण्हू दुमो अ अंता उ पुरि-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१२४]

दीप अनुक्रम [१५१--१५८]

साणं ॥ ४ ॥ आगारंता माला ईगारंता सिरी अ लच्छी अ । ऊगारंता जंबू वहू अ अंताउ इत्थीणं ॥ ५ ॥ अंकारंतं धन्नं इंकारंतं नपुंसगं अत्थिं । उंकारंतो पीलुं महुं च अंता णपुंसाणं ॥ ६ ॥ से तं तिणामे (सू० १२४)

गाथात्रयं व्यक्तं, नवरं संस्कृते यद्यपि विष्णुरित्युकारान्तमेव भवति तथापि प्राकृतलक्षणस्यैवेह वक्तुमिष्टत्वादूकारान्तता न विरुध्यते, एवमोकारान्तो द्रुम इत्यादिष्वपि वाच्यं, जम्बूः–स्त्रीलिङ्गवृत्तिर्वनस्पतिविशेषः, 'पीलुं'ति क्षीरं, शेषं सुगमं, 'से तं तिनामे'ति निगमनम् ॥ १२४ ॥

से किं तं चउणामे ?, २ चउव्विहे पण्णत्ते, तंजहा-आगमेणं लोवेणं पयईए विगारेणं । से किं तं आगमेणं ?, २ पद्मानि पयांसि कुण्डानि, से तं आगमेणं । से किं तं लोवेणं ?, २ ते अत्र तेऽत्र पटो अत्र पटोऽत्र घटो अत्र घटोऽत्र, से तं लोवेणं । से किं तं पगईए ?, २ अग्नी एतौ पटू इमौ शाले एते माले इमे, से तं पगइए । से किं तं विगारेणं ?, २ दण्डस्य अग्रं दण्डाग्रं सा आगता साऽऽगता दधि इदं दधीदं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नदी इह नदीह मधु उदकं मधूदकं वधू ऊहः वधूहः, से तं विगारेणं, से तं चउ-
नामे (सू० १२५)

आगच्छतीत्यागमो न्वागमादिस्तेन निष्पन्नं नाम यथा पद्मानीत्यादि, धुट्स्वराद् घुटि नुः (का० रू० २४) इत्यनेनात्र न्वागमस्य विधानाद्, उपलक्षणमात्रं चेदं, संस्कार उपस्कार इत्यादेरपि सुडाद्यागमनिष्पन्नत्वादिति, लोपो वर्णापगमरूपस्तेन निष्पन्नं नाम, यथा तेऽत्रेत्यादि, 'एदोत्परः पदान्ते' (लोपमकारः कात-न्त्ररूपमालायां ११५) इत्यादिना अकारस्येह लुप्तत्वात्, नामत्वं चात्र तेन तेन रूपेण नमनान्नामेति व्युत्पत्तेरस्त्येवेति, इत्थमन्यत्रापि वाच्यम् । उपलक्षणं चेदं–मनस् ईषा मनीषा-बुद्धिः भ्रमतीति भ्रूरित्यादेरपि सकारमकारादिवर्णलोपेन निष्पन्नत्वादिति, प्रकृतिः–स्वभावो वर्णलोपाद्यभावस्तया निष्पन्नं नाम, यथा अग्नी एतावित्यादि, द्विवचनमनावि (का० सू० ६०) त्यनेनात्र प्रकृतिभावस्य विधानात्, निदर्शनमात्रं चेदं, सर-सिजं कण्ठेकाल इत्यादीनामपि प्रकृतिनिष्पन्नत्वादिति, वर्णस्यान्यथाभावापादनं विकारस्तेन निष्पन्नं दण्ड-स्याग्रं दण्डाग्रमित्यादि, समानः सवर्णे दीर्घीभवति परश्च लोपम् (का० रू० २४) इत्यादिना दीर्घत्वलक्षणस्य वर्णविकारस्येह कृतत्वाद्, उदाहरणमात्रं चैतत्–तस्करः षोडशेत्यादेरपि वर्णविकारसिद्धत्वादिति । तदिह यदस्ति तेन सर्वेणापि नाम्ना आगमनिष्पन्नेन वा लोपनिष्पन्नेन वा प्रकृतिनिर्वृत्तेन वा विकारनिष्पन्नेन वा

१ विवक्षयाऽत्रैकपदत्वं, नात्र एकत्वेन विवक्षणात् वृत्तिकारेणापि निरूढप्राचीनव्याकरणापेक्षया तथा प्रतिपादितं पदत्वमिति, अधुना यथा सोसपर्गस्य ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[४५], चूलिकासूत्र-[२] अनुयोगद्वार मूलं एवं हेमचन्द्रसूरि-रचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१२५]

दीप अनुक्रम [१५९]

भवितव्यं, डित्थादिनाऽन्नामपि सनिरुक्तत्वात् 'नाम च धातुजमाहे'त्यादिवचनात्, ततश्चतुर्भिरप्येतैः सर्वस्य सङ्ग्रहाच्चतुर्नामेदमुच्यते, 'से तं चउनामे'त्ति निगमनम् ॥ १२५ ॥

से किं तं पंचनामे ?, २ पंचविहे पण्णत्ते, तंजहा–नामिकं नैपातिकं आख्यातिकम् औपसर्गिकं मिश्रं, अश्व इति नामिकं, खल्विति नैपातिकं, धावतीत्याख्यातिकं, परीत्यौपसर्गिकं, संयत इति मिश्रं, से तं पंचनामे (सू० १२६)

इहाश्व इति किं ?–नामिकं, वस्तुवाचकत्वात्, खल्विति नैपातिकं, निपातेषु पठितत्वात्, धावतीत्याख्यातिकं, क्रियाप्रधानत्वात्, परीत्यौपसर्गिकम्, उपसर्गेषु पठितत्वात्, संयत इति मिश्रम्, उपसर्गनामसमुदायनिष्पन्नत्वादिति। एतैरपि सर्वस्य क्रोडीकरणाद् पञ्चनामत्वं भावनीयम्, 'से तं पंचनामे'त्ति निगमनम्॥१२६॥

से किं तं छण्णामे ?, २ छव्विहे पण्णत्ते, तंजहा–उदइए उवसमिए खइए खओवसमिए पारिणामिए संनिवाइए

अत्रौदयिकादयः षड् भावाः प्ररूप्यन्ते, तथा च सूत्रम्–'उदइए' इत्यादि, अत्राह–ननु नाम्नि प्रक्रान्ते

१ नाम च धातुजमाह निरुक्ते, व्याकरणे शकटस्य च तोकम्। यत्र पदार्थविशेषसमुत्थं, प्रत्ययतः प्रकृतेश्च तद्ग्रह्यम् ॥ १ ॥ इति शब्दानुशासनवृत्तौ श्रीहेमचन्द्रसूरिभिरुदाहृतम्।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तदभिधेयानामर्थानां भावलक्षणानां प्ररूपणमयुक्तमिति, नैतदेवं, नामनामवतोरभेदोपचारात् तत्प्ररूपणस्याप्यदुष्टत्वाद्, एवमन्यत्रापि यथासम्भवं वाच्यं, तत्र ज्ञानावरणादीनामष्टानां प्रकृतीनामात्मीयात्मीयस्वरूपेण विपाकतोऽनुभवनमुदयः स एवौदयिकः, अथवा यथोक्तेनोदयेन निष्पन्न औदयिको भाव इति सामर्थ्याद् गम्यते, उपशमनमुपशमः कर्मणोऽनुदयाक्षीणावस्था भस्मपटलावच्छन्नाग्निवत् स एव औपशमिकः, तेन वा निर्वृत्त औपशमिकः, क्षयः–कर्मणोऽपगमः स एव तेन वा निर्वृत्तः क्षायिकः, कर्मणो यथोक्तौ क्षयोपशमावेव ताभ्यां वा निर्वृत्तः क्षायोपशमिकः दरविध्यातभस्मच्छन्नवह्निवत्, परिणमनं–तेन तेन रूपेण वस्तूनां भवनं परिणामः स एव तेन वा निर्वृत्तः पारिणामिकः, अनन्तरोक्तानां द्व्यादिभावानां मेलकः सन्निपातः स एव तेन वा निर्वृत्तः सान्निपातिकः ॥ तत्रामीषां प्रत्येकं स्वरूपनिरूपणार्थमर्थमाह—

से किं तं उदइए ?, २ दुविहे पण्णत्ते, तंजहा–उदइए अ उदयनिप्फण्णे अ। से किं तं उदइए ?, २ अट्ठण्हं कम्मपयडीणं उदएणं, से तं उदइए। से किं तं उदयनिप्फन्ने ?, २ दुविहे पण्णत्ते, तंजहा–जीवोदयनिप्फन्ने अ अजीवोदयनिप्फन्ने अ। से किं तं जीवोदयनिप्फन्ने ?, २ अणेगविहे पण्णत्ते, तंजहा–णेरइए तिरिक्खजोणिए मणुस्से देवे पुढविकाइए जाव तसकाइए कोहकसाई जाव लोहकसाई इत्थीवेदए पुरिसवेयए

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

णपुंसगवेदए कण्हलेसे जाव सुक्कलेसे मिच्छादिट्ठी ३ अविरए असंणी अण्णाणी आहारए छउमत्थे सजोगी संसारत्थे असिद्धे, से तं जीवोदयनिप्फन्ने। से किं तं अजीवोदयनिप्फन्ने?, २ अणेगविहे पण्णत्ते, तंजहा–उरालिअं वा सरीरं उरालिअसरीरपओगपरिणामिअं वा दव्वं, वेउव्विअं वा सरीरं वेउव्वियसरीरपओगपरिणामिअं वा दव्वं, एवं आहारगं सरीरं तेअगं सरीरं कम्मगसरीरं च भाणिअव्वं, पओगपरिणामिए वण्णे गंधे रसे फासे, से तं अजीवोदयनिप्फण्णे। से तं उदयनिप्फण्णे, से तं उदइए।

औदयिको भावो द्विविधः–अष्टानां कर्मप्रकृतीनामुदयस्तन्निष्पन्नश्च, अयं चार्थः प्रकारद्वयेन व्युत्पत्तिकरणादादावेव दर्शितः, उदयनिष्पन्नः पुनरपि द्विविधो–जीवे उदयनिष्पन्नो जीवोदयनिष्पन्नः अजीवे उदयनिष्पन्नोऽजीवोदयनिष्पन्नो, जीवोदयनिष्पन्नस्योदाहरणानि–'णेरइए' इत्यादि, इदमुक्तं भवति–कर्मणामुदयेनैव सर्वेऽप्येते पर्याया जीवे निष्पन्नाः, तद्यथा–नारकस्तिर्यङ् मनुष्य इत्यादि, अत्राह–ननु यथैवमपरेऽपि निद्रापञ्चकवेदनीयहास्यादयो बहवः कर्मोदयजन्या जीवे पर्यायाः सन्ति, किमिति नारकत्वादयः कियन्तोऽप्युपन्यस्ताः?, सत्यम्, उपलक्षणत्वादमीषामन्येऽपि सम्भविनो द्रष्टव्याः, अपरस्त्वाह–ननु कर्मो-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[४५], चूलिकासूत्र-[२] अनुयोगद्वार मूलं एवं हेमचन्द्रसूरि-रचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१२७]

दीप अनुक्रम [१६१]

दयजनितानां नारकत्वादीनां भवत्विहोपन्यासो लेश्यास्तु कस्यचित् कर्मण उदये भवन्तीत्येतन्न प्रसिद्धं तत्किमिहोपन्यासः ?, सत्यं, किन्तु योगपरिणामो लेश्याः, योगस्तु त्रिविधोऽपि कर्मोदयजन्य एव, ततो लेश्यानामपि तदुभयजन्यत्वं न विहन्यते, अन्ये तु मन्यन्ते–कर्माष्टकोदयात् संसारस्थत्वासिद्धत्वबद्धेश्या-वत्त्वमपि भावनीयमित्यलं विस्तरेण, तदर्थिना तु गन्धहस्तिवृत्तिरनुसर्तव्येति, ' से तं जीवोदयनिप्फण्णे'त्ति निगमनम्। अथाजीवोदयनिष्पन्नं निरूपयितुमाह–'से किं त'मित्यादि, 'ओरालियं वा सरीरं'ति विशिष्टाकारपरिणतं तिर्यङ्मनुष्यदेहरूपमौदारिकं शरीरं, 'उरालिअसरीरप्पओगे'इत्यादि, औदारिकशरीरप्रयोगपरिणामितं द्रव्यम्, औदारिकशरीरस्य प्रयोगो–व्यापारस्तेन परिणामितं स्वप्रयोगित्वात् गृहीतं तत्तथा, तच्च वर्णगन्धरसस्पर्शानापानादिरूपं स्वत एवोपरिष्टाद् दर्शयिष्यति, वाशब्दौ परस्परसमुच्चये, एतद्वितयमप्यजीवे–पुद्गलद्रव्यलक्षणे औदारिकशरीरनामकर्मोदयेन निष्पन्नत्वादजीवोदयनिष्पन्न औदयिको भाव उच्यते, एवं वैक्रियशरीरादिष्वपि भावना कार्या, नवरं वैक्रियशरीरनामकर्माद्युदयजन्यत्वं यथास्वं वाच्यमिति। औदारिकादिशरीरप्रयोगेण यत् परिणम्यते द्रव्यं तत् स्वत एव दर्शयितुमाह–'पओगपरिणामिए वण्णे'इत्यादि, पञ्चानामपि शरीराणां प्रयोगेण-व्यापारेण परिणामितं-गृहीतं वर्णादिकं शरीरवर्णादिसम्पादकं द्रव्यमिदं द्रष्टव्यम्, उपलक्षणत्वाच्च वर्णादीनामपरमपि यच्छरीरे संभवत्यानापानादि तत् स्वत एव दृश्यमिति। अत्राह–ननु यथा नारकत्वादयः पर्याया जीवे भवन्तीति जीवोदयनिष्पन्ने औदयिके पठ्यन्ते, एवं शरीराण्यपि जीव एव भव-

अनु. २०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१२७]

दीप अनुक्रम [१६१]

अनुयो० मलधारीया ॥ ११५ ॥

न्ति अतस्तान्यपि तत्रैव पठनीयानि स्युः, किमित्यजीवोदयनिष्पन्नेऽधीयन्ते ?, अस्त्येतत्, किंत्वौदारिकादिशरीरनामकर्मोदयस्य मुख्यतया शरीरपुद्गलेष्वेव विपाकदर्शनात् तन्निष्पन्न औदयिको भावः शरीरलक्षणेऽजीव एव प्राधान्याद् दर्शित इत्यदोषः। 'से त' मित्यादि निगमनत्रयम् ॥ उक्तो द्विविधोऽप्यौदयिकः, अथौपशमिकं निर्दिदिक्षुराह—

से किं तं उवसमिए ?, २ दुविहे पण्णत्ते, तंजहा–उवसमे अ उवसमनिप्फण्णे अ। से किं तं उवसमे ?, २ मोहणिज्जस्स कम्मस्स उवसमेणं, से तं उवसमे। से किं तं उवसमनिप्फण्णे ?, २ अणेगविहे पण्णत्ते, तंजहा–उवसंतकोहे जाव उवसंतलोभे उवसंतपेज्जे उवसंतदोसे उवसंतदंसणमोहणिज्जे उवसंतमोहणिज्जे उवसमिआ सम्मत्तलद्धी उवसमिआ चरित्तलद्धी उवसंतकसायछउमत्थवीयरागे, से तं उवसमनिप्फण्णे। से तं उवसमिए।

अयमपि द्विविधः–उपशमस्तन्निष्पन्नश्च, तत्र 'उवसमे णं'ति णमिति वाक्यालङ्कारे, उपशमः पूर्वोक्तस्वरूपो मोहनीयस्यैव कर्मणोऽष्टाविंशतिभेदभिन्नस्योपशमश्रेण्यां द्रष्टव्यो न शेषकर्मणां, 'मोहस्सेवोवसमो' इति वचनात्, उपशम एवौपशमिकः। उपशमनिष्पन्ने तु 'उवसंतकोहे' इत्यादि, इहोपशान्तक्रोधादयो व्यपदेशाः क्वापि वाचनाविशेषाः (षे) कियन्तोऽपि दृश्यन्ते, तत्र मोहनीयस्योपशमेन दर्शनमोहनीयं चारित्रमो-

वृत्तिः उपक्रमाधि०

॥ ११५ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१२७]

दीप अनुक्रम [१६१]

हनीयं चोपशान्तं भवति, तदुपशान्ततायां च ये व्यपदेशाः संभवन्ति ते सर्वेऽप्यत्रादुष्टा न शेषा इति भावनीयम्। 'से त'मित्यादि निगमनद्वयम्। निर्दिष्टो द्विविधोऽप्यौपशमिकः, अथ क्षायिकमाह—

से किं तं खइए?, २ दुविहे पण्णत्ते, तंजहा–खइए अ खयनिप्फण्णे अ। से किं तं खइए?, २ अट्ठण्हं कम्मपयडीणं खए णं, से तं खइए। से किं तं खयनिप्फण्णे?, २ अणेगविहे पण्णत्ते, तंजहा–उप्पण्णणाणदंसणधरे अरहा जिणे केवली खीणआभिणिबोहिअणाणावरणे खीणसुअणाणावरणे खीणओहिणाणावरणे खीणमणपज्जवणाणावरणे खीणकेवलणाणावरणे अणावरणे निरावरणे खीणावरणे णाणावरणिज्जकम्मविप्पमुक्के केवलदंसी सव्वदंसी खीणनिद्दे खीणनिद्दानिद्दे खीणपयले खीणपयलापयले खीणथीणगिद्धी खीणचक्खुदंसणावरणे खीणअचक्खुदंसणावरणे खीणओहिदंसणावरणे खीणकेवलदंसणावरणे अणावरणे निरावरणे खीणावरणे दरिसणावरणिज्जकम्मविप्पमुक्के खीणसायावेअणिज्जे खीणअसायावेअणिज्जे अवेअणे निव्वेअणे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१२७]

दीप अनुक्रम [१६१]

खीणवेअणे सुभासुभवेअणिज्जकम्मविप्पमुक्के खीणकोहे जाव खीणलोहे खीणपेज्जे खीणदोसे खीणदंसणमोहणिज्जे खीणचरित्तमोहणिज्जे अमोहे निम्मोहे खीणमोहे मोहणिज्जकम्मविप्पमुक्के खीणणेरइआउए खीणतिरिक्खजोणिआउए खीणमणुस्साउए खीणदेवाउए अणाउए निराउए खीणाउए आउकम्मविप्पमुक्के गइजाइसरीरंगोवंगबंधणसंघायणसंघयणसंठाणअणेगबोंदिविंदसंघायविप्पमुक्के खीणसुभनामे खीणअसुभणामे अणामे निप्पणामे खीणनामे सुभासुभणामकम्मविप्पमुक्के खीणउच्चागोए खीणणीआगोए अगोए निग्गोए खीणगोए उच्चणीयगोत्तकम्मविप्पमुक्के खीणदाणंतराए खीणलाभंतराए खीणभोगंतराए खीणउवभोगंतराए खीणविरियंतराए अणंतराए णिरंतराए खीणंतराए अंतरायकम्मविप्पमुक्के सिद्धे बुद्धे मुत्ते परिणिव्वुए अंतगडे सव्वदुखप्पहीणे, से तं खयनिप्फण्णे। से तं खइए।

एषोऽपि द्विधा–क्षयस्तन्निष्पन्नश्च, तत्र 'खए णं' अत्र णमिति पूर्ववत्, क्षयोऽष्टानां ज्ञानावरणादिकर्मप्रकृतीनां सोत्तरभेदानां सर्वथाऽपगमलक्षणः स च स्वार्थिकेकणप्रत्यये क्षायिकः, क्षयनिष्पन्नस्तु तत्फलरूपः, तत्र

॥ ११६ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

च सर्वेष्वपि कर्मसु सर्वथा क्षीणेषु ये पर्यायाः संभवन्ति तान् क्रमेण दिदर्शयिषुर्ज्ञानावरणक्षये तावद् ये भवन्ति तानाह—'उप्पण्णणाणदंसणे'त्यादि, उत्पन्ने–श्यामतापगमेनादर्शमण्डलप्रभावत् सकलतदावरणापगमादभिव्यक्ते ज्ञानदर्शने धरति यः स तथा, 'अरहा' अविद्यमानरहस्यो, नास्य गोप्यं किञ्चिदस्तीति भावः, आवरणशत्रुजेतृत्वाज्जिनः, केवलं–सम्पूर्णं ज्ञानमस्यास्तीति केवली, क्षीणमाभिनिबोधिकज्ञानावरणं यस्य स तथा, एवं नेयं यावत् क्षीणकेवलज्ञानावरणः, अविद्यमानमावरणं यस्य स विशुद्धाम्बरे श्वेतरोचिरिवानावरणः, तथा निर्गत आगन्तुकादप्यावरणाद् राहुरहितरोहिणीशवदेव निरावरणः, तथा क्षीणमेकान्तेनापुनर्भावितया आवरणमस्येत्यपाकृतमलावरणजात्यमणिवत् क्षीणावरणः, निगमयन्नाह–ज्ञानावरणीयेन कर्मणा विविधम्–अनेकैः प्रकारैः प्रकर्षेण मुक्तो ज्ञानावरणीयकर्मविप्रमुक्तः, एकार्थिकानि वा एतान्यनावरणादिपदानि, अन्यथा वा नयमतभेदेन सुधिया भेदो वाच्यः। तदेवमेतानि ज्ञानावरणीयक्षयापेक्षाणि नामान्युक्तानि, अथ दर्शनावरणीयक्षयापेक्षाणि तान्येवाह—'केवलदंसी'त्यादि, केवलेन–क्षीणावरणेन दर्शनेन पश्यतीति केवलदर्शी क्षीणदर्शनावरणत्वादेव सर्वं पश्यतीति सर्वदर्शीत्येवं निद्रापञ्चकदर्शनावरणचतुष्कक्षयसम्भवीन्यपराण्यपि नामान्यत्र पूर्वोक्तानुसारेण व्युत्पादनीयानि, नवरं निद्रापञ्चकस्वरूपमिदम्—"[1]सुह-

१ सुखप्रतिबोधा निद्रा दुःखप्रतिबोधा च निद्रानिद्रा च। प्रचला भवति स्थितस्य प्रचलाप्रचला च चङ्क्रमतः ॥ १ ॥ अतिसंक्लिष्टकर्माणुवेदने भवति स्त्यानर्द्धिस्तु। महानिद्रा दिनचिन्तितव्यापारप्रसाधनी प्रायः ॥ २ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१२७]

दीप अनुक्रम [१६१]

पडिबोहा निद्दा दुहपडिबोहा य निद्दनिद्दा य । पयला होइ ठियस्सा पयलापयला य चंकमओ ॥ १ ॥ अइसंकिलिट्ठकम्माणुवेयणे होइ थीणगिद्धी उ । महनिद्दा दिणचिंतियवावारपसाहणी पायं ॥ २ ॥" अपरं च–अनावरणादिशब्दाः पूर्वं ज्ञानावरणाभावापेक्षाः प्रवृत्ता अत्र तु दर्शनावरणाभावापेक्षा इति विशेषः, वेदनीयं द्विधा–प्रीत्युत्पादकं सातमप्रीत्युत्पादकं त्वसातं, तत्क्षयापेक्षास्तु क्षीणसातावेदनीयादयः शब्दाः सुखोन्नेयाः, नवरमवेदनो–वेदनारहितः, स च व्यवहारतोऽल्पवेदनोऽप्युच्यते ततः प्राह–निर्वेदनः–अपगतसर्ववेदनः, स च पुनः कालान्तरभाविवेदनोऽपि स्यादित्याह–क्षीणवेदनः–अपुनर्भाविवेदनः, निगमयन्नाह–'सुभासुभवेअणिज्जकम्मविप्पमुक्के'त्ति । मोहनीयं द्विधा–दर्शनमोहनीयं चारित्रमोहनीयं च, तत्र दर्शनमोहनीयं त्रिधा–सम्यक्त्वमिश्रमिथ्यात्वभेदात्, चारित्रमोहनीयं च द्विधा–क्रोधादिकषायहास्यादिनोकषायभेदात्, तत एतत्क्षयसम्भवीनि सूत्रलिखितानि क्षीणक्रोधादीनि नामानि सुबोधान्येव, नवरं मायालोभौ प्रेम, क्रोधमानौ तु द्वेषः, तथा अमोहः–अपगतमोहनीयकर्मा, स च व्यावहारिकैरल्पमोहोदयोऽपि निर्दिश्यते अत आह–निर्गतो मोहान्निर्मोहः, स च पुनः कालान्तरभाविमोहोदयोऽपि स्यादुपशान्तमोहवत् तद्व्यवच्छेदार्थमाह–क्षीणमोहः अपुनर्भाविमोहोदय इत्यर्थः, निगमयति–मोहनीयकर्मविप्रमुक्त इति । नारकाद्यायुष्कभेदेनायुश्चतुर्धा, तत्क्षयसमुद्भवानि च नामानि सुगमानि, नवरमविद्यमानायुष्कोऽनायुष्कस्तद्भविकायुःक्षयमात्रेऽपि स्यादत उक्तं–निरायुष्कः, स च शैलेशीं गतः किञ्चिदवतिष्ठमानायुःशेषोऽप्युपचारतः स्यादत उक्तं

॥ ११७ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

–क्षीणायुरिति, आयुःकर्मविप्रमुक्त इति निगमनं। नामकर्म सामान्येन शुभाशुभभेदतो द्विविधं, विशेषतस्तु गतिजातिशरीराङ्गोपाङ्गादिभेदाद् द्विचत्वारिंशदादिभेदं स्थानान्तरादवसेयं, तत्रेह तत्क्षयभावीनि कियन्ति तन्नामानि अभिधत्ते–'गइजाइसरीरे'त्यादि, इह प्रक्रमान्नामशब्दो यथासम्भवं द्रष्टव्यः, ततश्च नारकादि-गतिचतुष्टयहेतुभूतं गतिनाम, एकेन्द्रियादिजातिपञ्चककारणं जातिनाम, औदारिकादिशरीरपञ्चकनिबन्धनं शरीरनाम, औदारिकवैक्रियाहारकशरीरत्रयाङ्गोपाङ्गनिर्वृत्तिकारणमङ्गोपाङ्गनाम, काष्ठादीनां लाक्षादिद्रव्य-मिव शरीरपञ्चकपुद्गलानां परस्परं बन्धहेतुर्बन्धननाम, तेषामेव पुद्गलानां परस्परं बन्धनार्थमन्योऽन्यसांनि-ध्यलक्षणसङ्घातकारणं काष्ठसन्निकर्षकृत् तथाविधकर्मकर इव सङ्घातनाम, कपाटादीनां लोहपट्टादिरिवौ-दारिकशरीरास्थां परस्परबन्धविशेषनिबन्धनं संहननाम, एतच्च बन्धनादिपदत्रयं क्वचिद्वाचनान्तरे न दृश्यत इति, बोन्दिस्तनुः शरीरमिति पर्यायाः, अनेकाश्च ता नानाभवेषु बह्वीनां तासां भावात् तस्मिन्नेव वा भवे जघ-न्यतोऽप्यौदारिकतैजसकार्मणलक्षणानां तिसृणां भावाद् बोन्दयश्चानेकबोन्दयस्तासां वृन्दं–पटलं तदेव पुद्गलस-ङ्घातरूपत्वात् सङ्घातोऽनेकबोन्दिवृन्दसङ्घातः, गत्यादीनां च द्वन्द्वे गतिजातिशरीराङ्गोपाङ्गबन्धनसंघातन-संहननसंस्थानानेकबोन्दिवृन्दसङ्घातास्तैर्विप्रमुक्तो यः स तथा, प्राक्तनेन शरीरशब्देन शरीराणां निबन्धनं नामकर्म गृहीतं, बोन्दिवृन्दग्रहणेन तु तत्कार्यभूतशरीराणामेव ग्रहणमिति विशेषः, क्षीणम्–अपगतं तीर्थकर-शुभसुभगसुखरादेययशःकीर्त्यादिकं शुभं नाम यस्य स तथा, क्षीणम्–अपगतं नरकगत्यशुभदुर्भगदुःस्वरा-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१२७]

दीप अनुक्रम [१६१]

नादेयायशःकीर्त्यादिकमशुभं नाम यस्य स तथा, अनामनिर्नामक्षीणनामादिशब्दास्तु पूर्वोक्तानुसारेण भावनीयाः, शुभाशुभनामविप्रमुक्त इति निगमनम् । गोत्रं द्विधा–उच्चैर्गोत्रं नीचैर्गोत्रं च, ततस्तत्क्षयसम्भवीनि क्षीणगोत्रादिनामान्युक्तानुसारतः सुखावसेयान्येव । दानान्तरायादिभेदादन्तरायं पञ्चधा, तत्क्षयनिष्पन्नानि च क्षीणदानान्तरायादिनामान्यविषमाण्येव, तदेवमेकैकप्रकृतिक्षयनिष्पन्ननामानि प्रत्येकं निर्दिश्य साम्प्रतं पुनः समुदितप्रकृत्यष्टकक्षयनिष्पन्नानि सामान्यतो यानि नामानि भवन्ति तान्याह—'सिद्धे'इत्यादि, सिद्धसमस्तप्रयोजनत्वात् सिद्धः, बोधात्मकत्वादेव बुद्धः, बाह्याभ्यन्तरग्रन्थबन्धनमुक्तत्वात् मुक्तः, परिः–समन्तात् सर्वप्रकारैः निर्वृतः–सकलसमीहितार्थलाभप्रकर्षप्राप्तत्वात् शीतीभूतः परिनिर्वृतः, समस्तसंसारान्तकृत्त्वादन्तकृदिति, एकान्तेनैव शारीरमानसदुःखप्रहाणात् सर्वदुःखप्रहीण इति । 'से त'मित्यादि निगमनद्वयम् । उक्तो द्विविधोऽपि क्षायिकः, अथ क्षायोपशमिकमाह—

से किं तं खओवसमिए?, २ दुविहे पण्णत्ते, तंजहा–खओवसमिए य खओवसमनिप्फण्णे य । से किं तं खओवसमे?, २ चउण्हं घाइकम्माणं खओवसमेणं, तंजहा–णाणावरणिज्जस्स दंसणावरणिज्जस्स मोहणिज्जस्स अंतरायस्स खओवसमेणं, से तं खओवसमे । से किं तं खओवसमनिप्फण्णे?, २ अणेगविहे पण्णत्ते, तंजहा–खओवसमिआ आ-

॥ ११८ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१२७]

दीप अनुक्रम [१६१]

भिणिबोहिअणाणलद्धी जाव खओवसमिआ मणपज्जवणाणलद्धी खओवसमिआ मइअण्णाणलद्धी खओवसमिआ सुअअण्णाणलद्धी खओवसमिआ विभंगणाणलद्धी खओवसमिआ चक्खुदंसणलद्धी अचक्खुदंसणलद्धी ओहिदंसणलद्धी एवं सम्मदं-सणलद्धी मिच्छादंसणलद्धी सम्ममिच्छादंसणलद्धी खओवसमिआ सामाइअचरि-त्तलद्धी एवं छेदोवट्ठावणलद्धी परिहारविसुद्धिअलद्धी सुहुमसंपरायचरित्तलद्धी एवं चरित्ताचरित्तलद्धी खओवसमिआ दाणलद्धी एवं लाभ० भोग० उवभोगलद्धी खओ-वसमिआ वीरिअलद्धी एवं पंडिअवीरिअलद्धी बालवीरिअलद्धी बालपंडिअवीरिअलद्धी खओवसमिआ सोइंदिअलद्धी जाव खओवसमिआ फासिंदिअलद्धी खओवसमिए आयारंगधरे एवं सुअगडंगधरे ठाणंगधरे समवायंगधरे विवाहपण्णत्तिधरे नायाधम्म-कहा० उवासगदसा० अंतगडदसा० अणुत्तरोववाइअदसा० पण्हावागरणधरे विवाग-सुअधरे खओवसमिए दिट्ठिवायधरे खओवसमिए णवपुव्वी खओवसमिए जाव

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनुयो० मलधारीया ॥ ११९ ॥

चउद्दसपुव्वी खओवसमिए गणी खओवसमिए वायए, से तं खओवसमनिप्फण्णे, से तं खओवसमिए ।

असावपि द्विरूपः–क्षयोपशमस्तन्निष्पन्नश्च, तत्र विवक्षितज्ञानादिगुणविघातकस्य कर्मण उदयप्राप्तस्य क्षयः–सर्वथाऽपगमः अनुदीर्णस्य तु तस्यैवोपशमो–विपाकत उदयाभाव इत्यर्थः, ततश्च क्षयोपलक्षित उपशमः क्षयोपशमः, ननु चौपशमिकेऽपि यदुदयप्राप्तं तत्सर्वथा क्षीणं शेषं तु न क्षीणं नाप्युदयप्राप्तमतस्तस्योपशम उच्यत इत्यनयोः कः प्रतिविशेषः?, उच्यते, क्षयोपशमावस्थे कर्मणि विपाकत एवोदयो नास्ति, प्रदेशतस्त्वस्त्येव, उपशान्तावस्थायां तु प्रदेशतोऽपि नास्त्युदय इत्येतावता विशेषः। तत्र चतुर्णां घातिकर्मणां केवलज्ञानप्रतिबन्धकानां ज्ञानावरणदर्शनावरणमोहनीयान्तरायाणां यः क्षयोपशमः–क्षयोपशमरूपः स क्षायोपशमिको भावः, णमिति पूर्ववत्, तद्यथेत्यादिना स्वत एव घातिकर्माणि विवृणोति, शेषकर्मणां तु क्षयोपशमो नास्त्येव, निषिद्धत्वात्। 'से त'मित्यादि निगमनम्। तेनैव क्षयोपशमेनोक्तस्वरूपेण निष्पन्नः क्षायोपशमिको भावोऽनेकधा भवति, तमाह—'खाओवसमिया आभिणिबोहियणाणलद्धी'त्यादि, आभिनिबोधिकज्ञानं–मतिज्ञानं तस्य लब्धिः–योग्यता स्वस्वावरणकर्मक्षयोपशमसाध्यत्वात् क्षायोपशमिकी, एवं तावद् वक्तव्यं यावन्मनःपर्यायज्ञानलब्धिः, केवलज्ञानलब्धिस्तु स्वावरणकर्मणः क्षय एवोत्पद्यत इति नेहोक्ता, कुत्सितं ज्ञानमज्ञानं मतिरेव

॥ ११९ ॥

वृत्तिः उपक्रमाधि०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अज्ञानं मत्यज्ञानं, कुत्सितत्वं चेह मिथ्यादर्शनोदयदूषितत्वात् द्रष्टव्यं, दृष्टा च कुत्सार्थे नञो वृत्तिः, यथा कुत्सितं शीलमशीलमिति, मत्यज्ञानस्य लब्धिः–योग्यता, साऽपि स्वावरणक्षयोपशमेनैव निष्पद्यते, एवं श्रुताज्ञानलब्धिरपि वाच्याः, भङ्गः प्रकारो भेद इत्यर्थः, स चेह प्रक्रमादवधिरेव गृह्यते, विरूपः–कुत्सितो भङ्गो विभङ्गः स एवार्थपरिज्ञानात्मकत्वात् ज्ञानं विभङ्गज्ञानं, मिथ्यादृष्टिदेवादेरवधिर्विभङ्गज्ञानमुच्यते इत्यर्थः, इह च विशब्देनैव कुत्सितार्थप्रतीतेर्न नञो निर्देशः, तस्य लब्धिः–योग्यता साऽपि स्वावरणक्षयोपशमेनैव प्रादुरस्ति, एवं मिथ्यात्वादिकर्मणः क्षयोपशमसाध्या शेषा अपि सम्यग्दर्शनादिलब्धयो यथासम्भवं भावनीयाः, नवरं बाला–अविरताः पण्डिताः–साधवः बालपण्डितास्तु–देशविरताः तेषां यथास्वं वीर्यलब्धिर्वीर्यान्तरायकर्मक्षयोपशमाद्भावनीया, इन्द्रियाणि चेह लब्ध्युपयोगरूपाणि भावेन्द्रियाणि गृह्यन्ते, तेषां च लब्धिः–योग्यता मतिश्रुतज्ञानचक्षुरचक्षुर्दर्शनावरणक्षयोपशमजन्यत्वात् क्षायोपशमिकीति भावनीयम्, आचारधरत्वादिपर्यायाणां च श्रुतज्ञानप्रभवत्वात् तस्य च तदावरणकर्मक्षयोपशमसाध्यत्वादाचारधरादिशब्दा इह पठ्यन्ते इति प्रतिपत्तव्यम्। 'से त'मित्यादि निगमनद्वयम्॥ अथ पारिणामिकभावमाश्रित्याह—

से किं तं पारिणामिए?, २ दुविहे पण्णत्ते, तंजहा–साइपारिणामिए अ अणाइपारिणामिए अ। से किं तं साइपारिणामिए?, २ अणेगविहे पण्णत्ते तंजहा–जुण्णसुरा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१२७] + गाथा ||१||

दीप अनुक्रम [१६१--१६३]

जुण्णगुलो जुण्णघयं जुण्णतंदुला चेव । अब्भा य अब्भरुक्खा संझा गंधव्वणगरा य ॥ १ ॥ उक्कावाया दिसादाहा गज्जियं विज्जू णिग्घाया जूवया जक्खादित्ता धूमिआ महिआ रयुग्घाया चंदोवरागा सूरोवरागा चंदपरिवेसा सूरपरिवेसा पडिचंदा पडिसूरा इंदधणू उदगमच्छा कविहसिया अमोहा वासा वासधरा गामा णगरा घरा पव्वता पायाला भवणा निरया रयणप्पहा सक्करप्पहा वालुअप्पहा पंकप्पहा धूमप्पहा तमप्पहा तमतमप्पहा सोहम्मे जाव अच्चए गेवेज्जे अणुत्तरे ईसिप्पभारा परमाणुपोग्गले दुपएसिए जाव अणंतपएसिए, से तं साइपारिणामिए । से किं तं अणाइपारिणामिए ?, २ धम्मत्थिकाए अधम्मत्थिकाए आगासत्थिकाए जीवत्थिकाए पुग्गलत्थिकाए अद्धासमए लोए अलोए भवसिद्धिआ अभवसिद्धिआ, से तं अणाइपारिणामिए । से तं पारिणामिए ।

सर्वथा अपरित्यक्तपूर्वावस्थस्य यद्रूपान्तरेण भवनं-परिणमनं स परिणामः, तदुक्तम्—"परिणामो स्वर्थो-

॥ १२० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१२७] + गाथा ॥१॥

दीप अनुक्रम [१६१--१६३]

न्तरगमनं न च सर्वथा व्यवस्थानम् । न च सर्वथा विनाशः परिणामस्तद्विदामिष्टः ॥ १ ॥" इति, स एव तेन वा निर्वृत्तः पारिणामिकः, सोऽपि द्विविधः–सादिरनादिश्च, तत्र सादिपारिणामिको 'जुण्णसुरे'त्यादि, जीर्णसुरादीनां जीर्णत्वपरिणामस्य सादित्वात् सादिपारिणामिकता, इह चोभयावस्थयोरप्यनुगतस्य सुराद्रव्यस्य नव्यतानिवृत्तौ जीर्णतारूपेण भवनं परिणाम इत्येवं सुखप्रतिपत्त्यर्थं जीर्णानां सुरादीनां ग्रहणम्, अन्यथा नवेष्वपि तेषु सादिपारिणामिकता अस्त्येव, कारणद्रव्यस्यैव नूतनसुरादिरूपेण परिणतेः, अन्यथा कार्यानुत्पत्तिप्रसङ्गाद्, अत्र बहु वक्तव्यं तत्तु नोच्यते स्थानान्तरवक्तव्यत्वादस्यार्थस्येति । अभ्राणि सामान्येन प्रतीतान्येव, अभ्रवृक्षास्तु तान्येव वृक्षाकारपरिणतानि, सन्ध्या–कालनीलाद्यभ्रपरिणतिरूपा प्रतीतैव, गन्धर्वनगराण्यपि–सुरसद्मप्रासादोपशोभितनगराकारतया तथाविधनभःपरिणतपुद्गलराशिरूपाणि प्रतीतान्येव, उल्कापाता अपि व्योमसम्मूर्च्छितज्वलनपतनरूपाः प्रसिद्धा एव, दिग्दाहास्तु–अन्यतरस्यां दिशि छिन्नमूलज्वलनज्वालाकरालिताम्बरप्रतिभासरूपाः प्रतिपत्तव्याः, गर्जितविद्युन्निर्घाताः प्रतीताः, यूपकास्तु—'संझाच्छेयावरणो य जूयओ सुक्क दिण तिन्नी'ति गाथादलप्रतिपादितस्वरूपा आवश्यकादवसेया, यक्षादीप्तकानि नभोदृश्यमानाग्निपिशाचाः, धूमिका–रूक्षा प्रविरला धूमाभा प्रतिपत्तव्या, महिका तु स्निग्धा घना, स्निग्धघनत्वादेव भूमौ पतिता सार्द्रतृणादिदर्शनद्वारेण लक्ष्यते, रजउद्घातो–रजस्वला दिशः, चन्द्रसूर्योपरागा राहुग्रहणानि,

१ सन्ध्याछेदावरणश्च यूपकः शुक्ले दिनौस्त्रीन्.

अनु. २१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१२७] + गाथा ॥१॥

दीप अनुक्रम [१६१--१६३]

अनुयो० मलधा-रीया ॥ १२१ ॥

बहुवचनं चात्रार्द्धतृतीयद्वीपसमुद्रवर्तिचन्द्रार्काणां युगपदुपरागभावात् मन्तव्यमिति चूर्णिकारः, चन्द्रसूर्यपरिवेषाः–चन्द्रादित्ययोः परितो वलयाकारपुद्गलपरिणतिरूपाः सुप्रतीता एव, प्रतिचन्द्रः–उत्पातादिसूचको द्वितीयश्चन्द्रः, एवं प्रतिसूर्योऽपि, इन्द्रधनुः–प्रसिद्धमेव, उदकमत्स्यास्तु–इन्द्रधनुःखण्डान्येव, कपिहसितानि–अकस्मान्नभसि ज्वलद्ग्रीमशब्दरूपाणि अमोघाः–सूर्यबिम्बादधः कदाचिदुपलभ्यमानशकटोर्द्धिसंस्थितश्यामादिरेखाः वर्षाणि–भरतादीनि वर्षधरास्तु–हिमवदादयः पातालाः–पातालकलशाः, शेषास्तु ग्रामादयः प्रसिद्धा एव। अत्राह–ननु वर्षधरादयः शाश्वतत्वात् न कदाचित्तद्भावं मुञ्चन्ति तत्कथं सादिपारिणामिकभाववर्तित्वं तेषां?, नैतदेवं, तदाकारमात्रतयैव हि तेऽवतिष्ठमानाः शाश्वता उच्यन्ते, पुद्गलास्त्वसङ्ख्येयकालादूर्ध्वं न तेष्वेवावतिष्ठन्ते, किं त्वपरापरे तद्भावेन परिणमन्ति, तावत्कालादूर्ध्वं पुद्गलानामेकपरिणामेनावस्थितेः प्रागेव निषिद्धत्वादिति सादिपारिणामिकता न विरुध्यते, अनादिपारिणामिके तु धर्मास्तिकायादयः, तेषां तद्रूपतया अनादिकालात् परिणतेः, वाचनान्तराण्यपि सर्वाण्युक्तानुसारतो भावनीयानि। 'से त'मित्यादि निगमनद्वयम्। उक्तः पारिणामिकः, अथ सान्निपातिकं निर्दिशति—

से किं तं सण्णिवाइए?, २ एएसिं चेव उदइअउवसमिअखइअखओवसमिअपारिणामिआणं भावाणं दुगसंजोएणं तियसंजोएणं चउक्कसंजोएणं पंचगसंजोएणं जे

वृत्तिः उपक्र माधि०

॥ १२१ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१२७] + गाथा ||१||

दीप अनुक्रम [१६१--१६३]

निप्फज्जइ सव्वे से सन्निवाइए नामे, तत्थ णं दस दुअसंजोगा दस तिअसंजोगा पंच चउक्कसंजोगा एगे पंचकसंजोगे ।

सन्निपातः–एषामेवौदयिकादिभावानां द्व्यादिमेलापकः स एव तेन वा निर्वृत्तः सान्निपातिकः, तथा चाह– 'एएसिं चेवे'त्यादि, एषामौदयिकादीनां पञ्चानां भावानां द्विकत्रिकचतुष्कपञ्चकसंयोगैर्ये षड्विंशतिर्भङ्गाः भवन्ति ते सर्वेऽपि सान्निपातिको भाव इत्युच्यते, एतेषु मध्ये जीवेषु नारकादिषु षडेव भङ्गाः सम्भवन्ति, शेषास्तु विंशतिर्भङ्गका रचनामात्रेणैव भवन्ति, न पुनः क्वचित् सम्भवन्ति, अतः प्ररूपणामात्रतयैव ते अवगन्तव्याः, एतत् सर्वं पुरस्ताद्व्यक्तीकरिष्यते, कियन्तः पुनस्ते द्व्यादिसंयोगाः प्रत्येकं सम्भवन्ति इत्याह— 'तत्थ णं दस दुगसंजोगा' इत्यादि, पञ्चानामौदयिकादिपदानां दश द्विकसंयोगाः दशैव त्रिकसंयोगाः पञ्च चतुःसंयोगाः एकस्तु पञ्चकसंयोगः संपद्यत इति, सर्वेऽपि षड्विंशतिः । तत्र के पुनस्ते दश द्विकसंयोगा इति जिज्ञासायां प्राह—

एत्थ णं जे ते दस दुगसंजोगा ते णं इमे–अत्थि णामे उदइएउवसमनिप्फण्णे १ अत्थि णामे उदइएखाइगनिप्फण्णे २ अत्थि णामे उदइएखओवसमनिप्फण्णे ३ अत्थि णामे उदइएपारिणामिअनिप्फण्णे ४ अत्थि णामे उवसमिएखयनिप्फण्णे ५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१२७] + गाथा ||१|| दीप अनुक्रम [१६१--१६३]

अत्थि णामे उवसमिएखओवसमनिप्फण्णे ६ अत्थि णामे उवसमिएपारिणामिअनिप्फण्णे ७ अत्थि णामे खइएखओवसमनिप्फण्णे ८ अत्थि णामे खइएपारिणामिअनिप्फण्णे ९ अत्थि णामे खओवसमिएपारिणामिअनिप्फण्णे १० । कयरे से नामे उदइएउवसमनिप्फण्णे ?, उदइएत्ति मणुस्से उवसंता कसाया, एस णं से णामे उदइएउवसमनिप्फण्णे १, कयरे से णामे उदइएखयनिप्फण्णे ?, उदइएत्ति मणुस्से खइअं सम्मत्तं, एस णं से नामे उदइएखयनिप्फण्णे २, कयरे से णामे उदइएखओवसमनिप्फण्णे ?, उदइएत्ति मणुस्से खओवसमिआइं इंदिआइं, एस णं से णामे उदइएखओवसमनिप्फण्णे ३, कयरे से णामे उदइएपरिणामिअनिप्फण्णे ?, उदइएत्ति मणुस्से पारिणामिए जीवे, एस णं से णामे उदइएपारिणामिअनिप्फण्णे ४, कयरे से णामे उवसमिएखयनिप्फण्णे ?, उवसंता कसाया खइअं सम्मत्तं, एस णं से णामे उवसमिएखयनिप्फण्णे ५, कयरे से णामे उवसमिएखओवसमनिप्फण्णे ?,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१२७] + गाथा ||१||

दीप अनुक्रम [१६१--१६३]

उवसंता कसाया खओवसमिआइं इंदिआइं, एस णं से णामे उवसमिएखओवसमनिप्फण्णे ६, कयरे से णामे उवसमिएपारिणामिअनिप्फण्णे ?, उवसंता कसाया पारिणामिए जीवे, एस णं से णामे उवसमिएपारिणामिअनिप्फण्णे ७, कयरे से णामे खइएखओवसमनिप्फण्णे ?, खइयं सम्मत्तं खओवसमिआइं इंदिआइं, एस णं से णामे खइएखओवसमनिप्फण्णे ८, कयरे से णामे खइएपारिणामिअनिप्फण्णे ?, खइअं सम्मत्तं पारिणामिए जीवे, एस णं से णामे खइएपारिणामिअनिप्फण्णे ९, कयरे से णामे खओवसमिएपारिणामिअनिप्फण्णे ?, खओवसमिआइं इंदिआइं पारिणामिए जीवे, एस णं से णामे खओवसमिएपारिणामिअनिप्फण्णे १० ।

नामाधिकारादित्थमाह–अस्ति तावत्सान्निपातिकभावान्तर्वर्ति नाम, विभक्तिलोपादौदयिकौपशमिकलक्षणभावद्वयनिष्पन्नमित्येको भङ्गः, एवमन्येनाप्युपरितनभावत्रयेण सह संयोगादौदयिकेन चत्वारो द्विक-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१२७] + गाथा ||१|| दीप अनुक्रम [१६१--१६३]

अनुयो० मलधारीया ॥ १२३ ॥

संयोगा लब्धाः, ततस्तत्परित्यागे औपशमिकस्योपरितनभावत्रयेण सह चारणायां लब्धास्त्रयः, तत्परिहारे क्षायिकस्योपरितनभावद्वयमीलनायां लब्धौ द्वौ, ततस्तं विमुच्य क्षायोपशमिकस्य पारिणामिकमीलने लब्ध एक इति सर्वेऽपि दश, एवं सामान्यतो द्विकसंयोगभङ्गकेषु दर्शितेषु विशेषतस्तत्स्वरूपमजानन् विनेयः पृच्छति—'कयरे से णामे उदइए?'इत्यादि, अत्रोत्तरम्—'उदइएत्ति मणुस्से'इत्यादि, औदयिके भावे मनुष्यत्वं–मनुष्यगतिरिति तात्पर्यम्, उपलक्षणमात्रं चेदं, तिर्यगादिगतिजातिशरीरनामादिकर्मणामप्यत्र सम्भवाद्, उपशान्तास्तु कषाया औपशमिके भाव इति गम्यते, अत्राप्युदाहरणमात्रमेतत्, दर्शनमोहनीयनोकषायमोहनीययोरप्यौपशमिकत्वसम्भवाद्, एतन्निगमयति—'एस णं से णामे उदइएउवसमनिप्फण्णे'त्ति, णमिति वाक्यालङ्कारे एतत्तन्नाम यदुद्दिष्टं प्रागौदयिकौपशमिकभावद्वयनिष्पन्नमिति प्रथमद्विकयोगे भङ्गकव्याख्यानम्, अयं च द्विकयोगविवक्षामात्रत एव संपद्यते, न पुनरीदृशो भङ्गः कचिज्जीवे संभवति, तथा हि–यस्यौदयिकी मनुष्यगतिरौपशमिकाः कषाया भवन्ति तस्य क्षायोपशमिकानीन्द्रियाणि पारिणामिकं जीवत्वं कस्यचित् क्षायिकं सम्यक्त्वमित्येतदपि संभवति, तत्कथमस्य केवलस्य सम्भवः?, एवमेतद्व्याख्यानुसारेण शेषा अपि व्याख्येयाः, केवलं क्षायिकपारिणामिकभावद्वयनिष्पन्नं नवमभङ्गं विहाय परेऽसम्भविनो द्रष्टव्याः, नवमस्तु सिद्धस्य संभवति, तथाहि–क्षायिके सम्यक्त्वज्ञाने पारिणामिकं तु जीवत्वमित्येतदेव भावद्वयं तस्यास्ति नापरः, तस्मादयमेकः सिद्धस्य संभवति, शेषास्तु नव द्विकयोगाः प्ररूपणामात्रमिति स्थि-

वृत्तिः उपक्रमाधि० ॥ १२३ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तम्, अन्येषां हि संसारिजीवानामौदयिकी गतिः क्षायोपशमिकानीन्द्रियाणि पारिणामिकं जीवत्वमित्येतद्भावत्रयं जघन्यतोऽपि लभ्यत इति कथं तेषु द्विकयोगसम्भव? इति भावः। त्रिकयोगान्निर्दिदिक्षुराह—

तत्थ णं जे ते दस तिगसंजोगा ते णं इमे–अत्थि णामे उदइएउवसमिएखयनिप्फण्णे १ अत्थि णामे उदइएउवसमिएखओवसमनिप्फण्णे २ अत्थि णामे उदइएउवसमिएपारिणामिअनिप्फण्णे ३ अत्थि णामे उदइएखइएखओवसमनिप्फण्णे ४ अत्थि णामे उदइएखइएपारिणामिअनिप्फण्णे ५ अत्थि णामे उदइएखओवसमिएपारिणामिअनिप्फण्णे ६ अत्थि णामे उवसमिएखइएखओवसमनिप्फण्णे ७ अत्थि णामे उवसमिएखइएपारिणामिअनिप्फण्णे ८ अत्थि णामे उवसमिएखओवसमिएपारिणामिअनिप्फण्णे ९ अत्थि णामे खइएखओवसमिएपारिणामिअनिप्फण्णे-१०। कयरे से णामे उदइएउवसमिएखयनिप्फण्णे?, उदइएत्ति मणुस्से उवसंता कसाया खइअं सम्मत्तं, एस णं से णामे उदइएउवसमिएखयनिप्फण्णे १, कयरे से

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

णामे उदइएउवसमिएखओवसमियनिप्फण्णे ?, उदइएत्ति मणुस्से उवसंता कसाया खओवसमिआइं इंदिआइं, एस णं से णामे उदइएउवसमिएखओवसमनिप्फण्णे २, कयरे से णामे उदइएउवसमिएपारिणामिअनिप्फण्णे ?, उदइएत्ति मणुस्से उवसंता कसाया पारिणामिए जीवे, एस णं से णामे उदइएउवसमिएपारिणामिअनिप्फण्णे ३, कयरे से णामे उदइएखइएखओवसमनिप्फण्णे ?, उदइएत्ति मणुस्से खइअं सम्मत्तं खओवसमिआइं इंदिआइं, एस णं से णामे उदइएखइएखओवसमनिप्फण्णे ४, कयरे से णामे उदइएखइएपारिणामिअनिप्फण्णे ?, उदइएत्ति मणुस्से खइअं सम्मत्तं पारिणामिए जीवे, एस णं से नामे उदइएखइएपारिणामिअनिप्फण्णे ५, कयरे से णामे उदइएखओवसमिएपारिणामिअनिप्फण्णे ?, उदइएत्ति मणुस्से खओवसमिआइं इंदिआइं पारिणामिए जीवे, एस णं से णामे उदइएखओवसमिएपारिणामिअनिप्फण्णे ६, कयरे से णामे उवसमिएखइएखओवसमनिप्फण्णे ?, उवसंता

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१२७] + गाथा ||१||

दीप अनुक्रम [१६१--१६३]

कसाया खइअं सम्मत्तं खओवसमिआइं इंदिआइं, एस णं से णामे उवसमिएखइएखओवसमनिप्फण्णे ७, कयरे से णामे उवसमिएखइएपारिणामिअनिप्फण्णे ?, उवसंता कसाया खइअं सम्मत्तं पारिणामिए जीवे, एस णं से णामे उवसमिएखइएपारिणामिअनिप्फण्णे ८, कयरे से णामे उवसमिएखओवसमिएपारिणामिअनिप्फण्णे? उवसंता कसाया खओवसमिआइं इंदिआइं पारिणामिए जीवे, एस णं से णामे उवसमिएखओवसमिएपारिणामिअनिप्फण्णे ९, कयरे से णामे खइएखओवसमिएपारिणामिअनिप्फण्णे ?, खइअं सम्मत्तं खओवसमिआइं इंदिआइं पारिणामिए जीवे, एस णं से णामे खइएखओवसमिएपारिणामिअनिप्फण्णे १०।

एतदप्यौदयिकौपशमिकक्षायिकक्षायोपशमिकपारिणामिकभावपञ्चकं भूम्यादावालिख्य तत आद्यभावद्वयस्योपरितनभावत्रयेण सह चारणायां लब्धास्त्रयः इत्यादिक्रमेण दशापि भावनीयाः, एतानेव स्वरूपतो विवरीषुराह—'कयरे से णामे उदइएउवसमिए' इत्यादि, व्याख्या पूर्वानुसारतोऽत्रापि कर्तव्या, नवरमत्रौदयिकक्षायिकपारिणामिकभावत्रयनिष्पन्नः पञ्चमो भङ्गः केवलिनः संभवति, तथाहि–औदयिकी मनुष्य-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनुयो० मलधारीया ॥ १२५ ॥

गतिः क्षायिकाणि ज्ञानदर्शनचारित्राणि पारिणामिकं तु जीवत्वमित्येते त्रयो भावास्तस्य भवन्ति, औपशमिकस्त्विह नास्ति, मोहनीयाश्रयत्वेन तस्योक्तत्वात्, मोहनीयस्य च केवलिन्यसम्भवात्, तथा क्षायोपशमिकोऽप्यत्रापास्य एव, क्षायोपशमिकानामिन्द्रियादिपदार्थानामस्यासम्भवाद्, 'अतीन्द्रियाः केवलिन'इत्यादिवचनात्, तस्मात् पारिशेष्याद्यथोक्तभावत्रयनिष्पन्नः पञ्चमो भङ्गः केवलिनः सम्भवति, षष्ठस्त्वौदयिकक्षायोपशमिकपारिणामिकभावनिष्पन्नो नारकादिगतिचतुष्टयेऽपि संभवति, तथाहि–औदयिकी अन्यतरा गतिः क्षायोपशमिकानीन्द्रियाणि पारिणामिकं जीवत्वमित्येवमेतद्भावत्रयं सर्वास्वपि गतिषु जीवानां प्राप्यत इति, शेषास्त्वष्टौ त्रिकयोगाः प्ररूपणामात्रं, क्वाप्यसम्भवादिति भावनीयं । चतुष्कसंयोगान्निर्दिदिक्षुराह—

तत्थ णं जे ते पंच चउक्कसंजोगा ते णं इमे–अत्थि णामे उदइएउवसमिएखइएपारिणामिए १ अत्थि णामे उदइएउवसमिएखइएपारिणामिअनिप्फण्णे २ अत्थि णामे उदइएउवसमिएखओवसमिएपारिणामिअनिप्फण्णे ३ अत्थि णामे उदइएखइएखओवसमिएपारिणामिअनिप्फण्णे ४ अत्थि णामे उवसमिएखइएखओवसमिएपारिणामिअनिप्फण्णे ५, कयरे से णामे उदइएउवसमिएखइएखओवसम-

वृत्तिः उपक्रमाधि०

॥ १२५ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१२७] + गाथा ||१||

दीप अनुक्रम [१६१--१६३]

निप्फण्णे ?, उदइएत्ति मणुस्से उवसंता कसाया खइअं सम्मत्तं खओवसमिआइं इंदिआइं, एस णं से णामे उदइएउवसमिएखइएखओवसमनिप्फण्णे १, कयरे से नामे उदइएउवसमिएखइएपारिणामिअनिप्फण्णे ?, उदइएत्ति मणुस्से उवसंता कसाया खइअं सम्मत्तं पारिणामिए जीवे, एस णं से णामे उदइएउवसमिएखइएपारिणामिअनिप्फण्णे २, कयरे से णामे उदइएउवसमिएखओवसमिएपारिणामिअनिप्फण्णे ?, उदइएत्ति मणुस्से उवसंता कसाया खओवसमिआइं इंदिआइं पारिणामिए जीवे, एस णं से णामे उदइएउवसमिए खओव० पारिणा० ३, कयरे से णामं उदइएखइएखओवसमिएपारिणामिअणिप्फण्णे ?, उदइएत्ति मणुस्से खइअं सम्मत्तं खओवसमिआइं इंदिआइं पारिणामिए जीवे, एस णं से नामे उदइएखइएखओवसमिएपारिणामिअनिंप्फन्ने ४, कयरे से नामे उवसमिएखइएखओवसमिएपारिणामिअनिप्फन्ने ?, उवसंता कसाया खइअं सम्मत्तं खओवसमिआइं इंदिआइं पारिणा-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१२७] + गाथा ||१||

दीप अनुक्रम [१६१--१६३]

मिए जीवे, एस णं से नामे उवसमिएखइएखओवसमिएपारिणामिअनिप्फण्णे ५।

वृत्तिः उपक्रमाधि०

भङ्गकरचना अकृच्छ्रावसेयैव। इदानीं तान्येव पञ्च भङ्गान् व्याचिख्यासुराह—'कयरे से नामे उदइए' इत्यादि, भावना पूर्वाभिहितानुगुण्येन कर्तव्या, नवरमत्रौदयिकौपशमिकक्षायोपशमिकपारिणामिकभावनिष्पन्नस्तृतीयभङ्गो गतिचतुष्टयेऽपि संभवति, तथाहि–औदयिकी अन्यतरा गतिः नारकतिर्यग्देवगतिषु प्रथमसम्यक्त्वलाभकाले एव उपशमभावो भवति, मनुष्यगतौ तु तत्रोपशमश्रेण्यां चौपशमिकं सम्यक्त्वं क्षायोपशमिकानीन्द्रियाणि पारिणामिकं जीवत्वमित्येवमयं भङ्गकः सर्वासु गतिषु लभ्यते, यत्त्विह सूत्रे प्रोक्तम्—'उदइएत्ति मणुस्से उवसंता कसाय'त्ति, तत्तु मनुष्यगत्यपेक्षयैव द्रष्टव्यं, मनुष्यत्वोदयस्योपशमश्रेण्यां कषायोपशमस्य च तस्यामेव भावाद्, अस्य चोपलक्षणमात्रत्वादिति, एवमौदयिकक्षायिकक्षायोपशमिकपारिणामिकभावनिष्पन्नश्चतुर्थभङ्गोऽपि चतसृष्वपि गतिषु संभवति, भावना त्वनन्तरोक्ततृतीयभङ्गकवदेव कर्तव्या, नवरमौपशमिकसम्यक्त्वस्थाने क्षायिकसम्यक्त्वं वाच्यम्, अस्ति च क्षायिकसम्यक्त्वं सर्वास्वपि गतिषु, नारकतिर्यग्देवगतिषु पूर्वप्रतिपन्नस्यैव, मनुष्यगतौ तु पूर्वप्रतिपन्नस्य प्रतिपद्यमानकस्य च तस्यान्यत्र प्रतिपादितत्वादिति, तस्मादत्राप्येतौ द्वौ भङ्गकौ सम्भविनौ, शेषास्तु त्रयः संवृतिमात्रं, तद्रूपेण वस्तुन्यसम्भवादिति। साम्प्रतं पञ्चकसंयोगमेकं प्ररूपयन्नाह—

॥ १२६ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१२७] + गाथा ॥१॥

दीप अनुक्रम [१६१--१६३]

तत्थ णं जे से एक्के पंचगसंजोए से णं इमे–अत्थि नामे उदइएउवसमिएखओवसमिएखइएपारिणामिअनिप्फण्णे १, कयरे से नामे उदइएउवसमिएखइएखओवसमिएपारिणामिअनिप्फण्णे ?, उदइएत्ति मणुस्से उवसंता कसाया खइअं सम्मत्तं खओवसमिआइं इंदिआइं पारिणामिए जीवे, एस णं से णामे जाव पारिणामिअनिप्फण्णे, से तं सन्निवाइए, से तं छण्णामे (सू० १२७)

अयं च सविवरणः सुगम एव, केवलं क्षायिकः सम्यग्दृष्टिः सन् यः उपशमश्रेणीं प्रतिपद्यते तस्यायं भङ्गकः संभवति, नान्यस्य, समुदितभावपञ्चकस्यास्य तत्रैव भावादिति परमार्थः, तदेवमेको द्विकसंयोगभङ्गको द्वौ द्वौ त्रिकयोगचतुष्कयोगभङ्गकावेकस्त्वयं पञ्चकयोग इत्येते षड् भङ्गका अत्र सम्भविनः प्रतिपादिताः, शेषास्तु विंशतिः संयोगोत्थानमात्रतयैव प्ररूपिता इति स्थितम्, एतेषु च षट्सु भङ्गकेषु मध्ये एकस्त्रिकसंयोगो द्वौ चतुष्कसंयोगावित्येते त्रयोऽपि प्रत्येकं चतसृष्वपि गतिषु संभवन्तीति निर्णीतम्, अतो गतिचतुष्टयभेदात् ते किल द्वादश वक्ष्यन्ते, ये तु शेषा द्विकयोगत्रिकयोगपञ्चकयोगलक्षणास्त्रयो भङ्गाः सिद्धकेवल्युपशान्तमोहानां यथाक्रमं निर्णीताः ते यथोक्तैकैकस्थानसम्भवित्वात् त्रय एवेत्यनया विवक्षयाऽयं सान्निपातिको

अनु. २२

Jain Education Inter... For Private & Personal Use Only ...elibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[४५], चूलिकासूत्र-[२] अनुयोगद्वार मूलं एवं हेमचन्द्रसूरि-रचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१२७] + गाथा ॥१॥

दीप अनुक्रम [१६४--२०४]

अनुयो० मलधा-रीया ॥ १२७ ॥

भावः स्थानान्तरे पञ्चदशविध उक्तो द्रष्टव्यो, यदाह—'अविरुद्धसन्निवाइयभेया एमेव पण्णरस'त्ति, 'से तं सण्णिवाइए'त्ति निगमनम् । उक्तः सान्निपातिको भावः, तद्गणने चोक्ताः षडपि भावाः, ते च तद्वाचकैर्नाम-भिर्विना प्ररूपयितुं न शक्यन्त इति तद्वाचकान्यौदयिकादीनि नामान्यप्युक्तानि, एतैश्च षड्भिरपि धर्मा-स्तिकायादेः समस्तस्यापि वस्तुनः सङ्ग्रहात् षट्प्रकारं सत् सर्वस्यापि वस्तुनो नाम षड्नामेत्यनया दिशा सर्वमिदं भावनीयं, 'से तं छण्णामे'त्ति निगमनम् ॥ १२७ ॥ उक्तं षड्नाम, अथ सप्तनामं निरूपयितुमाह—

से किं तं सत्तनामे ?, २ सत्त सरा पण्णत्ता, तंजहा–सज्जे रिसहे गंधारे, मज्झिमे पंचमे सरे । रेवए चेव नेसाए, सरा सत्त विआहिआ ॥ १ ॥

'स्वृ शब्दोपतापयो'रिति स्वरणानि स्वराः–ध्वनिविशेषाः, ते च सप्त, तद्यथा—'सज्जे'त्यिश्लोको, व्याख्या–षड्भ्यो जातः षड्जः, उक्तं च—"नासां कण्ठमुरस्तालु, जिह्वां दन्तौंश्च संश्रितः । षड्भिः संजायते यस्मात्, तस्मात् षड्ज इति स्मृतः ॥ १ ॥" तथा ऋषभो–वृषभस्तद्वत् यो वर्तते स ऋषभः, आह च—"वायुः समु-त्थितो नाभेः, कण्ठशीर्षसमाहतः । नर्दन् वृषभवद् यस्मात्, तस्माद्वृषभ उच्यते ॥ २ ॥" तथा गन्धो विद्यते यस्य स गन्धारः, स एव गान्धारो–गन्धवाहविशेष इत्यर्थः, अभाणि च—"वायुः समुत्थितो नाभेर्हृदि कण्ठे समाहतः । नानागन्धावहः पुण्यो, गान्धारस्तेन हेतुना ॥ ३ ॥" तथा मध्ये कायस्य भवो मध्यमः, यद-

वृत्तिः उपक्र माधि० ॥ १२७ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[४५], चूलिकासूत्र-[२] अनुयोगद्वार मूलं एवं हेमचन्द्रसूरि-रचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१२८] + गाथा: ॥१-३२॥

दीप अनुक्रम [१६४--२०४]

वाचि—"वायुः समुत्थितो नाभेरुरो हृदि समाहतः । नाभिं प्राप्तो महानादो, मध्यमत्वं समश्नुते ॥ ४ ॥" तथा पञ्चानां षड्जादिस्वराणां निर्देशक्रममाश्रित्य पूरणः पञ्चमः, अथवा पञ्चसु–नाभ्यादिस्थानेषु मातीति पञ्चमः स्वरो, यदभ्यधायि—"वायुः समुत्थितो नाभेरुरोहृत्कण्ठशिरोहतः । पञ्चस्थानोत्थितस्यास्य, पञ्चमत्वं विधीयते ॥ ५ ॥" तथाऽभिसन्धयतेऽनुसंधयति शेषस्वरानिति निरुक्तिवशाद्धैवतः, यदुक्तम्—"अभिसंधयते यस्मादेतान् पूर्वोदितस्वरान् । तस्मादस्य स्वरस्यापि, धैवतत्वं विधीयते ॥ ६ ॥" पाठान्तरेण रैवतश्चैवेति, तथा निषीदन्ति स्वरा यस्मिन् स निषादः, यतोऽभिहितम्—"निषीदन्ति स्वरा यस्मिन्निषादस्तेन हेतुना । सर्वांश्चाभिभवत्येव, यदादित्योऽस्य दैवतम् ॥ ७ ॥" इति, तदेवं स्वराः–जीवाजीवनिश्रितध्वनिविशेषाः 'सत्त वियाहिय'त्ति विविधप्रकारैराख्यातास्तीर्थकरगणधरैरिति श्लोकार्थः । आह–ननु कारणभेदेन कार्यस्य भेदात् स्वराणां च जिह्वादिकारणजन्यत्वात् तद्वतां च द्वीन्द्रियादित्रसजीवानामसङ्ख्येयत्वाज्जीवनिसृता अपि तावत् स्वरा असङ्ख्याताः प्राप्नुवन्ति किमुताजीवनिसृता इति कथं सप्तसङ्ख्यानियमो न विरुध्यत इति ?, अत्रोच्यते, असङ्ख्यातानामपि स्वरविशेषाणामेतेष्वेव सप्तसु सामान्यस्वरेष्वन्तर्भावाद् बादराणां वा केषाञ्चिदेवोपलभ्यमानविशिष्टव्यक्तीनां ग्रहणाद्गीतोपकारिणां विशिष्टस्वराणां वक्तुमिष्टत्वाददोष इति ॥ स्वरान्नामतो निरूप्य कारणतस्तानेवाभिधित्सुराह—

१ नवाक्षरोऽयं पदः.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१२८] + गाथा: ॥१-३२॥

दीप अनुक्रम [१६४--२०४]

एएसि णं सत्तण्हं सराणं सत्त सरट्ठाणा पण्णत्ता, तंजहा–सज्जं च अग्गजीहाए, उरेण रिसहं सरं । कंठुग्गएण गंधारं, मज्झजीहाएँ मज्झिमं ॥ २ ॥ नासाए पंचमं बूआ, दंतोट्ठेण अ रेवतं । भमुहक्खेवेण णेसाहं, सरट्ठाणा विआहिआ ॥ ३ ॥ सत्त सरा जीवणिस्सिआ पण्णत्ता, तंजहा–सज्जं रवइ मऊरो, कुक्कुडो रिसभं सरं । हंसो रवइ गंधारं, मज्झिमं च गवेलगा ॥ ४ ॥ अह कुसुमसंभवे काले, कोइला पंचमं सरं । छट्ठं च सारसा कुंचा, नेसायं सत्तमं गओ ॥ ५ ॥ सत्तसरा अजीवनिस्सिआ पण्णत्ता, तंजहा–सज्जं रवइ मुअंगो, गोमुही रिसहं सरं । संखो रवइ गंधारं, मज्झिमं पुण झल्लरी ॥ ६ ॥ चउसरणपइट्ठाणा, गोहिआ पंचमं सरं । आडंबरो रेवइयं, महाभेरी अ सत्तमं ॥ ७ ॥

तत्र नाभेरुत्थितोऽविकारी स्वर आभोगतोऽनाभोगतो वा यदत्र जिह्वादिस्थानं प्राप्य विशेषमासादयति तत् स्वरस्योपकारकमतः स्वरस्थानमुच्यते, तत्र 'सज्ज'मित्यादिश्लोकद्वयं सुगमं, नवरं चकारोऽवधारणे, षड्-

॥ १२८ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[४५], चूलिकासूत्र-[२] अनुयोगद्वार मूलं एवं हेमचन्द्रसूरि-रचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१२८] + गाथा: ||१-३२||

दीप अनुक्रम [१६४--२०४]

जमेव प्रथमस्वरलक्षणं ब्रूयात्, कथेत्याह–अग्रभूता जिह्वा अग्रजिह्वा जिह्वाग्रमित्यर्थस्तया, इह यद्यपि षड्ज-भणने स्थानान्तराण्यपि कण्ठादीनि व्याप्रियन्ते अग्रजिह्वा च स्वरान्तरेषु व्याप्रियते तथापि सा तत्र बहु-व्यापारवतीतिकृत्वा तया तमेव ब्रूयादित्युक्तम्, इदमत्र हृदयम्–षड्जस्वरोऽग्रजिह्वां प्राप्य विशिष्टां व्यक्तिमासादयत्यतस्तदपेक्षया सा स्वरस्थानमुच्यते, एवमन्यत्रापि भावना कार्या, उरो–वक्षस्तेन ऋषभं स्वरं, ब्रूयादिति सर्वत्र संबध्यते, 'कंठुग्गएणं'ति कण्ठादुद्गमनमुद्गतिः–स्वरनिष्पत्तिहेतुभूता क्रिया तेन कण्ठो-द्गतेन गान्धारं, जिह्वाया मध्यो भागो मध्यजिह्वा तया मध्यमं, तथा दन्ताश्चौष्ठौ च दन्तोष्ठं तेन धैवतं रैवतं वेति, भूत्क्षेपावष्टम्भेन निषादमिति। इत ऊर्ध्वं सर्वं निगदसिद्धमेव, नवरं 'जीवनिस्सिय'त्ति जीवा-श्रिताः जीवेभ्यो वा निसृता-निर्गताः, 'सज्जं रवई'त्यादिश्लोकः, रवति-नदति 'गवेल'त्ति गावश्च एलकाश्च-ऊरणका गवेलकाः, अथवा गवेलका-ऊरणका एव, 'अह कुसुमे'त्यादि, अथेति विशेषणार्थो, विशेषणा-र्थता चैवं-यथा गवेलका अविशेषेण मध्यमस्वरं नदन्ति न तथा पञ्चमं कोकिलः, अपि तु वनस्पतिषु बाहु-ल्येन कुसुमानां–मल्लिकापाटलादीनां सम्भवो यस्मिन् काले स तथा तस्मिन्, मधुमास इत्यर्थः, 'अजीव-निस्सिय'त्ति तथैव, नवरमजीवेष्वपि मृदङ्गादिषु जीवव्यापारोत्थापिता एवामी मन्तव्याः, अपरं षड्जादीनां मृदङ्गादिषु यद्यपि नाशाकण्ठाद्युत्पन्नत्वलक्षणो व्युत्पत्त्यर्थो न घटते तथापि सादृश्यात् तद्भावोऽवगन्तव्यः, सज्जमित्यादिश्लोकद्वयं, गोमुखी–काहला यस्या मुखे गोशृङ्गादि वस्तु दीयत इति, चतुर्भिश्चरणैः प्रतिष्ठान-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१२८] + गाथाः ॥१-३२॥

दीप अनुक्रम [१६४--२०४]

अनुयो० मलधारीया ॥ १२९ ॥

म्-अवस्थानं भुवि यस्याः सा गोधा चर्मावनद्धा गोधिका–वाद्यविशेषो दर्दरिकेत्यपरनाम्ना प्रसिद्धा, आडम्बरः–पटहः, सप्तमिति निषादमित्यर्थः ।

एएसि णं सत्तण्हं सराणं सत्त सरलक्खणा पण्णत्ता, तंजहा–सज्जेण लहई वित्तिं, कयं च न विणस्सइ । गावो पुत्ता य मित्ता य, नारीणं होइ वल्लहो ॥ ८ ॥ रिसहेण उ एसज्जं (पसेज्जं), सेणावच्चं धणाणि अ । वत्थगंधमलंकारं, इत्थिओ सयणाणि य ॥९॥ गंधारे गीतजुत्तिण्णा, वज्जवित्ती कलाहिआ । हवंति कइणो धण्णा, जे अण्णे सत्थपारगा ॥ १० ॥ मज्झिमसरमंता उ, हवंति सुहजीविणो । खायई पियई देई, मज्झिमसरमस्सिओ ॥ ११ ॥ पंचमसरमंता उ, हवंति पुहवीपई । सूरा संगहकत्तारो, अणेगगणनायगा ॥ १२ ॥ रेवयसरमंता उ, हवंति दुहजीविणो । कुंचेला य कुवित्ती य, चोरा चंडालमुट्ठिया ॥ १३ ॥ णिसायसरमंता उ, होंति कलहकारगा । जंघाचरा लेहवाहा, हिंडगा भारवाहगा ॥ १४ ॥

१ साउणिया वाउरिया सोयरिया य मुद्दिआ इति पाठानुसारिणी वृत्तिः.

वृत्तिः उपक्रमाधि० ॥ १२९ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१२८] + गाथाः ॥१-३२॥

दीप अनुक्रम [१६४--२०४]

एतेषां सप्तानां स्वराणां प्रत्येकं लक्षणस्य विभिन्नत्वात् सप्त स्वरलक्षणानि–यथास्वं फलप्राप्त्यव्यभिचारीणि स्वरतत्त्वानि भवन्ति, तान्येव फलत आह—'सज्जेणे'त्यादि सप्त श्लोकाः, षड्जेन लभते वृत्तिम्, अयमर्थः–षड्जस्येदं लक्षणं–स्वरूपमस्ति येन तस्मिन् सति वृत्तिं-जीवनं लभते प्राणी, एतच्च मनुष्यापेक्षया लक्ष्यते, वृत्तिलाभादीनां तत्रैव घटनात्, कृतं च न विनश्यति, तस्येति शेषः, निष्फलारम्भो न भवतीत्यर्थः, गावः पुत्राश्च मित्राणि च भवन्तीति शेषः। गान्धारे गीतयुक्तिज्ञा वर्धवृत्तयः–प्रधानजीविकाः कलाभिरधिकाः कवयः- काव्यकर्तारः प्राज्ञाः-सद्बोधाः ये चोक्तेभ्यो गीतयुक्तिज्ञादिभ्योऽन्ये-शास्त्रपारगाः चतुर्वेदादिशास्त्रपारगामिनस्ते भवन्तीति। शकुनेन–श्येनलक्षणेन चरन्ति पापर्धि कुर्वन्ति शकुनान् वा घ्नन्तीति शाकुनिकाः, वागुरा–मृगबन्धनं तया चरन्तीति वागुरिकाः, शूकरेण सन्निहितेन शूकरवधार्थं चरति शूकरान् वा घ्नन्तीति शौकरिकाः, मौष्टिका मल्ला इति। पाठान्तराण्यप्युक्तानुसारेण व्याख्येयानि ॥

एएसिं णं सत्तण्हं सराणं तओ गामा पण्णत्ता, तंजहा–सज्जगामे मज्झिमगामे गंधारगामे, सज्जगामस्स णं सत्त मुच्छणाओ पण्णत्ताओ, तंजहा–मग्गी कोरविआ हरिया, रयणी अ सारकंता य । छट्ठी अ सारसी नाम, सुद्धसज्जा य सत्तमा ॥ १५ ॥ मज्झिमगामस्स णं सत्त मुच्छणाओ पण्णत्ताओ, तंजहा–

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१२८] + गाथाः ||१-३२||

दीप अनुक्रम [१६४--२०४]

अनुयो० मलधारीया ॥ १३० ॥

उत्तर मंदारयणी, उत्तरा उत्तरासमा । समोक्कंता य सोवीरा अभिरूवा होइ सत्तमा ॥ १६ ॥ गंधारगामस्स णं सत्त मुच्छणाओ पण्णत्ताओ, तंजहा–नंदी अ खड्डिआ पूरिमा य चउत्थी अ सुद्धगंधारा। उत्तरगंधारावि अ सा पंचमिआ हवइ मुच्छा ॥१७॥ सुट्ठुत्तरमायामा सा छट्ठी सव्वओ य णायव्वा । अह उत्तरायया कोडिमा य सा सत्तमी मुच्छा ॥ १८ ॥

एतच्चिरन्तनमुनिगाथाभ्यां व्याख्यायते–यथा "सज्जाइतिहागामो, ससमूहो मुच्छणाण विन्नेओ । ता सत्त एक्कमेक्के तो सत्तसराण इगवीसा ॥ १ ॥ अन्नन्नसरविसेसे उप्पायंतस्स मुच्छणा भणिया । कत्ता व मुच्छिओ इव कुणई मुच्छं व सो वत्ति ॥ २ ॥ कर्ता वा मूर्च्छित इव ताः करोतीति मूर्च्छना उच्यन्ते, 'मुच्छं व सो वत्ति' मूर्च्छन्निव वा स कर्ता ताः करोतीति मूर्च्छना उच्यन्त इत्यर्थः, मङ्गीप्रभृतीनां चैकविंशतिमूर्च्छनानां स्वरविशेषाः पूर्वगतस्वरप्राभृते भणिताः, इदानीं तु तद्विनिर्गतेभ्यो भरतविशाखिलादिशास्त्रेभ्यो विज्ञेया इति ।

सत्त सरा कओ हवंति? गीयस्स का हवइ जोणी । कइसमया ओसासा, कइ वा

वृत्तिः उपक्रमाधि०

॥ १३० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१२८] + गाथाः ||१-३२||

दीप अनुक्रम [१६४--२०४]

गीयस्स आगारा ॥ १९ ॥ सत्त सरा नाभीओ हवंति गीयं च रुइयजोणी । पायसमा ऊसासा तिण्णि य गीयस्स आगारा ॥ २० ॥ आइमउ आरभंता समुव्वहन्ता य मज्झयारंमि । अवसाणे उज्झंता, तिन्निवि गीयस्स आगारा ॥ २१ ॥

इह चत्वारः प्रश्नाः, तत्र कुतः इति कस्मात् स्थानात् सप्त स्वरा उत्पद्यन्ते, का योनिरिति का जातिः, तथा कति समया येषु ते कतिसमया–उच्छ्वासाः, किंपरिमाणकाला इत्यर्थः, तथा आकाराः–आकृतयः स्वरूपाणि इत्यर्थः। उत्तरमाह—'सत्तसरा नाभीओ'इत्यादिगाथा स्पष्टा, नवरं रुदितं योनिः समानरूपतया जातिर्यस्य तद् रुदितयोनिकं, पादसमा उच्छ्वासाः, यावद्भिः समयैर्वृत्तस्य पादः समाप्यते तावत्समया उच्छ्वासा-गीते भवन्तीत्यर्थः, आकारानाह—'आइ' गाहा, त्रयो गीतस्याकाराः–स्वरूपविशेषलक्षणा भवन्ति इति पर्यन्ते सम्बन्धः, किं कुर्वाणा इत्याह—'आरंभन्त'त्ति आरभमाणा गीतमिति गम्यते, कथंभूतमित्याह —'आइमउ'त्ति आदौ-प्रथमतो मृदु-कोमलं आदिमृदु, तथा समुद्वहन्तश्च-कुर्वन्तश्च महतीं गीतध्वनिमिति गम्यते, 'मध्यकारे' मध्यमभागे तथा अवसाने च क्षपयन्तो, गीतध्वनिं मन्द्रीकुर्वन्ति इत्यर्थः, आदौ मृदु मध्ये तारं पर्यन्ते मन्द्रं गीतं कर्तव्यम्, अत एते मृदुतादयस्त्रयो गीतस्याकारा भवन्तीति तात्पर्यं। किन्तु—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१२८] + गाथा: ||१-३२||

दीप अनुक्रम [१६४--२०४]

छद्दोसे अट्ठगुणे तिण्णि अ वित्ताइं दो य भणिईओ। जो नाही सो गाहिइ, सुसिक्खिओ रंगमज्झंमि ॥ २२ ॥ भीअं दुअं उप्पिच्छं उत्तालं च कमसो मुणेअव्वं। कागस्सरमणुणासं छद्दोसा होंति गेअस्स ॥ २३ ॥ पुण्णं रत्तं च अलंकिअं च वत्तं च तहेवमविघुट्ठं। महुरं समं सुललिअं अट्ठ गुणा होंति गेअस्स ॥ २४ ॥ उरकंठसिरविसुद्धं च गिज्जंते मउअरिभिअपदबद्धं। समतालपडुक्खेवं सत्तस्सरसीभरं गीयं॥२५॥ अक्खरसमं पदसमं, तालसमं लयसमं च गेहसमं । नीससिओससिअसमं, संचारसमं सरा सत्त ॥ २६ ॥ निद्दोसं सारमंतं च, हेउजुत्तमलंकियं। उवणीअं सोवयारं च, मिअं महुरमेव य ॥ २७ ॥ समं अद्धसमं चेव, सव्वत्थ विसमं च जं। तिण्णि वित्तपयाराइं, चउत्थं नोवलब्भइ ॥ २८ ॥ सक्कया पायया चेव, भणिईओ होंति दोण्णि वा। सरमंडलंमि गिज्जंते, पसत्था इसिभासिआ ॥ २९ ॥ केसी गायइ महुरं केसी गायइ खरं च रुक्खं च। केसी गायइ चउरं केसी अ विलंबिअं दुतं केसी? ॥ ३० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१२८] + गाथाः ||१-३२||

दीप अनुक्रम [१६४--२०४]

विस्सरं पुण केरिसी । गाथाऽधिकमिदं । गोरी गायति मद्दुरं सामा गायइ खरं च रुक्खं च । काली गायइ चउरं काणा य विलंबिअं दुतं अंधा ॥ ३१ ॥ विस्सरं पुण पिंगला । गाथाऽधिकमिदमपि । सत्त सरा तओ गामा मुच्छणा इक्कवीसई । ताणा एगूणपण्णासं, सम्मत्तं सरमंडलं ॥ ३२ ॥ से तं सत्तनामे (सू० १२८)

षड् दोषा वर्जनीयास्तानाह–'भीयं' गाहा भीतमुत्रस्तमानसं यद्गीयते इत्येको दोषः १, द्रुतं त्वरितम् २, उप्पिच्छं–श्वासयुक्तं त्वरितं च, पाठान्तरेण 'रहस्सं'ति ह्रस्वस्वरं लघुशब्दमित्यर्थः ३, उत्तालम्–उत्प्राबल्यार्थं अतितालमस्थानतालं चेत्यर्थः, तालस्तु कंसिकादिशब्दविशेषः ४, काकस्वरं श्लक्ष्णाश्रव्यस्वरम् ५, अनुनासं–नासाकृतस्वरम् ६। एते षड् दोषा गीतस्य भवन्ति । अष्टौ गुणानाह—'पुण्णं' गाहा, स्वरकलाभिः सर्वाभिरपि युक्तं कुर्वतः पूर्णं १, गेयरागेण रक्तस्य–भावितस्य रक्तम् २, अन्यान्यस्फुटशुभस्वरविशेषाणां करणादलङ्कृतम् ३, अक्षरस्वरस्फुटकरणाढ्यक्तं ४, विक्रोशनमिव यद्विस्वरं न भवति तदविघुष्टं ५, मधुमत्तकोकिलारुतवन्मधुरस्वरं ६, तालवंशस्वरादिसमनुगतं समं ७, स्वरघोलनाप्रकारेण सुष्ठु–अतिशयेन ललतीव यत् सुकुमालं तत् सुललितम् ८, एते अष्टौ गुणा गीतस्य भवन्ति, एतद्विरहितं तु विडम्बनामात्रमेव तदिति । किं चोपलक्षणत्वादन्येऽपि गीतगुणा भवन्ति, तानाह–'उर'गाहा, चकारो गेयगुणान्तरसमुच्चयार्थः, उरःकण्ठ-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१२८] + गाथाः ||१-३२||

दीप अनुक्रम [१६४--२०४]

अनुयो० मलधारीया ॥ १३२ ॥

शिरोविशुद्धं च, अयमर्थः–यद्युरसि स्वरो विशालस्तर्ह्युरोविशुद्धं, कण्ठे यदि स्वरो वर्तितोऽतिस्फुटितश्च तदा कण्ठविशुद्धं, शिरसि प्राप्तो यदि नानुनासिकस्ततः शिरोविशुद्धम्, अथवा उरःकण्ठशिरस्सु श्लेष्मणाऽव्याकुलेषु विशुद्धेषु प्रशस्तेषु यद्गीयते तदुरःकण्ठशिरोविशुद्धं, गीयते गेयमिति संबध्यते, किंविशिष्टमित्याह–मृदुकं मृदुना–अनिष्ठुरेण स्वरेण यद्गीयते तन्मृदुकं, यत्राक्षरेषु घोलनया संचरन् स्वरो रङ्गतीव तत् घोलनाबहुलं रिङ्गितं, गेयपदैर्बद्धं विशिष्टविरचनया रचितं पदबद्धं, ततश्च पदत्रयस्य कर्मधारयः, 'समतालपडुक्खेवं'ति तालशब्देन हस्ततालासमुत्थ उपचाराच्छब्दो विवक्षितः, मुरजकांसिकादिगीतोपकारकातोद्यानां ध्वनिः प्रत्युत्क्षेपः नर्तकीपदप्रक्षेपलक्षणो वा प्रत्युत्क्षेपः, समौ गीतस्वरेण तालप्रत्युत्क्षेपौ यत्र तत् समतालप्रत्युत्क्षेपं, 'सत्तस्सरसीभरं'ति सप्त स्वराः सीभरन्ति–अक्षरादिभिः समा यत्र तत्सप्तस्वरसीभरं गीतमिति, ते चामी सप्त स्वराः—'अक्खरसमं' गाहा, यत्र दीर्घे अक्षरे दीर्घो गीतस्वरः क्रियते ह्रस्वे ह्रस्वः प्लुते प्लुतः सानुनासिके तु सानुनासिकः तदक्षरसमं यद्गीतपदं–नामिकादिकं यत्र स्वरे अनुपाति भवति तत् तत्रैव यत्र गीते गीयते तत् पदसमं, यत्परस्पराभिहतहस्ततालस्वरानुसारिणा स्वरेण गीयते तत्तालसमं, मृङ्गदार्वाद्यन्यतरवस्तुमयेनाङ्गुलीकोशकेन समाहतं, तन्त्रीस्वरप्रकारो लयस्तमनुसरता स्वरेण यद्गीयते तल्लयसमं, प्रथमतो वंशतन्त्र्यादिभिर्यः स्वरो गृहीतस्तत्समेन स्वरेण गीयमानं ग्रहसमं, निःश्वसितोच्छ्वसितमानमनतिक्रमतो यद्गेयं तन्निःश्वसितोच्छ्वसितसमं, वंशतन्त्र्यादिष्वेवाङ्गुलीसञ्चारसमं यद्गीयते तत्स-

वृत्तिः उपक्रमाधि०

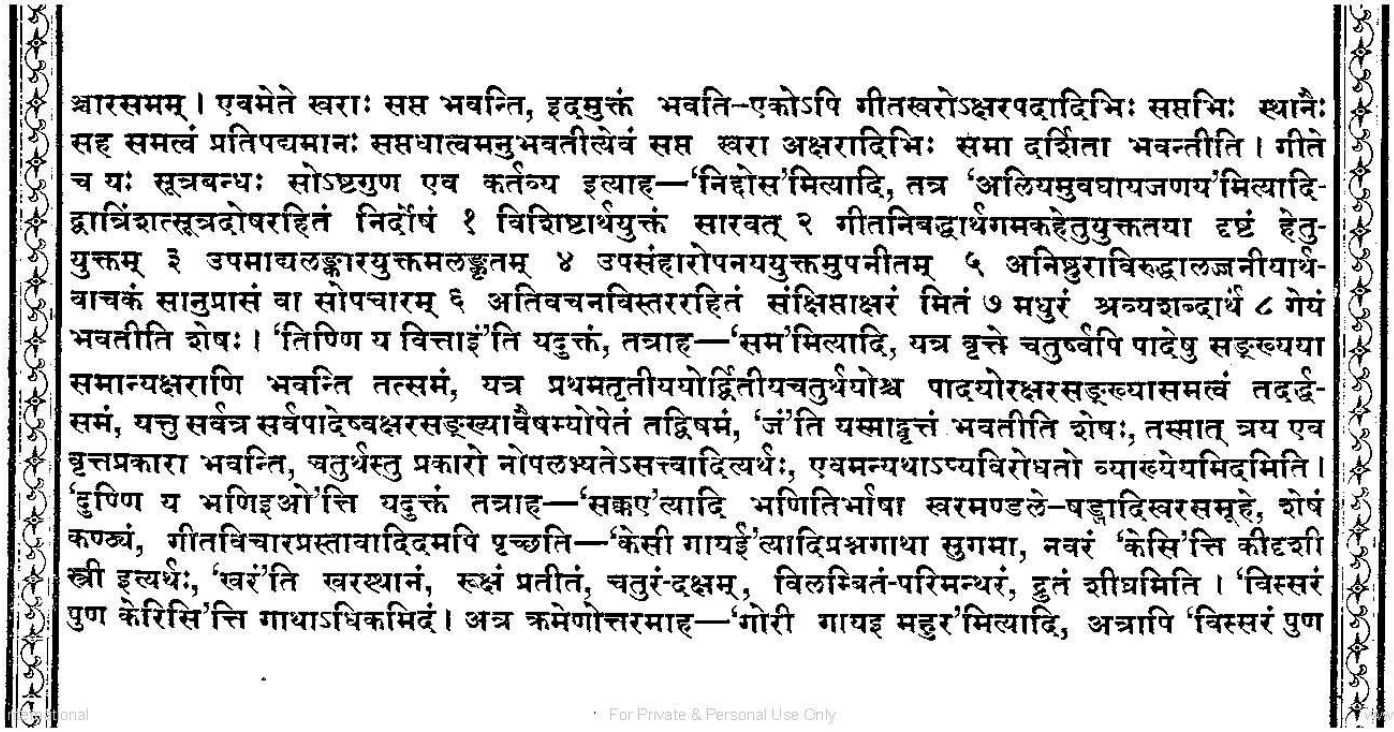
॥ १३२ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[४५], चूलिकासूत्र-[२] अनुयोगद्वार मूलं एवं हेमचन्द्रसूरि-रचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१२८] + गाथा: ||१-३२||

दीप अनुक्रम [१६४--२०४]



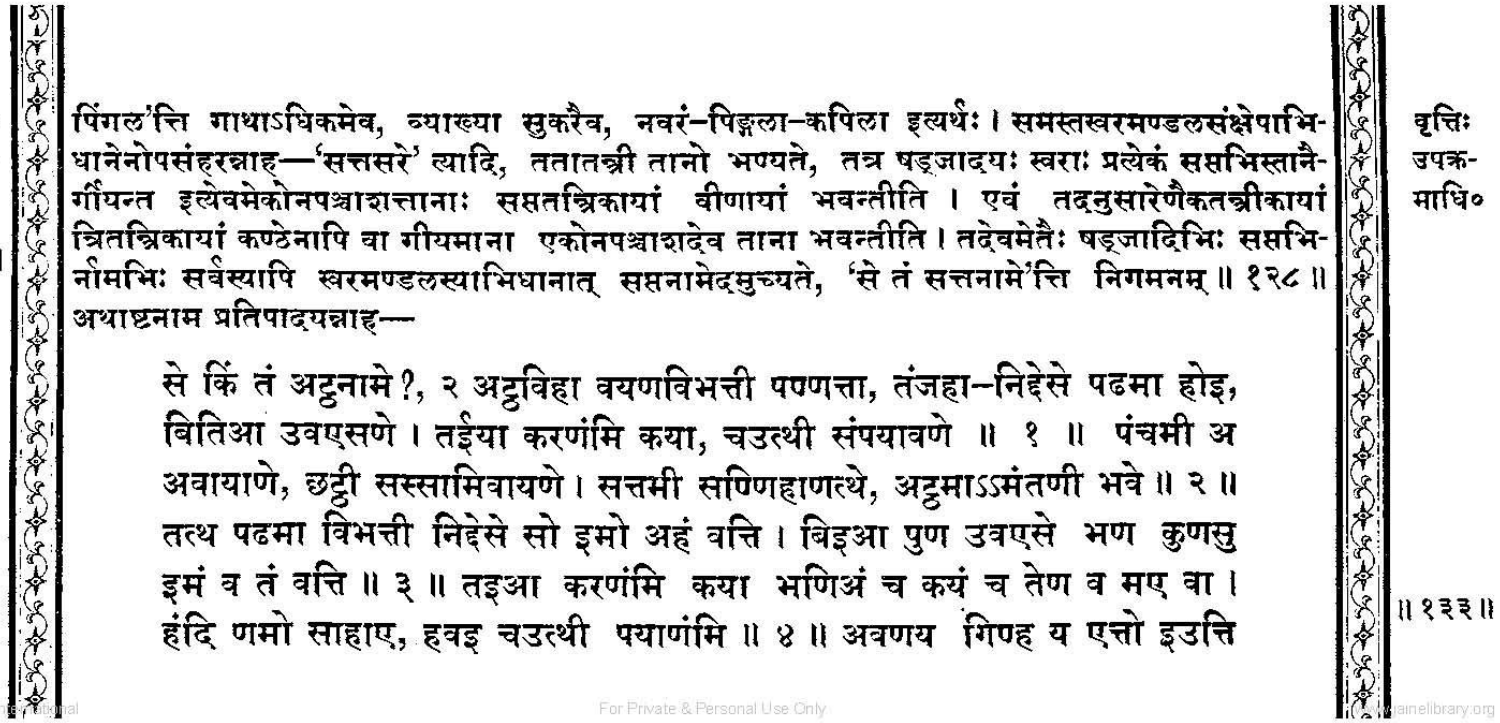
श्चारसमम्। एवमेते स्वराः सप्त भवन्ति, इदमुक्तं भवति–एकोऽपि गीतस्वरोऽक्षरपदादिभिः सप्तभिः स्थानैः सह समत्वं प्रतिपद्यमानः सप्तधात्वमनुभवतीत्येवं सप्त स्वरा अक्षरादिभिः समा दर्शिता भवन्तीति। गीते च यः सूत्रबन्धः सोऽष्टगुण एव कर्तव्य इत्याह—'निद्दोस'मित्यादि, तत्र 'अलियमुवघायजणय'मित्यादि-द्वात्रिंशत्सूत्रदोषरहितं निर्दोषं १ विशिष्टार्थयुक्तं सारवत् २ गीतनिबद्धार्थगमकहेतुयुक्ततया दृष्टं हेतु-युक्तम् ३ उपमाद्यलङ्कारयुक्तमलङ्कृतम् ४ उपसंहारोपनययुक्तमुपनीतम् ५ अनिष्ठुराविरुद्धालज्जनीयार्थ-वाचकं सानुप्रासं वा सोपचारम् ६ अतिवचनविस्तररहितं संक्षिप्ताक्षरं मितं ७ मधुरं अव्यशब्दार्थं ८ गेयं भवतीति शेषः। 'तिण्णि य वित्ताइं'ति यदुक्तं, तत्राह—'सम'मित्यादि, यत्र वृत्ते चतुर्ष्वपि पादेषु सङ्ख्यया समान्यक्षराणि भवन्ति तत्समं, यत्र प्रथमतृतीययोर्द्वितीयचतुर्थयोश्च पादयोरक्षरसङ्ख्यासमत्वं तदर्द्ध-समं, यत्तु सर्वत्र सर्वपादेष्वक्षरसङ्ख्यावैषम्योपेतं तद्विषमं, 'जं'ति यस्माद्वृत्तं भवतीति शेषः, तस्मात् त्रय एव वृत्तप्रकारा भवन्ति, चतुर्थस्तु प्रकारो नोपलभ्यतेऽसत्त्वादित्यर्थः, एवमन्यथाऽप्यविरोधतो व्याख्येयमिदमिति। 'दुण्णि य भणिइओ'त्ति यदुक्तं तत्राह—'सक्कए'त्यादि भणितिर्भाषा स्वरमण्डले–षड्जादिस्वरसमूहे, शेषं कण्ठ्यं, गीतविचारप्रस्तावादिदमपि पृच्छति—'केसी गायई'त्यादिप्रश्नगाथा सुगमा, नवरं 'केसि'त्ति कीदृशी स्त्री इत्यर्थः, 'खरं'ति खरस्थानं, रूक्षं प्रतीतं, चतुरं-दक्षम्, विलम्बितं-परिमन्थरं, द्रुतं शीघ्रमिति। 'विस्सरं पुण केरिसि'त्ति गाथाऽधिकमिदं। अत्र क्रमेणोत्तरमाह—'गोरी गायइ मद्दुर'मित्यादि, अत्रापि 'विस्सरं पुण

अनु. २३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[४५], चूलिकासूत्र-[२] अनुयोगद्वार मूलं एवं हेमचन्द्रसूरि-रचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१२८] + गाथा: ||१-३२|| दीप अनुक्रम [१६४--२०४]



अनुयो० मलधारीया ॥ १३३ ॥

पिंगल'त्ति गाथाऽधिकमेव, व्याख्या सुकरैव, नवरं–पिङ्गला–कपिला इत्यर्थः। समस्तस्वरमण्डलसंक्षेपाभिधानेनोपसंहरन्नाह—'सत्तसरे' त्यादि, ततातन्त्री तानो भण्यते, तत्र षड्जादयः स्वराः प्रत्येकं सप्तभिस्तानैर्गीयन्त इत्येवमेकोनपञ्चाशत्तानाः सप्ततन्त्रिकायां वीणायां भवन्तीति। एवं तदनुसारेणैकतन्त्रीकायां त्रितन्त्रिकायां कण्ठेनापि वा गीयमाना एकोनपञ्चाशदेव ताना भवन्तीति। तदेवमेतैः षड्जादिभिः सप्तभिर्नामभिः सर्वस्यापि स्वरमण्डलस्याभिधानात् सप्तनामेदमुच्यते, 'से तं सत्तनामे'त्ति निगमनम् ॥ १२८ ॥ अथाष्टनाम प्रतिपादयन्नाह—

से किं तं अट्ठनामे?, २ अट्ठविहा वयणविभत्ती पण्णत्ता, तंजहा–निद्देसे पढमा होइ, बितिआ उवएसणे। तईया करणंमि कया, चउत्थी संपयावणे ॥ १ ॥ पंचमी अ अवायाणे, छट्ठी सस्सामिवायणे। सत्तमी सण्णिहाणत्थे, अट्ठमाऽऽमंतणी भवे ॥ २ ॥ तत्थ पढमा विभत्ती निद्देसे सो इमो अहं वत्ति। बिइआ पुण उवएसे भण कुणसु इमं व तं वत्ति ॥ ३ ॥ तइआ करणंमि कया भणिअं च कयं च तेण व मए वा। हंदि णमो साहाए, हवइ चउत्थी पयाणंमि ॥ ४ ॥ अवणय गिण्ह य एत्तो इउत्ति

वृत्तिः उपक्रमाधि०

॥ १३३ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वा पंचमी अवायाणे । छट्ठी तस्स इमस्स व गयस्स वा सामिसंबंधे ॥ ५ ॥ हवइ पुण सत्तमी तं इमंमि आहारकालभावे अ । आमंतणी भवे अट्ठमी उ जहा हे जुवाणत्ति ॥ ६ ॥ से तं अट्ठणामे (सू० १२९)

उच्यन्त इति वचनानि–वस्तुवाचीनि विभज्यते–प्रकटीक्रियते अर्थोऽनयेति विभक्तिः वचनानां विभक्तिर्वचनविभक्तिः, नाख्यातविभक्तिरपि तु नामविभक्तिः प्रथमादिकेति भावः, सा चाष्टविधा तीर्थकरगणधरैः प्रज्ञप्ता, का पुनरियमित्याशङ्क्य यस्मिन्नर्थे या विधीयते तत्सहितामष्टविधामपि विभक्तिं दर्शयितुमाह—'तत्थे'त्यादि 'निद्देसे'इत्यादिश्लोकद्वयं निगदसिद्धं, नवरं–लिङ्गार्थमात्रप्रतिपादनं निर्देशः, तत्र सि औ जसिति प्रथमा विभक्तिर्भवति, अन्यतरक्रियायां प्रवर्तनेच्छोत्पादनमुपदेशस्तस्मिन् अम् औ शस् इति द्वितीया विभक्तिर्भवति, उपलक्षणमात्रं चेदं, कटं करोतीत्यादिषूपदेशमन्तरेणापि द्वितीयाविधानाद्, एवमन्यत्रापि यथासम्भवं वाच्यं, विवक्षितक्रियासाधकतमं करणं तस्मिँस्तृतीया 'कृता' विहिता, सम्प्रदीयते यस्मै तद्वचादि दानविषयभूतं सम्प्रदानं तस्मिँश्चतुर्थी विहिता, अपादीयते–वियुज्यते यस्मात् तद्वियुज्यमानावधिभूतमपादानं तत्र पञ्चमी विहिता, स्वम्–आत्मीयं सचित्तादि स्वामी–राजादिः तयोर्वचने तत्सम्बन्धप्रतिपादने षष्ठी विहितेत्यर्थः, संनिधीयते–आधीयते यस्मिँस्तत्सन्निधानम्–आधारस्तदेवार्थस्त-

Jain Education Inter For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[४५], चूलिकासूत्र-[२] अनुयोगद्वार मूलं एवं हेमचन्द्रसूरि-रचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१२९] + गाथा: ॥१-६॥

दीप अनुक्रम [२०५--२१२]

स्मिन् सप्तमी विहिता, अष्टमी सम्बुद्धिः–आमन्त्रणी भवेद्, आमन्त्रणार्थे विधीयत इत्यर्थः। एनमेवार्थं सोदाहरणमाह—'तत्थ पढमे'त्यादिगाथाश्चतस्रो गतार्था एव, नवरं प्रथमा विभक्तिर्निर्देशे, क? यथेत्याह —'सो'त्ति सः तथा 'इमो'त्ति अयं 'अहं'त्ति अहं वाशब्द उदाहरणान्तरसूचकः, उपदेशे द्वितीया, क? यथेत्याह–भण कुरु वा, किं तदित्याह—'इदं' प्रत्यक्षं तद्वा–परोक्षमिति, तृतीया करणे, क? यथेत्याह– भणितं वा कृतं वा, केनेत्याह–तेन वा मया वेति, अत्र यद्यपि कर्तरि तृतीया प्रतीयते, तथापि विवक्षाधीनत्वात् कारकप्रवृत्तेस्तेन मया वा कृत्वा भणितं कृतं वा, देवदत्तेनेति गम्यत इति, एवं करणविवक्षाऽपि[2] न दुष्यतीति लक्षयामः, तत्त्वं तु बहुश्रुता विदन्तीति, 'हंदि नमो साहाए'इत्यादि, हन्दीत्युपदर्शने, नमो देवेभ्यः स्वाहा अग्नये इत्यादिषु सम्प्रदाने चतुर्थी भवतीत्येके, अन्ये तूपाध्यायाय गां ददातीत्यादिष्वेव सम्प्रदाने चतुर्थीमिच्छन्ति, अपनय गृहाण एतस्मादितो वेत्येवमपादाने पञ्चमी, तस्यास्य गतस्य, कस्य ?– भृत्यादेरिति गम्यते, इत्येवं स्वस्वामिसम्बन्धे षष्ठी, तद्वस्तु बदरादिकं अस्मिन् कुण्डादौ तिष्ठतीति गम्यते, इत्येवमाधारे सप्तमी भवति, तथा 'कालभावे अ'त्ति कालभावयोश्चेयं द्रष्टव्या, तत्र काले यथा मधौ रमते, भावे तु चारित्रेऽवतिष्ठते, आमन्त्रणे भवेदष्टमी यथा हे युवन्निति, वृद्धव्याकरणदर्शनेन चेयमष्टमी गण्यते,

१ साधूनां हि प्रत्यहं बहुवेलकरणात् प्रतिकार्यमाचार्यपृच्छासद्भावाच्च कारकोऽत्राचार्यः विवक्ष्यते करणं च साधवस्तदा संगतिरत्र. २ व्याप्यादिवत्तत्र तत्संज्ञाकरणात्.

॥ १३४ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ऐदंयुगीनानां त्वसौ प्रथमैवेति मन्तव्यमिति । इह च नामविचारप्रस्तावात् प्रथमादिविभक्त्यन्तं नामैव गृह्यते, तथा(चा)ष्टविभक्तिभेदादष्टविधं भवति, न च प्रथमादिविभक्त्यन्तनामाष्टकमन्तरेणापरं नामास्ति, अतोऽनेन नामाष्टकेन सर्वस्य वस्तुनोऽभिधानद्वारेण सङ्ग्रहादष्टनामेदमुच्यते इति भावार्थः । (ग्रन्थाग्रं० ३०००) 'से तं अट्ठनामे'त्ति निगमनम् ॥ १२९ ॥ अथ नवनाम निर्दिशन्नाह—

से किं तं नवनामे?, २ णव कव्वरसा पण्णत्ता, तंजहा–वीरो सिंगारो अब्भुओ अ
रोद्दो अ होइ बोधव्वो । वेलणओ बीभच्छो हासो कलुणो पसंतो अ ॥ १ ॥

नवनाम्नि नव काव्यरसाः प्रज्ञप्ताः, तत्र कवेरभिप्रायः काव्यं, रस्यन्ते अन्तरात्मनाऽनुभूयन्त इति रसाः, तत्तत्सहकारिकारणसन्निधानोद्भूताश्चेतोविकारविशेषा इत्यर्थः, उक्तं च—"बाह्यार्थालम्बनो यस्तु, विकारो मानसो भवेत् । स भावः कथ्यते सद्भिस्तस्योत्कर्षो रसः स्मृतः ॥ १ ॥" काव्येषूपनिबद्धा रसाः काव्यरसाः–वीरशृङ्गारादयः, तानेवाह—'वीरो सिंगारो' इत्यादिगाथा सुगमा, नवरं 'शूर वीर विक्रान्ता'विति वीरयति–विक्रामयति त्यागतपोवैरिनिग्रहेषु प्रेरयति प्राणिनमित्युत्तमप्रकृतिपुरुषचरितश्रवणादिहेतुसमुद्भूतो दानाद्युत्साहप्रकर्षात्मको वीरो, रस इति सर्वत्र गम्यते, शृङ्गं–सर्वरसेभ्यः परमप्रकर्षकोटिलक्षणमियर्ति–गच्छतीति कमनीयकामिनीदर्शनादिसम्भवो रतिप्रकर्षात्मकः शृङ्गारः, सर्वरसप्रधान इत्यर्थः, अत एव

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१३०] + गाथा: ||१-२०|| दीप अनुक्रम [२१३--२३४]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[४५], चूलिकासूत्र-[२] अनुयोगद्वार मूलं एवं हेमचन्द्रसूरि-रचिता वृत्तिः

"शृङ्गारहास्यकरुणा, रौद्रवीरभयानकाः । बीभत्साऽद्भुतशान्ताश्च, नव नाट्ये रसाः स्मृताः ॥ १ ॥" इत्यादिष्वयं सर्वरसानामादावेव पठ्यते, अत्र तु त्यागतपोगुणो वीररसे वर्तते, त्यागतपसी च 'त्यागो गुणो गुणशतादधिको मतो मे' परं लोकातिगं धाम तपः श्रुतमिति द्वय' मित्यादिवचनात् समस्तगुणप्रधान इत्यनया विवक्षया वीररसस्यादावुपन्यास इति २, श्रुतं शिल्पं त्यागतपःशौर्यकर्मादि वा सकलभुवनातिशायि किमप्यपूर्वं वस्त्वद्भुतमुच्यते, तद्दर्शनश्रवणादिभ्यो जातो रसोऽप्युपचाराद्विस्मयरूपोऽद्भुतः ३, रोदयति–अतिदारुणतया अश्रूणि मोचयतीति रौद्रं–रिपुजनमहारण्यान्धकारादि, तद्दर्शनाद्युद्भवो विकृताध्यवसायरूपो रसोऽपि रौद्रः ४, व्रीडयति–लज्जामुत्पादयतीति लज्जनीयवस्तुदर्शनादिप्रभवो मनोव्यलीकतादिस्वरूपो व्रीडनकः, अस्य स्थाने भयजनकसङ्ग्रामादिवस्तुदर्शनादिप्रभवो भयानको रसः पठ्यते अन्यत्र, स चेह रौद्ररसान्तर्भावविवक्षणात् पृथग् नोक्तः ५, शुक्रशोणितोच्चारप्रश्रवणाद्यनिष्टमुद्वेजनीयं वस्तु बीभत्समुच्यते, तद्दर्शनश्रवणादिप्रभवो जुगुप्साप्रकर्षस्वरूपो रसोऽपि बीभत्सः ६, विकृतासम्बद्धपरवचनवेषालङ्कारादिहास्यार्हपदार्थप्रभवो मनःप्रकर्षादिचेष्टात्मको रसोऽपि हास्यः ७, कुत्सितं रौत्यनेनेति निरुक्तवशात् करुणः, करुणास्पदत्वात् करुणः, प्रियविप्रयोगादिदुःखहेतुसमुत्थः शोकप्रकर्षस्वरूपः करुणो रस इत्यर्थः ८, प्रशाम्यति क्रोधादिजनितौत्सुक्यरहितो भवत्यनेनेति प्रशान्तः, परमगुरुवचःश्रवणादिहेतुसमुल्लसित उपशमप्रकर्षात्मा प्रशान्तो रस इत्यलं विस्तरेण ९ ॥ एतानेव लक्षणादिद्वारेण बिभणिषुर्वीररसं तावल्लक्षणतो निरूपयन्नाह—

॥ १३५॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तत्थ परिच्चायंमि अ दाणतवचरणसत्तुजणविणासे अ । अणणुसयधितिपरक्कमलिंगो वीरो रसो होइ ॥ २॥ वीरो रसो जहा–सो नाम महावीरो जो रज्जं पयहिऊण पव्वइओ । कामकोहमहासत्तू पक्खनिग्घायणं कुणइ ॥ ३ ॥

'तत्र' तेषु नवसु रसेषु मध्ये 'परित्यागे' दाने 'तपश्चरणे' तपोविधाने शत्रुजनविनाशे च यथासङ्ख्यमननुशयधृतिपराक्रमचिह्नो वीरो रसो भवति, इदमुक्तं भवति–दाने दत्ते यदाऽनुशयो गर्वः पश्चात्तापो वा तं न करोति, तपसि च कृते धृतिं करोति नार्तध्यानं, शत्रुविनाशे च पराक्रमते न तु वैक्लव्यमवलम्बते तदा एतैर्लिङ्गैर्ज्ञायतेऽयं प्राणी वीररसे वर्तते, इत्येवमन्यत्रापि भावना कार्येति । उदाहरणनिदर्शनार्थमाह–वीरो रसो यथेत्युपदर्शनार्थमेतत्, 'सो नाम'गाहा पाठसिद्धा, नवरं वीररसवत्पुरुषचेष्टितप्रतिपादनादेवंप्रकारेषु काव्येषु वीररसः प्रतिपत्तव्य इति भावार्थः, अपरं चेहोत्तमपुरुषजेतव्यकामक्रोधादिभावशत्रुजयेनैव वीररसोदाहरणं मोक्षाधिकारिणि प्रस्तुतशास्त्रे इतरजनसाध्यसंसारकारणद्रव्यशत्रुनिग्रहस्याप्रस्तुतत्वादिति मन्तव्यमिति, एवमन्यत्रापि भावार्थोऽवगन्तव्य इति ॥ शृङ्गाररसं लक्षणतस्त्वाह—

संगारो नाम रसो रतिसंजोगाभिलाससंजणणो । मंडणविलासविव्वोअहासलीलारम-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

णलिंगो ॥ ४ ॥ सिंगारो रसो जहा–महुरविलाससललिअं हियउम्मादणकरं जुवाणाणं । सामा सदुद्दामं दाएती मेहलादामं ॥ ५ ॥

शृङ्गारो नाम रसः, किंविशिष्ट इत्याह—'रती'त्यादि, रतिशब्देनेह रतिकारणानि सुरतव्यापाराङ्गानि ललनादीनि गृह्यन्ते, तैः सार्द्धं संयोगाभिलाषसंजनकः, तस्य तत्कार्यत्वादेव, तथा मण्डनविलासविब्बोकहास्यलीलारमणानि लिङ्गं यस्य स तथा, तत्र मण्डनं कङ्कणादिभिः, विलासः–कामगर्भो रम्यो नयनादिविभ्रमो, विब्बोयत्ति देशीपदं अङ्गजविकारार्थं, हास्यं प्रतीतं, लीला–सकामगमनभाषितादिरमणीयचेष्टा, रमणं–क्रीडनमिति । उदाहरणमाह—'सिंगारो'इत्यादि, 'महुर'गाहा, श्यामा स्त्री मेखलादाम–रसनासूत्रं दर्शयति, प्रकटयतीत्यर्थः, कथंभूतमित्याह–रणन्मणिकिङ्किणीस्वरमाधुर्योन्मधुरं, तथा विलासैः-सकामैश्चेष्टाविशेषैर्ललितं–मनोहारि, तथा शब्दोद्दामं–किङ्किणीस्वनमुखरं, किमिति तत्प्रकटयतीत्याह–यतो 'हृदयोन्मादनकरं' प्रबलस्मरदीपनं यूनामिति, शृङ्गारप्रधानचेष्टाप्रतिपादनादयं शृङ्गारो रस इति ॥ अद्भुतं स्वरूपतो लक्षणतश्चाह—

विम्हयकरो अपुव्वो अनुभूअपुव्वो य जो रसो होइ । हरिसविसाउप्पत्तिलक्खणो अब्भुओ नाम ॥ ६ ॥ अब्भुओ रसो जहा–अब्भुअतरमिह एत्तो अन्नं किं अत्थि जीवलोगंमि । जं जिणवयणे अत्था तिकालजुत्ता मुणिज्जंति ? ॥ ७ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कस्मिंश्चिदद्भुते वस्तुनि दृष्टे विस्मयं करोति, विस्मयोत्कर्षरूपो यो रसो भवति सोऽद्भुतनामेति षष्ठः, कथंभूतः ?–अपूर्वः–अननुभूतपूर्वोऽनुभूतपूर्वो वा, किंलक्षण इत्याह–हर्षविषादोत्पत्तिलक्षणः, शुभे वस्तुन्यद्भुते दृष्टे हर्षजननलक्षणः अशुभे तु विषादजननलक्षण इत्यर्थः, उदाहरणमाह—'अब्भुय'गाहा, इह जीवलोकेऽद्भुततरम् इतो जिनवचनात् किमन्यदस्ति?, नास्तीत्यर्थः, कुत इत्याह–'यद्' यस्माज्जिनवचनेनार्थाः जीवादयः सूक्ष्मव्यवहितविरोहितातीन्द्रियामूर्तादिस्वरूपाः अतीतानागतवर्तमानरूपत्रिकालयुक्ता अपि ज्ञायन्त इति ॥ अथ रौद्रं हेतुतो लक्षणतश्चाह—

भयजणणरूवसद्दंधयारचिंताकहासमुप्पण्णो । संमोहसंभमविसायसरणलिंगो रसो
रोद्दो ॥ ८ ॥ रोद्दो रसो जहा–भिउडीविडंबिअमुहो संदट्ठोट्ठ इअ रुहिरमाकिण्णो ।
हणसि पसुं असुरणिभो भीमरसिअ अइरोद्द ! रोद्दोऽसि ॥ ९ ॥

रूपं शत्रुपिशाचादीनां, शब्दस्तेषामेव, अन्धकारं बहुलतमोनिकुरुम्बरूपम्, उपलक्षणत्वादरण्यादयश्च पदार्था इह गृह्यन्ते, तेषां भयजनकानां रूपादिपदार्थानां येयं चिन्ता–तत्स्वरूपपर्यालोचनरूपा, कथा तत्स्वरूपभणनलक्षणा, तथोपलक्षणत्वाद् दर्शनादि च गृह्यते, तेभ्यः समुत्पन्नो–जातो रौद्रो रस इति योगः । किंलक्षण इत्याह—'संमोहः' किंकर्तव्यत्वमूढता सम्भ्रमो–व्याकुलत्वं विषादः–किमहमत्र प्रदेशे समायात

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[४५], चूलिकासूत्र-[२] अनुयोगद्वार मूलं एवं हेमचन्द्रसूरि-रचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१३०] + गाथाः ||१-२०||

दीप अनुक्रम [२१३--२३४]

इत्यादिखेदस्वरूपः मरणं–भयोभ्रान्तगजसुकमालहन्तृसोमिलद्विजस्येव प्राणत्यागस्तानि 'लिङ्गं' लक्षणं यस्य स तथा। आह–ननु भयजनकरूपादिभ्यः समुत्पन्नः संमोहादिलिङ्गश्च भयानक एव भवति, कथमस्य रौद्रत्वं ?, सत्यं, किन्तु पिशाचादिरौद्रवस्तुभ्यो जातत्वाद् रौद्रत्वमस्य विवक्षितमित्यदोषः, तथा शत्रुजनादिदर्शने तच्छिरःकर्त्तनादिप्रवृत्तानां पशुशूकरकुरङ्गवधादिप्रवृत्तानां च यो रौद्राध्यवसायात्मको भ्रुकुटीभङ्गादिलिङ्गो रौद्रो रसः सोऽप्युपलक्षणत्वादत्रैव द्रष्टव्यः, अन्यथा स निरास्पद एव स्याद्, अत एव रौद्रपरिणामवत्पुरुषचेष्टाप्रतिपादकमेवोदाहरणं दर्शयिष्यति, भीतचेष्टाप्रतिपादकं तु तत् स्वत एवाभ्यूह्यमित्यलं प्रसङ्गेन। उदाहरणमाह—'भिउडी'गाहा, त्रिवलीतरङ्गितललाटरूपया भ्रुकुट्या विडम्बितं–विकृतीकृतं मुखं यस्य तत् सम्बोधनं हे भ्रुकुटीविडम्बितमुख! संदष्टौष्ठः 'इत' इति इतश्च इतश्च 'रुहिरमाकिण्ण'त्ति विक्षिप्तरुधिर इत्यर्थः, 'हंसि' व्यापादयसि पशुम्, असुरो–दानवस्तन्निभः–तत्सदृशःभीमं रसितं–शब्दितं यस्य तत्सम्बोधनं हे भीमरसित! 'अतिरौद्र' अतिशयरौद्राकृते! रौद्रोऽसि-रौद्रपरिणामयुक्तोऽसीति ॥ अथ व्रीडारसं हेतुतो लक्षणतश्चाह—

विणओवयारगुज्झगुरुदारमेरावइक्कमुप्पण्णो। वेलणओ नाम रसो लज्जासंकाकरणलिंगो ॥ १० ॥ वेलणओ रसो जहा–किं लोइअकरणीओ लज्जणीअतरंति लज्जयामुत्ति। वारिज्जंमी गुरुयणो परिवंदइ जं वहुप्पोत्तं ॥ ११ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१३०] + गाथाः ॥१-२०॥

दीप अनुक्रम [२१३--२३४]

विनयोपचारगुह्यगुरुदारमर्यादानां व्यतिक्रमः–स्थितिलङ्घनं तदुत्पन्नो व्रीडनको नाम रसो भवति, तत्र विनयार्हाणां विनयोपचारव्यतिक्रमे शिष्टस्य पश्चात् व्रीडा प्रादुरस्ति, पश्यत मया कथं पूज्यपूजाव्यतिक्रमः कृत इति?, तथा गुह्यं–रहस्यं तस्य च व्यतिक्रमेऽन्यकथनादिलक्षणे व्रीडारसः प्रादुर्भवति, तथा गुरवः–पूज्याः पितृव्यकलाग्राहकोपाध्यायादयस्तदारैश्च सहाब्रह्मसेवादिलक्षणे मर्यादाव्यतिक्रमे कृते लज्जारसः प्रादुर्भवतीति, एवमन्योऽपि द्रष्टव्यः, किंलक्षण इत्याह–लज्जाशङ्कयोः करणं–विधानं लिङ्गं यस्य स तथा, तत्र शिरसोऽधोऽवनमनं गात्रसङ्कोचादिका लज्जा, मां न क्वचित् कश्चित् किञ्चिद्भणिष्यतीति सर्वत्राभिशङ्कितत्वं शङ्केति। अत्रोदाहरणं—'किं लोइय'गाहा, इह क्वचिद्देशेऽयं समाचारो, यदुत–अभिनववध्वाः स्वभर्त्रा यत् प्रथमयोन्युद्भेदे कृते शोणितचर्चितं तन्निवसनं अक्षतयोनिरियं न पुनरग्रेऽप्यासेवितानाचारेति संज्ञापनार्थं प्रतिगृहं भ्राम्यते, सकलजनसमक्षं च श्वश्रूश्वशुरादिस्तदीयगुरुजनः सतीत्वख्यापनार्थं तद्वन्दत इति, एवं व्यवस्थिते सखीपुरतो वधूर्भणति—'किं लोइयकरणीउ'त्ति करणी–क्रिया, ततश्च लौकिकक्रियाया–लौकिककर्त्तव्यात् सकाशात् किमन्यल्लज्जनीयतरं?, न किञ्चिदित्यर्थः, इत्यतो लज्जिताऽहं भवामि, किमिति?–यतो 'वारेज्जो' विवाहः तत्र गुरुजनो वन्दते 'वहुप्पोत्तं'ति वधूनिवसनमिति ॥ अथ बीभत्सं हेतुतो लक्षणतश्चाह—

असुइकुणिमदुद्दंसणसंजोगब्भासगंधनिप्फण्णो । निव्वेअविहिंसालक्खणो रसो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[४५], चूलिकासूत्र-[२] अनुयोगद्वार मूलं एवं हेमचन्द्रसूरि-रचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१३०] + गाथाः ||१-२०|| दीप अनुक्रम [२१३--२३४]

होइ बीभत्सो ॥ १२ ॥ बीभत्सो रसो जहा–असुइमलभरियनिज्झरसभावदुग्गंधि सव्वकालंपि । धण्णा उ सरीरकलिं बहुमलकलुसं विमुंचंति ॥ १३ ॥

अशुचि–मूत्रपुरीषादि वस्तु कुणपं–शवः अपरमपि यद्दुर्दर्शनं गललालादिकरालं शरीरादि तेषां संयोगाभ्यासाद्–अभीक्ष्णं तद्दर्शनादिरूपात् तद्गन्धाच्च निष्पन्नो बीभत्सो रसो भवतीति सम्बन्धः, किंलक्षण इत्याह–निर्वेदश्च, अकारस्य लुप्तस्य दर्शनादविहिंसा च तल्लक्षणं यस्य स तथा, तत्र निर्वेदः–उद्वेगः अविहिंसा–जन्तुघातादिनिवृत्तिः, इह च शरीरादेरसारतामुपलभ्य हिंसादिपापेभ्यः कश्चिन्निवर्तते इत्यविहिंसाऽपि तल्लक्षणत्वेनोक्तेति । 'असुई'त्यादुदाहरणगाथा, इह कश्चिदुपलब्धशरीराद्यसारतास्वरूपः प्राह–कलिः–जघन्यः कालविशेषः कलहो वा तत्र सर्वानिष्टहेतुत्वात् सर्वकलहमूलत्वाद्वा शरीरमेव कलिः शरीरकलिस्तं मूर्च्छात्यागेन मुक्तिगमनकाले सर्वथात्यागेन वा धन्याः केचिद्विमुञ्चन्तीति सम्पटङ्कः, कथंभूतम्?–अशुचिमलभृतानि निर्झराणि–श्रोतादिविवराणि यस्य तत्तथा, सर्वकालमपि स्वभावतो दुर्गन्धं, तथा बहुमलकलुषमिति, एवं वाचनान्तराण्यपि भावनीयानि ॥ अथ हास्यरसं हेतुलक्षणाभ्यामाह—

रूववयवेसभासाविवरीअविलंबणासमुप्पण्णो । हासो मणप्पहासो पगासलिंगो रसो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[४५], चूलिकासूत्र-[२] अनुयोगद्वार मूलं एवं हेमचन्द्रसूरि-रचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१३०] + गाथा: ||१-२०||

दीप अनुक्रम [२१३--२३४]

होइ ॥ १४ ॥ हासो रसो जहा–पासुत्तमसीमंडिअपडिबुद्धं देवरं पलोअंती । ही जह थणभरकंपणपणमिअमज्झा हसइ सामा ॥ १५ ॥

रूपवयोवेषभाषाणां हास्योत्पादनार्थं वैपरीत्येन या विडम्बना–निर्वर्तना तत्समुत्पन्नो हास्यो रसो भवतीति संयोगः, तत्र पुरुषादेर्योषिदादिरूपकरणं रूपवैपरीत्यं, तरुणादेर्वृद्धादिभावापादानं वयोवैपरीत्यं, राजपुत्रादेर्वणिगादिवेषधारणं वेषवैपरीत्यं, गुर्जरादेस्तु मध्यदेशादिभाषाभिधानं भाषावैपरीत्यं, स च कथंभूतः स्यादित्याह—'मणप्पहासो'त्ति मनःप्रहर्षकारी प्रकाशो–नेत्रवक्त्रादिविकाशस्वरूपो लिङ्गं यस्य स तथा, अथवा प्रकाशानि–प्रकटान्युदरप्रकम्पनाऽट्टहासादीनि लिङ्गानि यस्येति स तथेति ॥ १४ ॥ 'पासुत्तमसी'त्यादिनिदर्शनगाथा, इह कयाचिद्बुध्वा प्रसुप्तो निजदेवरश्चसूर्या मषीमण्डनेन मण्डितः, तं प्रबुद्धं च सा हसति, तां च हसन्तीमुपलभ्य कश्चित्पार्श्ववर्तिनं कञ्चिदामन्त्र्य प्राह–हीति कन्दर्पातिशयद्योतकं वचः, पश्यत भोः श्यामा स्त्री यथा हसतीति सम्बन्धः, किं कुर्वती?–देवरं प्रलोकयन्ती, कथंभूतं?–'पासुत्ते'त्यादि, छिन्नप्ररूढादिवदत्र कर्मधारयः, पूर्वं प्रसुप्तश्च असौ ततो मषीमण्डितश्चासौ ततोऽपि प्रबुद्धश्च स तथा तं, कथंभूता?–स्तनभरकम्पनेन प्रणतं मध्यं यस्याः सा तथेति ॥ १५ ॥ अथ हेतुतो लक्षणतश्च करुणरसस्वरूपमाह—

अनु. २४ पिअविप्पओगबंधवहवाहिविणिवायसंभमुप्पण्णो । सोइअविलविअपम्हाणरुण्णलिंगो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१३०] + गाथाः ||१-२०||

दीप अनुक्रम [२१३--२३४]

रसो करुणो ॥ १६ ॥ करुणो रसो जहा–पज्झायकिलामिअयं बाहागयपप्पुअच्छिअं
बहुसो । तस्स विओगे पुत्तिय! दुब्बलयं ते मुहं जायं ॥ १७ ॥

प्रियविप्रयोगबन्धववधव्याधिविनिपातसम्भ्रमेभ्यः समुत्पन्नः करुणो रस इति योगः, तत्र विनिपातः–सुतादिमरणं सम्भ्रमः–परचक्रादिभयं, शेषं प्रतीतं, किंलक्षण इत्याह–शोचितविलपितम्लानरुदितानि लिङ्गानि–लक्षणानि यस्य स तथा, तत्र शोचितं–मानसो विकारः, शेषं विदितमिति ॥ १६ ॥ 'पज्झाये'त्याद्युदाहरणगाथा, अत्र प्रियविप्रयोगभ्रमितां बालां प्रति वृद्धा काचिदाह–तस्य कस्यचित् प्रियतमस्य वियोगे हे पुत्रिके! दुर्बलकं ते मुखं जातं, कथंभूतं?–'पज्झायकिलामितयं'ति प्रध्यातं–प्रियजनविषयमतिचिन्तितं तेन क्लान्तं 'बाहागयपप्पुअच्छियं'ति बाष्पस्यागतम्–आगमनं तेनोपप्लुते–व्याप्ते अक्षिणी यत्र तत्तथा, बहुशः–अभीक्ष्णमिति ॥ १७ ॥ अथ हेतुलक्षणद्वारेणैव प्रशान्तरसमुदाहरति—

निद्दोसमणसमाहाणसंभवो जो पसंतभावेणं । अविकारलक्खणो सो रसो पसंतोत्ति
णायव्वो ॥ १८ ॥ पसंतो रसो जहा–सब्भावनिव्विगारं उवसंतपसंतसोमदिट्ठीअं ।
ही जह मुणिणो सोहइ मुहकमलं पीवरसिरीअं ॥ १९ ॥ एए नव कव्वरसा बत्तीसा-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१३०] + गाथा: ॥१-२०॥

दीप अनुक्रम [२१३--२३४]

दोसविहिसमुप्पण्णा । गाहाहिं मुणियव्वा हवंति सुद्धा व मीसा वा ॥ २० ॥ से तं नवनामे (सू० १३०)

निर्दोषं–हिंसादिदोषरहितं यन्मनस्तस्य यत्समाधानं–विषयौत्सुक्यनिवृत्तिलक्षणं स्वास्थ्यं तस्मात्सम्भवो यस्य स तथा, प्रशान्तभावेन–क्रोधादिपरित्यागेन यो भवतीति गम्यते, स प्रशान्तो रसो ज्ञातव्य इति घटना, स चाविकारलक्षणो–निर्विकारताचिह्न इत्यर्थः १८। 'सब्भावे'त्यादुदाहरणगाथा, प्रशान्तवदनं कश्चित्साधुमवलोक्य कश्चित्समीपस्थितं कञ्चिदाश्रित्य प्राह–हीति प्रशान्तभावातिशयद्योतकः, पश्य भो! यथा मुनेर्मुखकमलं शोभते, कथंभूतं?–सद्भावतो न मातृस्थानतो निर्विकारं–विभूषाभ्रूक्षेपादिविकाररहितम्, उपशान्तारूपालोकनाद्यौत्सुक्यत्यागतः प्रशान्ता–क्रोधादिदोषपरिहारतोऽत एव सौम्य दृष्टिर्यत्र तत्तथा, अस्मादेव च पीवरश्रीकम्–उपचितोपशमलक्ष्मीकमिति ॥१९॥ साम्प्रतं नवानामपि रसानां संक्षेपतः स्वरूपं कथयन्नुपसंहरन्नाह —'एए नवकव्व' गाहा, एते नव काव्यरसाः, अनन्तरोक्तगाथाभिर्यथोक्तप्रकारेणैव 'मुणितव्या' ज्ञातव्याः, कथंभूता?–'अलियमुवघायजणयं निरत्थयमवत्थयं छलं दुहिल'मित्यादयोऽत्रैव वक्ष्यमाणा ये द्वात्रिंशत् सूत्रदोषास्तेषां विधिः–विरचनं तस्मात् समुत्पन्नाः, इदमुक्तं भवति–अलीकतालक्षणो यस्तावत् सूत्रदोष उक्तस्तेन कश्चिद् रसो निष्पद्यते, यथा—'तेषां कटतटभ्रष्टैर्गजानां मदबिन्दुभिः । प्रावर्तत नदी घोरा, हस्त्यश्व-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[४५], चूलिकासूत्र-[२] अनुयोगद्वार मूलं एवं हेमचन्द्रसूरि-रचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१३०] + गाथा: ||१-२०||

दीप अनुक्रम [२१३--२३४]

अनुयो० मलधारीया ॥ १४० ॥

रथवाहिनी ॥ १ ॥ इत्येवंप्रकारं सूत्रमलीकतादोषदुष्टं, रसश्चायमद्भुतः, ततोऽनेनालीकतालक्षणेन सूत्रदोषेणाद्भुतो रसो निष्पन्नः, तथा कश्चिद्रस उपघातलक्षणेन सूत्रदोषेण निवर्त्यते यथा—'स एव प्राणिति प्राणी, प्रीतेन कुपितेन च। वित्तैर्विपक्षरक्तैश्च, प्रीणिता येन मार्गणाः ॥ १ ॥' इत्यादिप्रकारं सूत्रं परोपघातलक्षणदोषदुष्टं, वीररसश्चायं, ततोऽनेनोपघातलक्षणेन सूत्रदोषेण वीररसोऽत्र निर्वृत्त इत्येवमन्यत्रापि यथासम्भवं सूत्रदोषविधानाद्रसनिष्पत्तिर्वक्तव्या, प्रायोवृत्तिं चाश्रित्यैवमुक्तं, तपोदानविषयस्य वीररसस्य प्रशान्तादिरसानां च क्वचिदनृतादिसूत्रदोषानन्तरेणापि निष्पत्तेरिति। पुनः किंविशिष्टा अमी भवन्तीत्याह—'हवंति सुद्धा व मीसा व'त्ति सर्वेऽपि शुद्धा वा मिश्रा वा भवन्ति, क्वचित्काव्ये शुद्ध एक एव रसो निबध्यते, क्वचित्तु द्व्यादिरससंयोग इति भाव इति गाथार्थः ॥ तदेवमेतैर्वीरशृङ्गारादिभिर्नवभिर्नामभिरत्र वक्तुमिष्टस्य रसस्य सर्वस्याप्यभिधानान्नवनामेदमुच्यते। 'से तं नवनामे'त्ति निगमनम् ॥ १३० ॥ अथ दशनामाभिधानार्थमाह—

से किं तं दसनामे?, २ दुविहे पण्णत्ते, तंजहा–गोण्णे नोगोण्णे आयाणपएणं पडिवक्खपएणं पहाणयाए अणाइअसिद्धंतेणं नामेणं अवयवेणं संजोगेणं पमाणेणं। से किं तं गोण्णे?, २ खमईत्ति खमणो तवइत्ति तवणो जलइत्ति जलणो पवइत्ति पवणो,

वृत्तिः उपक्रमाधि० ॥ १४० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

से तं गोण्णे । से किं तं नोगुण्णे ?, अकुंतो सकुंतो अमुग्गो समुग्गो अमुद्दो समुद्दो अलालं पलालं अकुलिआ सकुलिआ नो पलं असइत्ति पलासो अमाइवाहए माइवाहए अबीअवावए बीअवावए नो इंदगोवए इंदगोवे से तं नोगोण्णे । से किं तं आयाणपएणं ?, २ (धम्मोमंगलं चूलिआ) आवंती चाउरंगिज्जं असंखयं अहातत्थिज्जं अद्दइज्जं जण्णइज्जं पुरिसइज्जं (उसुकारिज्जं) एलइज्जं वीरियं धम्मो मग्गो समोसरणं जंमइअं, से तं आयाणपएणं ।

गौणादिनाम्नामेव स्वरूपनिर्णयार्थमाह—'से किं तं गुण्णे'इत्यादि, गुणैर्निष्पन्नं गौणं, यथार्थमित्यर्थः, तच्चानेकप्रकारं, तत्र क्षमत इति क्षमण इत्येतत् क्षमालक्षणेन गुणेन निष्पन्नं, तथा तपतीति तपन इत्येतत्तपनलक्षणेन गुणेन निर्वृत्तम्, एवं ज्वलतीति ज्वलन इतीदं ज्वलनगुणेन संभूतमित्येवमन्यदपि भावनीयम् १ । 'से किं तं नोगुण्णे' इत्यादि, गुणनिष्पन्नं यन्न भवति तन्नोगौणम्–अयथार्थमित्यर्थः, 'अकुंते सकुंते' इत्यादि, अविद्यमानकुन्ताख्यप्रहरणविशेष एव सकुन्तत्ति पक्षी प्रोच्यत इत्ययथार्थता, एवमविद्यमानमुद्गोऽपि कर्पूराद्याधारविशेषः समुद्गः, अङ्गुल्याभरणविशेषमुद्रारहितोऽपि समुद्रो–जलराशिः, 'अलालं पलालं'ति इह

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रकृष्टा लाला यत्र तत्प्रलालं वस्तु प्राकृते पलालमुच्यते, यत्र तु पलालाभावस्तत्कथं तृणविशेषरूपं पलालमुच्यत इति, प्राकृतशैलीमङ्गीकृत्याव्ययार्थता मन्तव्या, संस्कृते तु तृणविशेषरूपं पलालं निर्व्युत्पत्तिकमेवोच्यते इति न यथार्थायथार्थचिन्ता संभवति, 'अउलिया सउलिय'त्ति अत्रापि कुलिकाभिः सह वर्तमानैव प्राकृते सउलियत्ति भण्यते, या तु कुलिकारहितैव पक्षिणी सा कथं सउलियत्ति?, इत्येवमिहापि प्राकृतशैलीमेवाङ्गीकृत्यायथार्थता, संस्कृते तु शकुनिकैव साऽभिधीयत इति कुतस्तच्चिन्तासम्भवः?, इत्येवमन्यत्राऽप्यविरोधतः सुधिया भावना कार्या, पलं–मांसमनश्नन्नपि पलाश इत्यादि तु सुगमं, नवरं मातृवाहकादयो विकलेन्द्रियजीवविशेषाः 'से तं नोगुण्णे'त्ति निगमनम् २। 'से किं तं आयाणपएण'मित्यादि, आदीयते–तत्प्रथमतया उच्चारयितुमारभ्यते शास्त्राद्यनेनेत्यादानं तच्च तत्पदं चादानपदं, शास्त्रस्याध्ययनोद्देशकादेश्चादिपदमित्यर्थः, तेन हेतुभूतेन किमपि नाम भवति, तच्च 'आवंती'त्यादि, तत्र आवंतीत्याचारस्य पञ्चमाध्ययनं, तत्र ह्यादावेव 'आवन्ती केयावन्ती'त्यालापको विद्यत इत्यादानपदेनैतन्नाम, 'चाउरंगिज्जं'ति एतदुत्तराध्ययनेषु तृतीयमध्ययनं, तत्र चादौ 'चत्तारि परमंगाणि, दुल्लहाणीह जंतुणो' इत्यादि विद्यते, 'असंखयं'ति इदमप्युत्तराध्ययनेष्वेव चतुर्थमध्ययनं, तत्र च आदावेव 'असंखयं जीविय मा पमायए' इत्येतत्पदमस्ति, ततस्तेनेदं नाम, एवमन्यान्यपि कानिचिदुत्तराध्ययनान्तर्वर्तीन्यध्ययनानि कानिचित्तु दशवैकालिकसूयगडाद्यध्ययनानि स्वधिया भावनीयानि ३।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

से किं तं पडिवक्खपएणं?, २ नवेसु गामागरणगरखेडकब्बडमडंबदोणमुहपट्टणासम-संवाहसन्निवेसेसु संनिविस्समाणेसु असिवा सिवा अग्गी सीअलो विसं महुरं क-छालघरेसु अंबिलं साउअं जे रत्तए से अलत्तए जे लाउए से अलाउए जे सुंभए से कुसुंभए आलवंते विवलीअभासए, से तं पडिवक्खपएणं। से किं तं पाहण्णयाए?, असोगवणे सत्तवण्णवणे चंपगवणे चूअवणे नागवणे पुन्नागवणे उच्छुवणे दक्खवणे सालिवणे, से तं पाहण्णयाए। से किं तं अणाइसिद्धंतेणं?, धम्मत्थिकाए अधम्मत्थि-काए आगसत्थिकाए जीवत्थिकाए पुग्गलत्थिकाए अद्धासमए, से तं अणाइयसिद्धं-तेणं। से किं तं नामेणं?, २ पिउपिआमहस्स नामेणं उन्नामिज्जइ(ए), से तं णामेणं। से किं तं अवयवेणं?, २–सिंगी सिही विसाणी दाढी पक्खी खुरी नही वाली। दुपय चउप्पय बहुपया नंगुली केसरी कउही ॥ १ ॥ परिअरबंधेण भडं जाणिज्जा महिलिअं निवस-णेणं। सित्थेण दोणवायं कविं च इक्काए गाहाए ॥ २ ॥ से तं अवयवेणं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१३१] + गाथा ||१-२||

दीप अनुक्रम [२३५--२३७]

विवक्षितवस्तुधर्मस्य विपरीतो धर्मो विपक्षस्तद्वाचकं पदं विपक्षपदं तन्निष्पन्नं किञ्चिन्नाम भवति, यथा शृगाली अशिवाऽप्यमाङ्गलिकशब्दपरिहारार्थं शिवा भण्यते, किं सर्वदा ?, नेत्याह—'नवेसु' इत्यादि, तत्र ग्रसते बुद्ध्यादीन् गुणानिति ग्रामः–प्रतीतः, आकरो–लोहाद्युत्पत्तिस्थानं, नगरं–कररहितं, खेटं–धूलीमयप्राकारोपेतं, कर्बटं–कुनगरं, मडम्बं–सर्वतो दूरवर्तिसन्निवेशान्तरं, द्रोणमुखं–जलपथस्थलपथोपेतं, पत्तनं–नानादेशागतपण्यस्थानं, तच्च द्विधा–जलपत्तनं स्थलपत्तनं च, रत्नभूमिरित्यन्ये, आश्रमः–तापसादिस्थानं, सम्बाधः–अतिबहुप्रकारलोकसङ्कीर्णस्थानविशेषः, सन्निवेशो–घोषादिरथवा ग्रामादीनां द्वन्द्वे ते च ते सन्निवेशाश्चेत्येवं योज्यते, ततस्तेषु ग्रामादिषु नूतनेषु निवेश्यमानेष्वशिवापि सा मङ्गलार्थं शिवेत्युच्यते, अन्यदा त्वनियमः, तथा कोऽपि कदाचित्केनापि कारणवशेनाग्निः शीतो विषं मधुरमित्याद्याचष्टे, तथा कल्पपालगृहेषु किलाम्लशब्दे समुच्चारिते सुरा विनश्यति अतोऽनिष्टशब्दपरिहारार्थमम्लं स्वादूच्यते, तदेवमेतानि शिवादीनि विशेषविषयाणि दर्शितानि, साम्प्रतं त्वविशेषतो यानि सर्वदा प्रवर्तन्ते तान्याह—'जो अलत्तए' इत्यादि, यो रक्तो लाक्षारसेन प्राकृतशैल्या कन्प्रत्ययः, स एव रश्रुतेर्लश्रुत्या अलक्तक उच्यते, तथा यदेव लाति–आदत्ते धरति प्रक्षिप्तं जलादि वस्तु इति निरुक्तेर्लावु तदेव अलावु तुम्बकमभिधीयते, य एव च सुम्भकः शुभवर्णकारी स एव कुसुम्भकः, 'आलवंते'त्ति आलपन्–अत्यर्थं लपन्नसमञ्जसमिति गम्यते, स किमित्याह—'विवलीयभासए'त्ति भाषकाद् विपरीतो विपरीतभाषक इति, राजदन्तादिवत् समासः, अभाषक इत्यर्थः, तथा हि सुबद्धसम्बद्धं

॥ १४२ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रलपन्तं कञ्चिद् दृष्ट्वा लोके वक्तारो भवन्ति–अभाषक एवायं द्रष्टव्योऽसारवचनत्वादिति, प्रतिपक्षनामता यथायोगं सर्वत्र भावनीया, ननु च नोगौणादिदं न भिद्यते इति चेत्, नैतदेवं, तस्य कुन्तादिप्रवृत्तिनिमित्ताभावमात्रेणैवोक्तत्वाद्, अस्य तु प्रतिपक्षधर्मवाचकत्वसापेक्षत्वादिति विशेषः ४ । 'से किं तं पाहण्णयाए'इत्यादि, प्रधानस्य भावः प्रधानता तया किमपि नाम भवति, यथा बहुष्वशोकवृक्षेषु स्तोकेष्वाम्रादिपादपेष्वशोकप्रधानं वनमशोकवनमिति नाम, सप्तपर्णाः–सप्तच्छदास्तत्प्रधानं वनं सप्तपर्णवनमित्यादि सुगमं, नवरमत्राप्याह–ननु गुणनिष्पन्नादिदं न भिद्यते, नैवं, तत्र क्षमादिगुणेन क्षमणादिशब्दवाच्यस्यार्थस्य सामस्त्येन व्याप्तत्वादत्र त्वशोकादिभिरशोकवनादिशब्दवाच्यानां वनानां सामस्त्येन व्याप्तेरभावादिति भेदः ५ । 'से किं तं अणाइसिद्धंतेण'मित्यादि, अमनं अन्तो–वाच्यवाचकरूपतया परिच्छेदोऽनादिसिद्धश्चासावन्तश्चानादिसिद्धान्तस्तेन, अनादिकालादारभ्येदं वाचकमिदं तु वाच्यमित्येवं सिद्धः–प्रतिष्ठितो योऽसावन्तः–परिच्छेदस्तेन किमपि नाम भवतीत्यर्थः, तच्च प्राग्व्याख्यातार्थं धर्मास्तिकायादि, एतेषां च नाम्नामभिधेयं धर्मास्तिकायादिवस्तु न कदाचिदन्यथात्वं प्रतिपद्यते, गौणनाम्नस्तु प्रदीपादेरभिधेयं दीपकलिकादि परित्यजत्यपि स्वरूपमित्येतावता गौणनाम्नः पृथगेतदुक्तमिति ६ । 'से किं तं नामेण'मित्यादि, नाम–पितृपितामहादेर्वाचकमभिधानं तेन हेतुभूतेन पुत्रपौत्रादिनाम भवति, किं पुनस्तदित्याह—'पिउपिआमहस्स नामेणं उच्चामिए'त्ति पिता च पितामहश्च तयोः समाहारस्तस्य, अथवा पितुः पितामहः पितृपितामहस्तस्य वाचकेन बन्धुदत्ता-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दिनाम्ना यः पुत्रादिरुन्नामित–उत्क्षिप्तः प्रसिद्धिं गत इतियावत् स एव नामतद्धतोरभेदोपचारान्नाम्ना हेतुभूतेन नामोच्यते इत्यर्थः, पित्रादेर्यद्वन्धुदत्तादिनामासीत्तत्पुत्रादेरपि तदेव विधीयमानं नाम्ना नामोच्यत इति तात्पर्यम्, 'से तं नामेणं'। 'से किं तं अवयवेण'मित्यादि, अवयवोऽवयविन एकदेशस्तेन नाम यथा 'सिंगी सिंही'त्यादिगाथा, शृङ्गमस्यास्तीति शृङ्गीत्यादीन्यवयवप्रधानानि सर्वाण्यपि सुगमानि, नवरं द्विपदं–रुयादि चतुष्पदं–गवादि बहुपदं–कर्णशृगाल्यादि, अत्रापि पादलक्षणावयवप्रधानता भावनीया, 'कउहि'त्ति ककुदं–स्कन्धासन्नोन्नतदेहावयवलक्षणमस्यास्तीति ककुदी–वृषभ इति, 'परियर'गाहा परिकरबन्धेन–विशिष्टनेपथ्यरचनालक्षणेन भटं–शूरपुरुषं जानीयात्–लक्षयेत्, तथा निवसनेन–विशिष्टरचनारचितपरिधानलक्षणेन महिलां–स्त्रीं, जानीयादिति सर्वत्र सम्बध्यते, धान्यद्रोणस्य पाकः–खिन्नतारूपस्तं च तन्मध्याद्गृहीत्वा निरीक्षितेनैकेन सिक्थेन जानीयाद्, एकया च गाथया लालित्यादिकाव्यधर्मोपेतया श्रुतया कविं जानीयाद्, अयमत्राभिप्रायो–यदा स नेपथ्यपुरुषाद्यवयवरूपपरिकरबन्धादिदर्शनद्वारेण भटमहिलापाककविशब्दप्रयोगं करोति तदा भटादीन्यपि नामान्यवयवप्रधानतया प्रवृत्तत्वादवयवनामान्युच्यन्त इति इह तदुपन्यास इति। इदं चावयवप्रधानतया प्रवृत्तत्वात् सामान्यरूपतयाऽप्रवृत्तात्वाद्गौणनाम्नो भिद्यत इति ८।

से किं तं संजोएणं ?, संजोगे चउव्विहे पण्णत्ते, तंजहा–दव्वसंजोगे खेत्तसंजोगे

॥ १४३ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कालसंजोगे भावसंजोगे। से किं तं दव्वसंजोगे ?, २ तिविहे पण्णत्ते, तंजहा–सचित्ते अचित्ते मीसए। से किं तं सचित्ते ?, २ गोहिं गोमिए महिसीहिं महिसए ऊरणीहिं ऊरणीए उट्टीहिं उट्टीवाले, से तं सचित्ते। से किं तं अचित्ते ?, २ छत्तेण छत्ती दंडेण दंडी पडेण पडी घडेण घडी कडेण कडी, से तं अचित्ते। से किं तं मीसए ?, २ हलेणं हालिए सगडेणं सागडिए रहेणं रहिए नावाए नाविए, से तं दव्वसंजोगे। से किं तं खित्तसंजोगे ?, २ भारहे एरवए हेमवए एरण्णवए हरिवासए रम्मगवासए देवकुरुए उत्तरकुरुए पुव्वविदेहए अवरविदेहए, अहवा मागहे मालवए सोरट्ठए मरहट्ठए कुंकणए, से तं खेत्तसंजोगे। से किं तं कालसंजोगे ?, २ सुसमसुसमाए सुसमाए सुसमदुसमाए दुसमसुसमाए दुसमाए दुसमदुसमाए, अहवा पावसए वासारत्तए सरदए हेमंतए वसंतए गिम्हए, से तं कालसंजोगे। से किं तं भावसंजोगे ?, २ दुविहे पण्णत्ते, तंजहा–पसत्थे अ अपसत्थे अ। से किं तं पसत्थे ?, २ नाणेणं नाणी दंसणेणं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दंसणी चरित्तेणं चरित्ती, से तं पसत्थे। से किं तं अपसत्थे?, २ कोहेणं कोही माणेणं माणी मायाए मायी लोहेणं लोही, से तं अपसत्थे, से तं भावसंजोगे, से तं संजोएणं।

संयोगः–सम्बन्धः, स चतुर्विधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा–द्रव्यसंयोग इत्यादि, सर्वं सूत्रसिद्धमेव, नवरं–सचित्तद्रव्यसंयोगेन गावोऽस्य सन्तीति गोमानित्यादि, अचित्तद्रव्यसंयोगेन छत्रमस्यास्तीति छत्रीत्यादि, मिश्रद्रव्यसंयोगेन हलेन व्यवहरतीति हालिक इत्यादि, अत्र हलादीनामचेतनत्वाद् बलीवर्दानां सचेतनत्वान्मिश्रद्रव्यता भावनीया, क्षेत्रसंयोगाधिकारे भरते जातो भरते वाऽस्य निवास इति 'तत्र जातः (का ०५०७) सोऽस्य निवास इति वाऽण्प्रत्यये भारतः, एवं शेषेष्वपि भावना कार्या, कालसंयोगाधिकारे सुषमसुषमायां जात इति 'सप्तमी पञ्चम्यन्ते जनेर्डः' (का०रू०६९१) इति डप्रत्यये सुषमसुषमजः एवं सुषमजादिष्वपि भावनीयं, भावसंयोगाधिकारे भावः–पर्यायः, स च द्विधा–प्रशस्तो ज्ञानादिरप्रशस्तश्च क्रोधादिः, शेषं सुगमम्, इदमपि संयोगप्रधानतया प्रवृत्तत्वागौणाद्भिद्यत इति ९ ॥

से किं तं पमाणेणं?, २ चउव्विहे पण्णत्ते, तंजहा–नामप्पमाणे ठवणप्पमाणे दव्वप्पमाणे भावप्पमाणे। से किं तं नामप्पमाणे?, २ जस्स णं जीवस्स वा अजीवस्स

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वा जीवाण वा अजीवाण वा तदुभयस्स वा तदुभयाण वा पमाणेत्ति नामं कज्जइ से तं णामप्पमाणे ।

अत्रोत्तरं–'पमाणे चउव्विहे'इत्यादि, प्रमीयते–परिच्छिद्यते वस्तु निश्चीयतेऽनेनेति प्रमाणं नामस्थापनाद्रव्यभावस्वरूपं चतुर्विधम् । अथ किं तन्नामप्रमाणं?, नामैव वस्तुपरिच्छेदहेतुत्वात् प्रमाणं नामप्रमाणं, तेन हेतुभूतेन किं नाम भवतीति प्रश्नाभिप्रायः, एवमन्यत्रापि भावनीयम्, अत्रोत्तरमुच्यते–यस्य जीवस्य वा अजीवस्य वा जीवानां वा अजीवानां वा तदुभयस्य वा तदुभयानां वा यत्प्रमाणमिति नाम क्रियते तन्नामप्रमाणं, न तत्स्थापनाद्रव्यभावहेतुकं, अपि तु नाममात्रविरचनमेव तत्र हेतुरिति तात्पर्यम् ।

से किं तं ठवणप्पमाणे ?, २ सत्तविहे पण्णत्ते, तंजहा–णक्खत्तदेवयकुले पासंडगणे अ जीविआहेउं । आभिप्पाइअणामे ठवणानामं तु सत्तविहं ॥ १ ॥ से किं तं णक्खत्तणामे ?, २ कित्तिआहिं जाए कित्तिए कित्तिआदिण्णे कित्तिआधम्मे कित्तिआसम्मे कित्तिआदेवे कित्तिआदासे कित्तिआसेणे कित्तिआरक्खिए रोहणीहिं जाए रोहिणिए रोहिणिदिन्ने रोहिणिधम्मे रोहिणिसम्मे रोहिणिदेवे रोहिणिदासे रोहिणिसेणे रोहि-

अनु. २५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र प्रमाणस्य भेद-प्रभेदानां वर्णनं क्रियते

प्रत सूत्रांक [१३१] + गाथा: ||--||

दीप अनुक्रम [२३८--२४७]

णिरक्खिए य, एवं सव्वनक्खत्तेसु नामा भाणिअव्वा। एत्थं संगहणिगाहाओ–कित्ति-अरोहिणिमिगसिरअद्दा य पुणव्वसू अ पुस्से अ। तत्तो अ अस्सिलेसा महा उ दो फग्गुणीओ अ ॥ १ ॥ हत्थो चित्ता साती विसाहा तह य होइ अणुराहा। जेट्ठा मूला पुव्वासाढा तह उत्तरा चेव ॥ २ ॥ अभिई सवण धणिट्ठा सतभिसदा दो अ होंति भद्दवया। रेवई अस्सिणि भरणी एसा नक्खत्तपरिवाडी ॥ ३ ॥ से तं नक्खत्तनामे। से किं तं देवयाणामे ?, २ अग्गिदेवयाहिं जाए अग्गिए अग्गिदिण्णे अग्गिसम्मे अग्गिधम्मे अग्गिदेवे अग्गिदासे अग्गिसेणे अग्गिरक्खिए एवं सव्वनक्खत्तदेवया-नामा भाणिअव्वा। एत्थंपि संगहणिगाहाओ–अग्गिपयावइ सोमे रुद्दो अदिती विह-स्सई सप्पे। पिति भग अज्जम सविआ तट्ठा वाऊ अ इंदग्गी ॥ १ ॥ मित्तो इंदो निरई आऊ विस्सो अ बंभ विण्हूआ। वसु वरुण अयविवद्धि पूसे आसे जमे चेव ॥ २ ॥ से तं देवयाणामे। से किं तं कुलनामे ?, २ उग्गे भोगे रायण्णे खत्तिए

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[४५], चूलिकासूत्र-[२] अनुयोगद्वार मूलं एवं हेमचन्द्रसूरि-रचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१३१] + गाथा: ॥--॥

दीप अनुक्रम [२३८--२४७]

इक्खागे णाते कोरव्वे, से तं कुलनामे। से किं तं पासंडनामे?, २–समणे य पंडुरंगे भिक्खू कावालिए अ तावसए परिवायगे, से तं पासंडनामे। से किं तं गणनामे?, २ मल्ले मल्लदिन्ने मल्लधम्मे मल्लसम्मे मल्लदेवे मल्लदासे मल्लसेणे मल्लरक्खिए, से तं गणनामे। से किं तं जीवियनामे?, २ अवकरए उक्कुरुडए उज्झिअए कज्जवए सुप्पए, से तं जीवियनामे। से किं तं आभिप्पाइअनामे?, २ अंबए निंबए बकुलए पलासए सिणए पिलूए करीरए, से तं आभिप्पाइअनामे। से तं ठवणप्पमाणे।

अथ किं तत्स्थापनाप्रमाणं?, 'स्थापनाप्रमाणं सप्तविध'मित्यादि, 'नक्खत्त' गाहा, इदमत्र हृदयं–नक्षत्रदेवताकुलपाषण्डगणादीनि वस्तून्याश्रित्य यत्कस्यचिन्नामस्थापनं क्रियते सेह स्थापना गृह्यते, न पुनः 'यत्तु तदर्थवियुक्तं तदभिप्रायेण यच्च तत्करणी'त्यादिना पूर्वं परिभाषितस्वरूपा, सैव प्रमाणं, तेन हेतुभूतेन नाम सप्तविधं भवति, तत्र नक्षत्राण्याश्रित्य यन्नाम स्थाप्यते तद्दर्शयति–कृत्तिकासु जातः कार्तिकः कृत्तिकाभिर्दत्तः कृत्तिकादत्त एवं कृत्तिकाधर्मः कृत्तिकाशर्मः कृत्तिकादेवः कृत्तिकादासः कृत्तिकासेनः कृत्तिकारक्षितः एवमन्यान्यपि

१ संज्ञाशब्दत्वाददन्तता.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[४५], चूलिकासूत्र-[२] अनुयोगद्वार मूलं एवं हेमचन्द्रसूरि-रचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१३१] + गाथा: ||--||

दीप अनुक्रम [२३८--२४७]

अनुयो० मलधारीया ॥ १४६ ॥

रोहिण्यादिसप्तविंशतिनक्षत्राण्याश्रित्य नामस्थापना द्रष्टव्या, तत्र सर्वनक्षत्रसङ्ग्रहार्थं 'कत्तियारोहिणी'त्यादि गाथात्रयं सुगमं, नवरमभीचिनक्षत्रेण सह पठ्यमानेषु नक्षत्रेषु कृत्तिकादिरेव क्रम इत्यश्विन्यादिक्रममुत्सृज्येत्थमेव पठितवानिति, एषां चाष्टाविंशतिनक्षत्राणामधिष्ठातारः क्रमेणाग्न्यादयोऽष्टाविंशतिरेव देवताविशेषा भवन्त्यतः कृत्तिकादिनक्षत्रजातस्य कश्चिदिच्छादिवशतस्तदधिष्ठातृदेवता एवाश्रित्य नामस्थापनं विधत्त इत्येतद्दर्शनार्थमाह—'से किं तं देवयाणामे' इत्यादि, अग्निदेवतासु जातः आग्निकः एवमग्निदत्तादीन्यपि, नक्षत्रदेवतानां सङ्ग्रहार्थम् 'अग्गी'त्यादि गाथाद्वयं, तत्र कृत्तिकानक्षत्रस्याधिष्ठाता अग्निः, रोहिण्याः प्रजापतिः, एवं मृगशिरःप्रभृतीनां क्रमेण सोमो रुद्रः अदितिः बृहस्पतिः सर्पः पितृ भगः अर्यमा सविता त्वष्टा वायुः इन्द्राग्निः मित्रः इन्द्रः निर्ऋतिः अम्भः विश्वः ब्रह्मा विष्णुः वसुः वरुणः अजः विवर्द्धिः अस्य स्थानेऽन्यत्र अहिर्बुध्नः पठ्यते, पूषा अश्वः यमश्चैवेति, 'से तं देवतानामे',। 'से किं तं कुलनामे'इत्यादि, यो यस्मिन्नुग्रादिकुले जातस्तस्य तदेवोग्रादि कुलनाम स्थाप्यमानं कुलस्थापनानामोच्यत इति भावार्थः । 'से किं तं पासंडणामे' इत्यादि, इह येन यत्पाषण्डमाश्रितं तस्य तन्नाम स्थाप्यमानं पाषण्डस्थापनानामाभिधीयते, तत्र 'निग्गंथसक्कतावसगेरुयआजीव पंचहा समणा' इति वचनान्निर्ग्रन्थादिपञ्चपाषण्डान्याश्रित्य श्रमण उच्यते, एवं नैयायिकादिपाषण्डमाश्रिताः पाण्डुराङ्गादयो भावनीयाः, नवरं भिक्षुर्बुद्धदर्शनाश्रितः। 'से किं तं गणनामे' इत्यादि, इह मल्लादयो गणाः, तत्र यो यस्मिन् गणे वर्तते तस्य तन्नाम गणस्थापनानामोच्यते इति, मल्ले

वृत्तिः उपक्रमाधि० ॥ १४६ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१३१] + गाथाः ॥--॥

दीप अनुक्रम [२३८--२४७]

मल्लदिण्णे इत्यादि । 'से किं तं जीवियाहेउ'मित्यादि, इह यस्या जातमात्रमेवापत्यं म्रियते सा लोकस्थितिवैचित्र्याज्जातमात्रमपि किञ्चिदपत्यं जीवननिमित्तमवकरादिष्वस्यति, तस्य चावकरकः उत्कुरुटक इत्यादि यन्नाम क्रियते तज्जीविकाहेतोः स्थापनानामाख्यायते, 'सुप्पए'त्ति यः सूर्प्पे कृत्वा त्यज्यते तस्य सूर्प्पक एव नाम स्थाप्यते, शेषं प्रतीतम् । 'से किं तं आभिप्पाइयनामे' इत्यादि, इह यत् वृक्षादिषु प्रसिद्धं अम्बको निम्बक इत्यादि नाम देशरूढ्या स्वाभिप्रायानुरोधतो गुणनिरपेक्षं पुरुषेषु व्यवस्थाप्यते तदाभिप्रायिकं स्थापनानामेति भावार्थः । तदेतत् स्थापनाप्रमाणनिष्पन्नं ससविधं नामेति ।

से किं तं दव्वप्पमाणे ?, २ छव्विहे पण्णत्ते, तंजहा–धम्मत्थिकाए जाव अद्धासमए,
से तं दव्वप्पमाणे ।

अयमत्र भावार्थः–धर्मास्तिकायोऽधर्मास्तिकाय इत्यादीनि षड् द्रव्यविषयाणि नामानि द्रव्यमेव प्रमाणं तेन निष्पन्नानि द्रव्यप्रमाणनामानि, धर्मास्तिकायादिद्रव्यं विहाय न कदाचिदन्यत्र वर्तन्त इति तद्धेतुकान्युच्यन्त इति तात्पर्यम् । अनादिसिद्धान्तनामत्वेनैवैतानि प्रागुक्तानीति चेद्, उच्यतां, को दोषः?, अनन्तधर्मात्मके वस्तुनि तत्तद्धर्मापेक्षयाऽनेकव्यपदेशताया अदुष्टत्वाद्, एवमन्यत्रापि यथासम्भवं वाच्यमिति ।

से किं तं भावप्पमाणे ?, २ चउव्विहे पण्णत्ते, तंजहा–सामासिए तद्धियए धाउए

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१३१] + गाथा ॥१॥

दीप अनुक्रम [२४७--२४९]

निरुत्तिए। से किं तं सामासिए ?, २ सत्त समासा भवंति, तंजहा–दंदे अ बहुव्वीही, कम्मधारय दिग्गु अ । तप्पुरिस अव्वईभावे, एक्कसेसे अ सत्तमे ॥ १ ॥ से किं तं दंदे ?, २ दन्ताश्च ओष्ठौ च दन्तोष्ठं, स्तनौ च उदरं च स्तनोदरं, वस्त्रं च पात्रं च वस्त्रपात्रम्, अश्वाश्च महिषाश्च अश्वमहिषम्, अहिश्च नकुलश्च अहिनकुलं, से तं दंदे समासे । से किं तं बहुव्वीहीसमासे ?, २ फुल्ला इमंमि गिरिंमि कुडयकयंबा सो इमो गिरी फुल्लियकुडयकयंबो, से तं बहुव्वीहीसमासे । से किं तं कम्मधारए ?, २ धवलो वसहो धवलवसहो, किण्हो मियो किण्हमियो, सेतो पडो सेतपडो, रत्तो पडो रत्तपडो, से तं कम्मधारए । से किं तं दिगुसमासे ?, २ तिण्णि कडुगाणि तिकडुगं, तिण्णि महुराणि तिमहुरं, तिण्णि गुणाणि तिगुणं, तिण्णि पुराणि तिपुरं, तिण्णि सराणि तिसरं, तिण्णि पुक्खराणि तिपुक्खरं, तिण्णि बिंदुआणि तिबिंदुअं, तिण्णि पहाणि तिपहं, पंच नईओ पंचणयं, सत्त गया सत्तगयं, नव तुरंगा नवतुरंगं, दस गामा दस-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१३१] + गाथा ||१||

दीप अनुक्रम [२४७--२४९]

गामं, दस पुराणि दसपुरं, से तं दिगुसमासे। से किं तं तप्पुरिसे ?, २ तित्थे कागो तित्थकागो, वणे हत्थी वणहत्थी, वणे वराहो वणवराहो, वणे महिसो वणमहिसो, वणे मयूरो वणमयूरो, से तं तप्पुरिसे। से किं तं अव्वईभावे ?, २ अणुगामं अणुणइयं अणुफरिहं अणुचरिअं, से तं अव्वईभावे समासे। से किं तं एगसेसे ?, २ जहा एगो पुरिसो तहा बहवे पुरिसा जहा बहवे पुरिसा तहा एगो पुरिसो, जहा एगो करिसावणो तहा बहवे करिसावणा जहा बहवे करिसावणा तहा एगो करिसावणो, जहा एगो साली तहा बहवे साली जहा बहवे साली तहा एगो साली, से तं एगसेसे समासे। से तं सामासिए।

भावो–युक्तार्थत्वादिको गुणः, स एव तद्वारेण वस्तुनः परिच्छिद्यमानत्वात् प्रमाणं तेन निष्पन्नं–तदाश्रयेण निर्वृत्तं नाम सामासिकादि चतुर्विधं भवतीत्यत्र परमार्थः। तत्र 'से किं तं सामासिए' इत्यादि, द्वयोर्बहूनां वा पदानां समसनं–संमीलनं समासस्तेन निर्वृत्तं सामासिकं, समासाश्च द्वन्द्वादयः सप्त, तत्र समुच्चयप्रधानो द्वन्द्वः, दन्ताश्चौष्ठौ च दन्तोष्ठं, स्तनौ च उदरं च स्तनोदरमिति, प्राण्यङ्गत्वात् संमाहारः, वस्त्रपात्र-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१३१] + गाथा ॥१॥

दीप अनुक्रम [२४७--२४९]

अनुयो० मलधारीया ॥ १४८ ॥

मित्यादौ त्वप्राणिजातित्वादश्वमहिषमित्यादौ पुनः शाश्वतिकवैरित्वाद्, एवमन्यान्यप्युदाहरणानि भावनीयानि, अन्यपदार्थप्रधानो बहुव्रीहिः पुष्पिताः कुटजकदम्बा यस्मिन् गिरौ सोऽयं गिरिः पुष्पितकुटजकदम्बः, तत्पुरुषः समानाधिकरणः कर्मधारयः, स च धवलश्चासौ वृषभश्च धवलवृषभ इत्यादि, सङ्ख्यापूर्वो द्विगुः– त्रीणि कटुकानि समाहृतानि त्रिकटुकम्, एवं त्रीणि मधुराणि समाहृतानि त्रिमधुरं, पात्रादिगणे दर्शनादिह पञ्चपूलीत्यादिवत् स्त्रियामीप्प्रत्ययो न भवति, एवं शेषाण्यप्युदाहरणानि भावनीयानि, द्वितीयादिविभक्त्यन्तपदानां समासस्तत्पुरुषः, तत्र तीर्थं काक इवास्ते तीर्थकाकः 'ध्वाङ्क्षेण क्षेप' (कातं०) इति ससमीतत्पुरुषः, शेषं प्रतीतं, पूर्वपदार्थप्रधानोऽव्ययीभावः, तत्र ग्रामस्य अनु समीपेन मध्येन वाऽशनिर्गता अनुग्रामम्, एवं नद्याः समीपेन मध्येन वा निर्गता अनुनदीत्यादापि भावनीयं, 'सरूपाणामेकशेष एकविभक्ता'वित्यनेन सूत्रेण समानरूपाणामेकविभक्तियुक्तानां पदानामेकशेषः समासो भवति, सति समासे एकः शिष्यतेऽन्ये तु लुप्यन्ते, यश्च शेषोऽवतिष्ठते स आत्मार्थे लुप्तस्य लुप्तयोर्लुप्तानां चार्थे वर्तते, अथ एकस्य लुप्तस्यात्मनश्चार्थे वर्तमानात्तस्मात् द्विवचनं भवति, यथा पुरुषश्च पुरुषश्चेति पुरुषौ, द्वयोश्च लुप्तयोरात्मनश्चार्थे वर्तमानाद्बहुवचनं यथा पुरुषश्च ३ पुरुषाः, एवं बहूनां लुप्तानामात्मनश्चार्थे वर्तमानादपि बहुवचनं यथा पुरुषश्च ४ पुरुषा इति, जातिविवक्षायां तु सर्वत्रैकवचनमपि भावनीयम् । अतः सूत्रमनुश्रीयते–'जहा एगो पुरिसो'त्ति यथैकः पुरुषः, एकवचनान्तः पुरुषशब्द इत्यर्थः, एकशेषे समासे सति बह्वर्थवाचक इति शेषः, 'तहा बहवे

वृत्तिः उपक्रमाधि० ॥ १४८ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[४५], चूलिकासूत्र-[२] अनुयोगद्वार मूलं एवं हेमचन्द्रसूरि-रचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१३१] + गाथा ॥१॥

दीप अनुक्रम [२४७--२४९]

पुरिस'त्ति तथा बहवः पुरुषाः, बहुवचनान्तः पुरुषशब्द इत्यर्थः, एकशेषे समासे सति बह्वर्थवाचक इति शेषः, यथा चैकशेषे समासे बहुवचनान्तः पुरुषशब्दो बह्वर्थवाचकस्तथैकवचनान्तोऽपीति न कश्चिद्विशेषः, एतदुक्तं भवति–यथा पुरुषश्च ३ इति विधाय एकपुरुषशब्दशेषता क्रियते तदा यथैकवचनान्तः पुरुषशब्दो बह्वर्थान् वक्ति तथा बहुवचनान्तोऽपि, यथा बहुवचनान्तस्तथैकवचनान्तोऽपीति न कश्चिदेकवचनान्तबहुवचनान्तयोर्विशेषः, केवलं जातिविवक्षायामेकवचनं बह्वर्थविवक्षायां तु बहुवचनमिति । एवं कार्षापणशाल्यादिष्वपि भावनीयम् । अयं च समासो द्वन्द्वविशेष एवोच्यते, केवलमेकशेषताऽत्र विधीयते इत्येतावता पृथगुपात्त इति लक्ष्यते, तत्त्वं तु सकलव्याकरणवेदिनो विदन्तीत्यलमतिविजृम्भितेन, गतं सामासिकम् ।

से किं तं तद्धितए?, २ अट्ठविहे पण्णत्ते, तंजहा–कम्मे सिप्पसिलोए संजोगसमीवओ अ संजूहो। इस्सरिअ अवच्चेण य तद्धितणामं तु अट्ठविहं ॥ १ ॥

से किं तं कम्मणामे?, २ तणहारए कट्ठहारए पत्तहारए दोसिए सोत्तिए कप्पासिए भंडवेआलिए कोलालिए, से तं कम्मनामे । से किं तं सिप्पनामे?, २ तुण्णए तंतुवाए पट्टकारे उएट्टे बरुडे मुंजकारे कट्ठकारे छत्तकारे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वज्झकारे पोत्थकारे चित्तकारे दंतकारे लेप्पकारे सेलकारे कोट्टिमकारे, से तं सिप्पनामे । से किं तं सिलोअनामे ?, २ समणे माहणे सव्वातिही, से तं सिलोअनामे। से किं तं संजोगनामे ?, २ रण्णो ससुरए रण्णो जामाउए रण्णो साले रण्णो भाउए रण्णो भगिणीवई, से तं संजोगनामे । से किं तं समीवनामे ?, २ गिरिसमीवे णयरं गिरिणयरं विदिसासमीवे णयरं वेदिसं णयरं बेन्नाए समीवे णयरं बेन्नायडं तगराए समीवे णयरं तगरायडं, से तं समीवनामे । से किं तं संजूहनामे ?, २ तरङ्गवइक्कारे मलयवइक्कारे अत्ताणुसट्ठिकारे बिंदुकारे, से तं संजूहनामे । से किं तं ईसरिअनामे ?, २ राईसरे तलवरे माडंबिए कोडुंबिए इब्भे सेट्ठी सत्थवाहे सेणावई, से तं ईसरिअनामे । से किं तं अवच्चनामे ? २ अरिहंतमाया चक्कवट्टिमाया बलदेवमाया वासुदेवमाया रायमाया मुणिमाया वायगमाया, से तं अवच्चनामे । से तं तद्धितए । से किं तं धाउए ?, २ भू सत्तायां परस्मैभाषा एध वृद्धौ स्पर्द्ध संहर्षे गाधृ प्रतिष्ठालिप्सयोर्ग्रन्थे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

च बाधृ लोडने, से तं धाउए। से किं तं निरुत्तिए ?, २ मह्यां शेते महिषः, भ्रमति च रौति च भ्रमरः मुहुर्मुहुर्लसतीति मुसलं कपेरिव लम्बते त्थेति च करोति कपित्थं चिदितिकरोति खल्लं च भवति चिक्खल्लं ऊर्ध्वकर्णः उलूकः मेखस्य माला मेखला, से तं निरुत्तिए। से तं भावपमाणे । से तं पमाणनामे । से तं दसनामे। से तं नामे। नामेति पयं समत्तं। (सू० १३१)

तद्धिताज्जातं तद्धितजम्, इह तद्धितशब्देन तद्धितप्राप्तिहेतुभूतोऽर्थो गृह्यते, ततो यत्रापि तुन्नाए तंतुवाए तद्धितप्रत्ययो न दृश्यते तत्रापि तद्धेतुभूतार्थस्य विद्यमानत्वात्तद्धितजत्वं सिद्धं भवति, 'कम्मे'गाहा पाठसिद्धा, नवरं श्लोकः–श्लाघा संयूथो–ग्रन्थरचना, एते च कर्मशिल्पादयोऽर्थास्तद्धितप्रत्ययस्योत्पित्सोर्निमित्तीभवन्तीत्येतद्भेदात्तद्धितजं नामाष्टविधमुच्यत इति भावः, तत्र कर्म तद्धितजं 'दोसिए सोत्तिए' इत्यादि, दूष्यं पण्यमस्येति दौषिकः, सूत्रं पण्यमस्येति सौत्रिकः, शेषं प्रतीतं, नवरं भाण्डविचारः कर्मास्येति भाण्डवैचारिकः, कौलालानि–मृद्भाण्डानि पण्यमस्येति कौलालिकः, अत्र क्वापि 'तणहारए' इत्यादिपाठो दृश्यते, तत्र कश्चिदाह–नन्वत्र तद्धितप्रत्ययो न कश्चिदुपलभ्यते तथा वक्ष्यमाणेष्वपि 'तुन्नाए तंतुवाए' इत्या-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दिषु नायं दृश्यते तत्किमित्येवंभूतनाम्नामिहोपन्यासः ?, अत्रोच्यते, अस्मादेव सूत्रोपन्यासात् तृणानि हरति-वहतीत्यादिकः कश्चिदाद्यव्याकरणदृष्टस्तद्धितोत्पत्तिहेतुभूतोऽर्थो द्रष्टव्यः, ततो यद्यपि साक्षात्तद्धितप्रत्ययो नास्ति तथापि तदुत्पत्तिनिबन्धनभूतमर्थमाश्रित्येह तन्निर्देशो न विरुध्यते, यदि तद्धितोत्पत्तिहेतुरर्थोऽस्ति तर्हि तद्धितोऽपि कस्मान्नोत्पद्यत इति चेत् ? लोके इत्थमेव रूढत्वादिति ब्रूमः, अथवा अस्मादेवाद्यमुनिप्रणीत-सूत्रज्ञापकादेवं जानीयाः-तद्धितप्रत्यया एवामी केचित् प्रतिपत्तव्या इति । अथ शिल्पतद्धितनामोच्यते-वस्त्रं शिल्पमस्येति वास्त्रिकः, तन्त्रीवादनं शिल्पमस्येति तान्त्रिकः, तुन्नाए तंतुवाए इत्यादि प्रतीतम्, आक्षेपपरिहारौ उक्तावेव, यच्चेह पूर्वं च क्वचिद्वाचनाविशेषेऽप्रतीतं नाम दृश्यते तदेशान्तररूढितोऽवसेयम् । अथ श्लाघातद्धितनामोच्यते—'समणे' इत्यादि, श्रमणादीनि नामानि श्लाघ्येष्वर्थेषु साध्वादिषु रूढान्यतोऽस्मादेव सूत्रनिबन्धात् श्लाघ्यार्थास्तद्धितास्तदुत्पत्तिहेतुभूतमर्थमात्रं वा अत्रापि प्रतिपत्तव्यम् । संयोगतद्धितनाम राज्ञः श्वशुर इत्यादि, अत्र सम्बन्धरूपः संयोगो गम्यते, अत्रापि चास्मादेव ज्ञापकात् तद्धितनामता, चित्रं च पूर्वगतं शब्दप्राभृतमप्रत्यक्षं च नः अतः कथमिह भावनास्वरूपमस्मादृशैः सम्यगवगम्यते । समीपतद्धितनाम गिरिसमीपे नगरं गिरिनगरम्, अत्र 'अदूरभवश्चे'त्यण् (पा० ४-२-७०) न भवति, गिरिनगरमित्येव प्रतीतत्वात्, विदिशाया अदूरभवं नगरं वैदिशम्, अत्र त्वदूरभवश्चेत्यण् भवत्येव, इत्थमेव रूढत्वादिति । संयूथतद्धितनाम 'तरंगवइक्कारए' इत्यादि, तद्धितनामता चेहोत्तरत्र च पूर्ववद्भावनीया । ऐश्वर्यत-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[४५], चूलिकासूत्र-[२] अनुयोगद्वार मूलं एवं हेमचन्द्रसूरि-रचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१३१] + गाथा ॥१॥

दीप अनुक्रम [२४९--२५१]

द्धितनाम—'राईसरे' इत्यादि, इह राजादिशब्दनिबन्धनमैश्वर्यमवगन्तव्यं, राजेश्वरादिशब्दार्थस्त्विहैव पूर्वं व्याख्यात एव । अपत्यतद्धितनाम—'तित्थयरमाया' इत्यादि, तीर्थकरोऽपत्यं यस्याः सा तीर्थकरमाता, एवमन्यत्रापि सुप्रसिद्धेनाप्रसिद्धं विशिष्यते, अत एव तीर्थकरादिभिर्मातरो विशेषिताः, तद्धितनामत्वभावना तथैव, गतं तद्धितनाम । अथ धातुजमुच्यते—'से किं तं धाउए' इत्यादि, भूरयं परस्मैपदी धातुः सत्तालक्षणस्यार्थस्य वाचकत्वेन धातुजं नामेति, एवमन्यत्रापि, अभिधानाक्षरानुसारतो निश्चितार्थस्य वचनं–भणनं निरुक्तं तत्र भवं नैरुक्तं, तच्च मह्यां शेते महिष इत्यादिकं पाठसिद्धमेव, तदेवमुक्तं नैरुक्तं नाम । तद्भणने चावसितं भावप्रमाणनाम, तदवसाने च समर्थितं प्रमाणनाम, तत्समर्थने च समापितं गौणादिकं दशनाम, एतैरपि च दशनामभिः सर्वस्यापि वस्तुनोऽभिधानद्वारेण सङ्ग्रहादशनामेदमुच्यते, तत्समासौ च समासमुपक्रमान्तर्गतं द्वितीयं नामद्वारम्, अतः 'से तं निरुत्तिए' इत्यादि पञ्च निगमनानि, नामद्वारं समासम् ॥ १३१ ॥

उक्तमुपक्रमान्तर्गतं द्वितीयं नामद्वारमथ तदन्तर्गतमेव क्रमप्राप्तं तृतीयं प्रमाणद्वारमभिधित्सुराह—

से किं तं पमाणे ?, २ चउव्विहे पण्णत्ते, तंजहा–दव्वपमाणे खेत्तपमाणे कालप्पमाणे भावप्पमाणे (सू० १३२)। से किं तं दव्वपमाणे ?, २ दुविहे पण्णत्ते, तंजहा–पएसनिप्फण्णे अ विभागनिप्फण्णे अ । से किं तं पएसनिप्फण्णे ? २ परमाणुपो-

अनु. २६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अथ "प्रमाण' वक्तव्यता आरभ्यते

प्रत सूत्रांक [१३३] + गाथा: ||--||

दीप अनुक्रम [२५३--२५६]

ग्गले दुपएसिए जाव दसपएसिए संखिज्जपएसिए असंखिज्जपएसिए अणंतपएसिए, से तं पएसनिप्फण्णे। से किं तं विभागनिप्फण्णे ?, २ पंचविहे पण्णत्ते, तंजहा–माणे उम्माणे अवमाणे गणिमे पडिमाणे। से किं तं माणे ?, २ दुविहे पण्णत्ते, तंजहा–धन्नमाणप्पमाणे अ रसमाणप्पमाणे अ। से किं तं धन्नमाणपमाणे ?, २ दो असईओ पसई दो पसईओ सेतिया चत्तारि सेइआओ कुलओ चत्तारि कुलया पत्थो चत्तारि पत्थया आढगं चत्तारि आढगाइ दोणो सट्ठि आढयाइं जहन्नए कुंभे असीइ आढयाइं मज्झिमए कुंभे आढयसयं उक्कोसए कुंभे अट्ठ य आढयसइए वाहे, एएणं धण्णमाणपमाणेणं किं पओअणं ?, एएणं धण्णमाणपमाणेणं मुत्तोलीमुखइदुरअलिंदओचारसंसियाणं धण्णाणं धण्णमाणप्पमाणनिव्वित्तिलक्खणं भवइ, से तं धण्णमाणपमाणे। से किं तं रसमाणप्पमाणे ?, २ धण्णमाणप्पमाणाओ चउभागविवड्ढिए अब्भितरसिहाजुत्ते रसमाणप्पमाणे विहिज्जइ, तंजहा–चउसट्ठिआ ४ [चउपलपमाणा] बत्तीसिआ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[४५], चूलिकासूत्र-[२] अनुयोगद्वार मूलं एवं हेमचन्द्रसूरि-रचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१३३] + गाथा: ॥--॥

दीप अनुक्रम [२५३--२५६]

८ सोलसिआ १६ अट्ठभाइआ ३२ चउभाइआ ६४ अद्धमाणी १२८ माणी २५६ दो चउसट्ठिआओ बत्तीसिआ दो बत्तीसिआओ सोलसिआ दो सोलसिआओ अट्ठभाइआ दो अट्ठभाइआओ चउभाइया दो चउभाइयाओ अद्धमाणी दो अद्धमाणीओ माणी, एएणं रसमाणपमाणेणं किं पओअणं ?, २ एएणं रसमाणेणं वारकघडककरककलसिअगागरिदइअकरोडिअकुंडिअसंसियाणं[1] रसाणं रसमाणप्पमाणनिव्वित्तिलक्खणं भवइ, से तं रसमाणपमाणे, से तं माणे।

'से किं तं पमाणे' इत्यादि, प्रमीयते–परिच्छिद्यते धान्यद्रव्याद्यनेनेति प्रमाणम्–असतिप्रसृत्यादि, अथवा इदं चेदं च स्वरूपमस्य भवतीत्येवं प्रतिनियतस्वरूपतया प्रत्येकं प्रमीयते–परिच्छिद्यते यत्तत्प्रमाणं–यथोक्तमेव, यदिवा धान्यद्रव्यादेरेव प्रमितिः–परिच्छेदः स्वरूपावगमः प्रमाणम्, अत्र पक्षेऽसतिप्रसृत्यादेस्तद्धेतुत्वात् प्रमाणता, तच्च प्रमाणं द्रव्यादिप्रमेयवशाच्चतुर्विधं, तद्यथा–द्रव्यविषयं प्रमाणं द्रव्यप्रमाणम्, एवं क्षेत्रकालभावप्रमाणेष्वपि वाच्यम् ॥ १३२ ॥

१ कुंडियघोसंसियाणं प्र.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१३३] + गाथा: ॥--॥ दीप अनुक्रम [२५३--२५६]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[४५], चूलिकासूत्र-[२] अनुयोगद्वार मूलं एवं हेमचन्द्रसूरि-रचिता वृत्तिः

अनुयो० मलधारीया ॥ १५२ ॥

तत्र द्रव्यप्रमाणं द्विविधं–प्रदेशनिष्पन्नं विभागनिष्पन्नं च, तत्र प्रदेशा–एकद्वित्र्याद्यणवस्तैर्निष्पन्नं प्रदेशनिष्पन्नं, तत्रैकप्रदेशनिष्पन्नः परमाणुः, द्विप्रदेशनिर्वृत्तो द्विप्रदेशिकः प्रदेशत्रयघटितस्त्रिप्रदेशिकः, एवं यावदनन्तैः प्रदेशैः सम्पन्नोऽनन्तप्रदेशिकः, ननिवदं परमाण्वादिकमनन्तप्रदेशिकस्कन्धपर्यन्तं द्रव्यमेव, ततस्तस्य प्रमेयत्वात् प्रमाणता न युक्तेति चेत्, नैवं, प्रमेयस्यापि द्रव्यादेः प्रमाणतया रूढत्वात्, तथाहि–प्रस्थकादिप्रमाणेन मित्वा पुञ्जीकृतं धान्यादि द्रव्यमालोक्य लोके वक्तारो भवन्ति–प्रस्थकादिरयं पुञ्जीकृतस्तिष्ठतीति, ततश्चैकद्वित्र्यादिप्रदेशनिष्पन्नत्वलक्षणेन स्वस्वरूपेणैव प्रमीयमाणत्वात्परमाण्वादिद्रव्यस्यापि कर्मसाधनप्रमाणशब्दवाच्यताऽदुष्टैव, करणसाधनपक्षे त्वेकद्वित्र्यादिप्रदेशनिष्पन्नत्वलक्षणं स्वरूपमेव मुख्यतया प्रमाणमुच्यते, द्रव्यं तु तत्स्वरूपयोगादुपचारतः, भावसाधनतायां तु प्रमितेः प्रमाणप्रमेयाधीनत्वादुपचारादेव प्रमाणप्रमेययोः प्रमाणताऽवगन्तव्या, तदेवं कर्मसाधनपक्षे परमाण्वादि द्रव्यं मुख्यतया प्रमाणमुच्यते, करणभावसाधनपक्षयोस्तूपचारत इत्यदोषः । इदं च यथोत्तरमन्यान्यसङ्ख्योपेतैः स्वगतैरेव प्रदेशैर्निष्पन्नत्वात् प्रदेशनिष्पन्नमुक्तं, द्वितीयं तु स्वगतप्रदेशान् विहायापरो विविधो विशिष्टो वा भागो भङ्गो विकल्पः प्रकार इतियावत्तेन निष्पन्नं विभागनिष्पन्नं, तथाहि–न धान्यमानादेः स्वगतप्रदेशाश्रयणेन स्वरूपं निरूपयिष्यते, अपि तु 'दो असईओ पसई'त्यादिको यो विशिष्टः प्रकारस्तेनेति । तच्च पञ्चविधं, तद्यथा–मानम् उन्मानम् अवमानं गणिमं प्रतिमानं, पुनरपि मानप्रमाणं द्विधा–धान्यमानप्रमाणं च रसमानप्रमाणं च, तत्र मानमेव

वृत्तिः उपक्रमे प्रमाणद्वारं ॥ १५२ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रमाणं मानप्रमाणं धान्यविषयं मानप्रमाणं धान्यमानप्रमाणं, तच्च 'दो असईओ' इत्यादि, अश्नुते तत्प्रभवत्वेन समस्तधान्यमानानि व्याप्नोतीत्यसतिः–अवाङ्मुखहस्ततलरूपा, तत्परिच्छिन्नं धान्यमपि तथोच्यते, तद्द्वयेन निष्पन्ना नावाकारताव्यवस्थापितप्राञ्जलकरतलरूपा प्रसृतिः, द्वे च प्रसृती सेतिका, सा च नेह प्रसिद्धा गृह्यते, मागधदेशप्रसिद्धस्यैवात्र मानस्य प्रतिपिपादयिषितत्वाद्, अत इयं तत्प्रसिद्धा काचिदवगन्तव्या, चतस्रः सेतिकाः कुडवः, ते चत्वारः प्रस्थः, अमी चत्वार आढक इत्यादि सूत्रसिद्धमेव, यावदष्टभिराढकशतैर्निर्वृत्तो वाहः, अत्राह शिष्यः–एतेनासत्यादिना धान्यमानप्रमाणेन किं प्रयोजनं–किमनेन विधीयते इत्यर्थः, अत्रोत्तरं, एतेन धान्यमानप्रमाणेन 'मुक्तोलीमुखेदुरालिन्दापचारिसंश्रितानां' मुक्तोल्याद्याधारगतानां धान्यानां धान्यस्य–यन्मानम् इयत्तालक्षणं तदेव प्रमाणं तस्य निर्वृत्ति–सिद्धिस्तस्या लक्षणं–परिज्ञानं भवति, एतावदत्र धान्यमस्तीति परिज्ञानं भवतीत्यर्थः, तत्र मुक्तोली–मोट्टा[द्दा]अध उपरि च सङ्कीर्णा मध्ये क्षीषद्विशाला कोष्ठिका, मुखं गत्वा उपरि यदीयते, सुम्बादिव्यूतं ढञ्चनकादि तदिदूरं, आलिन्दकं–कुण्डुल्कम् अपचारि–दीर्घतरधान्यकोष्ठाकारविशेषः। रसमानप्रमाणमाह—'से किं तमि'त्यादि, रसो–मद्यादिस्तद्विषयं मानमेव प्रमाणं रसमानप्रमाणं, किमित्याह–धान्यमानप्रमाणात् सेतिकादेश्चतुर्भागविवर्द्धितं–चतुर्भागाधिकम् अभ्यन्तरशिखायुक्तं यद् रसमानं विधीयते–क्रियते तद्रसमानप्रमाणमुच्यते, धान्यस्याद्रवरूपत्वात्किल शिखा भवति, रसस्य तु द्रवरूपत्वान्न शिखासम्भवोऽतो बहिःशिखाभावात् धान्यमाना-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चतुर्भागवृद्धिलक्षणया अभ्यन्तरशिखया युक्तत्वाच्चाभ्यन्तरशिखायुक्तमित्युक्तं, तद्यथा–चतुःषष्टिकेत्यादि, इदमुक्तं भवति–षट्पञ्चाशदधिकशतद्वयपलमाना माणिकानाम वक्ष्यमाणं रसमानं, तस्य चतुःषष्टितमभागनिष्पन्ना अर्थादेव चतुष्पलप्रमाणा चतुःषष्टिका, एवं माणिकाया एव द्वात्रिंशत्तमभागवर्तित्वादष्टपलप्रमाणा द्वात्रिंशिका, तथा माणिकाया एव षोडशभागवर्तित्वात् षोडशपलप्रमाणा षोडशिका, तस्या एवाष्टमभागवर्तित्वात् द्वात्रिंशत्पलप्रमाणा अष्टभागिका, तस्या एव चतुर्भागवर्तित्वात् चतुःषष्टिपलमाना चतुर्भागिका, तस्या एवार्द्धभागवर्तिनी अष्टाविंशत्यधिकपलशतमानाऽर्द्धमाणिका, इदं च बहुषु वाचनाविशेषेषु न दृश्यत एव, षट्पञ्चाशदधिकशतद्वयपलप्रमाणा माणिका, द्वाभ्यां चतुःषष्टिकाभ्यामेका द्वात्रिंशिका भवतीत्यादि गतार्थमेव, यावदेतेन रसमानप्रमाणेन किं प्रयोजनम्?, अत्रोत्तरम्–'एतेन' रसमानप्रमाणेन वारकघटककरकगर्गरीदृतिकरोडिकाकुण्डिकासंश्रितानां रसानां–रसस्य यन्मानं तदेव प्रमाणं तस्य निर्वृत्तिः–सिद्धिस्तस्या लक्षणं–परिज्ञानं भवति, तत्रातीवविशालमुखा कुण्डिकैव करोडिका उच्यते, शेषं प्रतीतं, क्वचित् 'कलसिए'त्ति दृश्यते, तत्र लघुतरः कलश एव कलशिकेत्यभिधीयते, एवमन्यदपि वाचनान्तरमभ्यूह्यम्। 'से त' मित्यादि निगमनद्वयम्। अथोन्मानमभिधित्सुराह—

से किं तं उम्माणे?, २ जण्णं उम्मिणिज्जइ, तंजहा–अद्धकरिसो करिसो पलं अद्ध-

॥ १५३ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पलं अद्धतुला तुला अद्धभारो भारो, दो अद्धकरिसा करिसो दो करिसा अद्धपलं दो अद्धपलाइं पलं पंच पलसइआ तुला दस तुलाओ अद्धभारो वीसं तुलाओ भारो, एएणं उम्माणपमाणेणं किं पओअणं?, एएणं उम्माणपमाणेणं पत्ताअगरतग-रचोअअकुंकुमखंडगुलमच्छंडिआईणं दव्वाणं उम्माणपमाणनिव्वित्तिलक्खणं भवइ, से तं उम्माणपमाणे।

उन्मीयते तदित्युन्मानम् उन्मीयते अनेनेति वा उन्मानमित्यादि, तत्र कर्मसाधनपक्षमधिकृत्याह—'जं णं उम्मिणिज्जई'त्यादि, यदुन्मीयते–प्रतिनियतस्वरूपतया व्यवस्थाप्यते तदुन्मानं, तद्यथा–अर्द्धकर्ष इत्यादि, पल-स्याष्टमांशोऽर्द्धकर्षः, तस्यैव चतुर्भागः कर्षः, पलस्यार्द्धं अर्द्धपलमित्यादि, सर्वं मागधदेशप्रसिद्धं सूत्रसिद्ध-मेव, नवरं पलाशपत्रकर्मारीपत्रादिकं पत्रं, चोयओ फलविशेषः, मत्स्यण्डिका–शर्कराविशेषः। अवमानं विवक्षुराह—

से किं तं ओमाणे?, २ जण्णं ओमिणिज्जइ, तंजहा–हत्थेण वा दंडेण वा धणुक्केण

१ पंचुत्तर प्र. तुला पलशतमिति तु कोशयोः. २ अगुरु प्र.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वा जुगेण वा नालिआए वा अक्खेण वा मुसलेण वा–दंडधणूजुगनालिआ य अक्ख-मुसलं च चउहत्थं । दसनालिअं च रज्जुं विआण ओमाणसप्पणाए ॥ १ ॥ वत्थुंमि हत्थमेज्जं खित्ते दंडं धणुं च पत्थंमि । खायं च नालिआए विआण ओमाणसप्पणाए ॥ १ ॥ एएणं अवमाणपमाणेणं किं पओअणं ?, एएणं अवमाणपमाणेणं खायचिअ-करकचियकडपडभित्तिपरिक्खेवसंसियाणं दव्वाणं अवमाणपमाणनिव्वित्तिलक्खणं भवइ, से तं अवमाणे । से किं तं गणिमे ?, २ जण्णं गणिज्जइ, तंजहा–एगो दस सयं सहस्सं दस सहस्साइं सयसहस्सं दस सयसहस्साइं कोडी, एएणं गणिमप्पमा-णेणं किं पओअणं ?, एएणं गणिमपमाणेणं भितगभितिभत्तवेअणआयव्वयसंसिआणं दव्वाणं गणियप्पमाणनिव्वित्तिलक्खणं भवइ, से तं गणिमे ।

अवमीयते–परिच्छिद्यते खाताद्यनेनेति अवमानं–हस्तदण्डादि, अथवा अवमीयते–परिच्छिद्यते हस्तादिना यत्तदवमानं–खातादि, तत्र कर्मसाधनपक्षमधिकृत्य तावदाह—'जं ण'मित्यादि, यदवमीयते खातादि तद-वमानं, केनावमीयते इत्याह—'हत्थेण वा दंडेण वा' इत्यादि, तत्र हस्तो–वक्ष्यमाणस्वरूपश्चतुर्विंशत्यङ्गुल-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मानः, अनेनैव हस्तेन चतुर्भिर्हस्तैर्निष्पन्ना अवमानविशेषा दण्डधनुर्युगनालिकाऽक्षमुशलरूपा षट् संज्ञा लभ्यन्ते, अत एवाह—'दंडं'गाहा, दण्डं धनुर्युगं नालिकां चाक्षं मुशलं च करणसाधनपक्षमङ्गीकृत्यावमानसंज्ञया विजानीहीति सम्बन्धः, दण्डादिकं प्रत्येकं कथंभूतमित्याह–चतुर्हस्तं, दशभिर्नालिकाभिर्निष्पन्नां रज्जुं च विजानीह्यवमानसंज्ञयेति गाथार्थः । ननु यदि दण्डादयः सर्वे चतुर्हस्तप्रमाणास्तर्ह्येकेनैव दण्डाद्यन्यतरोपादानेन चरितार्थत्वात् किमिति षण्णामप्युपादानम् ?, उच्यते, मेयवस्तुषु भेदेन व्याप्रियमाणत्वात्, तथा चाह—'वत्थुंमि'गाहा, वास्तुनि–गृहभूमौ मीयतेऽनेनेति मेयं–मानमित्यर्थः, लुप्तद्वितीयैकवचनत्वेन हस्तं विजानीहीति सम्बन्धः, हस्तेनैव वास्तु मीयत इति तात्पर्यम्, क्षेत्रे–कृषिकर्मादिविषयभूते चतुर्हस्तवंशलक्षणं दण्डमेव मानं विजानीहि, धनुरादीनां चतुर्हस्तत्वे समानेऽपि रूढिवशाद्दण्डसंज्ञाप्रसिद्धेनैवावमानविशेषेण क्षेत्रं मीयते इति हृदयं, पथि–मार्गविषये धनुरेव मानं, मार्गगव्यूतादिपरिच्छेदो धनुःसंज्ञाप्रसिद्धेनैवावमानविशेषेण क्रियते न दण्डादिभिरिति भावः, खातं च–कूपादिना नालिकयैव यष्टिविशेषरूपया मीयत इति गम्यते, एवं युगादिरपि यस्य यत्र व्यापारो रूढस्तस्य तत्र वाच्यः, यत्कथंभूतं हस्तदण्डादिकमित्याह–अवमानसंज्ञयोपलक्षितमिति गाथार्थः । एतेनावमानप्रमाणेन किं प्रयोजनमित्यादि भावितार्थमेव, नवरं खातं–कूपादि चितं लिष्टिकादि रचितं–प्रासादपीठादि क्रकचितं–करपत्रविदारितं काष्ठादि, कटादयः प्रतीता एव, परिक्षेपो–भित्त्यादेरेव परिधिः नगरपरिखादिर्वा, एतेषां खातादिसंस्तृतानामभेदेऽपि भेदवि-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[४५], चूलिकासूत्र-[२] अनुयोगद्वार मूलं एवं हेमचन्द्रसूरि-रचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१३३] + गाथा: ||--||

दीप अनुक्रम [२५३--२५६]

कल्पनया खातादिविषयाणां द्रव्याणां खातादीनामेवेति तात्पर्यम्, अवमानमेव प्रमाणं तस्य निर्वृत्तिलक्षणं भवतीति, तदेतदवमानमिति निगमनम्। 'से किं तं गणिमे'इत्यादि, गण्यते–सङ्ख्यायते वस्त्वनेनेति गणिमम्–एकादि, अथवा गण्यते–सङ्ख्यायते यत्तद्गणिमं–रूपकादि, तत्र कर्मसाधनपक्षमङ्गीकृत्याह—'जण्ण'मित्यादि, गण्यते तद्गणिमं, कथं गण्यते इत्याह—'एक्को' इत्यादि, एतेन गणिमप्रमाणेन किं प्रयोजनमित्यादि गतार्थमेव, नवरं भृतकः–कर्मकरो भृतिः–पदात्यादीनां वृत्तिः भक्तं–भोजनं वेतनकं–कुविन्दादिना(दीनां) व्यूतवस्त्रव्यतिकरेऽर्थप्रदानम्, एतेषु विषये आयव्ययसंश्रितानां–प्रतिबद्धानां रूपकादिद्रव्याणां गणिमप्रमाणेन निर्वृत्तिलक्षणम्–इयत्तावगमरूपं भवति, तदेतद्गणिममिति। अथ प्रतिमानप्रमाणं निरूपयितुमाह—

से किं तं पडिमाणे ?, २ जण्णं पडिमिणिज्जइ, तंजहा–गुंजा कागणी निप्फावो कम्ममासओ मंडलओ सुवण्णो, पंच गुंजाओ कम्ममासओ कागण्यपेक्षया, चत्तारि कागणीओ कम्ममासओ तिण्णि निप्फावा कम्ममासओ एवं चउक्को कम्ममासओ काकण्यपेक्षयेत्यर्थः, बारस कम्ममासया मंडलओ एवं अडयालिसं कागणीओ मंडलओ सोलस कम्ममासया सुवण्णो एवं चउसट्ठि कागणीओ सुवण्णो, एएणं पडि-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१३३] + गाथाः ॥--॥

दीप अनुक्रम [२५३--२५६]

माणपमाणेणं किं पओअणं ?, एएणं पडिमाणपमाणेणं सुवण्णरजतमणिमोत्तिअसंखसिलप्पवालाईणं दव्वाणं पडिमाणप्पमाणनिव्वित्तिलक्खणं भवइ, से तं पडिमाणे। से तं विभागनिप्फण्णे। से तं दव्वपमाणे (सू० १३३)

मीयतेऽनेनेति मानं मेयस्य–सुवर्णादेः प्रतिरूपं–सदृशं मानं प्रतिमानं–गुञ्जादि, अथवा प्रतिमीयते तदिति प्रतिमानं, तत्र गुञ्जा चणोठिया १ सपादा गुञ्जा काकणी २ सत्रिभागकाकण्या त्रिभागोनगुञ्जाद्वयेन वा निर्वृत्तो निष्पावः ३, त्रयो निष्पावाः कर्ममाषकः ४, द्वादश कर्ममाषका एको मण्डलकः ५, षोडश कर्ममाषका एकः सुवर्णः ६। अमुमेवार्थं किञ्चित् सूत्रेऽप्याह—'पंच गुंजाओ' इत्यादि, पञ्च गुञ्जा एकः कर्ममाषकः, अथवा चतस्रः काकण्य एकः कर्ममाषकः, यदिवा त्रयो निष्पावका एकः कर्ममाषकः, इदमुक्तं भवति–अस्य प्रकारत्रयस्य मध्ये येन केनचित् प्रकारेण प्रतिभाति तेन वक्ता कर्ममाषकं प्ररूपयतु पूर्वोक्तानुसारेण, न कश्चिदर्थभेद इति। एवं 'चउक्को कम्ममासओ'इत्यादि, चतसृभिः काकिणीभिर्निष्पन्नत्वाच्चतुष्को यः कर्ममाषक इति स्वरूपविशेषणमात्रमिदं, ते द्वादश कर्ममाषका एको मण्डलकः, एवमष्टचत्वारिंशत्काकिणीभिर्मण्डलको भवतीति शेषः, भावार्थः पूर्ववदेव, षोडश कर्ममाषकाः सुवर्णः, अथवा चतुःषष्टिः काकण्य एकः सुवर्णो, भावार्थः स एव, एतेन प्रतिमानप्रमाणेन किं प्रयोजनमित्यादि गतार्थं, नवरं रजतं–रूप्यं मणयः–

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[४५], चूलिकासूत्र-[२] अनुयोगद्वार मूलं एवं हेमचन्द्रसूरि-रचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१३४] + गाथा: ॥--॥

दीप अनुक्रम [२५७--२७०]

चन्द्रकान्तादयः शिला–राजपट्टकः, गन्धपट्ट इत्यन्ये, शेषं प्रतीतं, यावत्तदेतत्प्रतिमानप्रमाणं, तदेवं समर्थितं मानोन्मानादिभेदभिन्नं पञ्चविधमपि विभागनिष्पन्नं द्रव्यप्रमाणं, तत्समर्थने च समर्थितं द्रव्यप्रमाणम् ॥१३३॥

अथ क्षेत्रप्रमाणमभिधित्सुराह—

से किं तं खेत्तपमाणे ?, २ दुविहे पण्णत्ते, तंजहा–पएसणिप्फण्णे अ विभागणिप्फण्णे अ । से किं तं पएसणिप्फण्णे ?, २ एगपएसोगाढे दुपएसोगाढे तिपएसोगाढे संखिज्जप० असंखिज्जप०, से तं पएसणिप्फण्णे । से किं तं विभागणिप्फण्णे ?, २–अंगुलविहत्थिरयणी कुच्छी धणु गाउअं च बोद्धव्वं । जोयण सेढी पयरं लोगमलोगेऽवि अ तहेव ॥ १ ॥ से किं तं अंगुले ?, २ तिविहे पण्णत्ते, तंजहा–आयंगुले उस्सेहंगुले पमाणंगुले । से किं तं आयंगुले ?, २ जे णं जया मणुस्सा भवंति तेसि णं तया अप्पणो अंगुलेणं दुवालसअंगुलाइं मुहं नवमुहाइं पुरिसे पमाणजुत्ते भवइ, दोण्णिए पुरिसे माणजुत्ते भवइ, अद्धभारं तुल्लमाणे पुरिसे उम्माणजुत्ते भवइ,–माणुम्माणपमाणजुत्ता(णय) लक्खणवंजणगुणेहिँ उववेआ । उत्तमकुलप्पसूआ उत्तमपुरिसा मुणे-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अव्वा ॥ १ ॥ होंतिं पुण अहियपुरिसा अट्ठसयं अंगुलाण उव्विद्धा । छण्णउइ अहम्मपुरिसा चउत्तरं मज्झिमिल्ला उ ॥ २ ॥ हीणा वा अहिया वा जे खलु सरसत्तसारपरिहीणा । ते उत्तमपुरिसाणं अवस्स पेसत्तणमुवेंति ॥ ३ ॥ एएणं अंगुलपमाणेणं छ अंगुलाइं पाओ दो पाया विहत्थी दो विहत्थीओ रयणी दो रयणीओ कुच्छी दो कुच्छीओ दंडं धणू जुगे नालिआ अक्ख मुसले दो धणुसहस्साइ गाउअं चत्तारि गाउआइं जोअणं ।

इदमपि द्विविधं–प्रदेशनिष्पन्नं विभागनिष्पन्नं च, तत्र प्रदेशा इह क्षेत्रस्य निर्विभागा भागास्तैर्निष्पन्नं प्रदेशनिष्पन्नं, विभागः–पूर्वोक्तस्वरूपस्तेन निष्पन्नं विभागनिष्पन्नं । 'से किं तं पएसनिप्फण्णे' तत्रैकप्रदेशावगाढाद्यसङ्ख्येयप्रदेशावगाढपर्यन्तं प्रदेशनिष्पन्नम्, एकप्रदेशाद्यवगाढताया एकादिभिः क्षेत्रप्रदेशैर्निष्पन्नत्वात् अत्रापि प्रदेशनिष्पन्नता भावनीया, प्रमाणता त्वेकप्रदेशावगाहित्वादिना स्वस्वरूपेणैव प्रमीयमानत्वादिति । विभागनिष्पन्नं त्वङ्गुलादि, तदेवाह—'अंगुलविहत्थि' गाहा, अङ्गुलादिस्वरूपं च स्वत एव शास्त्रकारो न्यक्षेण वक्ष्यति। तत्राङ्गुलस्वरूपनिर्द्धारणायाह—'से किं तं अंगुले' इत्यादि, अङ्गुलं त्रिविधं प्रज्ञप्तं, तद्यथा–

अनु. २७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[४५], चूलिकासूत्र-[२] अनुयोगद्वार मूलं एवं हेमचन्द्रसूरि-रचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१३४] + गाथाः ॥--॥

दीप अनुक्रम [२५७--२७०]

आत्माङ्गुलम् उत्सेधाङ्गुलं प्रमाणाङ्गुलं, तत्र ये यस्मिन् काले भरतसगरादयो मनुष्याः प्रमाणयुक्ता भवन्ति तेषां च सम्बन्धी अत्रात्मा गृह्यते, आत्मनोऽङ्गुलमात्माङ्गुलम्, अत एवाह—'जे ण'मित्यादि, ये भरतादयः प्रमाणयुक्ता यदा भवन्ति तेषां तदा स्वकीयमङ्गुलमात्माङ्गुलमुच्यत इति शेषः, इदं च पुरुषाणां कालादिभेदेनानवस्थितमानत्वादनियतप्रमाणं द्रष्टव्यम्, अनेनैवात्माङ्गुलेन पुरुषाणां प्रमाणयुक्ततादिनिर्णयं कुर्वन्नाह—'अप्पणो अंगुलेणं दुवालसे'त्यादि, यद्यस्यात्मीयमङ्गुलं तेनात्मनोऽङ्गुलेन द्वादशाङ्गुलानि मुखं प्रमाणयुक्तं भवति, अनेन च मुखप्रमाणेन नव मुखानि सर्वोऽपि पुरुषः प्रमाणयुक्तो भवति, प्रत्येकं द्वादशाङ्गुलैर्नवभिर्मुखैरष्टोत्तरं शतमङ्गुलानां संपद्यते, ततश्चैतावदुच्छ्रयः पुरुषः प्रमाणयुक्तो भवतीति परमार्थः। अथ तस्यैव मानयुक्ततामतिपादनार्थमाह–द्रोणिकः पुरुषो मानयुक्तो भवति, द्रोणी–जलपरिपूर्णा महती कुण्डिका तस्यां प्रवेशितो यः पुरुषो जलस्य द्रोणं पूर्वोक्तस्वरूपं निष्काशयति द्रोणोनजलस्योनां वा तां पूरयति स द्रोणिकः पुरुषो मानयुक्तो निगद्यते इति भावः। इदानीमेतस्यैवोन्मानयुक्ततामाह–सारपुद्गलरचितत्वात् तुलारोपितः सन्नर्द्धभारं तुलयन् पुरुष उन्मानयुक्तो भवति, तत्रोत्तमपुरुषा यथोक्तैः प्रमाणमानोन्मानैः अन्यैश्च सर्वैरेव गुणैः सम्पन्ना एव भवन्तीत्येतदर्शयन्नाह—'माणुम्माण' गाहा, अनन्तरोक्तस्वरूपैर्मानोन्मानप्रमाणैर्युक्ता उत्तमपुरुषाः चक्रवर्त्यादयो मुणितव्या इति सम्बन्धः, तथा लक्षणानि–शङ्खस्वस्तिकादीनि व्यञ्जनानि–मषीतिलकादीनि गुणाः–क्षान्त्यादयस्तैरुपेताः, तथोत्तमकुलानि–उग्रादीनि तत्प्रसूता इति गाथार्थः॥ अथात्मा-

॥ १५७ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१३४] + गाथाः ॥--॥

दीप अनुक्रम [२५७--२७०]

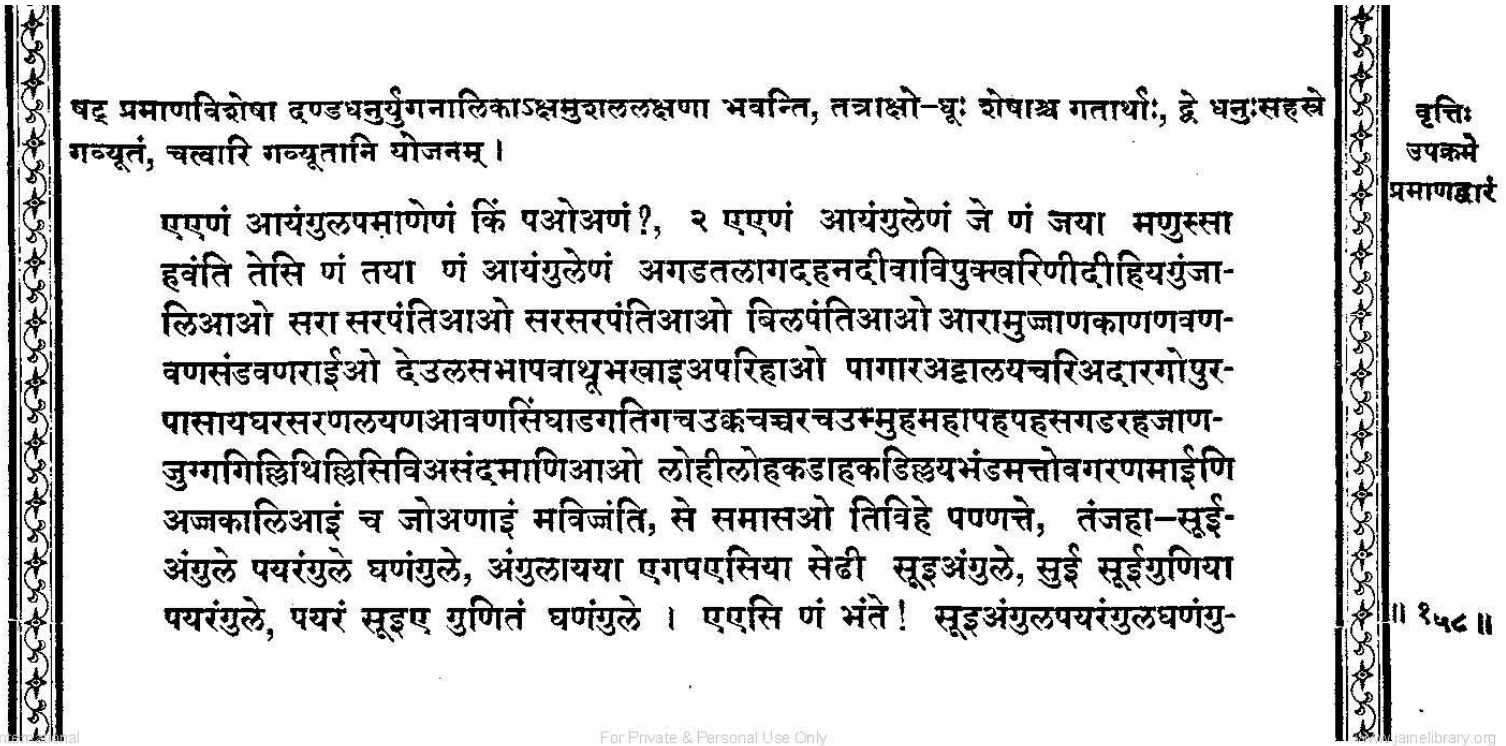
अङ्गुलेनैवोत्तममध्यमाधमपुरुषाणां प्रमाणमाह—'हुंति पुण' गाहा, भवन्ति पुनरधिकपुरुषा–उत्तमपुरुषाश्चक्रवर्त्यादयः अष्टशतमङ्गुलम् उच्चित्वा–उन्मिता उच्चैस्त्वेन वा, पुनःशब्दस्त्वेषामेवाधिकपुरुषादीनामनेकभेदतादर्शकः, आत्माङ्गुलेनैव षण्णवत्यङ्गुलान्यधमपुरुषा भवन्ति, 'चउरुत्तर मज्झमिल्ला उ'त्ति तेनैवाङ्गुलेन चतुरुत्तरमङ्गुलशतं मध्यमाः, तुशब्दो यथानुरूपशेषलक्षणादिभावप्रतिपादनपर इति गाथार्थः ॥ ये अष्टोत्तरशताङ्गुलमानाद्धीना अधिका वा ते किं भवन्तीत्याह—'हीणा वा' गाहा, अष्टोत्तरशताङ्गुलमानात् हीना वा अधिका वा ये खलु स्वरः–सकलजनादेयत्वप्रकृतिगम्भीरतादिगुणालङ्कृतो ध्वनिः सत्त्वं–दैन्यविनिर्मुक्तो मानसोऽवष्टम्भः सारः–शुभपुद्गलोपचयजः शारीरः शक्तिविशेषः तैः परिहीनाः सन्तस्ते उत्तमपुरुषाणाम्-उपचितपुण्यप्राग्भाराणाम् अवशा–अनिच्छन्तोऽप्यशुभकर्मवशतः प्रेष्यत्वमुपयान्ति, स्वरादिशेषलक्षणवैकल्यसहायं च यथोक्तप्रमाणाद्धीनाधिक्यमनिष्टफलप्रदायि प्रतिपत्तव्यं, न केवलमिति लक्ष्यते, भरतचक्रवर्त्यादीनां स्वाङ्गुलतो विंशत्यधिकाङ्गुलशतप्रमाणानामपि निर्णीतत्वात्, महावीरादीनां च केषाञ्चिन्मतेन चतुरशीत्याद्यङ्गुलप्रमाणत्वाद्, भवन्ति च विशिष्टाः स्वरादयः प्रधानफलदायिनो, यत उक्तम्—"अस्थिष्वर्थाः सुखं मांसे, त्वचि भोगाः स्त्रियोऽक्षिषु। गतौ यानं स्वरे चाज्ञा, सर्वं सत्त्वे प्रतिष्ठितम् ॥ १ ॥" इति गाथार्थः ॥ एतेनाङ्गुलप्रमाणेन षडङ्गुलानि पादः, पादस्य मध्यतलप्रदेशः षडङ्गुलविस्तीर्णः, पादैकदेशत्वात् पादः, द्वौ च युग्मीकृतौ पादौ वितस्तिः, द्वे च वितस्ती रत्निः, हस्त इत्यर्थः, रत्निद्वयं कुक्षिः, प्रत्येकं कुक्षिद्वयनिष्पन्नास्तु

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[४५], चूलिकासूत्र-[२] अनुयोगद्वार मूलं एवं हेमचन्द्रसूरि-रचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१३४] + गाथा: ॥--॥

दीप अनुक्रम [२५७--२७०]



अनुयो० मलधारीया ॥ १५८ ॥

षट् प्रमाणविशेषा दण्डधनुर्युगनालिकाऽक्षमुशललक्षणा भवन्ति, तत्राक्षो–घूः शेषाश्च गतार्थाः, द्वे धनुःसहस्रे गव्यूतं, चत्वारि गव्यूतानि योजनम् ।

एएणं आयंगुलपमाणेणं किं पओअणं?, २ एएणं आयंगुलेणं जे णं जया मणुस्सा हवंति तेसि णं तया णं आयंगुलेणं अगडतलागदहनदीवाविपुक्खरिणीदीहियगुंजालिआओ सरा सरपंतिआओ सरसरपंतिआओ बिलपंतिआओ आरामुज्जाणकाणणवणवणसंडवणराईओ देउलसभापवाथूभखाइअपरिहाओ पागारअट्टालयचरिअदारगोपुरपासायघरसरणलयणआवणसिंघाडगतिगचउक्कचच्चरचउम्मुहमहापहपहसगडरहजाणजुग्गगिल्लिथिल्लिसिविअसंदमाणिआओ लोहीलोहकडाहकडिल्लयभंडमत्तोवगरणमाईणि अज्जकालिआइं च जोअणाइं मविज्जंति, से समासओ तिविहे पण्णत्ते, तंजहा–सूईअंगुले पयरंगुले घणंगुले, अंगुलायया एगपएसिया सेढी सूइअंगुले, सुई सूईगुणिया पयरंगुले, पयरं सूइए गुणितं घणंगुले । एएसि णं भंते! सूइअंगुलपयरंगुलघणंगु-

वृत्तिः उपक्रमे प्रमाणद्वारं

॥ १५८ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१३४] + गाथाः ॥--॥

दीप अनुक्रम [२५७--२७०]

लाणं कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा?, सव्वथोवे सूइअंगुले, पयरंगुले असंखेज्जगुणे, घणंगुले असंखिज्जगुणे, से तं आयंगुले ।

गतार्थं, नवरं ये यदा मनुष्या भवन्ति तेषां तदा आत्मनोऽङ्गुलेन स्वकीयस्वकीयकालसम्भवीन्यवटह्रदादीनि मीयन्त इति सण्टङ्कः, तत्र अवटः–कूपः तडागः–खानितो जलाशयविशेषः वाप्यः–चतुरस्रा जलाशयविशेषाः, पुष्करिण्यो–वृत्तास्ता एव पुष्करवन्त्यो वा दीर्घिकाः–सारिण्यः सारिण्य एव वक्रा गुञ्जालिका भण्यन्ते सरः–स्वयंसम्भूतो जलाशयविशेष एव सरपंतियाउत्ति–पङ्क्तिभिर्व्यवस्थापितानि सरांसि सरःपङ्क्तयः सरसरपंतियाउत्ति–यासु सरःपङ्क्तिष्वेकस्मात्सरसोऽन्यत्र ततोऽपि अन्यत्र कपाटसञ्चारकेनोदकं संचरति ताः सरःसरःपङ्क्तयः बिलपङ्क्तयः प्रतीताः माधवीलतादिषु दम्पत्यादीनि येष्वारमन्ति–क्रीडन्ति ते आरामाः पुष्पफलादिसमृद्धानेकवृक्षसङ्कुलान्युत्सवादौ बहुजनपरिभोग्यान्युद्यानानि सामान्यवृक्षजातियुक्तानि नगराभ्यर्णवर्तीनि काननानि, अथवा स्त्रीणां पुरुषाणां वा केवलानां परिभोग्यानि काननानि, यदिवा येभ्यः परतो भूधरोऽटवी वा तानि सर्वेभ्योऽपि वनेभ्यः पर्यन्तवर्त्तीनि काननानि, शीर्णवृक्षकलितानि वा काननानि, एकजातीयवृक्षाकीर्णानि वनानि, अनेकजातीयैरुत्तमैश्च पादपैराकीर्णानि वनखण्डानि, एकजातीयानामितरेषां वा तरूणां पङ्क्तयो वनराजयः, सन्तो भजन्त्येतामिति सभा–पुस्तकवाचनभूमिर्बहुजनसमागमस्थानं वा अध उपरि च समखातरूपा खातिका अधः सङ्कीर्णोपरि विस्तीर्णा खातरूपा तु

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[४५], चूलिकासूत्र-[२] अनुयोगद्वार मूलं एवं हेमचन्द्रसूरि-रचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१३४] + गाथाः ||--||

दीप अनुक्रम [२५७--२७०]

परिखा प्राकारोपरि आश्रयविशेषाः अट्टालकाः गृहाणा प्राकारस्य चान्तरे अष्टहस्तविस्तारो हस्त्यादिसञ्चारमार्गश्चरिका प्रतोलीद्वाराणां परस्परतोऽन्तराणि गोपुराणि राजानां देवतानां च भवनानि प्रासादाः उत्सेधबहुला वा प्रासादाः गृहाणि सामान्यजनानां सामान्यानि वा, शरणानि तृणमयावसरिकादीनि लयनानि–उत्कीर्णपर्वतगृहाणि गिरिगुहा वा कार्पटिकाद्यावासस्थानं वा आपणा–हट्टाः नानाहट्टगृहाध्यासितस्त्रिकोणो भूभागविशेषः शृङ्गाटकं, स्थापना ▽ त्रिपथसमागमो वा शृङ्गाटकं त्रिकं तु त्रिपथसमागम एव तथा प्रभूतगृहाश्रयश्चतुरस्रो भूभागश्चतुष्कं यथा(द्वा) चतुष्पथसमागमो वा चतुष्कं, चत्वरं चतुष्पथसमागम एव, षट्पथसमागमो वा चत्वरं, चतुर्मुखदेवकुलिकादि चतुर्मुखं महान् राजमार्गो महापथः इतरे पन्थानः देवकुलसभादीनि पदानि क्वचिद्वाचनाविशेषे अत्रैवान्तरे दृश्यन्ते, शकटं–गडुकादि रथो द्विधा–यानरथः सङ्ग्रामरथश्च, तत्र सङ्ग्रामरथस्योपरि प्राकारानुकारिणी कटीप्रमाणा फलकमयी वेदिका क्रियते, अपरस्य त्वसौ न भवतीति विशेषः, यानं–गच्छ्यादि जुग्गत्ति–गोल्लविषयप्रसिद्धं द्विहस्तप्रमाणं चतुरस्रवेदिकोपशोभितं जम्पानं, गिल्लित्ति–हस्तिन उपरि कोल्लरूपा या मानुषं गिलतीव, थिल्लित्ति–लाटानां यदङ्गपल्लाणं रूढं तदन्यविषयेषु थिल्लीत्युच्यते सीयत्ति–शिबिका कूटाकाराच्छादितो जम्पानविशेषः 'संदमाणिय'त्ति पुरुषप्रमाणायामो जम्पानविशेष एव लोहित्ति–लोही मण्डनकादिपचनिका कविल्ली लोहकडाहित्ति–लोहमयं बृहत्कडिल्लं भाण्डं–मृन्मयादिभाजनं मात्रः–कांश(स्य)भाजनाद्युपकरणमात्राया आधारविशेषः उपकरणं त्वनेकविधं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कटपिटकशूर्पादिकं, शेषं तु यदिह क्वचित्किञ्चिन्न व्याख्यातं तत्सुगमत्वादिति मन्तव्यं । तदेवमात्माङ्गुलेनात्मीयात्मीयकालसम्भवीनि वस्तुन्यद्यकालीनानि च योजनानि मीयन्ते, ये यत्र काले पुरुषा भवन्ति तदपेक्षयाऽद्यशब्दो द्रष्टव्यः ॥ इदं चात्माङ्गुलं सूच्यङ्गुलादिभेदात् त्रिविधं, तत्र दैर्घ्येणाङ्गुलायता बाहल्यतस्त्वेकप्रादेशिकी नभःप्रदेशश्रेणिः सूच्यङ्गुलमुच्यते, एतच्च सद्भावतोऽसङ्ख्येयप्रदेशमप्यसत्कल्पनया सूच्याकारव्यवस्थापितप्रदेशत्रयनिष्पन्नं द्रष्टव्यं, तद्यथा ०००, सूची सूच्यैव गुणिता प्रतराङ्गुलम्, इदमपि परमार्थतोऽसङ्ख्येयप्रदेशात्मकम्, असद्भावतस्त्वेषैवानन्तरदर्शिता त्रिप्रदेशात्मिका सूचिस्तयैव गुण्यते, अतः प्रत्येकं प्रदेशत्रयनिष्पन्नसूचीत्रयात्मकं नवप्रदेशसङ्ख्यं संपद्यते, स्थापना ⁝⁝⁝, प्रतरश्च सूच्या गुणितो दैर्घ्येण विष्कम्भतः पिण्डतश्च समसङ्ख्यं घनाङ्गुलं भवति, दैर्घ्यादिषु त्रिष्वपि स्थानेषु समतालक्षणस्यैव समयचर्य्यया घनस्येह रूढत्वात्, प्रतराङ्गुलं तु दैर्घ्यविष्कम्भाभ्यामेव समं, न पिण्डतः, तस्यैकप्रदेशमात्रत्वादिति भावः, इदमपि वस्तुवृत्त्याऽसङ्ख्येयप्रदेशमानम् असत्प्ररूपणया तु ससविंशतिप्रदेशात्मकं, पूर्वोक्तसूच्या अनन्तरोक्तनवप्रदेशात्मके प्रतरे गुणिते एतावतामेव प्रदेशानां भावाद्, एषां च स्थापना अनन्तरनिर्दिष्टनवप्रदेशात्मकप्रतरस्याध उपरि च नव नव प्रदेशान् दत्त्वा भावनीया, तथा च दैर्घ्यविष्कम्भपिण्डैस्तुल्यमिदमापद्यते। 'एएसि णं भंते' इत्यादिना सूच्यङ्गुलादिप्रदेशानामल्पबहुत्वचिन्ता यथानिर्दिष्टव्याख्यानुसारतः सुखावसेयैव, तदेतदात्माङ्गुलमिति। अथोत्सेधाङ्गुलनिर्णयार्थमाह—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[४५], चूलिकासूत्र-[२] अनुयोगद्वार मूलं एवं हेमचन्द्रसूरि-रचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१३४] + गाथा: ||--||

दीप अनुक्रम [२५७--२७०]

से किं तं उस्सेहंगुले?, २ अणेगविहे पण्णत्ते, तंजहा–परमाणू तसरेणू रहरेणू अग्गयं च वालस्स। लिक्खा जूआ य जवो अट्ठगुणविवड्ढिआ कमसो ॥ १ ॥ से किं तं परमाणू?, २ दुविहे पण्णत्ते, तंजहा–सुहुमे अ ववहारिए अ, तत्थ णं जे से सुहुमे से ठप्पे, तत्थ णं जे से ववहारिए से णं अणंताणंताणं सुहुमपोग्गलाणं समुदयसमितिसमागमेणं ववहारिए परमाणुपोग्गले निप्फज्जइ, से णं भंते! असिधारं वा खुरधारं वा ओगाहेज्जा?, हन्ता ओगाहेज्जा, से णं तत्थ छिज्जेज्ज वा भिज्जेज्ज वा?, नो इणट्ठे समट्ठे, नो खलु तत्थ सत्थं कमइ, से णं भंते! अगणिकायस्स मज्झंमज्झेणं वीइवएज्जा?, हंता वीइवएज्जा, से णं भंते! तत्थ डहेज्जा?, नो इणट्ठे समट्ठे, नो खलु तत्थ सत्थं कमइ, से णं भंते! पुक्खरसंवट्टगस्स महामेहस्स मज्झंमज्झेणं वीइवएज्जा?, हंता वीइवएज्जा, से णं तत्थ उदउल्ले सिआ?, नो इणट्ठे समट्ठे, णो खलु तत्थ सत्थं कमइ, से णं भंते! गंगाए महाणईए पडिसोयं हव्वमागच्छेज्जा?, हंता हव्वमाग-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

च्छेज्जा, से णं तत्थ विणिघायमावज्जेज्जा?, नो इणट्ठे समट्ठे, णो खलु तत्थ सत्थं कमइ, से णं भंते! उदगावत्तं वा उदगबिंदुं वा ओगाहेज्जा?, हंता ओगाहेज्जा, से णं तत्थ कुच्छेज्जा वा? परियावज्जेज्ज वा?, णो इणट्ठे समट्ठे, नो खलु तत्थ सत्थं कमइ,–सत्थेण सुतिक्खेणवि छित्तुं भेत्तुं च जं किर न सक्का । तं परमाणुं सिद्धा वयंति आइं पमाणाणं ॥ १ ॥

उत्सेधः–'अणंताणं सुहुमपरमाणुपोग्गलाण'मित्यादिक्रमेणोच्छ्रयो वृद्धिनयनं तस्माज्जातमङ्गुलमुत्सेधाङ्गुलम्, अथवा उत्सेधो–नारकादिशरीराणामुच्चैस्त्वं तत्स्वरूपनिर्णयार्थमङ्गुलमुत्सेधाङ्गुलं, तच्च कारणस्य परमाणुत्रसरेण्वादेरनेकविधत्वादनेकविधं प्रज्ञप्तं, तदेव कारणानेकविधत्वं दर्शयति—'तत्थे'त्यादि, 'परमाणू' इत्यादिगाथां सूत्रकृत् स्वयमेव विवरीषुराह—'से किं तं परमाणू' इत्यादि, परमाणुर्द्विविधः प्रज्ञप्तः–सूक्ष्मो व्यावहारिकश्च, तत्र सूक्ष्मस्तत्स्वरूपाख्यानं प्रति स्थाप्यः, अनधिकृत इत्यर्थः, 'से किं तं ववहारिए' इत्यादि, ननु कियद्भिः सूक्ष्मैर्नैश्चयिकपरमाणुभिरेको व्यावहारिकः परमाणुर्निष्पद्यते?, अत्रोत्तरम्, 'अनंताण'मित्यादि, अनन्तानां सूक्ष्मपरमाणुपुद्गलानां सम्बन्धिनो ये समुदायाः–द्व्यादिसमुदायात्मकानि वृन्दानि तेषां याः समितयो–बहूनि मीलनानि तासां समागमः–संयोग एकीभवनं समुदयसमितिसमागमः, तेन व्यावहारिकपरमाणुपुद्गल एको नि-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[४५], चूलिकासूत्र-[२] अनुयोगद्वार मूलं एवं हेमचन्द्रसूरि-रचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१३४] + गाथाः ||--||

दीप अनुक्रम [२५७--२७०]

ष्पद्यते, इदमुक्तं भवति–निश्चयनयः—"कारणमेव तदन्त्यं सूक्ष्मो नित्यश्च भवति परमाणुः। एकरसवर्णगन्धो द्विस्पर्शः कार्यलिङ्गश्च ॥ १ ॥" इत्यादिलक्षणसिद्धं निर्विभागमेव परमाणुमिच्छति, यस्त्वेतैरनेकैर्जायते तं सांशत्वात् स्कन्धमेव व्यपदिशति, व्यवहारस्तु तदनेकतानिष्पन्नोऽपि यः शस्त्रच्छेदाग्निदाहादिविषयो न भवति तमद्यापि तथाविधस्थूलताऽप्रतिपत्तेः परमाणुत्वेन व्यवहरति, ततोऽसौ निश्चयतः स्कन्धोऽपि व्यवहारनयमतेन व्यावहारिकः परमाणुरुक्तः, न च वक्तव्यम्–अयं तर्हि शस्त्रच्छेदादिविषयो भवति, यतस्तन्निषेधार्थमेव प्रश्नमुत्पातयति—'से णं भंते!' इत्यादि, स भदन्त! व्यावहारिकपरमाणुः कदाचित् असिः–खड्गं तद्धारां वा क्षुरो–नापितोपकरणं तद्धारां वा अवगाहेत–आक्रामेद् ?, अत्रोत्तरं, 'हन्तावगाहेतेति' हन्तेति कोमलामन्त्रणे अभ्युपगमद्योतने वा अवगाहेतेति शिष्यपृष्टार्थस्याभ्युपगमवचनं, पुनः पृच्छति–स तत्रावगाढः संछिद्येत वा–द्विधा क्रियेत भिद्येत वा–अनेकधा विदार्येत सूच्यादिना वस्त्रादिवद्वा सच्छिद्रः क्रियते ?, उत्तरमाह–नायमर्थः समर्थः, नैतदेवमिति भावः, अत्रोपपत्तिमाह–न खलु तत्र शस्त्रं क्रामति, इदमुक्तं भवति–यद्यप्यनन्तैः परमाणुभिर्निष्पन्नाः काष्ठादयः शस्त्रच्छेदादिविषया दृष्टास्तथाप्यनन्तकस्याप्यनन्तभेदत्वात् तावत्प्रमाणेनैव परमाण्वनन्तकेन निष्पन्नोऽसौ व्यावहारिकः परमाणुर्ग्राह्यो यावत्प्रमाणेन निष्पन्नोऽद्यापि सूक्ष्मत्वान्न शस्त्रच्छेदादिविषयतामासादयतीति भावः। पुनरप्याह—स भदन्ताग्निकायस्य–वह्नेर्मध्यंमध्येन–अन्तरे व्यतिव्रजेद्–गच्छेत् ?, हन्तेत्यादुत्तरं पूर्ववत्, नवरं शस्त्रमिहाग्निशस्त्रं ग्राह्यं, पुनः पृच्छति—'से णं भंते! पुक्खले'

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

त्यादि, इदमपि सूत्रं पूर्ववद्भावनीयं, नवरं पुष्करसंवर्तस्य–महामेघस्येयं प्ररूपणा–इहोत्सर्पिण्यामेकविंशतिवर्षसहस्रमाने दुष्षमदुष्षमालक्षणे प्रथमारकेऽतिक्रान्ते द्वितीयस्यादौ सकलजनस्याभ्युदयार्थं क्रमेणामी पञ्च महामेघाः प्रादुर्भविष्यन्ति, तद्यथा–पुष्कलसंवर्तक उदकरसः प्रथमः द्वितीयः क्षीरोदस्तृतीयो घृतोदश्चतुर्थोऽमृतोदः पञ्चमो रसोदः, तत्र पुष्कलसंवर्तोऽस्य भरतक्षेत्रस्य पुष्कलं–प्रचुरमपि सर्वमशुभानुभावं भूमिरूक्षतादाहादिकं प्रशस्तोदकेन संवर्तयति–नाशयति, एवं शेषमेघव्यापारोऽपि प्रथमानुयोगादवगन्तव्यः, 'उदउल्ले सिय'त्ति उदकेनार्द्रः स्यादित्यर्थः, शस्त्रता चात्रोदकस्यावसेया, 'से णं भंते! गंगाए' इत्यादि, गङ्गाया महानद्याः प्रतिस्रोतो हव्यं–शीघ्रमागच्छेत्, पूर्वाद्यभिमुखे गङ्गाप्रवाहे वहति सति पश्चिमाद्यभिमुखः स आगच्छेत् तन्मध्येनेति भावः, 'विणिहाय'मित्यादि, विनिघातः–तत्स्रोतसि प्रतिस्खलनं तमापद्येत–प्राप्नुयात्, शेषं पूर्ववत्, 'से णं भंते! उदगावत्त'मित्यादि, उदकावर्तोदकबिन्दोर्मध्ये अवगाह्य तिष्ठेदित्यर्थः?, स च तत्रोदकसम्पर्कात् कुथ्येद्वा–पूतिभावं यायात् पर्यापद्येत वा–जलरूपतया परिणमेदित्यर्थः, शेषं तथैव, पूर्वोक्तमेवार्थं संक्षेपतः प्राह—'सत्थेण' गाहा गतार्था, नवरं लक्षणमेवास्येदमभिधीयते, न पुनस्तं कोऽपि छेत्तुं भेत्तुमारभते इत्येतत् किलशब्देन सूचयति, सिद्धत्ति–ज्ञानसिद्धाः केवलिनो, न तु सिद्धाः सिद्धिगताः, तेषां वदनस्यासम्भवादिति।

अणंताणं ववहारिअपरमाणुपोग्गलाणं समुदयसमितिसमागमेणं सा एगा उसण्हस-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

णिहआ इ वा सण्हसण्हिआ इ वा उड्ढरेणू इ वा तसरेणू इ वा रहरेणू इ वा, अट्ठ उसण्हसण्हिआओ सा एगा सण्हसण्हिआ, अट्ठ सण्हसण्हिआओ सा एगा उड्ढरेणू, अट्ठ उड्ढरेणुओ सा एगा तसरेणू, अट्ठ तसरेणूओ सा एगा रहरेणू, अट्ठ रहरेणूओ देवकुरुउत्तरकुरूणं मणुआणं से एगे वालग्गे, अट्ठ देवकुरुउत्तरकुरूणं मणुआण वालग्गा हरिवासरम्मगवासाणं मणुआणं से एगे वालग्गे, अट्ठ हरिवस्सरम्मगवासाणं मणुस्साणं वालग्गा हेमवयहेरण्णवयाणं मणुस्साणं से एगे वालग्गे, अट्ठ हेमवयहेरण्णवयाणं मणुस्साणं वालग्गा पुव्वविदेहअवरविदेहाणं मणुस्साणं से एगे वालग्गे, अट्ठ पुव्वविदेहअवरविदेहाणं मणुस्साणं वालग्गा भरहएरवयाणं मणुस्साणं से एगे वालग्गे, अट्ठ भरहेरवयाणं मणुस्साणं वालग्गा सा एगा लिक्खा, अट्ठ लिक्खाओ सा एगा जूआ, अट्ठ जूआओ एगे जवमज्झे, अट्ठ जवमज्झे से एगे अंगुले। एएणं अंगुलाणपमाणेणं छ अंगुलाइं पादो बारस अंगुलाइं विहत्थी चउवीसं अंगुलाइं र-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[४५], चूलिकासूत्र-[२] अनुयोगद्वार मूलं एवं हेमचन्द्रसूरि-रचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१३४] + गाथा: ||--||

दीप अनुक्रम [२५७--२७०]

यणी अडयालीसं अंगुलाइं कुच्छी छन्नवइ अंगुलाइं से एगे दंडे इ वा धणू इ वा जुगे इ वा नालिआ इ वा अक्खे इ वा मुसले इ वा, एएणं धणुप्पमाणेणं दो धणुसहस्साइं गाउअं चत्तारि गाउआइं जोअणं। एएणं उस्सेहंगुलेणं किं पओअणं?, एएणं उस्सेहंगुलेणं णेरइअतिरिक्खजोणिअमणुस्सदेवाणं सरीरोगाहणा मविज्जति।

अनन्तानां व्यावहारिकपरमाणुपुद्गलानां समुदयसमितिसमागमेन या परमाणुतेति गम्यते, सा एका अतिशयेन श्लक्ष्णा श्लक्ष्णश्लक्ष्णा सैव श्लक्ष्णश्लक्ष्णिका, उत्तरप्रमाणापेक्षया उत्–प्राबल्येन श्लक्ष्णश्लक्ष्णिका उत्श्लक्ष्णश्लक्ष्णिका, इतिशब्दः स्वरूपप्रदर्शने, वाशब्द उत्तरापेक्षया समुच्चये, एवं श्लक्ष्णश्लक्ष्णिकेति वा इत्यादिष्वपि वाच्यम्, एते चोत्श्लक्ष्णश्लक्ष्णिकादयो यद्यपि यथोत्तरमष्टगुणत्वेन प्रतिपादयिष्यन्ते तथापि प्रत्येकमनन्तपरमाणुनिष्पन्नत्वसाम्यं न व्यभिचरन्त्यतः प्रथमं निर्विशेषितमप्युक्तं 'सा एगा उसण्हसण्हियाइ वा' इत्यादि, प्राक्तनप्रमाणादष्टगुणत्वादूर्ध्वरेण्वपेक्षया त्वष्टमभागवर्तित्वात् श्लक्ष्णश्लक्ष्णिकेत्युच्यते, स्वतः परतो वा ऊर्ध्वाधस्तिर्यक्चलनधर्मा रेणुरूर्ध्वरेणुः, एतानि चोत्श्लक्ष्णश्लक्ष्णिकादीनि त्रीणि पदानि 'परमाणू तसरेणू' इत्यादिगाथायां अनुक्तान्यप्युपलक्षणत्वाद् द्रष्टव्यानि, त्रस्यति–पौरस्त्यादिवायुप्रेरितो गच्छति यो रेणुः

अनु. २८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[४५], चूलिकासूत्र-[२] अनुयोगद्वार मूलं एवं हेमचन्द्रसूरि-रचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१३४] + गाथा: ||--||

दीप अनुक्रम [२५७--२७०]

स त्रसरेणुः, रथगमनोत्खातो रेणू रथरेणुः, बालाग्रलिक्षादयः प्रतीताः, देवकुरूत्तरकुरुहरिवर्षरम्यकादिनिवासिमानवानां केशस्थूलताक्रमेण क्षेत्रशुभानुभावहानिर्भावनीया, शेषं निर्णीतार्थमेव, यावत्—

णेरइआणं भंते! के महालिआ सरीरोगाहणा पण्णत्ता?, गोयमा! दुविहा पण्णत्ता, तंजहा–भवधारणिज्जा य उत्तरवेउव्विआ य, तत्थ णं जा सा भवधारणिज्जा सा णं जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं उक्कोसेणं पंच धणुसयाइं, तत्थ णं जा सा उत्तरवेउव्विआ सा जहण्णेणं अंगुलस्स संखेज्जइभागं उक्कोसेणं धणुसहस्सं, रयणप्पहाए पुढवीए नेरइआणं भंते! के महालिआ सरीरोगाहणा पण्णत्ता?, गो०! दुविहा पण्णत्ता, तंजहा–भवधारणिज्जा य उत्तरवेउव्विआ य, तत्थ णं जा सा भवधारणिज्जा सा जहन्नेणं अंगुलस्स असंखिज्जइभागं उक्कोसेणं सत्त धणूइं तिण्णि रयणीओ छच्च अंगुलाइं, तत्थ णं जा सा उत्तरवेउव्विआ सा जहन्नेणं अंगुलस्स संखेज्जइभागं उक्कोसेणं पण्णरस धणू दोन्नि रयणीओ बारस अंगुलाइं, सक्करप्पहापुढवीए णेरइआणं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१३४] + गाथा: ||--||

दीप अनुक्रम [२५७--२७०]

भंते! के महालिआ सरीरोगाहणा पण्णत्ता?, गो०! दुविहा पण्णत्ता, तंजहा–भवधा० उत्तरवे०, तत्थ णं जा सा० सा ज० अंगुलस्स अ० उक्कोसेणं पण्णरस धणूइं दुण्णि रयणीओ बारस अंगुलाइं, तत्थ णं जा सा उत्तरवेउव्विआ सा जहन्नेणं अंगुलस्स संखेज्जइभागं उक्कोसेणं एकतीसं धणूइं इक्करयणी अ, वालुअप्पहापुढवीए णेरइयाणं भंते! के महालिआ सरीरोगाहणा प०, गो०! दुविहा पण्णत्ता, तंजहा–भवधा० उत्तरवे०, तत्थ णं जा सा भव० सा ज० अंगुलस्स अ० उक्कोसेणं एकतीसं धणूइं इक्करयणी अ, तत्थ णं जा सा उत्तर० अंगुलस्स संखेज्जइभागं उक्कोसेणं बासट्ठि धणूइं दो रयणीओ अ, एवं सव्वासिं पुढवीणं पुच्छा भाणियव्वा, पंकप्पहाए पुढवीए भवधारणिज्जा जहन्नेणं अंगुलस्स असं० उक्कोसेणं बासट्ठि धणूइं दो रयणीओ अ, उत्तरवे० जहन्नेणं अं० सं० उक्कोसेणं पणवीसं धणूसयं, धूमप्पहाए भवधा० अंगुल० अ० उक्कोसेणं पणवीसं धणुसयं, उत्तरवे० अंगुलस्स संखे० उक्कोसेणं अड्ढाइज्जाइं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१३४] + गाथा: ॥--॥

दीप अनुक्रम [२५७--२७०]

धणूसयाइं, तमाए भवधारणिज्जा० अंगुलस्स असं० उक्कोसेणं अड्ढाइज्जाइं धणूसयाइं, उत्तरवे० अंगुलस्स सं० उक्कोसेणं पंच धणूसयाइं, तमतमाए पुढवीए नेरइयाणं भंते! के महालिआ सरीरोगाहणा पं०?, गो०! दुविहा पण्णत्ता, तंजहा–भवधारणिज्जा य उत्तरवे०, तत्थ णं जा सा भवधारणिज्जा सा जहन्नेणं अंगुलस्स असं० उक्कोसेणं पंच धणुसयाइं, तत्थ णं जा सा उत्तरवेउव्विआ सा जहन्नेणं अंगुलस्स सं० उक्कोसेणं धणुसहस्साइं। असुरकुमाराणं भंते! के महालिआ सरीरोगाहणा पं०?, गो०! दुविहा पं० तं०–भवधारणिज्जा उत्तरवेउव्विआ य, तत्थ णं जा सा भवधारणिज्जा सा जहन्नेणं अं० अ० उक्कोसेणं सत्त रयणीओ, उत्तरवेउव्विआ सा जहन्नेणं अंगुलस्स सं० उक्कोसेणं जोयणसयसहस्सं, एवं असुरकुमारगमेणं जाव थणियकुमाराणं भाणिअव्वं ।

अवगाहन्ते–अवतिष्ठन्ते जीवा अस्यामित्यवगाहना–नारकादितनुसमवगाढं क्षेत्रं नारकादितनुरेव वा, यत्रनेनोत्सेधाङ्गुलेन नारकादीनां शरीरावगाहना मीयते तर्हि भदन्त! नारकाणां तावत् 'के महालिया' कियन्महती किं महत्त्वोपेता कियतीत्यर्थः, शरीरस्यावगाहना शरीरमेव वा अवगाहना भवद्भिरन्यैश्च तीर्थकरैः

॥ १६४ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[४५], चूलिकासूत्र-[२] अनुयोगद्वार मूलं एवं हेमचन्द्रसूरि-रचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१३४] + गाथाः ||--||

दीप अनुक्रम [२५७--२७०]

सदेवमनुजासुरायां पर्षदि प्रज्ञप्ता–प्ररूपिता?, अत्र भगवान् गौतममामन्त्र्योत्तरमाह–गौतम! द्विविधा–द्विप्रकारा प्रज्ञप्ता, तद्यथा–भवधारणीया चोत्तरवैक्रिया च, ननु शरीरावगाहनायाः प्रमाणे पृष्टे तद्द्वैविध्यलक्षणभेदकथनमप्रस्तुतमिति चेत्, नैवं, तत्प्रमाणकथनाङ्गत्वात्तस्य, न हि विलक्षणप्रमाणयुक्तेन भेदद्वयेन व्यवस्थिताया अवगाहनायास्तद्भेदकथनमन्तरेण प्रतिनियतं किञ्चित्प्रमाणं प्ररूपयितुं शक्यते, भेदोपन्यासे तु प्रतिभेदनियतं तत्कथ्यत इति भावः, तत्र भवे–नारकादिपर्यायभवनलक्षणे आयुःसमाप्तिं यावत्सततं ध्रियते या सा भवधारणीया, सहजशरीरगतेत्यर्थः, या तु तद्ग्रहणोत्तरकालं कार्यमाश्रित्य क्रियते सा उत्तरवैक्रिया, तत्र भवधारणीया जघन्यतोऽङ्गुलासङ्ख्येयभागमात्रा उत्पद्यमानानां, उत्कृष्टा तु पञ्चधनुःशतमाना सप्तमपृथिव्याम्, उत्तरवैक्रिया त्वाद्यसमयेऽप्यङ्गुलस्य सङ्ख्येयभाग एव भवति, तथाविधप्रयत्नाभावतोऽसङ्ख्येयस्य भागस्य कर्तुमशक्यत्वादिति भावः, उत्कृष्टा तु धनुःसहस्रप्रमाणा सप्तमपृथिव्यामेव, ओघतो नारकाणां शरीरावगाहनामानं प्रतिपाद्य तदेव विशेषतो निरूपयितुमाह—'रयणप्पहा पुढवी' इत्यादि, सूत्रसिद्धमेव, नवरमुत्कृष्टावगाहना सर्वास्वपि पृथिवीषु स्वकीयस्वकीयचरमप्रस्तटेषु द्रष्टव्या, भवधारणीयायाश्चोत्कृष्टायाः सकाशादुत्तरवैक्रिया सर्वत्र द्विगुणाऽवसेया, तदेवं–'नेरइया असुराई पुढवाई बेंदियादओ तहय। पंचेंदियतिरियनरा वंतर जोइसिय वेमाणी ॥ १ ॥' इति समयप्रसिद्धचतुर्विंशतिदण्डकस्याद्यपदेऽवगाहना-

१ नैरयिका असुरादयः पृथिव्यादयः द्वीन्द्रियादयस्तथा च। पञ्चेन्द्रियास्तिर्यञ्चौ नरा व्यन्तरा ज्योतिष्का वैमानिकाः ॥ १ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१३४] + गाथा: ||--||

दीप अनुक्रम [२५७--२७०]

अनुयो० मलधारीया ॥ १६५ ॥

मानं निरूपितं । साम्प्रतमसुरादिपदे तन्मानं निरूपयितुमाह—'असुरकुमाराणं भंते! के महालिये'त्यादि सर्वं पाठसिद्धं, नवरम्–उत्तरवैक्रियावगाहनाऽत्रापि जघन्या अङ्गुलस्य सङ्ख्येयभाग एव, उत्कृष्टा तु दशस्वपि निकायेषु योजनशतसहस्रमाना, अन्ये त्वाहुः–नागकुमारादिनवनिकायेषूत्कृष्टाऽसौ योजनसहस्रमानेवेति । अथ पृथिव्यादिपदेऽवगाहनामानमाह—

पुढविकाइआणं भंते! के महालिआ सरीरोगाहणा पं०?, गो०! जहन्नेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं उक्कोसेणवि अं०, एवं सुहुमाणं ओहिआणं अपज्जत्तगाणं पज्जत्तगाणं च भाणिअव्वं, एवं जाव बादरवाउकाइयाणं पज्जत्तगाणं भाणिअव्वं, वणस्सइकाइआणं भंते! के महा० पं०?, गो०! जहन्नेणं अंगुलस्स असं० उक्कोसेणं सातिरेगं जोयणसहस्सं, सुहुमवणस्सइकाइयाणं ओहिआणं अपज्जत्तगाणं पज्जत्तगाणं तिण्हंपि जहन्नेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं उक्कोसेणवि अंगुलस्स अ०, बादरवणस्सइकाइयाणं जहन्नेणं अंगुलस्स अ० उक्कोसेणं सातिरेगं जोयणसहस्सं, अपज्जत्तगाणं ज० अंगुलस्स असं० उक्कोसेणवि अंगुलस्स अ०, पज्जत्तगाणं जहन्नेणं अंगुलस्स अ० उक्को-

वृत्तिः उपक्रमे प्रमाणद्वारं

॥ १६५ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१३४] + गाथा: ||--||

दीप अनुक्रम [२५७--२७०]

सेणं सातिरेगं जोअणसहस्सं । बेइंदिआणं पुच्छा, गो०! जहन्नेणं अंगुलस्स असं० उक्कोसेणं बारस जोअणाइं, अपज्जत्तगाणं जहन्नेणं अंगुलस्स अ० उक्कोसेणवि अंगुलस्स अ०, पज्जत्तगाणं ज० अंगुलस्स सं० उक्कोसेणं बारस जोअणाइं । तेइंदिआणं पुच्छा, गो०! जहन्नेणं अंगुलस्स अ० उक्कोसेणं तिण्णि गाउआइं, अपज्जत्तगाणं जहन्नेणं अंगुलस्स अ० उक्कोसेणवि अंगु०, पज्जत्तगाणं जहन्नेणं अंगुलस्स सं० उक्कोसेणं तिण्णि गाउआइं । चउरिंदिआणं पुच्छा, गो०! जहन्नेणं अंगुलस्स अ०, उक्कोसेणं चत्तारि गाउआइं, अपज्जत्तगाणं जहन्नेणं उक्कोसेणवि अंगुलस्स अ०, पज्जत्तगाणं ज० अंगुल० सं० उक्कोसेणं चत्तारि गाउयाइं ।

इहौधिकपृथिवीकायिकानां प्रथममवगाहनामानं निरूप्यते १ ततस्तेषामेवौघतः सूक्ष्माणां २ ततः सूक्ष्माणामप्यपर्याप्तानां ३ तथा पर्याप्तानां ४ तत औधिकबादराणां ५ ततोऽमीषामेवापर्याप्तविशेषितानां ६ तथा पर्याप्तविशेषितानां ७ तेषु च सप्तस्वपि स्थानेषु पृथिवीकायिकानामङ्गुलासङ्ख्येयभाग एवावगाहना, किन्त्वसङ्ख्येयकस्य असङ्ख्येयभेदत्वेन तस्यापि तारतम्यसम्भवात् जघन्योत्कृष्टताविचारो न विरुध्यते, एवमसे-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१३४] + गाथा: ||--||

दीप अनुक्रम [२५७--२७०]

जोवायुवनस्पतिष्वङ्गुलासङ्ख्येयभागावगाहीनि यथोक्तानि सप्त सप्त स्थानानि वाच्यानि, नवरमौधिकबादरवनस्पतिषु पर्याप्तेषु च तेषु जघन्यतोऽङ्गुलासङ्ख्येयभागरूपा, उत्कृष्टतस्तु समुद्रगोतीर्थादिगतपद्मनालाद्याश्रित्य सातिरेकयोजनसहस्रमाना अवगाहना द्रष्टव्या, अत्राह–ननु यदीत्थं भेदतोऽवगाहना चिन्त्यते तदा नारकासुरकुमारादिष्वप्यपर्याप्तपर्याप्तभेदतः कस्मादसौ न प्रोक्ता?, सत्यं, किन्तु ते लब्धितः सर्वेऽपि पर्याप्ता एव भवन्ति, अतोऽपर्याप्तत्वलक्षणस्य प्रकारान्तरस्य किल तत्रासम्भवान्न भेदतस्तच्चिन्ता, विचित्रत्वाद्वा सूत्रगतेरित्यलं विस्तरेण। अथ द्वीन्द्रियादिपदे अवगाहनामानमाह—तत्रौधिकद्वीन्द्रियाणां अपर्याप्तानां पर्याप्तानां चेति स्थानत्रये अवगाहनाऽत्र चिन्त्यते, एतेषु बादरत्वस्यैव सद्भावात्, सूक्ष्मत्वाभावतो न तच्चिन्तासम्भवः, द्वादश च योजनानि शरीरावगाहना स्वयम्भूरमणादिशङ्खादीनामवसेया, एवं त्रीन्द्रियेष्वपि स्थानत्रये अवगाहना भावनीया, नवरं गव्यूतत्रयं शरीरावगाहना बहिर्द्वीपवर्तिकर्णशृगाल्यादीनामवगन्तव्या, एवं चतुरिन्द्रियेष्वपि, नवरं गव्यूतचतुष्टयं शरीरमानं बहिर्द्वीपवर्तिनां भ्रमरादीनाम्। अथ पञ्चेन्द्रियतिर्यक्पदेऽवगाहनां निरूपयितुमाह—

पंचेंदियतिरि० महालिआ० पं०?, गो०! जहन्नेणं अं० उक्कोसेणं जोयणसहस्सं, जलयरपंचिंदियति० पुच्छा, गो०! एवं चेव, संमुच्छिमजलयरपंचिंदियति० पुच्छा, गो०!

॥ १६६ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१३४] + गाथाः ||--||

दीप अनुक्रम [२५७--२७०]

जहन्नेणं अंगु० अ० उक्कोसेणं जोयणसहस्सं, अपज्जत्तगसंमुच्छिमजलयरपंचिंदिय-पुच्छा, जहन्नेणं अंगुलस्स असंखिज्जइभागं उक्कोसेणवि अंगुलस्स अ० पज्जत्तगसंमु-च्छिमजलयर० पुच्छा, गो०! जहन्नेणं अं०सं० उक्कोसेणं जोयणसहस्सं, गब्भवक्कंतियजल-यरपंचिंदियपुच्छा, गो०! जहन्नेणं अंगुलस्स असंखिज्जइभागं उक्कोसेणं जोयणसहस्सं, अपज्जत्तगगब्भ० ज० गो०! जह० अंगु० अ० उक्कोसेणवि अंगु० अ०, पज्जत्तगगब्भवक्कंति-अजलयरपुच्छा, गो०! जहन्नेणं अंगुलस्स सं० उक्कोसेणं जोअणसहस्सं, चउप्पयथल-यरपंचिंदियपुच्छा, गो०! जहन्नेणं अंगुलस्स अ० उक्कोसेणं छ गाउआइं, संमुच्छिमचउ-प्पयथलयरपुच्छा, गो०! जहन्नेणं अंगुलस्स असं० उक्कोसेणं गाउअपुहुत्तं, अपज्जत्त-गसंमुच्छिमचउप्पयथलयरपुच्छा, गो०! जहन्नेणं अंगुलस्स अ० उक्कोसेणवि अंगु० अ०, पज्जत्तगसंमुच्छिमचउप्पयथलयरपुच्छा, गो०! जहन्नेणं अंगुलस्स सं० उक्को० गाउअपुहुत्तं, गब्भवक्कंतिअचउप्पयथलयरपुच्छा, गो०! जहन्नेणं अंगुलस्स अ० उक्को० छ गाउआइं,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१३४] + गाथा: ||--||

दीप अनुक्रम [२५७--२७०]

अपज्जत्तगगब्भवक्कंतिअचउप्पयथलयरपुच्छा, गो० ! जहन्नेणं अंगुलस्स अ० उक्कोसेणवि अंगुलस्स असं०, पज्जत्तगगब्भवक्कंतिअचउप्पयथलयरपुच्छा, गो० ! जहन्नेणं अंगुलस्स सं० उक्को० छ गाउआइं, उरपरिसप्पथलयरपंचिंदियपुच्छा, गो० ! जह० अंगु० असं० उक्कोसे० जोअणसहस्सं, संमुच्छिमउरपरिसप्पथलयरपुच्छा, गो० ! जह० अंगुल० असंखे० उक्को० जोअणपुहुत्तं, अपज्जत्तगसंमुच्छिमउरपरिसप्पथलयरपुच्छा, गो० ! जह० अंगुलस्स अ० उक्कोसेणवि अंगुल० असं०, पज्जत्तगसम्मुच्छिमउरपरिसप्पथलयरपुच्छा, गो० ! जह० अंगु० संखे० उक्कोसेणं जोअणपुहुत्तं, गब्भवक्कंतियउरपरिसप्पथलयरपुच्छा, गो० ! जहन्नेणं अंगु० असं० उक्को० जोअणसहस्सं, अपज्जत्तगगब्भवक्कंतियउरपरिसप्पथलयरपुच्छा, गो० ! जहन्नेणं अंगुलस्स अ० उक्कोसेणवि अं० असं०, पज्जत्तगगब्भवक्कंतियउरप० पुच्छा, गो० ! जहन्नेणं अंगु० संखेज्जइभागं उक्कोसेणं जोअणसहस्सं, भुअपरिसप्पथलयरपंचिंदियाणं पुच्छा, गो० ! जह० अंगु० अ०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१३४] + गाथाः ||--||

दीप अनुक्रम [२५७--२७०]

उक्कोसेणं गाउअपुहुत्तं, संमुच्छिमभुअ० पुच्छा, गो०! जह० अंगु० असं० उक्को० धणुपुहुत्तं, अपज्जत्तगसंमुच्छि०, गो०! जहन्नेणं अंगु० अ० उक्को० अंगु० असं०, पज्जत्तगसंमुच्छिमभु०, गो०! ज० अं० सं० उक्को० धणु०, गब्भ० भुअ० थल०, गो०! जह० अं० असं० उक्को० गाउ०, अपज्ज० भुअप०, गो०! जहन्नेणं अं० असं० उक्कोसेणवि अं०, पज्जत्त० भुअप० पुच्छा, गो०! जह० अंगु० संखे० उक्को० गाउअपुहुत्तं, खहयरपंचिंदियपुच्छा, गो०! जह० अंगु० असं० उक्को० धणुपुहुत्तं, संमुच्छिमखहयराणं जहा भुअगपरिसप्पसंमुच्छिमाणं तिसुवि गमेसु तहा भाणिअव्वं, गब्भवक्कंतिअखहयरपुच्छा, गो०! जह० अंगु० असं० उक्को० धणुपुहुत्तं, अपज्जत्तगग० खहयरपुच्छा, गो०! जह० अं० असं० उक्कोसेणवि अं०, पज्जत्तगग० ख०, गो०! जह० अं० संखे० उक्को० धणु०, एत्थ संगहणिगाहाओ भवंति, तंजहा–जोअणसहस्सगाउयपुहुत्तं तत्तो अ जोअणपुहुत्तं। दोण्हं तु धणुपुहुत्तं समुच्छिमे होइ उच्चत्तं ॥ १ ॥ जो-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१३४] + गाथाः ||--||

दीप अनुक्रम [२५७--२७०]

यणसहस्स छग्गाउआइं तत्तो अ जोयणसहस्सं । गाउअपुहुत्त भुअगे पक्खीसु भवे धणुपुहुत्तं ॥ २ ॥

इहौधिकपञ्चेन्द्रियतिरश्चां प्रथममवगाहना चिन्त्यते–सा चोत्कृष्टा योजनसहस्रं जघन्यं तु पदं सर्वत्राङ्गुलासङ्ख्येयभागरूपत्वेनाविशेषान्नोच्यते, स्वयमेव भावनीयम्, एते च पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चो जलचरस्थलचरखचरभेदात्त्रिधा भवन्ति, तत्रौधिका जलचराणां प्रथममवगाहना निरूप्यते–साऽप्युत्कृष्टा योजनसहस्रं १, ततस्तेषामेव सम्मूर्च्छजानां तावन्मानैव २, तत एतेषामेवापर्याप्तत्वविशेषितानामुत्कृष्टाऽप्यङ्गुलासङ्ख्येयभागमानैव ३, तदनन्तरममीषामेव पर्याप्तत्वविशिष्टानामुत्कृष्टा योजनसहस्रम् ४, इतस्तेषामेव गर्भव्युत्क्रान्तिकानामुत्कर्षतो योजनसहस्रम् ५, अत एतेषामेवापर्याप्तत्वालिङ्गितानामुत्कृष्टाऽप्यङ्गुलासङ्ख्येयभागः ६, ततोऽप्यमीषामेव पर्याप्तानां उत्कृष्टा योजनसहस्रम् ७ इति जलचरपञ्चेन्द्रियतिरश्चां सप्त अवगाहनास्थानानि, अत्र च सर्वत्र योजनसहस्रमानं स्वयम्भूरमणमत्स्यानामवसेयम् । इदानीं स्थलचरेषु निरूप्यते–तेऽपि चतुष्पदोरःपरिसर्पभुजपरिसर्पभेदात्त्रिविधा भवन्ति, अत आदावौधिकचतुष्पदस्थलचराणामुच्यते–सा चोत्कृष्टपदवर्तिनी देवकुर्वादिगतगर्भजद्विरदानाश्रित्य षड्गव्यूतप्रमाणा निश्चेतव्या १, ततस्तेषामेव सम्मूर्च्छनजत्वविशेषितानां सा गव्यूतपृथक्त्वं २, ततोऽपर्याप्तानामुत्कृष्टाऽप्यङ्गुलासङ्ख्येयभागः ३, पर्याप्तानां गव्यूतपृ-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१३४] + गाथाः ||--||

दीप अनुक्रम [२५७--२७०]

थक्त्वं ४, तेषामेव गर्भजानां गव्यूतषट्कं ५, तेषामेवापर्याप्तानामङ्गुलासङ्ख्येयभागः ६, पर्याप्तानां षड्गव्यूतानि ७ इति चतुष्पदस्थलचरपञ्चेन्द्रियतिरश्चामपि सप्तावगाहनास्थानानि, साम्प्रतं विषधरादुरःपरिसर्पस्थलचरपञ्चेन्द्रियतिर्यक्ष्ववगाहना प्रोच्यते–तत्रौधिकोरःपरिसर्पाणां बहिर्द्वीपवर्तिगर्भजसर्पानाश्रित्योत्कृष्टा योजनसहस्रं १ सम्मूर्च्छनजानां योजनपृथक्त्वं २, तेषामप्यपर्याप्तानां अङ्गुलासङ्ख्येयभागः ३, पर्याप्तानां योजनपृथक्त्वं ४, गर्भजानां सर्पाणां योजनसहस्रम् ५, अपर्याप्तानामङ्गुलासङ्ख्येयभागः ६, पर्याप्तानां योजनसहस्रम् ७ इत्युरःपरिसर्पेषु सप्त स्थानानि, एवं भुजपरिसर्पेष्वपि गोधानकुलादिस्थलचरेष्वपीत्थमेव सप्तावगाहनास्थानानि द्रष्टव्यानि, नवरमेतेष्वाद्यपदे सामान्यगर्भजपदे पर्याप्तगर्भजपदे च गव्यूतपृथक्त्वं, सामान्यसम्मूर्च्छनजपदे पर्याप्तसम्मूर्च्छनजपदे च धनुःपृथक्त्वं, शेषपदद्वयेऽङ्गुलासङ्ख्येयभागः, तदेवं स्थलचरेषु त्रिविधेष्वप्यवगाहना चिन्तिता, एवं खचरेष्वपि सप्तसु स्थानेषु सा वाच्या, नवरमत्राप्यपर्याप्तसम्मूर्च्छजापर्याप्तगर्भजलक्षणस्थानद्वये उत्कृष्टाऽवगाहना प्रत्येकं अङ्गुलासङ्ख्येयभागः, शेषेषु पञ्चसु स्थानेषु धनुःपृथक्त्वं, तदेवं षट्त्रिंशत्स्थानेषु पञ्चेन्द्रियतिरश्चामवगाहनां निरूप्य सङ्ग्रहं कुर्वन्नाह—'एत्थ संगहणिगाहाओ भवंति, तंजहा—'जोअणसहस्स गाउअपुहुत्त तत्तो अ जोयणपुहुत्तं । दुण्हं तु धणुपुहुत्तं संमुच्छिम होइ उच्चत्तं ॥ १ ॥' सम्मूर्च्छजानां जलचरपञ्चेन्द्रियतिरश्चामुत्कृष्टाऽवगाहना योजनसहस्रमेव न परतः, सम्मूर्च्छनजचतुष्पदानां तु गव्यूतपृथक्त्वमेव, सम्मूर्च्छजोरःपरिसर्पाणां योजनपृथक्त्वमेव, सम्मूर्च्छनजभुजपरिसर्पखचरल-

अनु. २९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१३४] + गाथा: ||--||

दीप अनुक्रम [२५७--२७०]

अनुयो० मलधारीया ॥ १६९ ॥

क्षणयोर्द्वयोः प्रत्येकं धनुःपृथक्त्वमेवेति। तदेवं सम्मूर्च्छजविषयः सङ्ग्रहः कृतः। अथ गर्भजविषयं तं कुर्वन्नाह—
"जोयणसहस्स छग्गाउआइं तत्तो य जोयणसहस्सं । गाउयपुहुत्तभुयगे पक्खीसु भवे धणुपुहुत्तं ॥ १ ॥"
गर्भजानां जलचरपञ्चेन्द्रियतिरश्चामुत्कृष्टाऽवगाहना योजनसहस्रमेव, गर्भजचतुष्पदानां षडेव गव्यूतानि, गर्भजोरःपरिसर्पाणां योजनसहस्रं, गर्भजभुजगानां गव्यूतपृथक्त्वं, गर्भजपक्षिणां धनुःपृथक्त्वमिति । इदं गाथाद्वयं क्वचिदेव वाचनाविशेषे दृश्यते, सोपयोगत्वात्तु लिखितम् । अथ मनुष्याणामवगाहना प्रोच्यते—

मणुस्साणं भंते! के महालिआ सरीरोगाहणा पं०?, गो०! जह० अंगुलअ० उक्को० तिण्णि गाउआइं, संमुच्छिममणुस्साणं पुच्छा, गो०! जह० अंगु० असंखे० उक्को० अंगु० असं०, अपज्जत्तगगब्भवक्कंतियमणुस्साणं पुच्छा, गो०! जह० अंगु० असं० उक्कोसेणवि अंगु० असं०, पज्जत्तगग० पुच्छा, गो०! जह० अंगुल० सं० उक्कोसेणं तिण्णि गाउआइं ।

तत्रौधिकपदे देवकुर्वादिमनुष्याणामुत्कृष्टा त्रीणि गव्यूतानि १ वातपित्तशुक्रशोणितादिषु सम्मूर्च्छितमनुष्याणामुत्कर्षतोऽप्यङ्गुलासङ्ख्येयभाग एव, ते ह्येतावदवगाहनायामेव वर्तमाना अपर्याप्ता एव म्रियन्ते,

वृत्तिः उपक्रमे प्रमाणद्वारं ॥ १६९ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत एव पर्याप्तापर्याप्तचिन्ताऽप्यत्र न कृता, अपर्याप्तत्वादेवैषामिति २, एवं सामान्यतो गर्भजानां ततोऽपर्याप्तानां पर्याप्तानां च भावना कार्या, तदेवं पञ्चसु स्थानेषु मनुष्याणामवगाहना प्रोक्ता।

वाणमंतराणं भवधारणिज्जा य उत्तरवेउव्विआ य जहा असुरकुमाराणं तहा भाणियव्वा, जहा वाणमंतराणं तहा जोइसियाणवि। सोहम्मे कप्पे देवाणं भंते! केमहालिआ० पं०?, गो०! दुविहा पण्णत्ता, तंजहा–भवधारणिज्जा य उत्तरवेउव्विआ य, तत्थ णं जा सा भव० सा जह० अंगुलस्स अ० उक्को० सत्त रयणीओ, तत्थ णं जा सा उत्तर० सा जह० अं० संखे० उक्कोसेणं जोयणसयसहस्सं, एवं ईसाणकप्पेऽवि भाणिअव्वं, जहा सोहम्मकप्पाणं देवाणं पुच्छा तहा सेसकप्पदेवाणं पुच्छा भाणिअव्वा जाव अच्चुअकप्पो। सणंकुमारे० भव० जह० अंगु० असं० उक्कोसेणं छ रयणीओ, उत्तर० जहा सोहम्मे, भ० जहा सणंकुमारे तहा माहिंदेवि भाणियव्वा, बंभलंतगेसु भवधारणिज्जा जहण्णेणं अं० असं० उक्को० पंच रयणीओ, उत्तरवेउव्विआ जहा सो-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१३४] + गाथा: ||--||

दीप अनुक्रम [२५७--२७०]

हम्मे, महासुक्कसहस्सारेसु भवधारणिज्जा जह० अंगुलस्स असं० उक्को० चत्तारि रयणीओ, उत्तर० जहा सोहम्मे, आणतपाणतआरणअच्चुएसु चउसुवि भवधारणिज्जा जहन्नेणं अंगु० असंखे० उक्कोसेणं तिण्णि रयणीओ, उत्तरवेउव्विआ जहा सोहम्मे, गेवेज्जगदेवाणं भंते! के महालिआ सरीरोगाहणा पं०?, गो०! एगे भवधारणिज्जे सरीरगे पं०, से जह० अंगुलस्स असं० उक्कोसेणं दुन्नि रयणीओ, अणुत्तरोववाइअदेवाणं भंते! के म० पं०?, गो०! एगे भव० से जह० अंगु० असं० उक्को० एगा रयणी उ। से समासओ तिविहे पण्णत्ते, तंजहा–सूइअंगुले पयरंगुले घणंगुले, एगंगुलायया एगपएसिआ सेढी सूईअंगुले, सूई सूईए गुणिआ पयरंगुले, पयरं सूईए गुणियं घणंगुले, एएसि णं सूईअंगुलपयरंगुलघणंगुलाणं कयरे कयरेहिंतो अप्पे वा बहुए वा तुल्ले वा विसेसाहिए वा?, सव्वथोवे सूइअंगुले, पयरंगुले असंखेज्जगुणे, घणंगुले असंखेज्जगुणे, से तं उस्सेहंगुले।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

व्यन्तरज्योतिष्काणामसुरकुमारवद्भावनीया, वैमानिकानामपि तथैव, नवरं सौधर्मैशानयोरुत्कृष्टा भवधारणीयशरीरावगाहना सप्तहस्ता, सनत्कुमारमाहेन्द्रयोः षट्, ब्रह्मलोकलान्तकयोः पञ्च, महाशुक्रसहस्रारयोश्चत्वारः, आनतप्राणतारणाच्युतेषु त्रयः, ग्रैवेयकेषु द्वौ, ग्रैवेयकेषु उत्तरवैक्रिया तु न वाच्या, ग्रैवेयकेषूत्तरवैक्रियशरीरनिर्वर्तनस्याभावाद्, एवमुत्तरत्रापि, अनुत्तरविमानेषु त्वेको हस्तः, तदेवमेषामवगाहना सर्वाऽप्युत्सेधाङ्गुलेन मीयते, एतच्च सूचीप्रतरघनभेदात् त्रिविधमात्माङ्गुलवद्भावनीयम् ॥ उक्तमुत्सेधाङ्गुलम्, अथ प्रमाणाङ्गुलं विवक्षुराह—

से किं तं पमाणंगुले ?, पमाणंगुले एगमेगस्स रण्णो चाउरंतचक्कवट्टिस्स अट्ठसोवण्णिए कागणीरयणे छत्तले दुवालसंसिए अट्ठकण्णिए अहिगरणसंठाणसंठिए पं०, तस्स णं एगमेगा कोडी उस्सेहंगुलविक्खंभा तं समणस्स भगवओ महावीरस्स अद्धंगुलं तं सहस्सगुणं पमाणंगुलं भवइ, एएणं अंगुलपमाणेणं छ अंगुलाइं पादो दुवालसंगुलाइं विहत्थी दो विहत्थीओ रयणी दो रयणीओ कुच्छी दो कुच्छीओ धणू दो धणुसहस्साइं गाउअं चत्तारि गाउआइं जोयणं । एएणं पमाणंगुलेणं किं पओ-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[४५], चूलिकासूत्र-[२] अनुयोगद्वार मूलं एवं हेमचन्द्रसूरि-रचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१३४] + गाथा: ॥--॥

दीप अनुक्रम [२५७--२७०]

अणं?, एएणं पमाणंगुलेणं पुढवीणं कंडाणं पातालाणं भवणाणं भवणपत्थडाणं निरयाणं निरयावलीणं निरयपत्थडाणं कप्पाणं विमाणाणं विमाणपत्थडाणं टंकाणं कूडाणं सेलाणं सिहरीणं पब्भाराणं विजयाणं वक्खाराणं वासाणं वासहराणं वासहरपव्वयाणं वेलाणं [वलयाणं] वेइयाणं दाराणं तोरणाणं दीवाणं समुद्दाणं आयामविक्खंभोच्चत्तोव्वेहपरिक्खेवा मविज्जंति ।

सहस्रगुणितादुत्सेधाङ्गुलप्रमाणाज्जातं प्रमाणाङ्गुलम्, अथवा परमप्रकर्षरूपं प्रमाणं प्राप्तमङ्गुलं प्रमाणाङ्गुलं, नातः परं बृहत्तरमङ्गुलमस्तीति भावः, यदिवा–समस्तलोकव्यवहारराज्यादिस्थितिप्रथमप्रणेतृत्वेन प्रमाणभूतोऽस्मिन्नवसर्पिणीकाले तावद्युगादिदेवो भरतो वा तस्याङ्गुलं प्रमाणाङ्गुलम्, एतच्च काकणीरत्नस्वरूपपरिज्ञानेन शिष्यव्युत्पत्तिलक्षणं गुणाधिक्यं पश्यँस्तद्वारेण निरूपयितुमाह—'एगमेगस्स णं रण्णो'इत्यादि, एकैकस्य राज्ञः–चतुरन्तचक्रवर्तिनोऽष्टसौवर्णिकं काकणीरत्नं षट्तलादिधर्मोपेतं प्रज्ञप्तं, तस्यैकैका कोटिरुत्सेधाङ्गुलविष्कम्भा, तच्छ्रमणस्य भगवतो महावीरस्यार्द्धाङ्गुलं, तत्सहस्रगुणं प्रमाणाङ्गुलं भवतीति समुदायार्थः, तत्रान्यान्यकालोत्पन्नानामपि चक्रिणां काकणीरत्नतुल्यताप्रतिपादनार्थमेकैकग्रहणं निरुपचरितराजशब्दविषयज्ञापनार्थं राजग्रहणं दिक्त्रयभेदभिन्नसमुद्रत्रयहिमवत्पर्वतपर्यन्तसीमाचतुष्टयलक्षणा ये चत्वारोऽन्तास्ताँश्च-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तुरोऽपि चक्रेण वर्तयति–पालयतीति चतुरन्तचक्रवर्ती तस्य–परिपूर्णषट्खण्डभरतभोक्तुरित्यर्थः, चत्वारि मधुरतृणफलान्येकः श्वेतसर्षपः, षोडश सर्षपा एकं धान्यमाषफलं, द्वे धान्यमाषफले एका गुञ्जा, पञ्च गुञ्जा एकः कर्ममाषकः, षोडश कर्ममाषका एकः सुवर्णः, एतैरष्टभिः काकणीरत्नं निष्पद्यते, एतानि च मधुरतृणफलादीनि भरतचक्रवर्तिकालसम्भवीन्येव गृह्यन्ते, अन्यथा कालभेदेन तद्वैषम्यसम्भवे काकिणीरत्नं सर्वचक्रिणां तुल्यं न स्यात्, तुल्यं चेष्यते तदिति, चत्वारि चतस्रष्वपि दिक्षु द्वे ऊर्ध्वाध इत्येवं षट् तलानि यत्र तत् षट्तलम्, अध उपरि पार्श्वतश्च प्रत्येकं चतस्रणामस्रीणां भावात् द्वादश अस्रयः–कोट्यो यत्र तद्द्वादशास्रिकं, कर्णिकाः–कोणास्तेषां चाध उपरि च प्रत्येकं चतुर्णां सद्भावादष्टकर्णिकम्, अधिकरणिः–सुवर्णकारोपकरणं तत्संस्थानेन संस्थितं–तत्सदृशाकारं समचतुरस्रमिति यावत् प्रज्ञप्तं–प्ररूपितं, तस्य काकिणीरत्नस्यैकैका कोटिरुत्सेधाङ्गुलप्रमाणविष्कम्भा द्वादशाप्यस्रय एकैकस्य उत्सेधाङ्गुलप्रमाणा भवतीत्यर्थः, अस्य समचतुरस्रत्वादायामो विष्कम्भश्च प्रत्येकमुत्सेधाङ्गुलप्रमाण इत्युक्तं भवति, यैव च कोटिरूर्ध्वीकृत्य आयामं प्रतिपद्यते सैव तिर्यक् व्यवस्थापिता विष्कम्भभागो भवतीत्यायामविष्कम्भयोरेकतरनिर्णयेऽप्यपरनिश्चयः स्यादेवेति सूत्रे विष्कम्भस्यैव ग्रहणं, तद्ग्रहणे चायामोऽपि गृहीत एव, समचतुरस्रत्वात्तस्येति। तदेवं सर्वत उत्सेधाङ्गुलप्रमाणमिदं सिद्धं, यच्चान्यत्र—'[1]चउरंगुलप्पमाणा सुवण्णवरकागणी नेये'ति श्रूयते, तन्मतान्तरं संभाव्यते,

१ चतुरङ्गुलप्रमाणा सुवर्णवरकाकिणी ज्ञेया.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[४५], चूलिकासूत्र-[२] अनुयोगद्वार मूलं एवं हेमचन्द्रसूरि-रचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१३४] + गाथा: ||--||

दीप अनुक्रम [२५७--२७०]

निश्चयं तु सर्ववेदिनो विदन्तीति। तदेकैककोटिगतमुत्सेधाङ्गुलं श्रमणस्य भगवतो महावीरस्यार्द्धाङ्गुलं, कथमिदम्?, उच्यते, श्रीमहावीरस्य सप्तहस्तप्रमाणत्वादेकैकस्य च हस्तस्य चतुर्विंशत्युत्सेधाङ्गुलमानत्वादष्टषष्ट्यधिकशताङ्गुलमानो भगवानुत्सेधाङ्गुलेन सिद्धो भवति, स एव चात्माङ्गुलेन मतान्तरमाश्रित्य स्वहस्तेन सार्द्धहस्तत्रयमानत्वाच्चतुरशीत्यङ्गुलमानो गीयते, अतः सामर्थ्यादेकमुत्सेधाङ्गुलं श्रीमन्महावीरात्माङ्गुलापेक्षया अर्द्धाङ्गुलमेव भवति, येषां तु मतेन भगवानात्माङ्गुलेनाष्टोत्तरशताङ्गुलमानः स्वहस्तेन सार्द्धहस्तचतुष्टयमानत्वात् तन्मतेन भगवत एकस्मिन्नात्माङ्गुले–एकमुत्सेधाङ्गुलं तस्य च पञ्च नवमभागा भवन्ति, अष्टषष्ट्यधिकशतस्याष्टोत्तरशतेन भागापहारे एतावत एव भावात्, यन्मतेन तु भगवान्विंशत्यधिकमङ्गुलशतं स्वहस्तेन पञ्चहस्तमानत्वात्, तन्मतेन भगवत एकस्मिन्नात्माङ्गुल एकमुत्सेधाङ्गुलं तस्य च द्वौ पञ्चभागौ भवतः, अष्टषष्ट्यधिकशतस्य विंशत्यधिकशतेन भागे हृते इयत एव लाभात्, तदेवमिहाद्यमतमपेक्ष्यैकमुत्सेधाङ्गुलं भगवदात्माङ्गुलस्यार्द्धरूपतया प्रोक्तमित्यवसेयमिति। तदुच्छ्रयाङ्गुलं सहस्रगुणितं प्रमाणाङ्गुलं भवति, कथमिदमवसीयते?, उच्यते, भरतश्चक्रवर्ती प्रमाणाङ्गुलेनात्माङ्गुलेन च किल विंशतिशतमङ्गुलानां भवति, भरतात्माङ्गुलस्य प्रमाणाङ्गुलस्य चैकरूपत्वात्, उत्सेधाङ्गुलेन तु पञ्चधनुःशतमानत्वात् प्रतिधनुश्च षण्णवत्यङ्गुलसद्भावाद् अष्टचत्वारिंशत् सहस्राण्यङ्गुलानां संपद्यते, अतः सामर्थ्यादेकस्मिन् प्रमाणाङ्गुले चत्वारि शतान्युत्सेधाङ्गुलानां भवन्ति, विंशत्यधिकशतेन अष्टचत्वारिंशत्सहस्राणां भागापहारे एतावतो लाभात्,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यद्येवमुत्सेधाङ्गुलात्प्रमाणाङ्गुलं चतुःशतगुणमेव स्यात् कथं सहस्रगुणमुक्तं?, सत्यं, किन्तु प्रमाणाङ्गुलस्यार्द्धतृतीयोत्सेधाङ्गुलरूपं बाहल्यमस्ति, ततो यदा स्वकीयबाहल्येन युक्तं यथाऽवस्थितमेवेदं चिन्त्यते तदोत्सेधाङ्गुलाच्चतुःशतगुणमेव भवति, यदा त्वर्धतृतीयोत्सेधाङ्गुललक्षणेन बाहल्येन शतचतुष्टयलक्षणं दैर्घ्यं गुण्यते तदा अङ्गुलविष्कम्भा सहस्राङ्गुलदीर्घा प्रमाणाङ्गुलविषया सूचिर्जायते, इदमुक्तं भवति–अर्द्धतृतीयाङ्गुलविष्कम्भे प्रमाणाङ्गुले तिस्रः श्रेणयः कल्प्यन्ते, एका अङ्गुलविष्कम्भा शतचतुष्टयदीर्घा, द्वितीयाऽपि तावन्मानैव, तृतीयाऽपि दैर्घ्येण चतुःशतमानैव विष्कम्भे त्वर्द्धाङ्गुलं, ततोऽस्यापि दैर्घ्याच्छतद्वयं गृहीत्वा विष्कम्भोऽङ्गुलप्रमाणः संपद्यते[1], तथा च सत्यङ्गुलशतद्वयदीर्घा अङ्गुलविष्कम्भा इयमपि सिद्धा, ततस्तिसृणामप्येतासामुपर्युपरि व्यवस्थापने उत्सेधाङ्गुलतोऽङ्गुलसहस्रदीर्घा अङ्गुलविष्कम्भा प्रमाणाङ्गुलस्य सूचिः सिद्धा भवति, तत इमां सूचिमधिकृत्योत्सेधाङ्गुलात्तत्सहस्रगुणमुक्तं, वस्तुतस्तु चतुःशतगुणमेव, अत एव पृथ्वीपर्वतविमानादिमानान्यनेनैव चतुःशतगुणेन अर्द्धतृतीयाङ्गुललक्षणखविष्कम्भान्वितेनानीयन्ते न तु सहस्रगुणया अङ्गुलविष्कम्भया सूच्येति, शेषं भावितार्थं, यावत् 'पुढवीणं'ति रत्नप्रभादीनां 'कंडाणं'ति रत्नकाण्डादीनां 'पातालाणं'ति पातालकलशानां 'भवणाणं'ति भवनप्रत्यावासादीनां 'भवणपत्थडाणं'ति भवप्रस्तटा नरकप्रस्तटान्तरे तेषां 'निरयाणं'ति नरकावासानां 'निरयाव-

१ अन्तर्भूतणिजर्थत्वात् संपाद्यते इति.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१३४] + गाथा: ||--||

दीप अनुक्रम [२५७--२७०]

लियाणं'ति नरकावासपङ्क्तीनां 'निरयपत्थडाणं'ति 'तेरेक्कारस नव सत्त पंच तिन्नि य तहेव एक्को य'इत्यादिना प्रतिपादितानां नरकप्रस्तटानां, शेषं प्रतीतं, नवरं 'टंकाणं'ति छिन्नटङ्कानां 'कूडाणं'ति रत्नकूटादीनां 'सेलाणं'ति मुण्डपर्वतानां 'सिहरीणं'ति पर्वतानामेव शिखरवतां 'पब्भाराणं'ति तेषामेवेषन्नतानां 'वेलाणं'ति जलधिवेलाविषयभूमीनामूर्ध्वाधोभूमिमध्येऽवगाहः, तदेवम् 'अंगुलविहत्थिरयणी'त्यादिगाथोपन्यस्ताङ्गुलादीनि योजनावसानानि पदानि व्याख्यातानि। साम्प्रतं शेषाणि श्रेण्यादीनि व्याचिख्यासुराह—

से समासओ तिविहे पण्णत्ते, तंजहा–सेढीअंगुले पयरंगुले घणंगुले, असंखेज्जाओ जोयणकोडाकोडीओ सेढी, सेढी सेढीए गुणिया पयरं, पयरं सेढीए गुणियं लोगो, संखेज्जएणं लोगो गुणिओ संखेज्जा लोगा असंखेज्जएणं लोगो गुणिओ असंखेज्जा लोगा अणंतेणं लोगो गुणिओ अणंता लोगा । एएसि णं सेढिअंगुलपयरंगुलघणंगुलाणं कयरे कयरेहिंतो अप्पे वा बहुए वा तुल्ले वा विसेसाहिए वा?, सव्वथोवे सेढिअंगुले, पयरंगुले असंखेज्जगुणे, घणंगुले असंखिज्जगुणे, से तं पमाणंगुले। से तं विभागनिप्फण्णे। से तं खेत्तप्पमाणे (सू० १३४)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१३४] + गाथाः ||--||

दीप अनुक्रम [२५७--२७०]

'अस्संखेज्जाउ जोयणकोडाकोडीओ सेढि'त्ति अनन्तरनिर्णीतप्रमाणाङ्गुलेन यद्योजनं तेन योजनेनासङ्ख्येया योजनकोटीकोट्यः संवर्तितसमचतुरस्रीकृतलोकस्यैका श्रेणिर्भवति, कथं पुनर्लोकः संवर्त्य समचतुरश्रीक्रियते ?, उच्यते,इह स्वरूपतो लोकस्तावच्चतुर्दशरज्जूच्छ्रितः, अधस्ताद्देशोनसप्तरज्जुविस्तरः, तिर्यग्लोकमध्ये एकरज्जुविस्तृतः, ब्रह्मलोकमध्ये पञ्चरज्जुविस्तीर्णः, उपरि तु लोकान्ते एकरज्जुविष्कम्भः, शेषस्थानेषु क्वचित्कोऽप्यनियतो विस्तरः, रज्जुप्रमाणं तु स्वयम्भूरमणसमुद्रस्य पौरस्त्यपाश्चात्यवेदिकान्तं यावद्दक्षिणोत्तरवेदिकान्तं वा यावदवसेयम् । एवं स्थितोऽसौ लोको बुद्धिपरिकल्पनया संवर्त्य घनीक्रियते, तथाहि–रज्जुविस्तीर्णायास्त्रसनाडिकाया दक्षिणदिग्वर्त्यधोलोकखण्डमधस्ताद्देशोनरज्जुत्रयविस्तीर्णं क्रमेण हीयमानविस्तरं तदेवोपरिष्टाद्रज्ज्वसङ्ख्येयभागविष्कम्भं सातिरेकसप्तरज्जूच्छ्रितं गृहीत्वा त्रसनाडिकाया एवोत्तरपार्श्वे विपरीतं सङ्घात्यते, अधस्तनं भागमुपरिकृत्वा उपरितनं चाधः समानीय संयोज्यत इत्यर्थः, एवं च कृते अधोवर्तिलोकस्यार्द्धं देशोनरज्जुचतुष्टयविस्तीर्णं सातिरेकसप्तरज्जूच्छ्रितं बाहल्यतोऽपि अधः क्वचिद्देशोनसप्तरज्जुमानमन्यत्र त्वनियतबाहल्यं जायते, इदानीमुपरितनलोकार्द्धं संवर्त्यते–तत्रापि रज्जुविस्तरायास्त्रसनाडिकाया दक्षिणदिग्वर्तिनी ब्रह्मलोकमध्यादधस्तनमुपरितनं च द्वे अपि खण्डे ब्रह्मलोकमध्ये प्रत्येकं द्विरज्जुविस्तीर्णे उपर्यलोकसमीपे अधस्तु रत्नप्रभाक्षुल्लकप्रतरसमीपे अङ्गुलसङ्ख्यभागविस्तरवती देशोनसार्द्धरज्जुत्रयोच्छ्रिते बुद्ध्या गृहीत्वा तस्या एवोत्तरपार्श्वे पूर्वोक्तस्वरूपेण वैपरीत्येन सङ्घात्येते, एवं च कृते उपरितनं लोकस्यार्द्धं द्वाभ्यामङ्गुलसह-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[४५], चूलिकासूत्र-[२] अनुयोगद्वार मूलं एवं हेमचन्द्रसूरि-रचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१३४] + गाथाः ||--||

दीप अनुक्रम [२५७--२७०]

अनुयो० मलधारीया ॥ १७४ ॥

स्रभागाभ्यामधिकं रज्जुत्रयविष्कम्भम्, इह चतुर्णां खण्डानां पर्यन्तेषु चत्वारोऽङ्गुलसहस्रभागा भवन्ति, केवलमेकस्यां दिशि यौ ताभ्यां द्वाभ्यामप्येक एवाङ्गुलसहस्रभागः, एकदिग्वर्तित्वादेव, अपराभ्यामपि द्वाभ्यामित्थमेवेत्यतस्तदूर्ध्वाधिकत्वमुक्तं देशोनसप्तरज्जूच्छ्रितं, बाहल्यतस्तु ब्रह्मलोकमध्ये पञ्चरज्जुबाहल्यमन्यत्र त्वनियतं जायते, इदं च सर्वं गृहीत्वा आधस्त्यसंवर्तितलोकार्द्धस्योत्तरपार्श्वे संघात्यते, एवं च योजिते आधस्त्यखण्डस्योच्छ्राये यदितरोच्छ्रयादधिकं तद् खण्डित्वा उपरितनसङ्घातितखण्डस्य बाहल्ये ऊर्ध्वायतं संघात्यते, एवं च सातिरेकाः पञ्च रज्जवः क्वचिद्बाहल्यं सिद्ध्यति, तथा आधस्त्यखण्डमधस्ताद्यथासम्भवं देशोनसप्तरज्जुबाहल्यं प्रागुक्तम्, अत उपरितनखण्डबाहल्यादेशोनरज्जुद्वयमत्रातिरिच्यत इत्यस्मादतिरिच्यमानबाहल्यादर्द्धं गृहीत्वा उपरितनखण्डबाहल्ये संयोज्यते, एवं च कृते बाहल्यतस्तावत्सर्वमप्येतच्चतुरश्रीकृतनभःखण्डं कियत्यपि प्रदेशे रज्ज्वसङ्ख्येयभागाधिकाः षट् रज्जवो भवन्ति, व्यवहारतस्तु सर्वं सप्तरज्जुबाहल्यमिदमुच्यते, व्यवहारनयो हि किञ्चिन्यूनसप्तहस्तादिप्रमाणमपि पटादिवस्तु परिपूर्णसप्तहस्तादिमानं व्यपदिशति, देशतोऽपि च दृष्टं बाहल्यादिधर्मं परिपूर्णेऽपि वस्तुन्यध्यवस्यति, स्थूलदृष्टित्वादिति भावः, अत एव तन्मतेनैवात्र सप्तरज्जुबाहल्यता सर्वगता द्रष्टव्या, आयामविष्कम्भाभ्यां तु प्रत्येकं देशोनसप्तरज्जुप्रमाणमिदं जातं, व्यवहारतस्त्वत्रापि प्रत्येकं सप्तरज्जुप्रमाणता दृश्यते, तदेवं व्यवहारनयमतेनायामविष्कम्भबाहल्यैः

१ खड् खपुण् भेदे इति चौरादिपाठेऽपि अनित्यो णिच्युरादीनामिति नात्र णिजागमः.

वृत्तिः उपक्रमे प्रमाणद्वारं ॥ १७४ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१३४] + गाथाः ||--||

दीप अनुक्रम [२५७--२७०]

प्रत्येकं सप्तरज्जुप्रमाणो घनो जातः, एतच्च वैशाखस्थानस्थितपुरुषाकारं सर्वत्र वृत्तस्वरूपं च लोकं संस्थाप्य सर्वं भावनीयं, सिद्धान्ते च यत्र क्वचिदविशेषितायाः श्रेण्याः सामान्येन ग्रहणं तत्र सर्वत्रास्य घनीकृतलोकस्य सम्बन्धिनी सप्तरज्जुप्रमाणा सा ग्राह्या, तथा प्रतरोऽप्येतावत्प्रमाण एव बोद्धव्यः, तदियं सप्तरज्ज्वायामत्वात् प्रमाणाङ्गुलतोऽसङ्ख्येययोजनकोटिकोट्यायता एकप्रादेशिकी श्रेणिः, सा च तयैव गुणिता प्रतरः, सोऽपि यथोक्तश्रेण्या गुणितो लोकः, अयमपि सङ्ख्येयेन राशिना गुणितः सङ्ख्येया लोकाः, असङ्ख्येयेन तु राशिना समाहतोऽसङ्ख्येया लोकाः, अनन्तैश्च लोकैरलोकः, नन्वङ्गुलादिभिर्जीवाजीवादिवस्तूनि प्रमीयन्त इति तेषां प्रमाणता युक्ता, अलोकेन तु न किञ्चित्प्रमीयते इति कथं तस्य प्रमाणता?, उच्यते, यद्यपि बाह्यं वस्त्वनेन न प्रमीयते तथापि स्वस्वरूपं तेन प्रमीयत एव, तदभावे तद्विषयबुद्ध्यभावप्रसङ्गात्, तदेवम् 'अंगुलविहत्थिरयणी'त्यादि गाथा व्याख्याता। समाप्तं च क्षेत्रप्रमाणमिति ॥ १३४ ॥ अथ कालप्रमाणमुच्यते—

से किं तं कालप्पमाणे?, २ दुविहे पण्णत्ते, तंजहा—पएसनिप्फण्णे अ विभागनिप्फण्णे अ (सू० १३५) ॥ से किं तं पएसणिप्फण्णे?, २ एगसमयट्ठिईए दुसमयट्ठिईए तिसमयट्ठिईए जाव दससमयट्ठिईए असंखिज्जसमयट्ठिईए, से तं पएसनिप्फण्णे (सू०

Jain Education Inter... For Private & Personal Use Only ...elibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[४५], चूलिकासूत्र-[२] अनुयोगद्वार मूलं एवं हेमचन्द्रसूरि-रचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१३५--१३७] + गाथाः ||१|| दीप अनुक्रम [२७१--२७४]

१३६) ॥ से किं तं विभागनिप्फण्णे?,–समयावलिअमुहुत्ता दिवसअहोरत्तपक्खमासाय । संवच्छरजुगपलिआ सागरओसप्पिपरिअट्टा ॥ १ ॥ (सू० १३७)

गतार्थमेव, नवरमिह प्रदेशाः–कालस्य निर्विभागा भागाः, तैर्निष्पन्नं प्रदेशनिष्पन्नं, तत्रैकसमयस्थितिकः परमाणुः स्कन्धो वा एकेन कालप्रदेशेन निष्पन्नो, द्विसमयस्थितिकस्तु द्वाभ्याम्, एवं यावदसङ्ख्येयसमयस्थितिकोऽसङ्ख्येयैः कालप्रदेशैर्निर्वृत्तः, परतस्त्वेकेन रूपेण पुद्गलानां स्थितिरेव नास्ति, प्रमाणता चेह प्रदेशनिष्पन्नद्रव्यप्रमाणवद्भावनीया, विभागनिष्पन्नं तु समयादि, तथा चाह—'समयावलिय'गाहा, एतां च गाथां स्वयमेव विवरीषुः सर्वेषामपि कालभेदानां समयादित्वात् तन्निर्णयार्थं तावदाह—

से किं तं समए?, समयस्स णं परूवणं करिस्सामि, से जहानामए तुण्णागदारए सिआ तरुणे बलवं जुगवं जुवाणे अप्पातंके थिरग्गहत्थे दढपाणिपायपासपिट्ठंतरोरुपरिणते तलजमलजुयलपरिघणिभबाहू चम्मेट्ठगदुहणमुट्ठिअसमाहतनिचितगत्तकाए उरस्सबलसमण्णागए लंघणपवणजइणवायामसमत्थे छेए दक्खे पत्तट्ठे कुसले मेहावी निउणे निउणसिप्पोवगए एगं महतीं पडसाडियं (वा) पट्टसाडियं वा गहाय सयराहं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अथ 'समय' वक्तव्यता आरभ्यते

प्रत सूत्रांक [१३८] + गाथा: ||--||

दीप अनुक्रम [२७५--२७९]

हत्थमेत्तं ओसारेज्जा, तत्थ चोअए पण्णवयं एवं वयासी–जेणं कालेणं तेणं तुण्णागदारएणं तीसे पडसाडिआए वा पट्टसाडिआए वा सयराहं हत्थमेत्ते ओसारिए से समए भवइ?, नो इणट्ठे समट्ठे, कम्हा?, जम्हा संखेज्जाणं तंतूणं समुदयसमितिसमागमेणं एगा पडसाडिआ निप्फज्जइ, उवरिल्लंमि तंतुमि अच्छिण्णे हिट्ठिल्ले तंतू न छिज्जइ, अण्णंमि काले उवरिल्ले तंतू छिज्जइ अण्णंमि काले हिट्ठिल्ले तंतू छिज्जइ, तम्हा से समए न भवइ। एवं वयंतं पण्णवयं चोयए एवं वयासी–जेणं कालेणं तेणं तुण्णागदारएणं तीसे पडसाडिआए वा पट्टसाडिए वा उवरिल्ले तंतू छिण्णे से समए भवइ?, न भवइ, कम्हा?, जम्हा संखेज्जाणं पम्हाणं समुदयसमितिसमागमेणं एगे तंतू निप्फज्जइ, उवरिल्ले पम्हे अच्छिण्णे हेट्ठिल्ले पम्हे न छिज्जइ, अण्णंमि काले उवरिल्ले पम्हे छिज्जइ अण्णंमि काले हेट्ठिल्ले पम्हे छिज्जइ, तम्हा? से समए न भवइ। एवं वयंतं पण्णवयं चोअए एवं• वयासी–जेणं कालेणं तेणं तुण्णागदारएणं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१३८] + गाथा: ॥--॥

दीप अनुक्रम [२७५--२७९]

तस्स तंतुस्स उपरिल्ले पम्हे छिण्णे से समए भवइ?, न भवइ, कम्हा?, जम्हा अणंताणं संघायाणं समुदयसमितिसमागमेणं एगे पम्हे निप्फज्जइ, उवरिल्ले संघाए अविसंघाइए हेट्ठिल्ले संघाए न विसंघाइज्जइ, अण्णंमि काले उवरिल्ले संघाए विसंघाइज्जइ अण्णंमि काले हिट्ठिल्ले संघाए विसंघाइज्जइ, तम्हा से समए न भवइ। एत्तोऽवि अणं सुहुमतराए समए पण्णत्ते समणाउसो!।

अथ कोऽयं समय इति पृष्टे सत्याह–समयस्य प्ररूपणां–विस्तरवतीं व्याख्यां करिष्यामि, सूक्ष्मत्वात् संक्षेपतः कथितोऽपि नासौ सम्यक् प्रतीतिपथमवतरतीति भावः, तदेवाह—'से जहानामए' इत्यादि, स कश्चित् यथानामको–यत्प्रकारनामा देवदत्तादिनामेत्यर्थः, 'तुण्णागदारए' सूचिक इत्यर्थः, 'स्यात्' भवेत्, यः किमित्याह–तरुणादिविशेषणविशिष्टः पटसाटिकां पट्टसाटिकां वा गृहीत्वा 'सयराहं' झटिति कृत्वा हस्तमात्रमपसारयेत्–पाटयेदिति सण्टङ्कः, अथवा 'स' इति पूर्ववत् 'यथे'त्युपदर्शने नामेति सम्भावनायाम् 'ए' इति वाक्यालङ्कारे, ततश्च स कश्चिदेव तावत्संभाव्यते तुण्णागदारको यस्तरुणादिविशेषणः 'स्यात्' कदाचित् पटसाटिकां पट्टसाटिकां वा गृहीत्वा झटिति हस्तमात्रमपसारयेत्–पाटयेदिति तथैव सम्बन्धः, तत्र तरुणः–प्रवर्द्धमानवयाः, आह–दारकः प्रवर्द्धमानवया एव भवति, किं विशेषणेन?, नैवम्, आसन्नमृत्योः प्रवर्द्धमान-

॥ १७६ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[४५], चूलिकासूत्र-[२] अनुयोगद्वार मूलं एवं हेमचन्द्रसूरि-रचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१३८] + गाथाः ॥--॥

दीप अनुक्रम [२७५--२७९]

वयस्त्वाभावात्, तस्य चासन्नमृत्युत्वेन विशिष्टसामर्थ्यानुपपत्तेः, विशिष्टसामर्थ्यप्रतिपादनार्थश्चायमारम्भः, अन्ये तु वर्णादिगुणोपचितोऽभिनवस्तरुण इति व्याचक्षते, बलं–सामर्थ्यं तदस्यास्तीति बलवान्, युगं–सुषमदुष्षमादिकालः सोऽदुष्टो–निरुपद्रवो विशिष्टबलहेतुर्यस्यास्त्यसौ युगवान्, कालोपद्रवोऽपि सामर्थ्यविघ्नहेतुरितीत्थं विशेषणं, 'जुवाणो'त्ति युवा–यौवनस्थः प्राप्तवया एष इत्येवम् अणति–व्यपदिशति लोको यमसौ निरुक्तिवशात् युवानः, बाल्यादिकालेऽपि दारकोऽभिधीयते अतो विशिष्टवयोऽवस्थापरिग्रहार्थमेतद्विशेषणम्, अल्पशब्दोऽभाववचनः, अल्प आतङ्को–रोगो यस्य स तथा, निरातङ्क इत्यर्थः, स्थिरः–प्रकृतपटं पाटयतोऽकम्पोऽग्रहस्तो–हस्ताग्रं यस्य स तथा, दृढं पाणिपादं यस्य पार्श्वौ पृष्ठ्यन्तरे च ऊरू च परिणते–परिनिष्ठिततां गते यस्य स तथा, सर्वावयवैरुत्तमसंहनन इत्यर्थः, 'तलयमलजुयलपरिघणिभबाहू' तलौ–तालवृक्षौ तयोर्यमलं–समश्रेणीकं यद् युगलं–द्वयं परिघश्च–अर्गला तन्निभौ–तत्सदृशौ दीर्घसरलपीनत्वादिना बाहू यस्य स तथा, आगन्तुकोपकरणजं सामर्थ्यमाह—'चर्मेष्टकाद्रुघणमुष्टिकसमाहतनिचितगात्रकायः' चर्मेष्टकया द्रुघणेन मुष्टिकेन च समाहतानि प्रतिदिनमभ्यासप्रवृत्तस्य निचितानि–निविडीकृतानि गात्राणि स्कन्धोरुपृष्ठादीनि यत्र स तथाविधः कायो–देहो यस्य स तथा, चर्मेष्टकादयश्च लोकप्रतीता एव, 'औरस्यबलसमन्वागत' आन्तरोत्साहवीर्ययुक्तः, व्यायामवत्तां दर्शयति—'लङ्घनप्लवनजवनव्यायामसमर्थः' जवनशब्दः शीघ्रवचनः, छेकः–प्रयोगज्ञः दक्षः–शीघ्रकारी प्राप्तार्थः–अधिकृते कर्मणि निष्ठां गतः, प्राज्ञ इत्यन्ये, कुशलः–आ-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[४५], चूलिकासूत्र-[२] अनुयोगद्वार मूलं एवं हेमचन्द्रसूरि-रचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१३८] + गाथाः ॥--॥

दीप अनुक्रम [२७५--२७९]

लोचितकारी मेधावी–सकृच्छ्रुतदृष्टकर्मज्ञः निपुण–उपायारम्भकः निपुणशिल्पोपगतः–सूक्ष्मशिल्पसमन्वितः, एवंविधो ह्यल्पेनैव कालेन साटिकां पाटयतीति बहुविशेषणोपादानं, स इत्थम्भूत एकां महतीं पटसाटिकां पटसाटिकां वा पटसाटिकाया इयं श्लक्ष्णतरेति भेदेनोपादानं, गृहीत्वा 'सयराह'मिति सकृत् झटिति कृत्वेत्यर्थः, हस्तमात्रमपसारयेत्–पाटयेदित्यर्थः, तत्रैवं स्थिते प्रेरकः–शिष्यः प्रज्ञापयतीति प्रज्ञापको–गुरुस्तमेवमवादीत्, किम्?–येन कालेन तेन तुण्णागदारकेण तस्याः पटसाटिकायाः पटसाटिकाया वा सकृद्धस्तमात्रमपसारितं–पाटितमसौ समयो भवति?, प्रज्ञापक आह–नायमर्थः समर्थः–नैतदेवमित्युक्तं भवति, कस्मादिति पृष्ट उपपत्तिमाह–यस्मात् सङ्ख्येयानां तन्तूनां समुदयसमितिसमागमेनेति पूर्ववद्, एकार्था वा सर्वेऽप्यमी समुदायवाचकाः, पटसाटिका निष्पद्यते, तत्र च 'उवरिल्ले'त्ति उपरितने तन्तौ अच्छिन्ने–अविदारिते 'हेट्ठिल्ले'त्ति आधस्त्यतन्तुर्न छिद्यते, अतोऽन्यस्मिन् काले उपरितनस्तन्तुः छिद्यते अन्यस्मिन् काले आधस्त्यः, तस्मादसौ समयो न भवति, एवं वदन्तं प्रज्ञापकं प्रेरक एवमवादीत्–येन कालेन तेन तुन्नागदारकेण तस्याः–पटसाटिकाया उपरितनस्तन्तुश्छिन्नः स समयः?, किं भवतीति शेषः, अत्र प्रज्ञापक आह–न भवतीति, कस्मात्?, यस्मात्सङ्ख्येयानां 'पक्ष्मणां' लोके प्रतीतस्वरूपाणां समुदायेत्यादि सर्वं तथैव यावत्तस्मादसौ समयो न भवति, एवं वदन्तं प्रज्ञापकमित्यादुपरितनपक्ष्मसूत्रमपि तथैव व्याख्येयं, नवरमनन्तानां परमाणूनां विशिष्टैकपरिणामापत्तिः सङ्घातः, तेषामनन्तानां यः समुदयः–संयोगस्तेषां समुदयानां या अन्योऽन्यानुगति-

॥ १७७ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रसौ समितिः, तासां समागमेन–एकवस्तुनिर्वर्तनाय मीलनेन उपरितनपक्ष्मोत्पद्यते, समुदायवाचकत्वेनैकार्थो वा समुदायादयः, तस्मादसावुपरितनैकपक्ष्मच्छेदनकालः समयो न भवति, कस्तर्हि समय इत्याह—'एत्तोऽवि अणं'मित्यादि, एतस्माद् उपरितनैकपक्ष्मच्छेदनकालात् सूक्ष्मतरः समयः प्रज्ञप्तो हे! श्रमणायुष्मन्निति, अत्राह–ननु यद्यनन्तैः परमाणुसङ्घातैः पक्ष्म निष्पद्यते ते च सङ्घाताः क्रमेण छिद्यन्ते, तर्ह्येकस्मिन्नपि पक्ष्मणि विदार्यमाणे अनन्ताः समया लगेयुः, एतच्चागमेन सह विरुध्यते, तत्रासङ्ख्येयास्वप्युत्सर्पिण्यवसर्पिणीषु समयासङ्ख्येयकस्यैव प्रतिपादनात्, यत उक्तम्—"[1]असंखेज्जासु णं भंते! उस्सप्पिणिअवसप्पिणीसु केवइया समया पण्णत्ता?, गोयमा!, असंखेज्जा, अणंतासु णं भंते! उस्सप्पिणिअवसप्पिणीसु केवइया समया पण्णत्ता?, गोयमा!, अणंता" तदेतत्कथम्, अत्रोच्यते, अस्त्येतत्, किन्तु पाटनप्रवृत्तपुरुषप्रयत्नस्याचिन्त्यशक्तित्वात् प्रतिसमयमनन्तानां सङ्घातानां छेदः संपद्यते, एवं च सत्येकस्मिन् समये यावन्तः सङ्घाताश्छिद्यन्ते तैरनन्तैरपि स्थूलतर एक एव सङ्घातो विवक्ष्यते, एवम्भूताः स्थूलतरसङ्घाता एकस्मिन्पक्ष्मणि असङ्ख्येया एव भवन्ति, तेषां च क्रमेण छेदने असङ्ख्येयैः समयैः पक्ष्म छिद्यते, अतो न कश्चिद्विरोधः, इत्थं च विशेषतः सूत्रे अनुक्तमप्यवश्यं प्रतिपत्तव्यम्, अन्यथा ग्रन्थान्तरैः सह विरोधप्रसङ्गात् सूत्राणां च सूचामात्र-

१ असङ्ख्येयासु भदन्त! उत्सर्पिण्यवसर्पिणीषु कियन्तः समयाः प्रज्ञप्ताः? गौतम! असङ्ख्येयाः, अनन्तासु भदन्त! उत्सर्पिण्यवसर्पिणीषु कियन्तः समयाः प्रज्ञप्ताः? गौतम! अनन्ताः.,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[४५], चूलिकासूत्र-[२] अनुयोगद्वार मूलं एवं हेमचन्द्रसूरि-रचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१३८] + गाथा: ॥--॥

दीप अनुक्रम [२७५--२७९]

त्वादिति, ततोऽसङ्ख्येयैरेव समयैर्यथोक्तपक्ष्मणो विदार्यमाणत्वाच्छद्मस्थानुभवविषयस्य च समयप्रसाधकस्य विशिष्टक्रियाविशेषस्य कस्यचिद्दर्शयितुमशक्यत्वाद् 'एत्तोऽवि णं सुहुमतराए समए' इति सामान्येनैवोक्तवानिति, एकस्मादुपरितनपक्ष्मच्छेदनकालादसङ्ख्याततमोंऽशः समय इति स्थितं, युगपदनन्तसङ्घातविदारणहेतुपूर्वोक्तप्रयत्नविशेषसिद्धिश्च नगरादिप्रस्थितानवरतप्रवृत्तपुरुषादेः प्रयत्नविशेषात् प्रतिक्षणं बहून्नभःप्रदेशान् विलङ्घ्याचिरेणैवेष्टदेशप्राप्तिर्भावनीया, यदि पुनरसौ क्रमेणैकैकं व्योमप्रदेशं लङ्घयेत् तदा असङ्ख्येयोत्सर्पिणीअवसर्पिणीभिरेवेष्टदेशं प्राप्नुयाद् 'अंगुलसेढीमित्ते उस्सप्पिणीउ असंखेज्जा' इत्यादिवचनादिति भावः, न चातीन्द्रियेष्वर्थेषु एकान्तेन युक्तिनिष्ठैर्भाव्यं, सर्वज्ञवचनप्रामाण्याद्, उक्तं च—"आगमश्चोपपत्तिश्च, सम्पूर्णं विद्धि लक्षणम्। अतीन्द्रियाणामर्थानां, सद्भावप्रतिपत्तये ॥ १ ॥ आगमश्चाप्तवचनमाप्तं दोषक्षयाद्विदुः । वीतरागोऽनृतं वाक्यं, न ब्रूयाद्धेत्वसम्भवात् ॥ २ ॥ उपपत्तिर्भवेद्युक्तिर्या सद्भावप्रसाधिका। साऽन्वयव्यतिरेकादिलक्षणा सूरिभिः कृता ॥ ३ ॥" इति, निदर्शितं चेहोभयमपीत्यलं विस्तरेण।

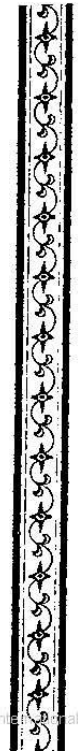
असंखिज्जाणं समयाणं समुदयसमितिसमागमेणं सा एगा आवलिअत्ति वुच्चइ, संखेज्जाओ आवलियाओ ऊसासो, संखिज्जाओ आवलिआओ नीसासो,–हट्ठस्स अणवग-

१ प्राप्तिर्भावनयेति संभाव्यते. २ अङ्गुलमात्रश्रेणौ उत्सर्पिण्योऽसङ्ख्येयाः.

॥ १७८ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[४५], चूलिकासूत्र-[२] अनुयोगद्वार मूलं एवं हेमचन्द्रसूरि-रचिता वृत्तिः



ल्लस्स निरुवक्किट्ठस्स जंतुणो । एगे ऊसासनीसासे, एस पाणुत्ति वुच्चइ ॥१॥ सत्तपाणूणि से थोवे, सत्त थोवाणि से लवे । लवाणं सत्तहत्तरीए, एस मुहुत्ते विआहिए ॥ २ ॥ तिण्णि सहस्सा सत्त य सयाइं तेहुत्तरिं च ऊसासा । एस मुहुत्तो भणिओ सव्वेहिं अणंतनाणीहिं ॥ ३ ॥ एएणं मुहुत्तपमाणेणं तीसं मुहुत्ता अहोरत्तं, पण्णरस अहोरत्ता पक्खो, दो पक्खा मासो, दो मासा ऊऊ, तिण्णि उऊ अयणं, दो अयणाइं संवच्छरे, पंच संवच्छराइं जुगे, वीसं जुगाइं वाससयं, दस वाससयाइं वाससहस्सं, सयं वाससहस्साणं वाससयसहस्सं, चोरासीइं वाससयसहस्साइं से एगे पुव्वंगे, चउरासीइ पुव्वंगसयसयस्साइं से एगे पुव्वे, चउरासीइं पुव्वसयसहस्साइं से एगे तुडिअंगे, चउरासीइं तुडिअंगसयसहस्साइं से एगे तुडिए, चउरासीइं तुडिअसयसहस्साइं से एगे अडडंगे, चोरासीइं अडडंगसयसहस्साइं से एगे अडडे, एवं अववंगे अववे हुहुअंगे हुहुए उप्पलंगे उप्पले पउमंगे पउमे नलिणंगे नलिणे अच्छनिऊरंगे अच्छ-



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१३८] + गाथाः ||--||

दीप अनुक्रम [२७५--२७९]

अनुयो० मलधारीया ॥ १७९ ॥

निउरे अउअंगे अउए पउअंगे पउए णउअंगे णउए चूलिअंगे चूलिया सीसपहेलियंगे चउरासीइं सीसपहेलियंगसयसहस्साइं सा एगा सीसपहेलिआ । एयावया चेव गणिए, एयावया चेव गणिअस्स विसए, एत्तोवरं ओवमिए पवत्तइ (सू० १३८)

शेषं गतार्थं, यावत् 'हट्ठस्स' गाहा, हृष्टस्य–तुष्टस्य अनवकल्पस्य–जरसा अपीडितस्य निरुपक्लिष्टस्य–व्याधिना प्राक् साम्प्रतं चानभिभूतस्य जन्तोः–मनुष्यादेरेक उच्छ्वासयुक्तो निःश्वासः एष प्राण उच्यते, शोकजरादिभिरस्वस्थस्य जन्तोरुच्छ्वासनिःश्वासः त्वरितादिस्वरूपतया स्वभावस्थो न भवत्यतो हृष्टादिविशेषणोपादानं । 'सत्त पाणूणी'त्यादि श्लोकः, सप्त प्राणा–यथोक्तस्वरूपाः स एकः स्तोकः सप्त स्तोकाः स एको लवः लवानां सप्तसप्तत्या यो निष्पद्यते एष मुहूर्तो व्याख्यातः । साम्प्रतं सप्तसप्ततिलवमानतया सामान्येन निरूपितं मुहूर्तमेवोच्छ्वाससङ्ख्यया विशेषतो निरूपयितुमाह—'तिण्णि सहस्सा' गाहा, अस्या भावार्थः–सप्तभिरुच्छ्वासैरेकः स्तोको निर्दिष्टः, एवंभूताश्च स्तोका एकस्मिंल्लवे सप्त प्रोक्ताः, ततः सप्त सप्तभिरेव गुणिता इत्येकस्मिंल्लवे एकोनपञ्चाशदुच्छ्वासाः सिद्धाः, एकस्मिंश्च मुहूर्ते लवाः सप्तसप्ततिर्निर्णीताः, अत एकोनपञ्चाशत्सप्तसप्तत्या गुण्यते ततो यथोक्तमुच्छ्वासनिःश्वासमानं भवति, उच्छ्वासशब्दस्योपलक्षणत्वात्, अहोरात्रादयः शीर्षप्रहेलिकापर्यन्तास्तु कालप्रमाणविशेषाः प्राक्कालानुपूर्व्यामेव निर्णीतार्थाः, 'एयावया चेव गणिए'

वृत्तिः उपक्रमे प्रमाणद्वारं

॥ १७९ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इत्यादि, एतावत्–शीर्षप्रहेलिकापर्यन्तमेव तावद्गणितं, एतावतामेव शीर्षप्रहेलिकापर्यन्तानां चतुर्णवत्यधिकशततलक्षणानामेवाङ्कस्थानानां दर्शनादेतावदेव गणितं भवति न परत इति भावः, एतावानेव च–शीर्षप्रहेलिकाप्रमितराशिपर्यन्तो गणितस्य विषयो, गणितस्य प्रमेयमित्यर्थः, अतः परं सर्वमौपमिकं ॥ १३८ ॥ तदेव निरूपयितुमाह—

से किं तं ओवमिए ?, २ दुविहे पण्णत्ते, तंजहा–पलिओवमे य सागरोवमे य, से किं तं पलिओवमे ?, २ तिविहे पण्णत्ते, तंजहा–उद्धारपलिओवमे अद्धापलिओवमे खेत्तपलिओवमे अ, से किं तं उद्धारपलिओवमे ?, २ दुविहे पण्णत्ते, तंजहा–सुहुमे अ वावहारिए अ, तत्थ णं जे से सुहुमे से ठप्पे, तत्थ णं जे से ववहारिए से जहानामए पल्ले सिआ जोयणं आयामविक्खंभेणं जोअणं उड्ढं उच्चत्तेणं तं तिगुणं सविसेसं परिक्खेवेणं, से णं पल्ले एगाहिअबेआहिअतेआहिअ जाव उक्कोसेणं सत्तरत्तरूढाणं संसट्ठे संनिचिते भरिए वालग्गकोडीणं ते णं वालग्गा नो अग्गी डहेज्जा नो वाऊ हरेज्जा नो कुहेज्जा नो पलिविद्धंसिज्जा णो पूइत्ताए हव्वमागच्छेज्जा, तओ णं समए २ एगमेगं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१३९] + गाथा: ||--||

दीप अनुक्रम [२८०--२८८]

वालग्गं अवहाय जावइएणं कालेणं से पल्ले खीणे नीरए निल्लेवे णिट्ठिए भवइ, से तं ववहारिए उद्धारपलिओवमे। एएसिं पल्लाणं कोडाकोडी हवेज्ज दसगुणिया। तं ववहारिअस्स उद्धारसागरोवमस्स एगस्स भवे परिमाणं ॥१॥ एएहिं वावहारिअउद्धारपलिओवमसागरोवमेहिं किं पओअणं?, एएहिं वावहारिअउद्धारपलिओवमसागरोवमेहिं णत्थि किंचिप्पओअणं, केवलं पण्णवणा पण्णविज्जइ, से तं वावहारिए उद्धारपलिओवमे। से किं तं सुहुमे उद्धारपलिओवमे?, २ से जहानामए पल्ले सिआ जोअणं आयामविक्खंभेणं जोअणं उव्वेहेणं तं तिगुणं सविसेसं परिक्खेवेणं, से णं पल्ले एगाहिअबेआहिअतेआहिअ उक्कोसेणं सत्तरत्तपरूढाणं संसट्ठे संनिचिते भरिए वालग्गकोडीणं, तत्थ णं एगमेगे वालग्गे असंखिज्जाइं खंडाइं कज्जइ, ते णं वालग्गा दिट्ठीओगाहणाओ असंखेज्जइभागमेत्ता सुहुमस्स पणगजीवस्स सरीरोगाहणाउ असंखेज्जगुणा, ते णं वालग्गा णो अग्गी डहेज्जा णो वाऊ हरेज्जा णो कुहेज्जा णो पलिविद्धंसिज्जा णो पूइ-

Jain Education Int... For Private & Personal Use Only ...jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१३९] + गाथा: ||--||

दीप अनुक्रम [२८०--२८८]

त्ताए हव्वमागच्छेज्जा, तओ णं समए २ एगमेगं वालग्गं अवहाय जावइएणं कालेणं से पल्ले खीणे नीरए निल्लेवे णिट्ठिए भवइ, से तं सुहुमे उद्धारपलिओवमे । एएसिं पल्लाणं कोडाकोडी हवेज्ज दसगुणिआ । तं सुहुमस्स उद्धारसागरोवमस्स एगस्स भवे परिमाणं ॥१॥ एएहिं सुहुमउद्धारपलिओवमसागरोवमेहिं किं पओअणं ?, एएहिं सुहुम-उद्धारपलिओवमसागरोवमेहिं दीवसमुद्दाणं उद्धारो घेप्पइ । केवइआणं भंते! दीव-समुद्दा उद्धारेणं पं० ?, गो० ! जावइआणं अड्ढाइज्जाणं उद्धारसा० उद्धारसमया एव-इया णं दीवसमुद्दा उद्धारेणं पण्णत्ता, से तं सुहुमे उद्धारपलिओवमे । से तं उद्धा० ।

उपमया निर्वृत्तमौपमिकम्, उपमानमन्तरेण यत्कालप्रमाणमनतिशयिना ग्रहीतुं न शक्यते तदौपमिक-मिति भावः, तच्च द्विधा–पल्योपमं सागरोपमं च, तत्र धान्यपल्यवत् पल्यो वक्ष्यमाणस्वरूपः तेनोपमा यस्मिन् तत्पल्योपमं, तथा महत्त्वसाम्यात् सागरेणोपमा यत्र तत्सागरोपमं, तत्र पल्योपमं त्रिधा, तद्यथा—'उद्धा-रपलिओवमे' इत्यादि, तत्र वक्ष्यमाणस्वरूपवालाग्राणां तत्खण्डानां वा तद्धारेण द्वीपसमुद्राणां वा प्रतिस-मयमुद्धरणम्–अपोद्धरणमपहरणमुद्धारः तद्विषयं तत्प्रधानं वा पल्योपममुद्धारपल्योपमं, तथा अद्धेति–कालः,

अनु. ३१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१३९] + गाथाः ||--||

दीप अनुक्रम [२८०--२८८]

अनुयो० मलधारीया ॥ १८१ ॥

स चेह प्रस्तावाद्वक्ष्यमाणवालाग्राणां तत्खण्डानां वा प्रत्येकं वर्षशतलक्षण उद्धारकालो गृह्यते, अथवा यो नारकाद्यायुःकालः प्रकृतपल्योपममेयत्वेन वक्ष्यते स एवोपादीयते, ततस्तत्प्रधानं पल्योपममद्धापल्योपमं, तथा क्षेत्रम्–आकाशं तदुद्धारप्रधानं पल्योपमं क्षेत्रपल्योपमम् । तत्राद्यं निरूपयितुमाह—'से किं तं उद्धारपलिओवमे' इत्यादि, उद्धारपल्योपमं द्विविधं प्रज्ञप्तं, तद्यथा–वालाग्राणां सूक्ष्मखण्डकरणात् सूक्ष्मं च शेषामेव सांव्यवहारिकप्रत्यक्षव्यवहारिभिर्गृह्यमाणानामखण्डानां यथावस्थितानां ग्रहणात् प्ररूपणामात्रव्यवहारोपयोगित्वाद्व्यावहारिकं चेति, तत्र यत् सूक्ष्मं तत् स्थाप्यं–तिष्ठतु तावद्, व्यावहारिकप्ररूपणापूर्वकत्वादेतत्प्ररूपणायाः, पश्चात् प्ररूपयिष्यते इति भावः । तत्र यत्तद्व्यावहारिकमुद्धारपल्योपमं तदिदमिति शेषः, तदेव विवक्षुराह—'से जहानामए' इत्यादि, तद्यथानाम धान्यपल्य इव पल्यः स्यात्, स च वृत्तत्वादायामविष्कम्भाभ्यां–दैर्घ्यविस्ताराभ्यां प्रत्येकमुत्सेधाङ्गुलक्रमनिष्पन्नं योजनं ऊर्ध्वमुच्चत्वेनापि तद्योजनं त्रिगुणं सविशेषं 'परिक्खेवेणं' भ्रमितिमङ्गीकृत्येति, सर्वस्यापि वृत्तपरिधेः किञ्चिन्यूनषड्भागाधिकत्रिगुणत्वादस्यापि पल्यस्य किञ्चिन्यूनषड्भागाधिकानि त्रीणि योजनानि परिधिर्भवतीत्यर्थः, स पल्यः 'एगाहियबेयाहियतेआहिय'त्ति षष्ठीबहुवचनलोपादेकाहिकद्व्याहिकत्र्याहिकानामुत्कर्षतः सप्तरात्रप्ररूढानां भृतो वालाग्रकोटीनामिति सम्बन्धः, तत्र मुण्डिते शिरस्येकेनाह्ना यावत्प्रमाण वालाग्रकोट्य उत्तिष्ठन्ति ता एकाहिक्यः, द्वाभ्यां

१ ऊर्ध्वारोहप्राधान्यान्नात्रात्मनेपदमिति संभावना.

वृत्तिः उपक्रमे प्रमाणद्वारं ॥ १८१ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[४५], चूलिकासूत्र-[२] अनुयोगद्वार मूलं एवं हेमचन्द्रसूरि-रचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१३९] + गाथाः ॥--॥

दीप अनुक्रम [२८०--२८८]

तु या उत्तिष्ठन्ति ता द्व्याहिक्यः त्रिभिस्तु त्र्याहिक्यः, कथंभूत इत्याह—'संसृष्ट' आकर्णं पूरितः 'सन्निचितः' प्रचयविशेषान्निबिडीकृतः, किं बहुना ?, एवंभूतोऽसौ भृतो येन तानि वालाग्राणि नाग्निर्दहेत् न वायुरपहरेत्, अतीव निचितत्वादग्निपवनावपि न तत्र क्रमेते इत्यर्थः, 'नो कुहेज्ज'त्ति नो कुथ्येयुः प्रचयविशेषादेव शुषिराभावात् वायोरसम्भवाच्च नासारतां गच्छेयुः, अत एव च 'नो परिविद्धंसेज्ज'त्ति कतिपयपरिशाटनमप्यङ्गीकृत्य न परिविध्वंसेरन्नित्यर्थः, अत एव च 'नो पूइत्ताए हव्वमागच्छेज्ज'त्ति न पूतित्वेन कदाचिदप्यागच्छेयुः–न कदाचिदुर्गन्धितां प्राप्नुयुरित्यर्थः, 'तओ णं'ति तेभ्यो वालाग्रेभ्यः समये समये एकैकं वालाग्रमपहृत्य कालो मीयते इति शेषः, ततश्च 'जावइएण' मित्यादि, यावता कालेन स पल्यः 'क्षीणो' वालाग्रकर्षणात् क्षयमुपागतः आकृष्टधान्यकोष्ठागारवत्, तथा 'नीरए'त्ति निर्गतो रजःकल्पसूक्ष्मवालाग्रोऽपकृष्टधान्यरजःकोष्ठागारवत्, तथा 'निल्लेवि'त्ति अत्यन्तसंश्लेषात् तन्मयतागतवालाग्रलेपापहारान्निर्लेपः अपनीतभित्त्यादिगतधान्यलेपकोष्ठागारवद्, एभिस्त्रिभिः प्रकारैर्निष्ठितो–विशुद्ध इत्यर्थः, एकार्थिका वा एते शब्दाः अत्यन्तविशुद्धिप्रतिपादनपराः, वाचनान्तरदृश्यमानं च अन्यदपि पदमुक्तानुसारेण व्याख्येयम्, एतावत्कालस्वरूपं बादरमुद्धारपल्योपमं भवति, एतच्च पल्यान्तर्गतवालाग्राणां सङ्ख्येयत्वात् सङ्ख्येयैः समयैस्तदपहारसम्भवात् सङ्ख्येयसमयमानं द्रष्टव्यम्। 'से त'मित्यादि निगमनम्। व्यावहारिकं पल्योपमं निरूप्याथ सागरोपममाह—'एएसिं पल्लाण' गाहा, 'एतेषाम्' अनन्तरोक्तपल्योपमानां दशभिः कोटाकोटिभिरेकं व्या-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[४५], चूलिकासूत्र-[२] अनुयोगद्वार मूलं एवं हेमचन्द्रसूरि-रचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१३९] + गाथाः ||--||

दीप अनुक्रम [२८०--२८८]

वहारिकं सागरोपमं भवतीति तात्पर्यं, शिष्यः पृच्छति–एतैर्व्यावहारिकपल्योपमसागरोपमैः किं प्रयोजनं ?– कोऽर्थः साध्यते ?, तत्रोत्तरं–नास्ति किञ्चित्प्रयोजनं, निरर्थकस्तर्हि तदुपन्यास इत्याशङ्क्याह–केवलं प्रज्ञापना प्रज्ञाप्यते–प्ररूपणामात्रं क्रियत इत्यर्थः, ननु निरर्थकस्य प्ररूपणयाऽपि किं कर्तव्यम् ?, अतो यत्किञ्चिदेतत्, नैवम्, अभिप्रायापरिज्ञानाद् एवं हि मन्यते, बादरे प्ररूपिते सूक्ष्मं सुखावसेयं स्याद् अतो बादरप्ररूपणा सूक्ष्मोपयोगित्वान्नैकान्ततो नैरर्थक्यमनुभवति, तर्हि नास्ति किञ्चित्प्रयोजनमित्युक्तमसत्यं प्राप्नोतीति चेत्, नैवम्, एतावतः प्रयोजनस्याल्पत्वेनाविवक्षितत्वाद्, एवं बादराद्धापल्योपमादावपि वाच्यम् । 'से किं तं सुहुमे' इत्यादि, गतार्थमेव, 'जाव तत्थ णं एगमेगे वालग्गे असंखेज्जाइ'मित्यादि, पूर्वं वालाग्राणि सहजान्येव गृहीतानि, अत्र त्वेकैकमसङ्ख्येयखण्डीकृतं गृह्यत इति भावः, एवं सत्येकैकखण्डस्य यन्मानं भवति तन्निरूपयितुमाह—'ते णं वालग्गा दिट्ठीओगाहणाओ' इत्यादि, 'तानि' खण्डीकृतवालाग्राणि प्रत्येकं दृष्ट्यवगाहनातः किम् ?–असङ्ख्येयभागमात्राणि, दृष्टिः–चक्षुर्द्वारोत्पन्नदर्शनरूपा साऽवगाहते परिच्छेदद्वारेण प्रवर्तते यत्र वस्तुनि तदेव वस्तु दृष्ट्यवगाहना प्रोच्यते, ततोऽसङ्ख्येयभागवर्तीनि प्रत्येकं वालाग्रखण्डानि मन्तव्यानि, इदमुक्तं भवति–यत् पुद्गलद्रव्यं विशुद्धचक्षुर्दर्शनी छद्मस्थः पश्यति तदसङ्ख्येयभागमात्राण्येकैकशस्तानि भवन्ति, द्रव्यतो निरूप्याथ क्षेत्रतस्तन्मानमाह—'सुहुमस्से'त्यादि, अयमत्र भावार्थः–सूक्ष्मपनकजीवशरीरं यावति क्षेत्रेऽवगाहते ततोऽसङ्ख्येयगुणानि प्रत्येकं तानि भवन्ति, बादरपृथिवीकायिकपर्या-

॥ १८२ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सशरीरतुल्यानीति वृद्धवादः, एषा च वालाग्रखण्डानामसङ्ख्येयत्वात् प्रतिसमयमुद्धारे किल सङ्ख्येया वर्षकोट्योऽतिक्रामन्ति, अतः सङ्ख्येयवर्षकोटिमानमिदमवसेयं, शेषं तूक्तार्थप्रायं यावत् 'जावइया अड्ढाइज्जा णं उद्धारसागरोवमाण'मित्यादि, यावन्तोऽर्द्धतृतीयसागरोपमेषु 'उद्धारसमया' वालाग्रोद्धारोपलक्षिताः समया उद्धारसमयाः एतावन्तो द्विगुणद्विगुणविष्कम्भा द्वीपसमुद्रा यथोक्तेनोद्धारेण प्रज्ञप्ताः, असङ्ख्येया इत्यर्थः। उक्तमुद्धारपल्योपमम्, अथाद्धापल्योपमं निरूपयितुमाह—

से किं तं अद्धा०?, २ दुविहे पण्णत्ते, तंजहा—सुहुमे अ वावहारिए अ, तत्थ णं जे से सुहुमे से ठप्पे, तत्थ णं जे से वाव० से जहा० पल्ले० जोअणं आया० जोअणं उ० तं तिगुणं सवि० परि०, से णं पल्ले एगाहिअबेआहिअतेआहिअ जाव भरिए वालग्गकोडीणं, ते णं वालग्गा णो अग्गी डहेज्जा जाव णो पलिविद्धंसिज्जा नो पूइत्ताए हव्वमागच्छेज्जा, तओ णं वाससए २ एगमेगं वालग्गं अवहाय जावइएणं कालेणं से पल्ले खीणे नीरए निल्लेवे निट्ठिए भवइ, से तं वावहारिए अद्धापलिओवमे। एएसिं पल्लाणं कोडाकोडी भविज्ज दसगुणिया। तं ववहारिअस्स अद्धासा० एगस्स भवे परिमाणं ॥१॥ एएहिं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[४५], चूलिकासूत्र-[२] अनुयोगद्वार मूलं एवं हेमचन्द्रसूरि-रचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१३९] + गाथा: ||--||

दीप अनुक्रम [२८०--२८८]

ववहारिएहिं अद्धा० प० सागरो० किं प०?, एएहिं व० अद्धाप० साग० नत्थि किंचिप्पओअणं, केवलं पण्णव०, से तं ववहारिए अद्धाप०। से किं तं सुहुमे अद्धाप०?,२० पल्ले सिआ जोअणं आया० जोअणं उड्ढं० तं तिगुणं सविसे० परि०, से णं पल्ले एगाहिअबेआ० तेआ० जाव भरिए वालग्गकोडीणं, तत्थ णं एगमेगे वालग्गे असंखेज्जाइं खंडाइं कज्जइ, ते णं वालग्गा दिट्ठीओगाहणाओ असंखेज्जइभागमेत्ता सुहुमस्स पणग० सरीरोगाहणाओ असंखेज्जगुणा, ते णं वालग्गा णो अग्गी० जाव नो पलिविद्धंसिज्जा नो पूइत्ताए हव्वमा०, तओ णं वाससए २ एगमेगं वालग्गं अवहाय जावइएणं कालेणं से प० खी० नी० निल्लेवे णिट्ठिए भवइ, से तं सुहुमे अद्धा०। एएसिं पल्लाणं कोडाकोडि भवेज्ज दसगुणिया। तं सुहुमस्स अद्धासा० एगस्स भवे परिमाणं ॥ १ ॥ एएहिं सुहुमेहिं अद्धाप० सागरोवमेहिं किं पओअणं?, एएहिं सुहुमेहिं अद्धाप० साग० नेरइअतिरिक्खजोणिअमणुस्सदेवाणं आउअं मविज्जइ (सू० १३९)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[४५], चूलिकासूत्र-[२] अनुयोगद्वार मूलं एवं हेमचन्द्रसूरि-रचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१३९] + गाथाः ॥--॥

दीप अनुक्रम [२८९--२९२]

इदमप्युद्धारपल्योपमवत्सर्वं भावनीयं, नवरमुद्धारकालस्येह वर्षशतमानत्वाद्व्यावहारिकपल्योपमे सङ्ख्येया वर्षकोट्योऽवसेयाः, सूक्ष्मपल्योपमे त्वसङ्ख्येया इति ॥ १३९ ॥

णेरइयाणं भंते! केवइयं कालं ठिई पं०?, गो०! जहन्नेणं दसवाससहस्साइं उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं, रयणप्पहापुढविणेरइयाणं भंते! केवइयं कालं ठिइ पं०?, गो०! जहन्नेणं दस वा० उक्कोसेणं एगं सागरोवमं, अपज्जत्तगरयणप्पहापुढविणेरइयाणं भंते! केवइयं० पं०?, गो०! जहन्नेणवि अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणवि अंतोमुहुत्तं, पज्जत्तगरयणप्प० नेरइयाणं भंते! केवइ० पं०?, गो०! जहन्नेणं दसवा० अंतोमुहुत्तूणाइं उक्कोसेणं एगं सागरोवमं अंतोमुहुत्तोणं, सक्करप्पहापुढविनेरइआणं भंते! केवइ० पं०?, गो०! जहन्नेणं एगं सागरोवमं उक्कोसेणं तिण्णि सागरोवमाइं, एवं सेसपुढवीसु पुच्छा भाणियव्वा, वालुअप्पहापुढविनेरइयाणं जह० तिण्णि सागरोवमाइं उक्को० सत्त सागरोवमाइं, पंकप्पहापु० जह० सत्त० उक्को० दस सा०, धूमप्पहा-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अस्य सूत्रस्य क्रमः '१४०' वर्तते, परन्तु मुद्रण अशुद्धित्वात् '१४२' इति क्रम मुद्रितं

प्रत सूत्रांक [१४२] + गाथा: ||--||

दीप अनुक्रम [२८९--२९२]

अनुयो० मलधारीया ॥ १८४ ॥

पु० जह० दस सा० उक्को० सत्तरस सागरोवमाइं, तमप्पहापु० जह० सत्तरस० उक्कोसेणं बावीस०, तमतमापुढविनेरइयाणं भंते! के०?, गो०! जह० बावीसं सा० उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं ।

यदि नारकादीनामायूंष्येतैर्मीयन्ते तर्हि नारकाणां भदन्त! कियन्तं कालं स्थितिः प्रज्ञप्ता? स्थीयते नारकादिभवेष्वनयेति स्थितिः–आयुःकर्मानुभवपरिणतिः, इह यद्यपि कर्मपुद्गलानां बन्धकालादारभ्य निर्जरणकालं यावत्सामान्येनावस्थितिः कर्मशास्त्रेषु स्थितिः प्रतीता (ग्रन्थाग्रं ४०००) तथाऽप्यायुःकर्मपुद्गलानुभवनमेव जीवितं रूढं, शास्त्रकारस्यापि च दशवर्षसहस्रादिकां स्थितिं प्रतिपादयतस्तदेवाभिधातुमभिप्रेतम्, अन्यथा बद्धेनायुषा प्राग्भवे यावन्तं कालमवतिष्ठते जन्तुस्तेन समधिकैव दशवर्षसहस्रादिका स्थितिरुक्ता स्यात्, न चैवं, तस्मान्नारकादिभवप्राप्तानां प्रथमसमयादारभ्यायुषोऽनुभवकाल एवावस्थितिः, सा च नारकाणामौधिकपदे जघन्यतो दश वर्षसहस्राणि, उत्कृष्टतस्तु त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि, रत्नप्रभायां जघन्या तथैव उत्कृष्टा तु सागरोपमम्, अपर्याप्तपदे जघन्यत उत्कृष्टतश्चान्तर्मुहूर्तमेव, ततः परमवश्यमेषां पर्याप्तत्वसम्भवात्, पर्याप्तपदे चापर्याप्तकालेन हीना औधिक्येव स्थितिर्द्रष्टव्या, एवमन्यास्वपि पृथिवीषु वाच्यं, नवरमुत्कृष्टा स्थितिः सर्वासु

वृत्तिः उपक्रमे प्रमाणद्वारं

॥ १८४ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अस्य सूत्रस्य क्रमः '१४०' वर्तते, परन्तु मुद्रण अशुद्धित्वात् '१४२' इति क्रम मुद्रितं

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[४५], चूलिकासूत्र-[२] अनुयोगद्वार मूलं एवं हेमचन्द्रसूरि-रचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१४२] + गाथाः ||--||

दीप अनुक्रम [२८९--२९२]

इत्थमवसेया—"सागरमेगं तिय सत्त दस य सत्तरस तह य बावीसा। तेत्तीसं जाव ठिई सत्तसुवि कमेण पुढवीसु ॥ १ ॥" त्ति जघन्या तु—'जा पढमाए जेट्ठा सा बीयाए कणिट्ठिया भणिया' इत्यादिक्रमाद्भावनीया, अपर्याप्तकालस्तु सर्वत्रान्तर्मुहूर्तमेव, अपर्याप्तकाले चौधिकस्थितेर्विशोधिते सर्वत्र शेषा पर्याप्तस्थितिः, अपर्याप्ताश्च नारका देवा असङ्ख्येयवर्षायुष्कतिर्यङ्मनुष्याश्च करणत एव द्रष्टव्याः, लब्धितस्तु पर्याप्ता एव, शेषास्तु लब्ध्या पर्याप्ता अपर्याप्ताश्च सम्भवन्ति। तदेवं पूर्वाभिहितं चतुर्विंशतिदण्डकमनुसृत्य नारकाणामायुःस्थितिर्निरूपिता, अथासुरकुमाराणां निरूपयितुमाह—

असुरकुमाराणं भंते! केवइअं कालं ठिई पं०?, गो०! जहन्नेणं दस वाससहस्साइं उक्को० सातिरेगं सागरोवमं, असुरकुमारदेवीणं भंते! केवइ० पं०?, गो०! जहन्नेणं दस० वा० उक्को० अद्धपंचमाइं पलिओवमाइं, नागकुमाराणं भंते! केव० पं०?, गो०! जह० दस वास० उक्कोसेणं देसूणाइं दुण्णि पलिओवमाइं, नागकुमारीणं भंते!

१ सागरोपममेकं त्रीणि सप्त दश च सप्तदश तथैव द्वाविंशतिः । त्रयस्त्रिंशत् यावत् स्थितिः सप्तस्वपि क्रमेण पृथ्वीषु ॥ १ ॥ २ या प्रथमायां ज्येष्ठा सा द्वितीयायां कनिष्ठा भणिता.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अस्य सूत्रस्य क्रमः '१४०' वर्तते, परन्तु मुद्रण अशुद्धित्वात् '१४२' इति क्रम मुद्रितं

प्रत सूत्रांक [१४२] + गाथा: ||--||

दीप अनुक्रम [२८९--२९२]

केव० पं०?, गो०! ज० दस वास० उक्को० देसूणं पलिओवमं, एवं जहा णाग० देवाणं देवीण य तहा जाव थणियकुमाराणं देवाणं देवीण य भाणियव्वं। पुढवीकाइयाणं भंते! के०?, गो०! जह० अंतोमु० उक्को० बावीसं वाससहस्साइं, सुहुमपुढवीकाइयाणं ओहियाणं अपज्जत्तयाणं पज्जत्तयाण य तिण्णिवि पुच्छा, गो०! जह० अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणवि अंतोमुहुत्तं, बादरपुढविकाइयाणं पुच्छा, गो०! जह० अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं बावीसं वाससहस्साइं, अपज्जत्तगबादरपु० पुच्छा, गो०! जहण्णेणवि अं० उक्कोसेणवि अं०, पज्जत्तगबादरपु० पुच्छा, गो०! जह० अंतोमुहुत्तं उक्को० बावीसं वा० अंतोमुहुत्तूणाइं, एवं सेसकाइयाणंपि पुच्छावयणं भाणियव्वं, आउकाइयाणं जह० अंतो० उक्कोसे० सत्त वा०, सुहुमआउकाइ० ओहिआणं अपज्जत्तगाणं पज्जत्तगाणं तिण्हवि जहण्णेणवि अंतो० उक्कोसेणवि अं०, बादरआउका० जहा ओहिआणं, अपज्जत्तगबादरआ० जहन्नेणवि अंतो० उक्कोसेणवि अं०, पज्जत्तग-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अस्य सूत्रस्य क्रमः '१४०' वर्तते, परन्तु मुद्रण अशुद्धित्वात् '१४२' इति क्रम मुद्रितं

प्रत सूत्रांक [१४२] + गाथाः ||--||

दीप अनुक्रम [२८९--२९२]

बादरआ० जह० अंतोमुहुत्तं उक्को० सत्तवाससह० अंतोमुहुत्तूणाइं। तेउकाइआणं जह० अं० उक्को० तिण्णि राइंदिआइं, सुहुमते० ओहिआणं अपज्जत्तगाणं पज्जत्तगाणं तिण्हवि जहण्णेणवि अंतो० उक्कोसेणवि अं०, बादरतेउकाइयाणं ज० अन्तो० उक्कोसेणं तिण्णि रा०, अपज्जत्तबा० ते० जहन्नेणवि अन्तो उक्को० अन्तो० पज्जत्तगबाद० जह० अंतोमु० उक्को० तिण्णि रा० अंतोमु०। वाउका० जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्को० तिण्णि वाससहस्साइं, सुहुमवाउ० ओहिआणं अपज्जत्तगाणं पज्जत्तगाण य तिण्हवि जहण्णेणऽवि अंतो० उक्कोसे० अं०, बादरवा० ज० अन्तो० उक्को तिण्णि वा०, अपज्जत्तगबादरवाउकाइ० जह० अं० उक्कोसेणवि अं०, पज्जत्तगबादरवाउ० जह० अंतोमुहुत्तं उक्को० तिण्णि वा० अंतोमु०। वणस्सइकाइआणं जहन्नेणं अं० उक्को० दस वाससहस्साइं, सुहुमवणस्सइका० ओहिआणं अपज्जत्तगाणं पज्जत्तगाण य तिण्हवि जहण्णेणवि अंतोमु० उक्कोसे० अं०, बादरवणस्सइकाइआणं जह०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अस्य सूत्रस्य क्रमः '१४०' वर्तते, परन्तु मुद्रण अशुद्धित्वात् '१४२' इति क्रम मुद्रितं

प्रत सूत्रांक [१४२] + गाथा: ||--||

दीप अनुक्रम [२८९--२९२]

अंतो० उक्को० दस वा०, अपज्जत्तगबा० जह० अं० उक्कोसे० अंतो०, पज्जत्तगबादरवण० जहन्नेणं अं० उक्कोसेणं दस वास० अंतोमुहुत्तूणाइं । बेइंदिआणं भंते! केव० पं०?, गो०! जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्को० बारस संवच्छराणि, अपज्जत्तगबेइंदिआणं पुच्छा, गो०! जहन्नेणवि अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणवि अं०, पज्जत्तगबेइं० जह० अं० उक्को० बारससं० अंतोमुहुत्तूणाइं । तेइंदिआणं पुच्छा, गो०! जह० अं० उक्को० एगुणपण्णासं राइंदिआणं, अपज्जत्तगतेइंदिआणं पुच्छा, गो०! जहण्णेणवि अंतो० उक्कोसे अं०, पज्जत्तगतेइं० पुच्छा, गो०! जह० अंतोमुहुत्तं उक्को० एगुणपण्णासं राइंदिआइं अंतोमुहुत्तूणाइं । चउरिंदिआणं भंते! केवइ० पं०?, गो०! जह० अंतो० उक्को० छम्मासा, अपज्जत्तगचउरिंदिआणं पुच्छा, गो०! जहन्नेणवि अंतो० उक्कोसेणवि अंतो०, पज्जत्तगचउरिंदिआणं पुच्छा, गो०! जहन्नेणं अं० उक्को० छम्मासा अंतो० । पंचिंदियतिरिक्खजोणिआणं भंते! केवइ० पं०?, गो०! जह० अंतोमुहुत्तं उक्को० तिण्णि पलि-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अस्य सूत्रस्य क्रमः '१४०' वर्तते, परन्तु मुद्रण अशुद्धित्वात् '१४२' इति क्रम मुद्रितं

प्रत सूत्रांक [१४२] + गाथाः ||--||

दीप अनुक्रम [२८९--२९२]

ओवमाइं, जलयरपंचिंदियतिरिक्खजोणिआणं भंते! केवइयं कालं ठिई पं०?, गो०! जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं पुव्वकोडी, संमुच्छिमजलयरपंचिंदियपुच्छा, गो०! जहन्नेणं अंतो० उक्को० पुव्वकोडी, अपज्जत्तयसंमुच्छिमजलयरपंचिंदियपुच्छा, गो०! जहन्नेणवि अंतो० उक्कोसेणवि अंतो०, पज्जत्तयसंमुच्छिमजलयरपंचिंदियपुच्छा, गो०! जह० अंतो० उक्को० पुव्वकोडी अंतोमुहुत्तूणा, गब्भवक्कंतियजलयरपंचिंदियपुच्छा, गो०! जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं पुव्वकोडी, अपज्जत्तगगब्भवक्कंतियजलयरपंचिंदियपुच्छा, गो०! जहन्नेणवि अंतो० उक्कोसेणवि अंतो०, पज्जत्तगगब्भवक्कंतियजलयरपंचिंदियपुच्छा, गो०! जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं पुव्वकोडी अंतोमुहुत्तूणा, चउप्पयथलयरपंचिंदियपुच्छा, गो०! जह० अंतो० उक्को० तिण्णि पलिओवमाइं, संमुच्छिमचउप्पयथलयरपंचिंदिय जाव गो०! जह० अंतो० उक्को० चउरासीइं वाससहस्साइं, अपज्जत्तयसंमुच्छिमचउप्पयथलयरपंचिंदियजाव गो०! जहन्नेणवि अंतो०

अनु. ३२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अस्य सूत्रस्य क्रमः '१४०' वर्तते, परन्तु मुद्रण अशुद्धित्वात् '१४२' इति क्रम मुद्रितं

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[४५], चूलिकासूत्र-[२] अनुयोगद्वार मूलं एवं हेमचन्द्रसूरि-रचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१४२] + गाथा: ||--||

दीप अनुक्रम [२८९--२९२]

उक्कोसेणवि अंतो०, पज्जत्तयसंमुच्छिमचउप्पयथलयरपंचिंदियजाव गो०! जह० अंतो० उक्को० चउरासीइं वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तूणाइं, गब्भवक्कंतियचउप्पयथलयरपंचिंदिय जाव गो०! जह० अंतो० उक्को० तिण्णि पलिओवमाइं, अपज्जत्तगगब्भवक्कंतियचउप्पयथलयरपंचिंदियजाव गो०! जहण्णेणवि अंतो० उक्कोसेणवि अंतो०, पज्जत्तगगब्भवक्कंतियचउप्पयथलयरपंचिंदियजाव गो०! जह० अंतो० उक्को० तिण्णि पलिओवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं, उरपरिसप्पथलयरपंचिंदियपुच्छा, गो०! जह० अंतो० उक्को० पुव्वकोडी, संमुच्छिमउरपरिसप्पथलयरपंचिंदियपुच्छा, गो०! जह० अंतो० उक्को० तेवन्नं वाससहस्साइं, अपज्जत्तयसंमुच्छिमउरपरिसप्पथलयरपंचिंदिय जाव गो०! जहण्णेणवि अं० उक्कोसेणवि अंतो०, पज्जत्तयसंमुच्छिमउरपरिसप्पथलयरपंचिंदियजाव गो०! जह० अंतो० उक्को० तेवण्णं वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तूणाइं, गब्भवक्कंतियउरपरिसप्पथलयरपंचिंदियजाव गो० जह० अंतो० उक्को० पुव्वकोडी, अपज्ज-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अस्य सूत्रस्य क्रमः '१४०' वर्तते, परन्तु मुद्रण अशुद्धित्वात् '१४२' इति क्रम मुद्रितं

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[४५], चूलिकासूत्र-[२] अनुयोगद्वार मूलं एवं हेमचन्द्रसूरि-रचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१४२] + गाथाः ||--||

दीप अनुक्रम [२८९--२९२]



त्तगगब्भवक्कंतियउरपरिसप्पथलयरपंचिंदियजाव गो० ! जहन्नेणवि अंतो० उक्कोसेणवि अंतो०, पज्जत्तयगब्भवक्कंतियउरपरिसप्पथलयरपंचिंदियजाव गो० ! जह० अंतो० उक्को० पुव्वकोडी अंतोमुहुत्तूणा, भुअपरिसप्पथलयरपंचिंदियजाव गो० ! जहण्णेण अंतो० उक्कोसेणं पुव्वकोडी, संमुच्छिमभुयपरिसप्पथल० गो० ! जह० अं० उक्को० बायालीसं वाससहस्साइं, अपज्जत्तयसंमुच्छिमभुअपरिसप्पथलयरपंचिंदिय जाव गो० ! जह० अंतो० उक्को० अंतों०, पज्जत्तगसंमुच्छिमभुअपरिसप्पथलयरपंचिंदिय जाव गो० ! जह० अंतो० उक्को० बायालीसं वाससहस्साइं अंतो०, गब्भवक्कंतियभुअपरिसप्पथलयरपंचिंदिय जाव गो० ! जह० अंतो० उक्को० पुव्वकोडी, अपज्जत्तयगब्भवक्कंतियभुअपरिसप्पथलयरपंचिंदियजाव गो० ! जहन्नेणवि अंतो० उक्कोसेणवि अंतो०, पज्जत्तयगब्भवक्कंतियभुअपरिसप्पथलयरपंचिंदिय जाव गो० ! जह० अंतो० उक्को० पुव्वकोडी अंतोमुहुत्तूणा, खहयरपंचिंदिय जाव गो० ! जह० अंतो० उक्को०



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अस्य सूत्रस्य क्रमः '१४०' वर्तते, परन्तु मुद्रण अशुद्धित्वात् '१४२' इति क्रम मुद्रितं

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[४५], चूलिकासूत्र-[२] अनुयोगद्वार मूलं एवं हेमचन्द्रसूरि-रचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१४२] + गाथा: ||--||

दीप अनुक्रम [२८९--२९२]

पलिओवमस्स असंखेज्जइभागो, संमुच्छिमखहयरपंचिंदिय जाव गो० ! जह० अंतो० उक्को० बावत्तरिं वाससहस्साइं, अपज्जत्तगसंमुच्छिमखहयरपंचिंदियपुच्छा, गो० ! जह० अंतो० उक्को० अंतो०, पज्जत्तगसंमुच्छिमखहयरपंचिंदियजाव गो० ! जहन्नेणं अंतो० उक्को० बावत्तरिं वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तूणाइं, गब्भवक्कंतियखहयर० जाव गो० ! जह० अंतो० उक्को० पलिओवमस्स असंखेज्जइभागो, अपज्जत्तगगब्भवक्कंतियखहयर० जाव गो० ! जहण्णेणवि अंतो० उक्को० अंतो०, पज्जत्तगगखहय० पंचिंदियतिरिक्खजोणिआणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता, गो० ! जह० अंतो० उक्को० पलिओवमस्स असंखिज्जइभागो अंतोमुहुत्तूणो । एत्थ एएसि णं संगहणिगाहाओ भवंति, तंजहा–संमुच्छिमपुव्वकोडी चउरासीइं भवे सहस्साइं । तेवण्णा बायाला बावत्तरिमेव पक्खीणं ॥ १ ॥ गब्भंमि पुव्वकोडी तिण्णि य पलिओवमाइं परमाऊ । उरगभुअपुव्वकोडी पलिओवमासंखभागो अ ॥ २ ॥ मणुस्साणं भंते ! केव-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अस्य सूत्रस्य क्रमः '१४०' वर्तते, परन्तु मुद्रण अशुद्धित्वात् '१४२' इति क्रम मुद्रितं

प्रत सूत्रांक [१४२] + गाथाः ||--||

दीप अनुक्रम [२८९--२९२]

इयं० पण्णत्ता, गो०! जह० अंतो० उक्को० तिण्णि पलिओवमाइं, संमुच्छिममणुस्साणं जाव गो०! जहण्णेणवि अंतो० उक्कोसे० अंतो०, गब्भवक्कंतियमणुस्साणं जाव गो०! जह० अंतो० उक्को० तिण्णि पलिओवमाइं, अपज्जत्तगगब्भ० मणुस्साणं भंते! केवइ० पण्णत्ता?, गो०! जह० अंतो० उक्को० अंतो०, पज्जत्तगगब्भ० मणुस्साणं भंते! केवइ०, गो०! जह० अंतो० उक्को० तिण्णि पलि० अंतोमुहुत्तूणाइं । वाणमंतराणं देवाणं केवइ० पण्णत्ता?, गो०! जह० दस वाससहस्साइं उक्को० पलिओवमं, वाणमंतरीणं देवीणं भंते! केव० पण्णत्ता?, गो०! जह० दस वाससहस्साइं उक्को० अद्धपलिओवमं । जोइसियाणं भंते! देवाणं केवइ०?, गो०! जह० सातिरेगं अट्ठभागपलिओवमं उक्को० पलिओवमं वाससयसहस्समब्भहियं, जोइसियदेवीणं भंते! केवइ०?, गो०! जहन्नेणं अट्ठभागपलिओवमं उक्कोसेणं अद्धपलिओवमं पण्णासाए वाससहस्सेहिं अब्भहिअं, चंदविमाणाणं भंते! देवाणं केव०?, गो०! जह०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अस्य सूत्रस्य क्रमः '१४०' वर्तते, परन्तु मुद्रण अशुद्धित्वात् '१४२' इति क्रम मुद्रितं

प्रत सूत्रांक [१४२] + गाथाः ||--||

दीप अनुक्रम [२८९--२९२]

चउभागपलिओवमं उक्को० पलिओवमं वाससयसहस्समब्भहिअं, चंदविमाणाणं भंते! देवीणं गो०! जह० चउभागपलिओवमं उक्को० अद्धपलिओवमं पण्णासाए वाससहस्सेहिं अब्भहिअं, सूरविमाणाणं भंते! देवाणं, गो०! जह० चउभागपलिओवमं उक्को० पलिओवमं वाससहस्समब्भहिअं, सूरविमाणाणं देवीणं, गो०! जह० चउभागपलिओवमं उक्को० अद्धपलिओवमं पंचहिं वाससएहिं अब्भहिअं, गहविमाणाणं देवाणं गो०! जह० चउभागपलिओवमं उक्को० पलिओवमं, गहविमाणाणं भंते! देवीणं, गो०! जह० चउभागपलिओवमं उक्को० अद्धपलिओवमं, णक्खत्तविमाणाणं भंते! देवाणं, गो०! जह० चउभागपलिओवमं उक्को० अद्धपलिओवमं, णक्खत्तविमाणाणं भंते! देवीणं गो०! जह० चउभागपलिओवमं उक्को० सातिरेगं चउभागपलिओवमं, ताराविमाणाणं भंते! गो०! जह० साइरेगं अट्ठभागपलिओवमं उक्को० चउभागपलिओवमं, ताराविमाणाणं देवीणं भंते! केवइअं० पण्णत्ता?, गो०!

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अस्य सूत्रस्य क्रमः '१४०' वर्तते, परन्तु मुद्रण अशुद्धित्वात् '१४२' इति क्रम मुद्रितं

प्रत सूत्रांक [१४२] + गाथाः ||--||

दीप अनुक्रम [२८९--२९२]

जह० अट्ठभागपलिओवमं उक्को० साइरेगं अट्ठभागपलिओवमं । वेमाणिआणं भंते! देवाणं केव० पण्णत्ता?, गो०! जह० पलिओवमं उक्को० तेत्तीसं सागरोवमाइं, वेमाणिआणं भंते! देवीणं केवइ० पण्णत्ता?, गो०! जह० पलिओवमं उक्को० पणपण्णं पलिओवमाइं, सोहम्मे णं भंते! कप्पे देवाणं, गो०! जह० पलिओवमं उक्को० दो सागरोवमाइं, सोहम्मे णं भंते! कप्पे परिग्गहिआदेवीणं, गो०! जह० पलिओवमं उक्को० सत्त पलिओवमाइं, सोहम्मे णं अपरिग्गहिआदेवीणं भंते! के०?, गो०! जह० पलिओवमं उक्को० पण्णासं पलिओवमं, ईसाणे णं भंते! कप्पे देवाणं, गो०! जह० साइरेगं पलिओवमं उक्को० साइरेगाइं दो सागरोवमाइं, ईसाणे णं भंते! कप्पे परिग्गहिआदेवीणं, गो०! जह० साइरेगं पलिओवमं उक्को० नव पलिओवमाइं, अपरिग्गहिआदेवीणं भंते! के०?, गो०! जह० साइ० पलिओवमं उक्को० पणपण्णं पलिओवमाइं, सणंकुमारे णं भंते! कप्पे देवाणं, गो०! जह० दो सागरोवमाइं उ-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अस्य सूत्रस्य क्रमः '१४०' वर्तते, परन्तु मुद्रण अशुद्धित्वात् '१४२' इति क्रम मुद्रितं

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[४५], चूलिकासूत्र-[२] अनुयोगद्वार मूलं एवं हेमचन्द्रसूरि-रचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१४२] + गाथा: ||--||

दीप अनुक्रम [२८९--२९२]

कोसेणं सत्त सागरोवमाइं, माहिंदे णं भंते! कप्पे देवाणं, गो०! जह० साइरेगाइं दो सागरोवमाइं, उक्को० साइरेगाइं सत्त सागरोवमाइं, बंभलोए णं भंते! कप्पे देवाणं, गो०! जह० सत्त सागरोवमाइं उक्को० दस सागरोवमाइं, एवं कप्पे कप्पे केवइ० पं०?, गो०! एवं भाणियव्वं–लंतए जह० दस सागरोवमाइं उक्को० चउद्दस सागरोवमाइं, महासुक्के जह० चउद्दस सागरोवमाइं उक्को० सत्तरस सागरोवमाइं, सहस्सारे जह० सत्तरस सागरोवमाइं उक्को० अट्ठारस सागरोवमाइं, आणए जह० अट्ठारससागरोवमाइं उक्को० एगूणवीसं सागरोवमाइं, पाणए जह० एगूणवीसं साग० उक्को० वीसं सागरोवमाइं, आरणे जह० वीसं सागरोवमाइं उक्को० एक्कवीसं सागरोवमाइं, अच्चुए जह० एक्कवीसं सागरोवमाइं उक्को० बावीसं सागरोवमाइं, हेट्ठिमहेट्ठिमगेविज्जविमाणेसु णं भंते! देवाणं केवइ० पं०?, गो०! जह० बावीसं सागरोवमाइं उक्को० तेवीसं सागरोवमाइं, हेट्ठिममज्झिमगेवेज्जविमाणेसु णं भंते! देवाणं केव०?,

॥ १९० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अस्य सूत्रस्य क्रमः '१४०' वर्तते, परन्तु मुद्रण अशुद्धित्वात् '१४२' इति क्रम मुद्रितं

प्रत सूत्रांक [१४२] + गाथाः ||--||

दीप अनुक्रम [२८९--२९२]

गो०! जह० तेवीसं सागरोवमाइं उक्को० चउवीसं सागरोवमाइं, हेट्ठिमउवरिमगेवेज्जविमाणेसु णं भंते! देवाणं, गो०! जह० चउवीसं साग० उक्को० पंचवीसं साग०, मज्झिमहेट्ठिमगेवेज्जविमाणेसु केव० जह० पणवीसं सागरोवमाइं उक्को० छव्वीसं सागरोवमाइं, मज्झिममज्झिमगेवेज्जविमाणेसु णं भंते! गो०! जह० छव्वीसं सागरोवमाइं उक्को० सत्तावीसं सागरोवमाइं, मज्झिमउवरिमगेवे०, गो०! जह० सत्तावीसं सा० उक्को० अट्ठावीसं०, उवरिमहेट्ठिमगेवि० देवाणं, गो०! जह० अट्ठावीसं सा० उक्को० एगूणतीसं सागरोवमाइं, उवरिममज्झिमगेविज्जविमाणेसु णं भंते! देवाणं, गो०! जह० एगूणतीसं सागरोवमाइं उक्को० तीसं सागरोवमाइं, उवरिमउवरिमगेवेज्जविमाणेसु णं भंते! देवाणं, गो०! जह० तीसं सागरोवमाइं उक्को० एक्कतीसं सागरोवमाइं, विजयवेजयंतजयंतअपराजितविमाणेसु णं भंते! देवाणं केवइ० पण्णत्ता?, गो०! जहण्णेणं एक्कतीसं सागरोवमाइं उक्को० तेत्तीसं सागरोवमाइं, सव्वट्ठसिद्धे णं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अस्य सूत्रस्य क्रमः '१४०' वर्तते, परन्तु मुद्रण अशुद्धित्वात् '१४२' इति क्रम मुद्रितं

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[४५], चूलिकासूत्र-[२] अनुयोगद्वार मूलं एवं हेमचन्द्रसूरि-रचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१४२] + गाथाः ||--||

दीप अनुक्रम [२८९--२९२]

भंते! महाविमाणे देवाणं केवइ० पण्णत्ता?, गो०! अजहण्णमणुक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं। से तं सुहुमे अद्धापलिओवमे। से तं अद्धापलिओवमे (सू० १४२)

सूत्रसिद्धमेव यावन्मनुष्यसूत्रं, नवरं पृथिव्यादीनामपर्याप्तानां जघन्यत उत्कृष्टतश्चान्तर्मुहूर्तमेव स्थितिः, ततः परमवश्यं पर्याप्तत्वसम्भवात् मरणाद्वेति भावनीयम्। व्यन्तरादिसूत्राण्यपि वैमानिकसूत्रपर्यन्तानि पाठसिद्धान्येव, नवरमेतेषां पर्याप्तानां जघन्यत उत्कृष्टतश्चान्तर्मुहूर्तमेव स्थितिः, ततः परमवश्यं पर्याप्तत्वसंभवादेव भावनीयं, ग्रैवेयकसूत्रे चाधस्तनास्त्रयोऽधस्तनग्रैवेयकशब्देनोच्यन्ते, मध्यमास्तु त्रयो मध्यमग्रैवेयकशब्देन, उपरितनास्तु त्रय उपरितनग्रैवेयकशब्देन, पुनरप्यधस्तनेषु त्रिषु प्रस्टटेषु मध्येऽधस्तनः प्रस्टटोऽधस्तनाधस्तनग्रैवेयकशब्देन व्यपदिश्यते, मध्यमस्त्वधस्तनमध्यमशब्देन, उपरितनस्त्वधस्तनोपरिमशब्देन, एवं मध्यमेष्वपि त्रिषु प्रस्टटेषु मध्येऽधस्तनप्रस्टटो मध्यमाधस्तनग्रैवेयकशब्देनाभिधीयते मध्यमस्तु मध्यममध्यमशब्देन उपरितनस्तु मध्यमोपरितनशब्देन, एवमुपरितनेष्वपि त्रिषु प्रस्टटेषु क्रमेणोपरिमाधस्तनोपरिममध्यमउपरिमोपरिमशब्दवाच्यता भावनीयेति ॥ १४२ ॥

से किं तं खेत्तपलिओवमे?, २ दुविहे पण्णत्ते, तंजहा–सुहुमे अ वावहारिए अ, तत्थ णं जे से सुहुमे से ठप्पे, तत्थ णं जे से ववहारिए से जहानामए पल्ले सिआ जोअणं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अस्य सूत्रस्य क्रमः '१४०' वर्तते, परन्तु मुद्रण अशुद्धित्वात् '१४२' इति क्रम मुद्रितं

प्रत सूत्रांक [१४३] + गाथा: ||--||

दीप अनुक्रम [२९३--२९७]

आयामविक्खंभेणं जोअणं उव्वेहेणं तं तिगुणं सविसेसं परिक्खेवेणं, से णं पल्ले ए-
गाहिअबेआहिअतेआहिअ जाव भरिए वालग्गकोडीणं, ते णं वालग्गा णो अग्गी ड-
हेज्जा जाव णो पूइत्ताए हव्वमागच्छेज्जा, जे णं तस्स पल्लस्स आगासपएसा तेहिं
वालग्गेहिं अप्फुन्ना तओ णं समए २ एगमेगं आगासपएसं अवहाय जावइएणं का-
लेणं से पल्ले खीणे जाव निट्ठिए भवइ से तं ववहारिए खेत्तपलिओवमे । एएसिं प-
ल्लाणं कोडाकोडी भवेज्ज दसगुणिया । तं ववहारिअस्स खेत्तसागरोवमस्स एगस्स भवे
परीमाणं ॥१॥ एएहिं ववहारिएहिं खेतपलिओवमसागरोवमेहिं किं पओअणं ?, एएहिं
व० नत्थि किंचिप्पओअणं, केवलं पण्णवणा पण्णविज्जइ, से तं वव० । से किं तं सुहुमे
खेत्तपलिओवमे ? २ से जहाणामए पल्ले सिआ जोअणं आयाम० जाव परिक्खेवेणं
से णं पल्ले एगाहिअबेआहिअतेआहिअ जाव भरिए वालग्गकोडीणं तत्थ णं एगमेगे
वालग्गे असंखिज्जाइं खंडाइं कज्जइ, ते णं वालग्गा दिट्ठीओगाहणाओ असंखेज्जइभा-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१४३] + गाथा: ||--||

दीप अनुक्रम [२९३--२९७]

गमेत्ता सुहुमस्स पणगजीवस्स सरीरोगाहणाओ असंखेज्जगुणा, ते णं वालग्गा णो अग्गी डहेज्जा जाव णो पूइत्ताए हव्वमागच्छेज्जा, जे णं तस्स पल्लस्स आगासपएसा तेहिं वालग्गेहिं अप्फुन्ना वा अणाफुण्णा वा तओ णं समए २ एगमेगं आगासपएसं अवहाय जावइएणं कालेणं से पल्ले खीणे जाव णिट्ठिए भवइ, से तं सुहुमे खेत्तपलिओवमे। तत्थ णं चोअए पण्णवगं एवं वयासी–अत्थि णं तस्स पल्लस्स आगासपएसा जे णं तेहिं वालग्गेहिं अणाफुण्णा?, हंता अत्थि, जहा को दिट्ठंतो?, से जहाणामए कोट्ठए सिआ कोहंडाणं भरिए तत्थ णं माउलिंगा पक्खित्ता तेवि माया, तत्थ णं बिल्ला पक्खित्ता तेवि माया, तत्थ णं आमलगा पक्खित्ता तेवि माया, तत्थ णं बयरा प० तेऽवि माया, तत्थ णं चणगा पक्खित्ता तेऽवि माया, तत्थ णं मुग्गा पक्खि०, तत्थ णं सरिसवा प०, तत्थ णं गंगावालुआ पक्खित्ता सावि माया, एवमेव एएणं दिट्ठंतेणं अत्थि णं तस्स पल्लस्स आगासपएसा जे णं तेहिं वालग्गेहिं अणाफुण्णा। एएसिं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१४३] + गाथाः ||--||

दीप अनुक्रम [२९३--२९७]

पल्लाणं कोडाकोडी भवेज्ज दसगुणिया। तं सुहुमस्स खेत्तसागरोवमस्स एगस्स भवे परीमाणं ॥१॥ एएहिं सुहुमेहिं खेत्तप० सागरोवमेहिं किं पओअणं ?, एएहिं सुहुमपलि० साग० दिट्ठिवाए दव्वा मविज्जंति (सू० १४३)

उक्तं सप्रयोजनमद्धापल्योपमं, क्षेत्रपल्योपममप्युक्तानुसारत एव भावनीयं, नवरं व्यावहारिकपल्योपमे 'जे णं तस्स पल्लस्से'त्यादि, तस्य पल्यस्यान्तर्गता नभःप्रदेशास्तैर्वालाग्रैर्ये 'अप्फुण्ण'त्ति आस्पृष्टा–व्याप्ता आक्रान्ता इतियावत्, तेषां सूक्ष्मत्वात् प्रतिसमयमेकैकापहारे असङ्ख्येया उत्सर्पिण्यवसर्पिण्यो-ऽतिक्रामन्त्यतोऽसङ्ख्येयोत्सर्पिण्यवसर्पिणीमानं प्रस्तुतपल्योपमं ज्ञातव्यं, सूक्ष्मक्षेत्रपल्योपमे तु सूक्ष्मैर्वा-लाग्रैः स्पृष्टा अस्पृष्टाश्च नभःप्रदेशा गृह्यन्ते, अतस्तद्व्यावहारिकादसङ्ख्येयगुणकालमानं द्रष्टव्यम्। आह– यदि स्पृष्टा अस्पृष्टाश्च नभःप्रदेशा गृह्यन्ते तर्हि वालाग्रैः किं प्रयोजनं ?, यथोक्तपल्यान्तर्गतनभःप्रदेशा-पहारमात्रतः सामान्येनैव वक्तुमुचितं स्यात्, सत्यं, किन्तु प्रस्तुतपल्योपमेन दृष्टिवादे द्रव्याणि मीयन्ते, तानि च कानिचिद् यथोक्तवालाग्रस्पृष्टैरेव नभःप्रदेशैर्मीयन्ते कानिचिदस्पृष्टैरित्यतो दृष्टिवादोक्तद्रव्यमा-नोपयोगित्वाद्वालाग्रप्ररूपणाऽत्र प्रयोजनवतीति। 'तत्थ णं चोयए पण्णवगं'मित्यादि, तत्र नभःप्रदेशानां स्पृष्टास्पृष्टत्वप्ररूपणे सति जातसन्देहः प्रेरकः प्रज्ञापकम्–आचार्यमेवमवादीत्–भदन्त! किमस्त्येतद् यदुत

अनु. ३३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[४५], चूलिकासूत्र-[२] अनुयोगद्वार मूलं एवं हेमचन्द्रसूरि-रचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१४३] + गाथाः ||--||

दीप अनुक्रम [२९३--२९७]

तस्य पल्यस्यान्तर्गतास्ते केचिदप्याकाशप्रदेशा विद्यन्ते ये तैर्वालाग्रैरस्पृष्टाः ?, पूर्वोक्तप्रकारेण वालाग्राणां तत्र निविडतयाऽवस्थापनाच्छिद्रस्य क्वचिदप्यसम्भवाद् दुरुपपादमिदं यत्तत्रास्पृष्टा नभःप्रदेशाः सन्तीति प्रच्छकाभिप्रायः, तत्रोत्तरं–हन्तास्त्येतत्, नात्र सन्देहः कर्तव्यः, इदं च दृष्टान्तमन्तरेण वाङ्मात्रतः प्रतिपत्तुमशक्तः पुनर्विनेयः पृच्छति–यथा कोऽत्र दृष्टान्तः ?, प्रज्ञापक आह—'से जहानामए' इत्यादि, अयमत्र भावार्थः–कूष्माण्डानां–पुंस्फलानां भृते कोष्ठके स्थूलदृष्टीनां तावद् भृतोऽयमिति प्रतीतिर्भवति, अथ कूष्माण्डानां बादरत्वात् परस्परं तानि छिद्राणि संभाव्यन्ते येष्वद्यापि मातुलिङ्गानि–बीजपूरकाणि मान्ति, तत्प्रक्षेपे च पुनर्भृतोऽयमिति प्रतीतावपि मातुलिङ्गच्छिद्रेषु बिल्वानि प्रक्षिप्तानि, तान्यपि मान्तीत्येवं तावद् यावत्सर्षपच्छिद्रेषु गङ्गावालुका प्रक्षिप्ता साऽपि माता, एवमवगाढदृष्टयो यद्यपि यथोक्तपल्ये शुषिराभावतोऽस्पृष्टनभःप्रदेशान्न संभावयन्ति तथापि वालाग्राणां बादरत्वादाकाशप्रदेशानां तु सूक्ष्मत्वात् सन्त्येवासङ्ख्याता अस्पृष्टा नभःप्रदेशाः, दृश्यते च निविडतया सम्भाव्यमानेऽपि स्तम्भादौ आस्फालितायःकीलकानां बहूनां तदन्तः प्रवेशः न चासौ शुषिरमन्तरेण संभवति, एवमिहापि भावनीयम् ॥ १४३ ॥

कइविहा णं भंते! दव्वा पण्णत्ता?, गो०! दुविहा पण्णत्ता, तंजहा–जीवदव्वा य अजीवदव्वा य। अजीवदव्वा णं भंते! कइविहा पण्णत्ता?, गो०! दुविहा प०, तं-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अथ जीवादि 'द्रव्य' प्ररुपणा क्रियते

प्रत सूत्रांक [१४४]

दीप अनुक्रम [२९८]

जहा–रूवीअजीवदव्वा य अरूवीअजीवदव्वा य । अरूवीअजीवदव्वाणं भंते! कइविहा पण्णत्ता?, गो०! दसविहा पण्णत्ता, तंजहा–धम्मत्थिकाए धम्मत्थिकायस्स देसा धम्मत्थिकायस्स पएसा अधम्मत्थिकाए अधम्मत्थिकायस्स देसा अधम्मत्थिकायस्स पएसा आगासत्थिकाए आगासत्थिकायस्स देसा आगास० पएसा, अद्धासमए । रूवीअजीवदव्वाणं भंते! कइविहा पं०?, गो०! चउव्विहा पण्णत्ता, तंजहा –खंधा खंधदेसा खंधप्पएसा परमाणुपोग्गला, ते णं भंते! किं संखिज्जा असंखिज्जा अणंता?, गो०! नो संखेज्जा नो असंखेज्जा अणंता, से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ–नो संखेज्जा नो असंखेज्जा अणंता?, गो०! अणंता परमाणुपोग्गला अणंता दुपएसिआ खंधा जाव अणंता अणंतपएसिआ खंधा, से एएणट्ठेणं गो०! एवं वुच्चइ–नो संखेज्जा नो अ० अणंता । जीवदव्वाणं भंते! किं संखिज्जा असंखिज्जा अणंता?, गो०! नो संखिज्जा नो असंखिज्जा अणंता, से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ–नो संखिज्जा नो असं-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१४४]

दीप अनुक्रम [२९८]

खिज्जा अणंता?, गो०! असंखेज्जा णेरइया असंखेज्जा असुरकुमारा जाव असंखेज्जा थणियकुमारा असंखिज्जा पुढवीकाइया जाव असंखिज्जा वाउकाइआ अणंता वणस्सइकाइआ असंखेज्जा बेइंदिआ जाव असंखिज्जा चउरिंदिया असंखिज्जा पंचिंदियतिरिक्खजोणिआ असंखिज्जा मणुस्सा असंखिज्जा वाणमंतरा असंखिज्जा जोइसिआ असंखेज्जा वेमाणिआ अणंता सिद्धा, से एएणऽट्ठेणं गो०! एवं वुच्चइ–नो संखिज्जा नो असंखिज्जा अणंता (सू० १४४)

यद्येतैर्दृष्टिवादे द्रव्याणि मीयन्ते तर्हि कतिविधानि भदन्त! तावद् द्रव्याणि प्रज्ञप्तानि?, गौतम! द्विविधानि प्रज्ञप्तानि, तदेवाह—'जीवदव्वा य अजीवदव्वा य' । तत्राल्पवक्तव्यत्वात् पश्चान्निर्दिष्टान्यप्यजीवद्रव्याणि व्याचिख्यासुराह—'अजीवदव्वाणं भंते! कइविहे'त्यादि सुगमं यावद् 'धम्मत्थिकाए' इत्यादि, एकोऽपि धर्मास्तिकायो नयमतभेदात्त्रिधा भिद्यते, तच्च सङ्ग्रहनयाभिप्रायादेक एव धर्मास्तिकायः–पूर्वोक्तपदार्थः, व्यवहारनयाभिप्रायात्तु बुद्धिपरिकल्पितो द्विभागत्रिभागादिकस्तस्यैव देशः, यथा सम्पूर्णो धर्मास्तिकायो जीवादिगत्युपष्टम्भकं द्रव्यमिष्यते एवं तद्देशा अपि तदुपष्टम्भकानि पृथगेव द्रव्याणीति भावः, ऋजु-

॥ १९४ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[४५], चूलिकासूत्र-[२] अनुयोगद्वार मूलं एवं हेमचन्द्रसूरि-रचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१४४]

दीप अनुक्रम [२९८]

सूत्राभिप्रायतस्तु स्वकीयस्वकीयसामर्थ्येन जीवादिगत्युपष्टम्भे व्याप्रियमाणास्तस्य प्रदेशा बुद्धिपरिकल्पिता निर्विभागा भागाः पृथगेव द्रव्याणि, एवं अधर्माकाशास्तिकाययोरपि प्रत्येकं त्रयस्त्रयो भेदा वाच्याः, 'अद्धासमय' इत्यत्रैकवचनं वर्तमानकालसमयस्यैव एकस्य सत्त्वादतीतानागतयोस्तु निश्चयनयमतेन विनष्टत्वानुत्पन्नत्वाभ्यामसत्त्वाद्, अत एवेह देशप्रदेशचिन्ता न कृता, एकस्मिन् समये निरंशत्वेन तदसम्भवात्, तदेवं दशविधान्यरूप्यजीवद्रव्याणि । रूप्यजीवद्रव्याणि तु स्कन्धादिभेदाच्चतुर्द्धा, तत्र स्कन्धा–द्व्यणुकादयोऽनन्ताणुकावसानाः, देशास्तु तद्विभागत्रिभागादिरूपा अवयवाः, प्रदेशाः पुनस्तदवयवभूता एव निरंशा भागाः परमाणुपुद्गलाः स्कन्धभावमनापन्नाः एकाकिनः परमाणवः, तानि च रूपिद्रव्याण्यनन्तानि, कथमित्याह—'अणंता परमाणुपोग्गला' इत्यादि, एते च स्कन्धादयः प्रत्येकमनन्ताः । अथ जीवद्रव्याणि विचारयितुमाह—'जीवदव्वाणं भंते! किं संखेज्जा' इत्यादि, यस्मान्नारकादिराशयः प्रत्येकमसङ्ख्याताः वनस्पतयः सिद्धाश्चानन्ता अतो जीवद्रव्याण्यनन्तान्येवेत्यर्थः ॥ १४४ ॥ तत्र नारकादयोऽसङ्ख्येयादिस्वरूपतः सामान्येन प्रोक्ता विशेषतस्तु तदसङ्ख्येयकं कियत्प्रमाणमिति न ज्ञायते, औदारिकादिशरीरविचारे च तत्परिज्ञानं सिद्ध्यति औदारिकादिशरीरस्वरूपबोधश्च विनेयानां संपद्यते इति चेतसि निधाय जीवाजीवद्रव्यविचारप्रस्तावाच्छरीराणां तदुभयरूपत्वात्तानि विचारयितुमुपक्रमते—

कइविहा णं भंते! सरीरा पं०?, गो०! पंच सरीरा पण्णत्ता, तंजहा–ओरालिए वेउ-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अथ 'शरीर' प्ररुपणा क्रियते

प्रत सूत्रांक [१४५]

दीप अनुक्रम [२९९]

व्विए आहारए तेअए कम्मए, णेरइआणं भंते! कइ सरीरा पं०?, गो०! तओ सरीरा पं० तं० वेउव्विए तेअए कम्मए, असुरकुमाराणं भंते! कइ सरीरा पं०?, गो०! तओ सरीरा पण्णत्ता, तंजहा–वेउ० तेअ० कम्मए, एवं तिण्णि २, एए चेव सरीरा जाव थणियकुमाराणं भाणिअव्वा । पुढवीकाइआणं भंते! कइ सरीरा पण्णत्ता?, गो०! तओ सरीरा पण्णत्ता, तंजहा–ओरालिए तेअए कम्मए, एवं आउतेउवणस्सइकाइयाणऽवि एए चेव तिण्णि सरीरा भाणियव्वा, वाउकाइयाणं जाव गो०! चत्तारि सरीरा पं० तं० उरालिए वेउव्विए तेयए कम्मए। बेइंदियतेइंदियचउरिंदियाणं जहा पुढवीकाइयाणं, पंचिंदिअतिरिक्खजोणिआणं जहा वाउकाइयाणं। मणुस्साणं जाव गो०! पंच सरीरा पं०, तं०–ओरालिए वेउव्विए आहारए तेअए कम्मए। वाणमंतराणं जोइसिआणं वेमाणिआणं जहा नेरइयाणं। केवइया णं भंते! उरालिअसरीरा

१ कइविहा णं प्र.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१४५]

दीप अनुक्रम [२९९]

पण्णत्ता ?, गो० ! दुविहा पण्णत्ता, तंजहा–बद्धेल्लगा य मुक्केल्लगा य, तत्थ णं जे ते बद्धेल्लगा ते णं असंखिज्जा असंखिज्जाहिं उस्सप्पिणीओसप्पिणीहिं अवहीरंति कालओ, खेत्तओ असंखेज्जा लोगा, तत्थ णं जे ते मुक्केल्लगा ते णं अणंता अणंताहिं उस्सप्पिणीओसप्पिणीहिं अवहीरंति कालओ खेत्तओ अणंता लोगा दव्वओ अभवसिद्धिएहिं अणंतगुणा सिद्धाणं अणंतभागो ।

'ओरालिए'त्ति उदारं–तीर्थकरगणधरशरीरापेक्षया शेषशरीरेभ्यः प्रधानं उदारमेवौदारिकम्, अथवा–उदारं–सातिरेकयोजनसहस्रमानत्वाच्छेषशरीरेभ्यो महाप्रमाणं तदेवौदारिकं, वैक्रियं तूत्तरवैक्रियावस्थायामेव लक्षयोजनमानं भवति, सहजं तु पञ्चधनुःशतप्रमाणमेव, ततः सहजशरीरापेक्षया इदमेव महाप्रमाणं, 'वेउव्विए'त्ति विविधा विशिष्टा वा क्रिया विक्रिया तस्यां भवं वैक्रियं, विशिष्टं कुर्वन्ति तदिति वा वैकुर्विकम्, 'आहारए'त्ति तथाविधप्रयोजने चतुर्दशपूर्वविदा आह्रियते–गृह्यत इत्याहारकम्, अथवा आह्रियन्ते–गृह्यन्ते केवलिनः समीपे सूक्ष्मजीवादयः पदार्था अनेनेत्याहारकं, 'तेयए'त्ति रसाद्याहारपाकजननं तेजोनिसर्गलब्धिनिबन्धनं च तेजसो विकारस्तैजसं, 'कम्मए'त्ति अष्टविधकर्मसमुदायनिष्पन्नमौदारिकादिशरीरानिबन्धनं च

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[४५], चूलिकासूत्र-[२] अनुयोगद्वार मूलं एवं हेमचन्द्रसूरि-रचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१४५]

दीप अनुक्रम [२९९]

भवान्तरानुयायि कर्मणो विकारः कर्मैव वा कार्मणम्, अत्र स्वल्पपुद्गलनिष्पन्नत्वाद्बादरपरिणामत्वाच्च प्रथममौदारिकस्योपन्यासः, ततो बहुबहुतरबहुतमपुद्गलनिर्वृत्तत्वात् सूक्ष्मसूक्ष्मतरसूक्ष्मतमत्वाच्च क्रमेण शेषशरीराणामिति। तदेवं सामान्येन शरीराणि निरूप्य चतुर्विंशतिदण्डके तानि चिन्तयितुमाह—'नेरइयाणं भंते! कइ सरीरा' इत्यादि पाठसिद्धमेव, यावत् 'केवइया णं भंते! उरालियसरीरा' इत्यादि, कियन्ति–कियत्सङ्ख्यान्यौदारिकशरीराणि सर्वाण्यपि भवन्ति, अत्रोत्तरं—'गोयमा दुविहे'त्यादि, औदारिकशरीरसङ्ख्यायां पृष्टायां बद्धमुक्तत्वलक्षणं तद्वैविध्यकथनमप्रस्तुतमिति चेत्, नैवं, बद्धमुक्तयोर्भेदेन सङ्ख्याकथनार्थत्वात्तस्य, इदं च बद्धमुक्तौदारिकादिप्रमाणं क्वचिद् द्रव्येण–अभव्यादिना वक्ष्यति क्वचित्तु क्षेत्रेण–श्रेणिप्रतरादिना क्वचित्तु कालेन–समयावलिकादिना, भावेन तु न वक्ष्यति, तस्येह द्रव्यान्तर्गतत्वेन विवक्षितत्वात्, तत्र बद्धानामौदारिकशरीराणां कालतः क्षेत्रतश्च मानं निरूपयितुमाह—'तत्थ णं जे ते बद्धेल्लया' इत्यादि, इह नारकदेवानामौदारिकशरीराणि बद्धानि तावन्न सम्भवन्त्येव, वैक्रियशरीरत्वात्तेषाम्, अतः पारिशेष्यात् तिर्यङ्मनुष्यैस्तथाविधकर्म्मोदयाद् यानि बद्धानि–गृहीतानीत्यर्थः, पृच्छासमये तैः सह यानि सम्बद्धानि तिष्ठन्तीतियावत्, तानि सामान्यतः सर्वाण्यसङ्ख्येयानि, न ज्ञायते तदसङ्ख्येयं कियदपीत्यतो विशिनष्टि—'असंखेज्जाहि'मित्यादि, प्रतिसमयं यद्येकैकं शरीरमपह्रियते तदा असङ्ख्येयोत्सर्पिण्यवसर्पिणीभिः सर्वाण्यपह्रियन्ते, असङ्ख्येयोत्सर्पिण्यवसर्पिणीषु यावन्तः समयास्तावन्ति तानि बद्धानि प्राप्यन्त इति परमार्थः, तदे-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तत्कालतो मानमुक्तम्, अथ क्षेत्रतस्तदाह—'खेत्तओ असंखेज्जा लोग'त्ति, इदमुक्तं भवति–प्रत्येकमसङ्ख्येयप्रदेशात्मिकायां स्वकीयस्वकीयावगाहनायां यद्येकैकं शरीरं व्यवस्थाप्यते तदाऽसङ्ख्येया लोकास्तैर्भ्रियन्ते, एकैकस्मिन्नपि नभःप्रदेशे प्रत्येकं तैर्व्यवस्थाप्यमानैरसङ्ख्येया लोका भ्रियन्ते एव, केवलं शरीरस्य जघन्यतोऽप्यसङ्ख्येयप्रदेशावगाहित्वादेकस्मिन् प्रदेशेऽवगाहः सिद्धान्ते निषिद्ध इति नेत्थमुच्यते, असत्कल्पनया उच्यतामेवमपि को दोष इति चेत्, को निवारयिता?, केवलं सिद्धान्तसंवादिप्रकारेण प्ररूपणेऽदुष्टे लभ्यमाने स एव स्वीकर्तुं श्रेयानिति, आह—भवत्वेवं, किंत्वौदारिकशरीरिणां मनुष्यतिरश्चामनन्तत्वात् कथमनन्तानि शरीराणि न भवन्ति येनासङ्ख्येयान्येवोक्तानि?, उच्यते, प्रत्येकशरीरिणस्तावदसङ्ख्याता एवातस्तेषां शरीराण्यप्यसङ्ख्यातान्येव, साधारणशरीरिणस्तु विद्यन्ते अनन्ताः, किन्तु तेषां नैकैकजीवस्यैकैकं शरीरं किन्त्वनन्तानामनन्तानामेकैकं वपुरित्यत औदारिकशरीरिणामानन्त्येऽपि शरीराण्यसङ्ख्येयान्येवेति। 'तत्थ णं जे ते मुक्केल्लये'त्यादि, भवान्तरसङ्क्रान्तौ मोक्षगमनकाले वा जीवैर्यान्यौदारिकाणि मुक्तानि-त्यक्तानि समुज्झितानि तान्यनन्तानि प्राप्यन्ते, अनन्तकस्यानन्तकत्वान्न ज्ञायते कियदप्यनन्तकमिदं, ततः कालेन विशेषयति–प्रतिसमयमेकैकापहारे अनन्ताभिरुत्सर्पिण्यवसर्पिणीभिरपहियन्ते, तत्समयराशितुल्यानि भवन्तीत्यर्थः, अथ क्षेत्रतो विशिनष्टि—'खेत्तओ अणंता लोग'त्ति, क्षेत्रतः–क्षेत्रमाश्रित्यानन्तानां लोकप्रमाणखण्डानां यः प्रदेशराशिस्तत्तुल्यानि भवन्तीति भावः, द्रव्यतो नियमयति—'अभवसिद्धिएहि'मित्यादि,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अभव्यजीवद्रव्यसङ्ख्यातोऽनन्तगुणानि सिद्धजीवद्रव्यसङ्ख्यायास्त्वनन्तभागवर्तीनि । आह–यद्येवं यैः सम्यक्त्वं लब्ध्वा पुनर्मिथ्यात्वे गमनात् तत्त्यक्तं ते प्रतिपतितसम्यग्दृष्टयोऽप्यभव्येभ्योऽनन्तगुणाः सिद्धानामनन्तभागे प्रज्ञापनामहादण्डके पठ्यन्ते, तत्किमेतानि तत्तुल्यानि भवन्ति?, नैतदेवं, यदि तत्समसङ्ख्यानि भवेयुस्तदा तथैवेह सूत्रे तानि निर्दिष्टानि स्युः, न चैवं, ततः प्रतिपतितसम्यग्दृष्टिराशेः कदाचिद्धीनानि कदाचित्तुल्यानि कदाचित्त्वधिकानि इति प्रतिपत्तव्यमिति । पुनरप्याह–ननु जीवैः परित्यक्तशरीराणामानन्त्यमेव तावन्नावगच्छामः, तथाहि–किमेतानि श्मशानादिगतान्यक्षतान्येव यानि तिष्ठन्ति तानि गृह्यन्ते उत खण्डीभूय परमाण्वादिभावेन परिणामान्तरापन्नानि?, यद्याद्यः पक्षस्तर्हि तेषामनन्तकालावस्थानाभावात् स्तोकत्वादानन्त्यं नास्त्येव, अथ चापरः पक्षस्तर्हि स कश्चिद् पुद्गलोऽपि नास्ति योऽतीताद्धायामेकैकजीवेनौदारिकशरीररूपतया अनन्तशः परिणमय्य न मुक्तः, ततः सर्वस्यापि पुद्गलास्तिकायस्य ग्रहणमापन्नम्, एवं च सत्यभव्येभ्योऽनन्तगुणानि सिद्धानामनन्तभागे इत्येतद्विरुध्यते, सर्वपुद्गलास्तिकायगतपुद्गलानां सर्वजीवेभ्योऽप्यनन्तानन्तगुणत्वाद्, अत्रोच्यते, नैष दोषो, भवदुपन्यस्तपक्षद्वयस्याप्यनङ्गीकरणात्, किन्तु जीवविप्रमुक्ते एकैकस्मिन्नौदारिकशरीरे यान्यनन्तखण्डानि जायन्ते तानि च यावदद्यापि तं जीवप्रयोगनिर्वर्तितमौदारिकशरीरपरिणामं परित्यज्य परिणामान्तरं नासादयन्ति तावदौदारिकशरीरावयवत्वादेकदेशदाहेऽपि ग्रामो दग्धः पटो दग्ध इत्यादिवदवयवे समुदायोपचारादिह प्रत्येकमौदारिकशरीराणि भण्यन्ते, ततश्चैकैकस्य जीव-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१४५]

दीप अनुक्रम [२९९]

विप्रमुक्तौदारिकशरीरस्यानन्तभेदभिन्नत्वात् तेषां च भेदानां प्रत्येकं तद्वयवत्वेन प्रस्तुतशरीरोपचाराद् एतेषां च भेदानां प्रकृतशरीरपरिणामत्यागे अन्येषां तत्परिणामवतामुत्पत्तिसम्भवाद् यथोक्तानन्तकसङ्ख्यान्यौदारिकशरीराणि लोके न कदाचिद्व्यवच्छिद्यन्त इति स्थितं, तदेवमोघत उक्ता औदारिकशरीरसङ्ख्या, विभागतस्तूपरिष्टात् क्रमप्राप्तामिमां वक्ष्यति १। अथौघत एव वैक्रियसङ्ख्यामाह—

केवइआणं भंते! वेउव्विअसरीरा पं०? गो०! दुविहा पं०, तं०—बद्धेलया य मुक्केलया य, तत्थ णं जे ते बद्धेलया ते णं असंखिज्जा असंखेज्जाहिं उस्सप्पिणिओसप्पिणीहिं अवहीरंति कालओ खेत्तओ असंखिज्जाओ सेढीओ पयरस्स असंखेज्जइभागो, तत्थ णं जे ते मुक्केलया ते णं अणंता अणंताहिं उस्सप्पिणीओसप्पिणीहिं अवहीरंति कालओ सेसं जहा ओरालिअस्स मुक्केलया तहा एएवि भाणिअव्वा । केवइ० आहारगस०? गो०! दुविहा० बद्धे० मुक्के०, तत्थ णं जे ते बद्धेलया ते णं सिअ अत्थि सिअ नत्थि, जइ अत्थि जहण्णेणं एगो वा दो वा तिण्णि वा उक्कोसेणं सहस्सपुहत्तं, मुक्केलया जहा ओरा० तहा भाणिअव्वा । केवइया णं भंते! तेअगसरीरा पं०?, गो०! दुविहा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१४५]

दीप अनुक्रम [२९९]

पं० तं०–बद्धेल्लया य मुक्केल्लया य, तत्थ णं जे ते बद्धेल्लया ते णं अणंता अणंताहिं उस्सप्पिणीओसप्पिणीहिं अवहीरंति कालओ खेत्तओ अणंता लोगा दव्वओ सिद्धेहिं अणंतगुणा सव्वजीवाणं अणंतभागूणा, तत्थ णं जे ते मुक्केल्लया ते णं अणंता अणंताहिं उस्सप्पिणीओसप्पिणीहिं अवहीरंति कालओ खेत्तओ अणंता लोगा दव्वओ सव्वजीवेहिं अणंतगुणा सव्वजीववग्गस्स अणंतभागो। केवइ० कम्मगसरीरा पं०?, गो०! दुविहा पण्णत्ता, तंजहा–बद्धे० मुक्के० जहा तेअगसरीरा तहा कम्मगसरीरावि भाणिअव्वा।

तत्र नारकदेवानामेतानि सर्वदैव बद्धानि संभवन्ति, मनुष्यतिरश्चां तु वैक्रियलब्धिमतामुत्तरवैक्रियकरणकाले, ततः सामान्येन चतुर्गतिकानामपि जीवानाममूनि बद्धान्यसङ्ख्येयानि लभ्यन्ते, तानि च कालतोऽसङ्ख्येयोत्सर्पिण्यवसर्पिणीसमयराशितुल्यानि क्षेत्रतस्तु पूर्वोक्तप्रतरासङ्ख्येयभागवर्त्यसङ्ख्येयश्रेणीनां यः प्रदेशराशिस्तत्सङ्ख्यानि संभवन्ति, मुक्तानि यथौदारिकाणि तथैव २। अथौघत एवाहारकाण्याह—'केवइया णं भंते! आहारगे'त्यादि, एतानि बद्धानि चतुर्दशपूर्वविदो विहाय नापरस्य संभवन्ति, अन्तरं चैषां

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शास्त्रान्तरे जघन्यतः समयं उत्कृष्टतस्तु षण्मासान्यावदभिहितम्, अत उक्तं–बद्धानि कदाचित् सन्ति कदाचिन्न सन्ति, यदि भवन्ति तदा जघन्यत एकं द्वे त्रीणि वा, उत्कृष्टतस्तु सहस्रपृथक्त्वं, द्विप्रभृत्या नवभ्यः समयप्रसिद्ध्या पृथक्त्वमुच्यते, मुक्तानि यथौदारिकाणि तथैव, नवरमनन्तकस्यानन्तभेदात्तदेवेह लघुतरं द्रष्टव्यम् ३ । तथैव तैजसान्याह—'केवइया णं भंते! तेयगे'त्यादि, एतानि बद्धान्यनन्तानि भवन्ति, कालतोऽनन्तोत्सर्पिण्यवसर्पिणीसमयराशिसङ्ख्यानि क्षेत्रतोऽनन्तलोकप्रदेशराशिमानानि द्रव्यतः सिद्धेभ्योऽनन्तगुणानि अनन्तभागन्यूनसर्वजीवसङ्ख्याप्रमाणानि, तत्स्वामिनामनन्तत्वात्, नन्वौदारिकस्यापि स्वामिनो विद्यन्तेऽनन्ता न च तान्येतावत्सङ्ख्यान्युक्तानि, अत्रोच्यते, औदारिकं मनुष्यतिरश्चामेव भवति, तत्रापि साधारणशरीरिणामनन्तानामेकैकमेव, इदं चतुर्गतिकानामप्यस्ति, साधारणशरीरिणां च प्रतिजीवमेकैकं प्राप्यते, ततस्तैजसानि सर्वसंसारिजीवसङ्ख्यानि भवन्ति, संसारिणश्च जीवाः सिद्धेभ्योऽनन्तगुणाः, अत एतान्यपि सिद्धेभ्योऽनन्तगुणान्युक्तानि; सर्वजीवसङ्ख्यां तु न प्राप्नुवन्ति, सिद्धजीवानां तदसम्भवात्, सिद्धाश्च शेषजीवानामनन्तभागे वर्तन्ते, अतः सिद्धजीवलक्षणेनानन्तभागेन हीना ये सर्वजीवास्तत्सङ्ख्यान्यभिहितानि, मुक्तान्यपि अनन्तानि, कालतोऽनन्तोत्सर्पिण्यवसर्पिणीसमयराशितुल्यानि, क्षेत्रतोऽनन्तलोकानां ये प्रदेशास्तत्तुल्यानि, द्रव्यतः सर्वजीवेभ्योऽनन्तगुणानि, तर्हि जीवराशिनैव जीवराशिर्गुणितो जीववर्गो भण्यते, एतावत्सङ्ख्यानि तानि भवन्ति?, नेत्याह—'जीववग्गस्स अणंतभागो'त्ति, सर्वजीवाः सद्भावतोऽनन्ता अपि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कल्पनया किल दश सहस्राणि, तानि च तैरेव गुणितानि, ततोऽसत्कल्पनया दशकोटिसङ्ख्याः, सद्भावतस्त्वनन्तानन्तसङ्ख्यो जीववर्गो भवति, तस्यानन्तगुणकल्पनया शततमे भागे एतानि वर्तन्ते, अतः सद्भावतोऽनन्तान्यपि किल दशलक्षसङ्ख्यानि तानि सिद्धानि, किं कारणं जीववर्गसङ्ख्यान्येव न भवन्ति?, उच्यते, यानि यानि तैजसानि मुक्तान्यनन्तभेदैर्भिद्यन्ते तानि तान्यसङ्ख्येयकालादूर्ध्वं तं परिणामं परित्यज्य नियमात् परिणामान्तरमासादयन्ति, अतः प्रतिनियतकालावस्थायित्वादुत्कृष्टतोऽपि यथोक्तसङ्ख्यान्येवैतानि समुदितानि प्राप्यन्ते नाधिकानीत्यलमतिविस्तरेण। 'केवइया णं कम्मए' इत्यादि, तैजसकार्मणयोः समानस्वामिकत्वात्सर्वदैव सहचरितत्वाच्च समानैव वक्तव्यतेति। तदेवमोघतः पञ्चापि शरीराण्युक्तानि, साम्प्रतं तान्येव नारकादिचतुर्विंशतिदण्डके विशेषतो विचारयितुमाह—

नेरइयाणं भंते! केवइया ओरालिअसरीरा पं०?, गो०! दुविहा पण्णत्ता, तंजहा–बद्धेल्लया य मुक्केल्लया य, तत्थ णं जे ते बद्धेल्लया ते णं नत्थि, तत्थ णं जे ते मुक्केल्लया ते जहा ओहिआ ओरालिअसरीरा तहा भाणिअव्वा, नेरइयाणं भंते! केवइया वेउव्विअसरीरा पं०?, गो०! दुविहा पण्णत्ता, तंजहा–बद्धेल्लया य मुक्केल्लया य, तत्थ णं जे ते बद्धेलगा ते णं असंखिज्जा असंखिज्जाहिं उस्सप्पिणीओस-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्पिणीहिं अवहीरंति कालओ खेत्तओ असंखेज्जाओ सेढीओ पयरस्स असंखिज्जइ-
भागो तासि णं सेढीणं विक्खंभसूईअंगुलपढमवग्गमूलं बिइअवग्गमूलपडुप्पण्णं
अहव णं अंगुलबिइअवग्गमूलघणपमाणमेत्ताओ सेढीओ, तत्थ णं जे ते मुक्केल्लया ते णं
जहा ओहिआ ओरालिअसरीरा तहा भाणिअव्वा, णेरइयाणं भंते! केवइया आहारगस-
रीरा पण्णत्ता?, गो०! दुविहा पण्णत्ता, तंजहा–बद्धे० मुक्के०, तत्थ णं जे ते बद्धेल्लया
ते णं नत्थि, तत्थ णं जे ते मुक्केल्लया ते जहा ओहिआ ओरालिआ तहा भाणिअव्वा,
तेयगकम्मगसरीरा जहा एएसिं चेव वेउव्विअसरीरा तहा भाणिअव्वा । असुर-
कुमाराणं भंते! केवइआ ओरालियसरीरा पं०?, गो०! जहा नेरइयाणं ओरालि० तहा
भा०, असुरकुमाराणं भंते! के० वेउव्विअसरीरा पं०?, गो०! दुविहा पण्णत्ता, तं-
जहा–बद्धेल्लया य मुक्केल्लया य, तत्थ णं जे ते बद्धेल्लया ते णं असंखिज्जा असंखि-
ज्जाहिं उस्सप्पिणीओसप्पिणीहिं अवहीरंति कालओ खेत्तओ असंखेज्जाओ सेढीओ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पयरस्स असंखिज्जइभागो तासि णं सेढीणं विक्खंभसूईअंगुलपढमवग्गमूलस्स असंखिज्जइभागो, मुक्केल्लया जहा ओहिया ओरालिअसरीरा, असुरकु० केवइआ आहारगसरीरा पं०?, गो०! दुविहा पण्णत्ता, तंजहा–बद्धे० मुक्के०, जहा एएसिं चेव ओरा० तहा भा०, तेअगकम्म० जहा एए० वेउ० तहा भाणिअव्वा, जहा असुरकुमाराणं तहा जाव थणिअ० ताव भाणिअव्वं।

द्विविधानि प्रज्ञप्तानीति यदुच्यते तत्र बद्धानामसद्भूपेणैव नारकेषु सत्त्वमवसेयं, न सद्भूपेण, अत एवोक्तं–तत्र यानि बद्धानि तानि न सन्ति, तेषां वैक्रियशरीरत्वेनौदारिकबन्धाभावात्, मुक्तानि तु प्राक् तिर्यगादिनानाभवेषु संभवन्ति, तानि चौघिकमुक्तौदारिकवद्वाच्यानि, यानि वैक्रियशरीराणि तानि तु बद्धान्येषामसङ्ख्येयानि, प्रतिनारकमेकैकवैक्रियसद्भावात्, नारकाणां चासङ्ख्येयत्वात्, तानि च कालतोऽसङ्ख्येयोत्सर्पिण्यवसर्पिणीसमयराशितुल्यानि, क्षेत्रतस्तु प्रतरासङ्ख्येयभागवर्त्यसङ्ख्येयश्रेणीनां ये प्रदेशास्तत्सङ्ख्यानि भवन्ति, ननु प्रतरासङ्ख्येयभागे असङ्ख्येया योजनकोट्योऽपि भवन्ति, तत्किमेतावत्यपि क्षेत्रे या नभःश्रेण्यो भवन्ति ता इह गृह्यन्ते?, नेत्याह—'तासि णं सेढीणं विक्खंभसूई'त्यादि, तासां श्रेणीनां विष्कम्भसूचिः–विस्तरश्रेणिर्ज्ञेयेति शेषः, कियतीत्याह—'अंगुली'त्यादि, अङ्गुलप्रमाणे प्रतरक्षेत्रे यः श्रेणिः–राशिस्तत्र किलासङ्ख्येयानि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१४५]

दीप अनुक्रम [२९९]

वर्गमूलानि तिष्ठन्त्यतः प्रथमवर्गमूलं द्वितीयवर्गमूलेन प्रत्युत्पन्नं–गुणितं तथा च सति यावन्त्योऽत्र श्रेण्यो लब्धा एतावत्प्रमाणा श्रेणीनां विष्कम्भसूचिर्भवति, एतावत्यः श्रेण्योऽत्र गृह्यन्त इत्यर्थः, इदमुक्तं भवति– अङ्गुलप्रमाणे प्रतरक्षेत्रे किलासत्कल्पनया षट्पञ्चाशदधिके द्वे शते श्रेणीनां भवतस्तद्यथा २५६, अत्र प्रथमवर्गमूलं षोडश १६ द्वितीयं चत्वारः ४ चतुर्भिः षोडश गुणिता जाताश्चतुःषष्टिः, एषा चतुःषष्टिरपि सद्भावतोऽसङ्ख्येयाः श्रेण्यो मन्तव्याः, एतावत्सङ्ख्या श्रेणीनां विस्तरसूचिरिह ग्राह्या। 'अहव ण'मित्यादि, णमिति वाक्यालङ्कारे, अथवा–अन्येन प्रकारेण प्रस्तुतोऽर्थ उच्यते इत्यर्थः, 'अहव ण'त्ति क्वचित्पाठः, स चैवं व्याख्यायते–अथवा नैष पूर्वोक्तः प्रकारोऽपि तु प्रकारान्तरेण प्रस्तुतोऽर्थोऽभिधीयते' इति भावः, समुदितो वाऽयंशब्दोऽथवाशब्दस्यार्थे वर्तते, तदेव प्रकारान्तरमाह—'अंगुलबीयवग्गमूलघणे'त्यादि, अङ्गुलप्रमाणप्रतरक्षेत्रवर्तिश्रेणिराशेर्यद्वितीयवर्गमूलमनन्तरं चतुष्टयरूपं दर्शितं तस्य यो घनः–चतुःषष्टिलक्षणस्तत्प्रमाणाः– तत्सङ्ख्याः श्रेण्योऽत्र गृह्यन्त इति, प्ररूपणैव भिद्यते अर्थस्तु स एवेति, तदेवं कल्पनया चतुःषष्टिरूपाणां सद्भावतोऽसङ्ख्येयानां श्रेणीनां यः प्रदेशराशिरेतावत्सङ्ख्यानि नारकाणां बद्धवैक्रियाणि प्राप्यन्त इति, प्रत्येकशरीरित्वान्नारका अप्येतावन्त एव, एवं च सति पूर्वं नारकाः सामान्येनैवासङ्ख्येया उक्ताः, अत्र तु शरीरविचारप्रस्तावात्तदप्यसङ्ख्येयकं प्रतिनियतस्वरूपं सिद्धं भवति, एवमन्यत्रापि प्रत्येकशरीरिणः सर्वे स्वकीयस्वकीयबद्धशरीरसङ्ख्यातुल्या द्रष्टव्याः, मुक्तवैक्रियाणि मुक्तौदारिकवद्वाच्यानि, आहारकाणि बद्धा-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१४५]

दीप अनुक्रम [२९९]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[४५], चूलिकासूत्र-[२] अनुयोगद्वार मूलं एवं हेमचन्द्रसूरि-रचिता वृत्तिः

न्येषां न सम्भवन्ति, चतुर्दशपूर्वधरसम्भवित्वात्तद्बन्धस्य, मुक्तानि तु मुक्तौदारिकवद्वाच्यानि, मनुष्यभवे कृतोज्झिताहारकशरीराणां प्रतिपतितचतुर्दशपूर्वविदां नारकेषूत्पत्तिसम्भवादौदारिकोक्तन्यायेनानन्तानां तेषां सम्भव इति भावः, तैजसकार्मणानि तु बद्धानि मुक्तानि च यथैषामेव वैक्रियाणि तथा वक्तव्यानि । उक्तानि पञ्चापि शरीराणि नारकेषु, अथासुरकुमारेषु तानि वक्तुमाह—'असुरकुमाराणं भंते !' इत्यादि, औदारिकाण्यत्रापि नारकवद्वाच्यानि, वैक्रियाण्यपि तथैव, नवरमसुरकुमाराणां नारकेभ्यः स्तोकत्वात् प्रस्तुतशरीराण्यपि स्तोकान्यतो विष्कम्भसूच्यां विशेषः, सा चेयं—'तासि णं सेढीणं विक्खंभसूई'त्यादि, तासाम्–अनन्तरोक्तश्रेणीनां विष्कम्भसूचिः–विस्तरश्रेणिरङ्गुलप्रथमवर्गमूलस्यासङ्ख्येयभागः, इदमुक्तं भवति–प्रतरस्याङ्गुलप्रमाणे क्षेत्रे यावन्त्यः श्रेणयो भवन्ति तासां यत्प्रथमवर्गमूलं तस्याप्यसङ्ख्येयभागे याः श्रेणयो भवन्ति तत्प्रमाणैव विस्तरसूचिरिह ग्राह्या, सा च नारकोक्तसूचेरसङ्ख्यातमे भागे सिद्धा भवति, ततो नारकाणामसुरकुमारा असङ्ख्येयभागे वर्तन्त इति प्रतिपादितं भवति, इत्थमेव चैतत्, यतः प्रज्ञापनामहादण्डके केवलरत्नप्रभानारकाणामपि समस्ता अपि भवनपतयोऽसङ्ख्यातमभागवर्तित्वेनोक्ताः किं पुनः समस्तनारकाणां केवला(अ)सुरकुमारा इति, आहारकाणि नारकवदेव, तैजसकार्मणान्यत्रैवोक्तवैक्रियवदिति । एवं समानैव वक्तव्यता यावत्स्तनितकुमाराः ।

पुढविकाइयाणं भंते ! केवइया ओरालिअसरीरा पं०?, गो०! दुविहा पण्णत्ता, तं-

॥ २०१ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जहा–बद्धेल्लया य मुक्केल्लया य, एवं जहा ओहिआ ओरालिअसरीरा तहा भा०, पुढ-विका० केवइया वेउव्विअसरीरा पं०?, गो०! दुविहा पण्णत्ता, तंजहा–बद्धेल्लया य मुक्केल्लया य, तत्थ णं जे ते बद्धेल्लया ते णं णत्थि, मुक्केल्लया जहा ओहिआणं ओरा-लिअसरीरा तहा भा०, आहारगसरीरावि एवं चेव भाणियव्वा, तेअगकम्मसरीरा जहा एएसिं चेव ओरालिअसरीरा तहा भाणिअव्वा, जहा पुढविकाइयाणं एवं आ-उकाइयाणं तेउकाइयाण य सव्वसरीरा भाणियव्वा। वाउकाइयाणं भंते! केवइया ओरालिअसरीरा पं०?, गो०! दुविहा पण्णत्ता, तंजहा–बद्धेल्लया य मुक्केल्लया य, जहा पुढविकाइयाणं ओरालियसरीरा तहा भाणिअव्वा, वाउकाइयाणं भंते! केवइया वे-उव्विअसरीरा पं०?, गो०! दुविहा पण्णत्ता, तंजहा–बद्धेल्लया य मुक्केल्लया य, तत्थ णं जे ते बद्धेल्लया ते णं असंखिज्जा समए २ अवहीरमाणा २ खेत्तपलिओवमस्स असंखिज्जइभागमेत्तेणं कालेणं अवहीरंति नो चेव णं अवहिआ सिआ, मुक्केल्लया वे-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१४५]

दीप अनुक्रम [२९९]

उव्वियसरीरा आहारगसरीरा य जहा पुढविकाइआणं तहा भाणिअव्वा, तेअगकम्मसरीरा जहा पुढविकाइयाणं तहा भाणिअव्वा । वणस्सइकाइआणं ओरालिअवेउव्विअआहारगसरीरा जहा पुढविकाइयाणं तहा भाणिअव्वा, वणस्सइकाइयाणं भंते! केवइया तेअगसरीरा पं०?, गो०! दुविहा पण्णत्ता, जहा ओहिआ तेअगकम्मसरीरा तहा वणस्सइकाइयाणंवि तेअगकम्मगसरीरा भाणिअव्वा।

औदारिकाणि बद्धानि मुक्तानि चात्रौघिकौदारिकवद्वाच्यानि केवलं यदोघिकबद्धानामसङ्ख्येयप्रमाणत्वमुक्तं तदिह लघुतरासङ्ख्येयकेन द्रष्टव्यं, तत्राप्कायादिशरीरैः सह सामान्येन चिन्तितत्वाद्, अत्र तु केवलपृथ्वीकायमात्रप्रस्तावादिति भावः, वैक्रियाहारकाणि बद्धानि अमीषां न सन्ति, मुक्तानि तु प्राग्वदेव मनुष्यादिभवेषु संभवन्ति, तानि तु मुक्तौघिकौदारिकवदभिधानीयानि, तैजसकार्मणान्यत्रैवोक्तौदारिकवद्दृश्यानि, एवमप्कायिकतेजःकायिकेष्वपि सर्वं वाच्यं, वायुषु तु वैक्रियकृतो विशेषः समस्ति, तदभिधानार्थमाह—'वाउकाइयाणं भंते!' इत्यादि, इहापि सर्वं पृथिवीकायिकवद्वाच्यं, नवरं वैक्रियाणि बद्धान्यमीषामसङ्ख्येयानि लभ्यन्ते, तानि च प्रतिसमयमपहियमाणानि क्षेत्रपल्योपमस्यासङ्ख्येयभागे यावन्तो नभःप्रदेशा भवन्ति तत्सङ्ख्यैः समयैरपह्रियन्ते, क्षेत्रपल्योपमासङ्ख्येयभागवर्तिप्रदेशराशितुल्यानि भवन्तीत्यर्थः, 'नो

॥ २०२ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चेव णं अवहिया सिय'त्ति परप्रत्यायनार्थं प्ररूपणैवेत्थं क्रियते, न तु तानि कदाचित्केनचिदित्थमपह्रियन्त इति भावः, ननु वायवः सर्वेऽप्यसङ्ख्येयलोकाकाशप्रदेशप्रमाणा उक्ताः, तद्वैक्रियशरीरिणः किमित्थं स्तोका एव पठ्यन्ते?, उच्यते, चतुर्विधा वायवः–सूक्ष्मा अपर्याप्ताः पर्याप्ताश्च बादरा अपर्याप्ताः पर्याप्ताश्च, तत्राद्यराशित्रये प्रत्येकं ते असङ्ख्येयलोकाकाशप्रदेशप्रमाणा वैक्रियलब्धिशून्याश्च, बादरपर्याप्तास्तु सर्वेऽपि प्रतरासङ्ख्येयभागवर्तिप्रदेशराशिसङ्ख्या एव, तत्रापि वैक्रियलब्धिमन्तस्तदसङ्ख्येयभागवर्तिन एव न शेषाः, येषामपि च वैक्रियलब्धिस्तेष्वपि मध्येऽसङ्ख्यातभागवर्तिन एव बद्धवैक्रियशरीराः पृच्छासमये प्राप्यन्ते नापरे, अतो यथोक्तप्रमाणान्येवैषां बद्धवैक्रियशरीराणि भवन्ति नाधिकानीति, अत्र केचिन्मन्यन्ते–ये केचन वान्ति वायवस्ते सर्वेऽपि वैक्रियशरीरे वर्तन्ते, तदन्तरेण तेषां चेष्टाया एवाभावात्, तच्च न घटते, यतः सर्वस्मिन्नपि लोके यत्र क्वचित् शुषिरं तत्र सर्वत्र चला वायवो नियमात् सन्त्येव, यदि च ते सर्वेऽपि वैक्रियशरीरिणः स्युस्तदा बद्धवैक्रियशरीराणि प्रभूतानि प्राप्नुवन्ति, न तु यथोक्तमानान्येवेति, तस्माद्वैक्रियशरीरिणोऽपि वान्ति वायवः, उक्तं च—"[१]अत्थि णं भंते! ईसिं पुरेवाया

१ अस्ति (एष भावः) भदन्त! यत् ईषत् पूर्ववाताः पश्चाद्वाता मन्दवाता महावाता वान्ति?, हन्त अस्ति, कदा भदन्त! यावत् वान्ति?, गौतम! यदा वायुकायो यथारीति रीयते यदा वायुकाय उत्तरक्रियं रीयते, यदा वायुकुमारा वायुकुमार्यो वाऽऽत्मनो वा परस्य वा तदुभयोर्वाऽर्थाय वायुकायमुदीरयन्ति तदा ईषत् यावत् वान्ति.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पच्छावाया मंदावाया महावाया वायंति?, हंता अत्थि, कया णं भंते! जाव वायंति?, गोयमा! जया णं वाउयाए आहारियं रीयइ, जया णं जाव वाउयाए उत्तरकिरियं रीयई, जया णं वाउकुमारा वाउकुमारीओ वा अप्पणो वा परस्स वा तदुभयस्स वा अट्ठाए वाउयायं उदीरंति, तया णं ईसिं जाव वायंति" 'आहारियं रीयइ'त्ति रीतं रीतिः स्वभाव इत्यर्थः, तस्यानतिक्रमेण यथारीतं रीयते–गच्छति, यदा स्वाभाविकौदारिकशरीरगत्या गच्छतीत्यर्थः, उत्तरकिरियंति–उत्तरा–उत्तरवैक्रियशरीराश्रया गतिलक्षणा क्रिया यत्र गमने तदुत्तरक्रियं तद्यथा भवतीत्येवं यदा रीयते। तदेवमत्र वातानां याने प्रकारत्रयं प्रतिपाद्यता स्वाभाविकमपि गमनमुक्तम्, अतो वैक्रियशरीरिण एव ते यान्तीति न नियम इत्यलं विस्तरेण । वनस्पतिसूत्रेऽपि सर्वं पृथ्वीकायिकवद्वक्तव्यं, नवरं पृथिवीकायिकानां प्रत्येकशरीरित्वात् स्वस्थानबद्धौदारिकसङ्ख्यातुल्यानि तैजसकार्मणान्युक्तानि, अत्र तु वनस्पतीनां बहूनां साधारणशरीरत्वाच्छरीरिणामानन्त्येऽप्यौदारिकशरीराण्यसङ्ख्यातान्येव, तैजसकार्मणानि तु प्रतिजीवं पृथग्भावादनन्तानि, ततो न स्वस्थानबद्धौदारिककायतुल्यानि वक्तव्यानि, किंन्तु यथौधिकतैजसकार्मणान्यभिहितानि तथैवात्रापि भावनीयानि ।

बेइंदियाणं भंते! केवइया ओरालियसरीरा पं०?, गो०! दुविहा पण्णत्ता, तंजहा– बद्धेल्लया य मुक्केल्लया य, तत्थ णं जे ते बद्धेल्लया ते णं असंखिज्जा असंखिज्जाहिं उ-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१४५]

दीप अनुक्रम [२९९]

स्सप्पिणीओसप्पिणीहिं अवहीरंति कालओ खेत्तओ असंखेज्जाओ सेढीओ पयरस्स असंखिज्जइभागो तासि णं सेढीणं विक्खंभसूई असंखेज्जाओ जोअणकोडाकोडीओ असंखिज्जाइं सेढिवग्गमूलाइं बेइंदियाणं ओरालियबद्धेल्लएहिं पयरं अवहीरइ असंखिज्जाहिं उस्सप्पिणीओसप्पिणीहिं कालओ खेत्तओ अंगुलपयरस्स आवलिआए असंखिज्जइभागपडिभागेणं, मुक्केल्लया जहा ओहिआ ओरालिअसरीरा तहा भाणिअव्वा, वेउव्विअआहारगसरीरा बद्धेल्लया नत्थि मुक्केल्लया जहा ओहिआ ओरालिअसरीरा तहा भाणिअव्वा, तेअगकम्मगसरीरा जहा एएसिं चेव ओरालिअसरीरा तहा भाणिअव्वा, जहा बेइंदिआणं तहा तेइंदियचउरिंदियाणवि भाणिअव्वा । पंचिंदियतिरिक्खजोणियाणवि ओरालिअसरीरा एवं चेव भाणिअव्वा, पंचिंदिअतिरिक्खजोणिआणं भंते! केवइया वेउव्विअसरीरा पण्णत्ता?, गो०! दुविहा पण्णत्ता, तंजहा–बद्धेल्लया य मुक्केल्लया य, तत्थ णं जे ते बद्धेल्लया ते णं असंखिज्जा असंखि-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ज्जाहिं उस्सप्पिणीओसप्पिणीहिं अवहीरंति कालओ खेत्तओ असंखिज्जाओ सेढीओ पयरस्स असंखिज्जइभागो तासि णं सेढीणं विक्खंभसूई अंगुलपढमवग्गमूलस्स असंखिज्जइभागो, मुक्केल्लया जहा ओहिआ ओरालिआ तहा भा०, आहारयसरीरा जहा बेइंदिआणं तेअगकम्मसरीरा जहा ओरालिया ।

अत्र बद्धौदारिकाण्यसङ्ख्येयानि कालतोऽसङ्ख्येयोत्सर्पिण्यवसर्पिणीसमयराशितुल्यानि, क्षेत्रतस्तु प्रतरासङ्ख्येयभागवर्त्यसङ्ख्येयश्रेणीनां यः प्रदेशराशिः तत्तुल्यानि, तासां च प्रतरासङ्ख्येयभागवर्तिश्रेणीनां विष्कम्भसूचिरसङ्ख्येययोजनकोटीकोटिप्रमाणाऽत्र ग्राह्या । एतदेव विशेषतरमाह—'असंखेज्जाइं सेढिवग्गमूलाइं'ति, एकस्या नभःश्रेणेर्यः प्रदेशराशिः स सद्भावतोऽसङ्ख्यातप्रदेशात्मकोऽपि कल्पनया पञ्चषष्टिसहस्राणि पञ्च शतानि षट्त्रिंशदधिकानि ६५५३६, अस्य प्रथमं वर्गमूलं २५६, द्वितीयं १६, तृतीयं ४, चतुर्थं २, एतानि कल्पनया चत्वार्यपि सद्भावतोऽसङ्ख्येयानि वर्गमूलानि, एतेषां च मीलने कल्पनया अष्टसप्तत्यधिके द्वे शते सद्भावतस्त्वसङ्ख्येयाः प्रदेशा जायन्ते, तत एतावत्प्रदेशा प्रस्तुतविष्कम्भसूचिर्भवति, इदानीं प्रस्तुतशरीरमानमेव प्रकारान्तरेणाह—'बेइंदियाणं ओरालियसरीरेहिं बद्धेल्लएहि'मित्यादि, द्वीन्द्रियाणां यानि बद्धान्यौदारिकशरीराणि तैः प्रतरः सर्वोऽप्यपह्रियते, कियता कालेनेत्याह—असङ्ख्येयो-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[४५], चूलिकासूत्र-[२] अनुयोगद्वार मूलं एवं हेमचन्द्रसूरि-रचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१४५]

दीप अनुक्रम [२९९]

त्सर्पिण्यवसर्पिणीभिः, केन पुनः क्षेत्रप्रविभागेन · कालप्रविभागेन च ?, एतावता कालेनायमपहियत इत्याह– अङ्गुलप्रतरलक्षणस्य क्षेत्रस्य आवलिकालक्षणस्य च कालस्य योऽसङ्ख्येयभागरूपः प्रविभागः–अंशस्तेन, इदमुक्तं भवति–यद्येकैकेन द्वीन्द्रियशरीरेण प्रतरस्यैकैकोऽङ्गुलासङ्ख्येयभाग एकैकेनावलिकाऽसङ्ख्येयभागेन क्रमशोऽपहियते तदाऽसङ्ख्येयोत्सर्पिण्यवसर्पिणीभिः सर्वोऽपि प्रतरो निष्ठां याति, एवं प्रतरस्यैकैकस्मिन्नङ्गुलासङ्ख्येयभागे एकैकेनावलिकाऽसङ्ख्येयभागेन प्रत्येकं क्रमेण स्थाप्यमानानि द्वीन्द्रियशरीराण्यसङ्ख्येयोत्सर्पिण्यवसर्पिणीभिः सर्वं प्रतरं पूरयन्तीत्यपि द्रष्टव्यं, वस्तुत एकार्थत्वादिति, मुक्तौदारिकवैक्रियाहारकाणि पृथ्वीकायिकवद्वाच्यानि, तैजसकार्मणानि तु यथैषामेवौदारिकाणि । त्रीन्द्रियचतुरिन्द्रियाणामप्येवमेव वाच्यम् । पञ्चेन्द्रियतिरश्चामपीत्थमेव, नवरमेतेषु केषाञ्चिद्वैक्रियलब्धिसम्भवतो बद्धान्यपि वैक्रियशरीराणि लभ्यन्ते, अतस्तत्सङ्ख्यानिरूपणार्थमाह—'पंचिंदियतिरिक्खजोणिआणं भंते ! केवइया वेउव्वियसरीरा ?' इत्यादि, इह च सामान्येनासङ्ख्येयतामात्राभिधानेऽपि चरतस्त्रीन्द्रियादीनामतिदेशो मन्तव्यो, न पुनः सर्वथा परस्परं सङ्ख्यासाम्यमेतेषां, यत उक्तम्—"एएसि णं भंते ! एगिंदियबेइंदियतेइंदियचउरिंदियपंचिंदियाणं कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?, गोयमा ! सव्वथोवा पंचिंदिया चउरिं-

१ सामान्यातिदेशे विशेषानतिदेश इति न्यायात् २ एतेषां भदन्त ! एकेन्द्रियद्वीन्द्रियत्रीन्द्रियचतुरिन्द्रियपञ्चेन्द्रियाणां कतरे कतरेभ्यः अल्पा वा बहवो वा तुल्या वा विशेषाधिका वा ?, गौतम ! सर्वस्तोकाः पञ्चेन्द्रियाः चतुरिन्द्रिया विशेषाधिकाः त्रीन्द्रिया विशेषाधिका द्वीन्द्रिया विशेषाधिका एकेन्द्रिया अनन्तगुणाः.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनुयो० मलधारीया ॥ २०५ ॥

दिया विसेसाहिया तेइंदिया विसेसाहिआ बेइंदिया विसेसाहिया एगिंदिया अणंतगुणा" तदेवमिह सूत्रे द्वीन्द्रियादीनां कियतोऽपि जीवसङ्ख्यावैचित्र्यस्योक्तत्वात्तच्छरीराणामपि तदिह द्रष्टव्यं, प्रत्येकशरीराणां जीवसङ्ख्यायाः शरीरसङ्ख्यायाः तुल्यत्वादित्यलं प्रसङ्गेन, प्रकृतमुच्यते–तत्र पञ्चेन्द्रियतिरश्चां बद्धानि वैक्रियशरीराण्यसङ्ख्येयानि सर्वदैव लभ्यन्ते, तानि च कालतोऽसङ्ख्येयोत्सर्पिण्यवसर्पिणीसमयराशितुल्यानि, क्षेत्रतस्तु प्रतरासङ्ख्येयभागवर्त्यसङ्ख्येयश्रेणीनां यः प्रदेशराशिः तत्तुल्यानि, तासां च श्रेणीनां विष्कम्भसूचिरङ्गुलप्रथमवर्गमूलस्यासङ्ख्येयभागः शेषभावना असुरकुमारवत्कार्या ।

मणुस्साणं भंते! केवइया ओरालियसरीरा पं०?, गो०! दुविहा पण्णत्ता, तंजहा–बद्धेल्लया य मुक्केल्लया य, तत्थ णं जे ते बद्धेल्लया ते णं सिअ संखिज्जा सिअ असंखिज्जा जहण्णपए संखेज्जा, संखिज्जाओ कोडाकोडीओ एगुणतीसं ठाणाइं तिजमलपयस्स उवरिं चउजमलपयस्स हेट्ठा, अहव णं छट्ठो वग्गो पंचमवग्गपडुप्पण्णो, अहव णं छण्णउइछेअणगदायिरासी, उक्कोसपए असंखिज्जा, असंखिज्जाहिं उस्सप्पिणीओसप्पिणीहिं अवहीरंति कालओ खेत्तओ उक्कोसपए रूवपक्खित्तेहिं मणूस्सेहिं सेढी अवहीरइ कालओ असंखि-

वृत्तिः उपक्रमे प्रमाणद्वारं

॥ २०५ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१४५]

दीप अनुक्रम [२९९]

जाहिं उस्सप्पिणीओसप्पिणीहिं खेत्तओ अंगुलपढमवग्गमूलं तइयवग्गमूलपडुप्पण्णं, मुक्केल्लया जहा ओहिआ ओरालिआ तहा भाणिअव्वा, मणुस्साणं भंते! केवइआ वेउव्वि-असरीरा पं०?, गो०! दुविहा पं० तं०–बद्धेल्लया य मुक्केल्लया य, तत्थ णं जे ते बद्धे-ल्लया ते णं संखिज्जा समए २ अवहीरमाणा २ संखेज्जेणं कालेणं अवहीरंति, नो चेव णं अवहिआ सिआ, मुक्केल्लया जहा ओहिआ ओरालिआणं मुक्केल्लया तहा भा०, मणु-स्साणं भंते! केवइया आहारगसरीरा पं०?, गो०! दुविहा पण्णत्ता, तंजहा–बद्धेल्लया य मुक्केल्लया य, तत्थ णं जे ते बद्धेल्लया ते णं सिअ अत्थि सिअ नत्थि, जइ अत्थि जहन्नेणं एक्को वा दो वा तिण्णि वा उक्कोसेणं सहस्सपुहत्तं, मुक्केल्लया जहा ओ-हिआ, तेअगकम्मगसरीरा जहा एएसिं चेव ओरालिआ तहा भाणिअव्वा।

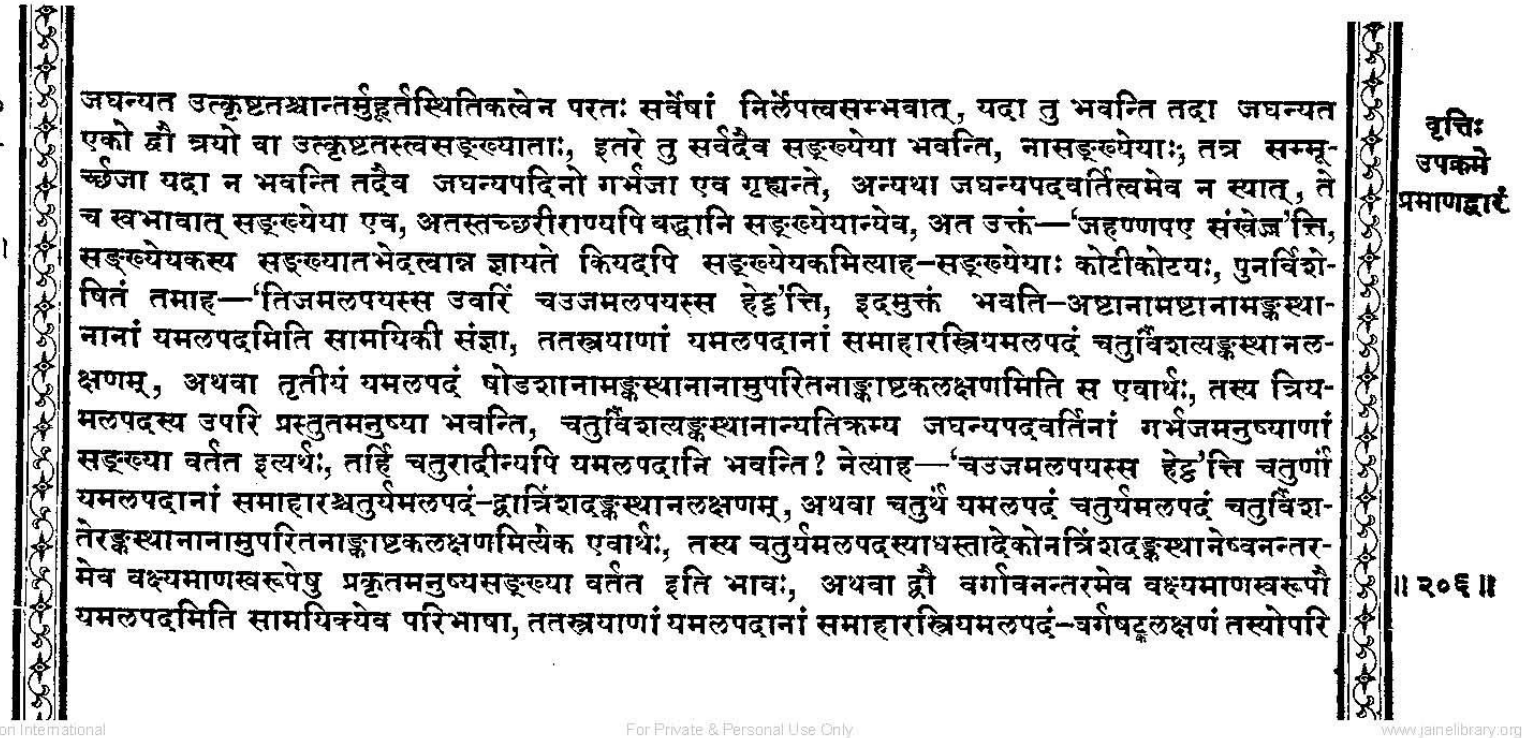
इह मनुष्या द्विविधाः–वान्तपित्तादिजन्मानः सम्मूर्च्छजाः स्त्रीगर्भोत्पन्ना गर्भजाश्च, तत्राद्याः कदाचिन्न भ-वन्त्येव, जघन्यतः समयस्योत्कृष्टतस्तु चतुर्विंशतिमुहूर्तानां तदन्तरकालस्य प्रतिपादितत्वाद्, उत्पन्नानां तु

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[४५], चूलिकासूत्र-[२] अनुयोगद्वार मूलं एवं हेमचन्द्रसूरि-रचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१४५]

दीप अनुक्रम [२९९]



अनुयो० मलधारीया ॥ २०६ ॥

जघन्यत उत्कृष्टतश्चान्तर्मुहूर्तस्थितिकत्वेन परतः सर्वेषां निर्लेपत्वसम्भवात्, यदा तु भवन्ति तदा जघन्यत एको द्वौ त्रयो वा उत्कृष्टतस्त्वसङ्ख्याताः, इतरे तु सर्वदैव सङ्ख्येया भवन्ति, नासङ्ख्येयाः; तत्र सम्मूर्च्छजा यदा न भवन्ति तदैव जघन्यपदिनो गर्भजा एव गृह्यन्ते, अन्यथा जघन्यपदवर्तित्वमेव न स्यात्, ते च स्वभावात् सङ्ख्येया एव, अतस्तच्छरीराण्यपि बद्धानि सङ्ख्येयान्येव, अत उक्तं—'जहण्णपए संखेज्ज'त्ति, सङ्ख्येयकस्य सङ्ख्यातभेदत्वान्न ज्ञायते कियदपि सङ्ख्येयकमित्याह–सङ्ख्येयाः कोटीकोट्यः, पुनर्विशेषितं तमाह—'तिजमलपयस्स उवरिं चउजमलपयस्स हेट्ठ'त्ति, इदमुक्तं भवति–अष्टानामष्टानामङ्कस्थानानां यमलपदमिति सामयिकी संज्ञा, ततस्त्रयाणां यमलपदानां समाहारस्त्रियमलपदं चतुर्विंशत्यङ्कस्थानलक्षणम्, अथवा तृतीयं यमलपदं षोडशानामङ्कस्थानानामुपरितनाङ्काष्टकलक्षणमिति स एवार्थः, तस्य त्रियमलपदस्य उपरि प्रस्तुतमनुष्या भवन्ति, चतुर्विंशत्यङ्कस्थानान्यतिक्रम्य जघन्यपदवर्तिनां गर्भजमनुष्याणां सङ्ख्या वर्तत इत्यर्थः, तर्हि चतुरादीन्यपि यमलपदानि भवन्ति? नेत्याह—'चउजमलपयस्स हेट्ठ'त्ति चतुर्णां यमलपदानां समाहारश्चतुर्यमलपदं–द्वात्रिंशदङ्कस्थानलक्षणम्, अथवा चतुर्थं यमलपदं चतुर्यमलपदं चतुर्विंशतेरङ्कस्थानानामुपरितनाङ्काष्टकलक्षणमित्येक एवार्थः, तस्य चतुर्यमलपदस्याधस्तादेकोनत्रिंशदङ्कस्थानेष्वनन्तरमेव वक्ष्यमाणस्वरूपेषु प्रकृतमनुष्यसङ्ख्या वर्तत इति भावः, अथवा द्वौ वर्गावनन्तरमेव वक्ष्यमाणस्वरूपौ यमलपदमिति सामयिक्येव परिभाषा, ततस्त्रयाणां यमलपदानां समाहारस्त्रियमलपदं–वर्गषट्कलक्षणं तस्योपरि

वृत्तिः उपक्रमे प्रमाणद्वारं

॥ २०६ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चतुर्थमलपदस्य-वर्गाष्टकलक्षणस्याधस्तादेतन्मनुष्यसङ्ख्या लभ्यते, षष्ठवर्गस्योपरि सप्तमवर्गस्य त्वधस्तात्प्रस्तुतमनुष्यसङ्ख्या प्राप्यत इति हृदयम्, अत्राप्येतान्येवैकोनत्रिंशदङ्कस्थानानि मन्तव्यानि, अथवा किमेतैरस्फुटैः प्रकारैः, स्फुटतरमेव प्रकारमाह—'अहव ण'मित्यस्य शब्दस्य पाठान्तरस्य व्याख्या पूर्ववत्, षष्ठवर्गः पञ्चमवर्गेण यदा प्रत्युत्पन्नो–गुणितो भवति तदा प्रस्तुतमनुष्यसङ्ख्या समागच्छतीत्यर्थः, अथ कोऽयं षष्ठो वर्गः? कश्च पञ्चमवर्ग इति, अत्रोच्यते, विवक्षितः कश्चिद्राशिस्तेनैव राशिना यत्र गुण्यते स तावद्वर्गः, तत्रैकवर्गस्य वर्ग एक एव भवत्यतो वृद्धिरहितत्वादेष वर्ग एव न गण्यते, द्वयोश्च वर्गश्चत्वारो भवन्तीत्येष प्रथमो वर्गः, चतुर्णां वर्गः षोडशेति द्वितीयो वर्गः १६, षोडशानां वर्गो द्वे शते षट्पञ्चाशदधिके इति तृतीयो वर्गः २५६, अस्य राशेर्वर्गः पञ्चषष्टिसहस्राणि पञ्च शतानि षट्त्रिंशदधिकानीति चतुर्थो वर्गः ६५५३६, अस्य राशेर्वर्गः सार्द्धगाथया प्रोच्यते—'चत्तारि य कोडिसया अउणत्तीसं च हुंति कोडीओ । अउणावन्नं लक्खा सत्तट्ठिं चेव य सहस्सा ॥ १ ॥ दो य सया छन्नउया पंचमवग्गो इमो विणिद्दिट्ठो'त्ति अङ्कतोऽप्येष दर्श्यते ४२९४९६७२९६, अस्यापि राशेर्गाथात्रयेण वर्गः प्रतिपाद्यते—लक्खं कोडाकोडी चउरासीयं भवे सहस्साइं । चत्तारि अ सत्तट्ठा हुंति सया कोडीकोडीणं ॥ १ ॥ चउयालं लक्खाइं कोडीणं सत्त चेव य सहस्सा । तिन्नि य सया य सत्तरि कोडीणं हुंति नायव्वा ॥ २ ॥ पंचाणऊइ लक्खा एगावन्नं भवे सहस्साइं । छस्सोलसोत्तरसया एसो छट्ठो हवइ वग्गो ॥ ३ ॥ अङ्कतोऽपि दर्श्यते १८४४६७४४०७३७०९५५१६१६, तदयं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

षष्ठो वर्गः पूर्वोक्तेन पञ्चमवर्गेण गुण्यते, तथा च सति या सङ्ख्या भवति तस्या जघन्यपदिनो गर्भजमनुष्या वर्तन्ते, सा चेयम् ७९२२८१६२५१४२६४३३७५९३५४३९५०३३६ अयं च राशिः कोटीकोट्यादिप्रकारेण केनाप्यभिधातुं न शक्यते अतः पर्यन्तादारभ्याङ्कमानसङ्ग्रहार्थं गाथाद्वयम्—'छत्तिन्नि तिन्नि सुन्नं पंचेव य नव य तिन्नि चत्तारि। पंचेव तिण्णि नव पंच सत्त तिन्नेव तिन्नेव ॥ १ ॥ चउ छ दो चउ एक्को पण दो छक्केक्कगो य अट्ठेव। दो दो नव सत्तेव य अंकट्ठाणा पराहुत्ता ॥ २ ॥' तदेवमेतेष्वेकोनत्रिंशदङ्कस्थानेषु जघन्यपदिनो गर्भजमनुष्या वर्तन्ते इति स्थितम्। अमुमेवार्थं प्रकारान्तरेणाह—'अहव णं छन्नउईच्छेयणगयाई रासि'त्ति छेदनकं–राशेरर्द्धीकरणं ततः षण्णवतिच्छेदनानि यो राशिर्ददाति पर्यन्ते च परिपूर्णैकरूपपर्यवसितो भवति न तु खण्डितरूपपर्यवसितः स प्रकृतमनुष्यसङ्ख्यास्वरूपो मन्तव्यः, स चायमेवैकोनत्रिंशदङ्कस्थाननिष्पन्नोऽनन्तरदर्शितो नान्यः, अयं हि पुनः पुनश्छिद्यमानोऽर्द्धीक्रियमाणः षण्णवतिच्छेदान् क्षमते, पर्यन्ते च परिपूर्णैकरूपपर्यवसितो भवतीति षण्णवतिच्छेदनकदायी प्रोच्यते, कथं पुनः षण्णवतिच्छेदनानि भाव्यन्ते ?, उच्यते, प्रथमो वर्गश्चतुष्टयरूपो यो दर्शितस्तत्र द्वे छेदने भवतः, तथाहि–चतुर्णामर्द्धे द्वौ तयोरप्यर्द्धे एक इत्येवमुत्तरेष्वपि वर्गेषु भावनीयं, द्वितीये तु वर्गे चत्वारि छेदनानि संपद्यन्ते, तृतीये अष्टा, चतुर्थे षोडश, पञ्चमे द्वात्रिंशत्, षष्ठे चतुःषष्टिः, पञ्चमस्तु षष्ठेन गुणित आस्ते, अतः पञ्चमसत्कान्यपि छेदनकानि षष्ठे प्रविष्टानि प्राप्यन्त इत्युभयगतान्यपि मील्यन्ते, ततो जातानि प्रस्तुतराशौ षण्णवतिच्छेदनकानि, स्वयमेव वा पुनः पुनश्छेदं कृत्वा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अभियुक्तेन भावनीयानि, तदेवं जघन्यपदमुक्तम्, अथोत्कृष्टपदमभिधित्सुराह—'उक्कोसपए असंखेज्ज'त्ति, उत्कृष्टपदे मनुष्यबद्धान्यौदारिकशरीराण्यसङ्ख्येयानि कालतोऽसङ्ख्येयोत्सर्पिण्यवसर्पिणीसमयराशितुल्यानि, क्षेत्रतस्त्वेकस्मिन् मनुष्यशरीररूपे प्रक्षिप्ते तैर्मनुष्यशरीरैरेका नभःप्रदेशश्रेणिरपह्रियते, कियता कालेनेत्याह–असङ्ख्येयोत्सर्पिण्यवसर्पिणीभिः, कियता क्षेत्रखण्डापहारेणेत्याह—'अंगुलपढमवग्गमूलं तइयवग्गमूलपडुप्पण्ण'न्ति श्रेणेरङ्गुलप्रमाणे क्षेत्रे यः प्रदेशराशिस्तस्य यत्प्रथमं वर्गमूलं तत्तृतीयवर्गमूलप्रदेशराशिना गुण्यते, गुणिते च यः प्रदेशराशिर्भवति तत्प्रमाणं क्षेत्रखण्डमेकैकं मनुष्यशरीरं क्रमेण प्रतिसमयमपहरति, इदमुक्तं भवति–श्रेणेर्मध्याद् यथोक्तप्रमाणं क्षेत्रखण्डं यद्येकैकं मनुष्यशरीरं क्रमेण प्रतिसमयमपहरति तदाऽसङ्ख्येयोत्सर्पिण्यवसर्पिणीभिः सर्वाऽपि श्रेणिरपह्रियते यद्येकं मनुष्यशरीरं स्यात्, तच्च नास्ति, सर्वोत्कृष्टानामपि समुदितगर्भसंमूर्च्छजमनुष्याणामेतावतामेव भावादिति । तदेवं मनुष्याणां बद्धान्यौदारिकशरीराण्युक्तानि, मुक्तानि त्वोघबद्धान्यानि । अथ वैक्रियाण्याह—'केवइया वेउव्विअसरीरा'इत्यादि, वैक्रियाण्यमीषां सङ्ख्येयान्येव बद्धानि प्राप्यन्ते गर्भजेषु, तत्रापि वैक्रियलब्धिमत्सु तत्रापि पृच्छासमये कियत्स्वेव तेषु तद्बन्धसम्भवादिति, तानि च प्रतिसमयमेकैकशोऽपह्रियमाणानि असङ्ख्येयेन कालेनापह्रियन्ते, मुक्तान्योघवद्वाच्यानि । आहारकाणि तु बद्धानि मुक्तानि च यथौधिकानि तथैव, तैजसकार्मणानि तु यथैषामेवौदारिकाणि ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वाणमंतराणं ओरालिअसरीरा जहा नेरइआणं, वाणमंतराणं भंते! केवइआ वेउव्वि-असरीरा पं०?, गो०! दुविहा पण्णत्ता, तंजहा–बद्धेल्लया य मुक्केल्लया य, तत्थ णं जे ते बद्धेल्लया ते णं असंखेज्जा, असंखिज्जाहिं उस्सप्पिणीओसप्पिणीहिं अवहीरंति कालओ खेत्तओ असंखिज्जाओ सेढीओ पयरस्स असंखिज्जइभागो तासि णं सेढीणं विक्खंभ-सूई संखेज्जजोअणसयवग्गपलिभागो पयरस्स, मुक्के० जहा ओहिआ ओरालिआ तहा भा०, आहा० दुविहा वि जहा असु० तहा भा०, वाण० भंते! केवइया तेअगस० पं०?, गो०! जहा एएसिं चेव वेउव्वि० तहा तेअग० भाणिअव्वा। जोइसियाणं भंते! केव० वे० पं०? गो०! दुविहा पण्णत्ता, तंजहा–बद्धे० मुक्के०, तत्थ णं जे ते ब० जाव तासि णं सेढीणं विक्खंभसूई बेछप्पण्णंगुलसयवग्गपलिभागो पयरस्स, मुक्के० जहा ओ० ओरा० तहा भा०, आहारय० जहा नेर० तहा भा०, तेअ० जहा एएसिं चेव वेउ० तहा०। वेमाणियाणं भंते! केव० ओरा० पं०?, गो०! जहा ने० तहा०, वेमा-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

णि० केव० वेउ० पं०?, गो०! दुविहा पण्णत्ता, तंजहा–बद्धे० मुक्के०, तत्थ णं जे ते ब० ते णं असंखिज्जा असंखेज्जाहिं उस्स० अवहीरंति कालओ खेत्तओ असं० सेढीओ पयरस्स असंखे० तासिणं सेढीणं विक्खंभसूई अंगुलबीयवग्गमूलं तइयवग्गमूलपडुप्पण्णं अहव णं अंगुलतइयवग्गमूलं घणप्पमाणमेत्ताओ सेढीओ, मुक्केल्लया जहा ओहिआ ओरालियाणं तहा भा०, आहा० जहा नेरइयाणं, तेअग० जहा एएसिं चेव वेउव्विअसरीरा तहा भाणिअव्वा, से तं सुहुमे खेत्तपलिओवमे, से तं खेत्तपलिओवमे, से तं पलिओवमे, से तं विभागणिप्फण्णे, से तं कालप्पमाणे (सू० १४५)

व्यन्तराणां सर्वं नारकवद्वाच्यं, नवरं नारकेभ्यो व्यन्तराणामसङ्ख्येयगुणत्वेन महादण्डके पठितत्वाद्विष्कम्भसूच्यां विशेष इत्याह—'तासि णं सेढीण'मित्यादि, तासामसङ्ख्येयानां श्रेणीनां विष्कम्भसूचिः पूर्वोक्तस्य प्रज्ञापनामहादण्डकोक्तस्य चानुसारेण स्वयमेव द्रष्टव्येति वाक्यशेषः, सा च पूर्वोक्तायाः पञ्चेन्द्रियतिर्यग्विष्कम्भसूचेरसङ्ख्येयगुणहीना द्रष्टव्या, पञ्चेन्द्रियतिर्यग्भ्यो व्यन्तराणामसङ्ख्येयगुणहीनत्वेन महादण्डके पठितत्वात्, कियता पुनः प्रतिभागेन व्यन्तराः सर्वे प्रतरमपहरन्तीत्याह—'संखिज्जजोयणे'त्यादि, सङ्ख्येय-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१४५]

दीप अनुक्रम [२९९]

अनुयो० मलधारीया ॥ २०९ ॥

योजनशतानां यो वर्गस्तद्रूपो यः प्रतिभागः–अंशः, कस्येत्याह–प्रतरस्य, इदमुक्तं भवति–सङ्ख्येययोजनशतवर्गमूलं प्रतरस्य भागं यद्येकैको व्यन्तरोऽपहरति तदा सर्वोऽपि प्रतरोऽपह्रियते, यदिवा तावति भागे एकैकस्मिन् व्यन्तरेऽवस्थाप्यमाने सर्वोऽपि प्रतरः पूर्यते । ज्योतिष्कसूत्रेऽपि 'तासि णं सेढीणं विक्खंभसूई' स्वयमेव दृश्येति वाक्यशेषोऽवसेयः, सा च व्यन्तरविष्कम्भसूचेः सङ्ख्येयगुणा द्रष्टव्या, व्यन्तरेभ्यो ज्योतिष्काणां सङ्ख्येयगुणत्वेन महादण्डके पठितत्वाद्, इहापि च प्रतरापहारक्षेत्रस्य तत्क्षेत्रादमीषां सङ्ख्येयगुणहीनस्याभिधानात्, तदाह—'बेछप्पन्नंगुलसयवग्गपलिभागो'त्ति षट्पञ्चाशदधिकाङ्गुलशतद्वयवर्गरूपं प्रतिभागं–प्रतरस्यांशं यद्येकैको ज्योतिष्कोऽपहरति तदा सर्वं प्रतरमपहरन्ति, प्रत्येकं स्थाप्यमाना वा तावति प्रतिभागे सर्वं प्रतरं पूरयन्ति, व्यन्तरेभ्य एते सङ्ख्येयगुणत्वाद्बहवः, ततो व्यन्तरोक्तप्रतरप्रतिभागक्षेत्रखण्डाद्यथोक्तरूपतया सङ्ख्येयगुणहीनेन स्वल्पेनापि क्षेत्रखण्डेन प्रतरमेतेऽपहरन्ति पूरयन्ति वा इति भावः । वैमानिकसूत्रेऽपीत्थमेव, नवरं वैमानिकाः प्रज्ञापनायां भवनपतिनारकव्यन्तरज्योतिष्केभ्यः प्रत्येकं सर्वेभ्योऽप्यसङ्ख्येयगुणहीनाः पठ्यन्ते, अतो विष्कम्भसूच्यां विशेषः, तमाह—'तासि णं सेढीण'मित्यादि, तासां श्रेणीनां विष्कम्भसूचिरङ्गुलस्य द्वितीयवर्गमूलं तृतीयवर्गमूलेन गुणितम्, इदमुक्तं भवति–अङ्गुलप्रमाणे प्रतरक्षेत्रे सद्भावतोऽसङ्ख्येया अपि कल्पनया द्वे शते षट्पञ्चाशदधिके श्रेणीनां भवतः २५६, अत्र प्रथमवर्गमूलं १६ द्वितीयं ४ तृतीयं २, तत्र द्वितीयं वर्गमूलं चतुष्टयलक्षणं तृतीयेन द्विकलक्षणेन गुणितं, जाता अष्टौ, एव-

वृत्तिः उपक्रमे प्रमाणद्वारं ॥ २०९ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१४५]

दीप अनुक्रम [२९९]

मेताः सद्भूततयाऽसङ्ख्येयाः कल्पनया त्वष्टौ श्रेणयो विस्तरसूचिरिह गृह्यते, 'अहव ण'मित्यादि, अथवा अङ्गुलतृतीयवर्गमूलस्य द्विकलक्षणस्य यो घनः अष्टौ, एतावत्यः श्रेणयोऽत्र विष्कम्भसूच्यां गृह्यन्ते इति स एवार्थः, तदेवं भुवनपत्यादिसूचिरेषाऽसङ्ख्येयगुणहीना मन्तव्या, शेषं सुखोन्नेयं यावत् 'से तं खेत्तपलिओवमे'त्ति । तदेवं 'समयावलियमुहुत्ते'त्यादिगाथानिर्दिष्टास्तदुपलक्षिताश्चान्येऽप्युच्छ्वासादयो व्याख्याताः कालविभागाः, अत आह—'से तं विभागणिप्फण्णे'त्ति, एवं च समर्थितं कालप्रमाणमित्याह—'से तं कालप्पमाणे'त्ति ॥ १४५ ॥ अथ भावप्रमाणमभिधित्सुराह—

से किं तं भावप्पमाणे ?, २ तिविहे पण्णत्ते, तंजहा—गुणप्पमाणे नयप्पमाणे संखप्पमाणे (सू० १४६)। से किं तं गुणप्पमाणे ?, २ दुविहे पण्णत्ते, तंजहा—जीवगुणप्पमाणे अजीवगुणप्पमाणे अ । से किं तं अजीवगुणप्पमाणे ?, २ पंचविहे पण्णत्ते, तंजहा—वण्णगुणप्पमाणे गंधगुणप्पमाणे रसगुणप्पमाणे फासगुणप्पमाणे संठाणगुणप्पमाणे, से किं तं वण्णगुणप्पमाणे ?, २ पंचविहे पण्णत्ते, तंजहा—कालवण्णगुणप्पमाणे

१ नारकादिसूचिभ्य एषा प्र.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१४६--१४७] + गाथाः ||--||

दीप अनुक्रम [३००--३०९]

जाव सुक्किल्लवण्णगुणप्पमाणे, से तं वण्णगुणप्पमाणे । से किं तं गंधगुणप्पमाणे ?, २ दुविहे पण्णत्ते, तंजहा–सुरभिगंधगुणप्पमाणे दुरभिगंधगुणप्पमाणे, से तं गंधगुणप्पमाणे । से किं तं रसगुणप्पमाणे ?, २ पंचविहे पण्णत्ते, तंजहा–तित्तरसगुणप्पमाणे जाव महुररसगुणप्पमाणे, से तं रसगुणप्पमाणे । से किं तं फासगुणप्पमाणे ?, २ अट्ठविहे पण्णत्ते, तंजहा–कक्खडफासगुणप्पमाणे जाव लुक्खफासगुणप्पमाणे, से तं फासगुणप्पमाणे । से किं तं संठाणगुणप्पमाणे ?, २ पंचविहे पण्णत्ते, तंजहा–परिमंडलसंठाणगुणप्पमाणे वट्टसं० तंस० चउरंस० आययसंठाणगुणप्पमाणे, से तं संठाणगुणप्पमाणे, से तं अजीवगुणप्पमाणे ।

भवनं भावो–वस्तुनः परिणामो ज्ञानादिर्वर्णादिश्च, प्रमितिः प्रमीयते अनेन प्रमीयते स इति वा प्रमाणं, भाव एव प्रमाणं भावप्रमाणं, भावसाधनपक्षे प्रमितिः–वस्तुपरिच्छेदस्तद्धेतुत्वाद्भावस्य प्रमाणताऽवसेया, तच्च भावप्रमाणं त्रिविधं प्रज्ञप्तं, तद्यथा—'गुणप्रमाण'मित्यादि, गुणो–ज्ञानादिः स एव प्रमाणं गुणप्रमाणं, प्रमीयते च गुणैर्द्रव्यं, गुणाश्च गुणरूपतया प्रमीयन्तेऽतः प्रमाणता, तथा नीतयो नयाः–अनन्तधर्मात्मकस्य वस्तुन ए-

॥ २१० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१४६--१४७] + गाथाः ||--||

दीप अनुक्रम [३००--३०९]

कांशपरिच्छित्तयः त एव प्रमाणं नयप्रमाणं, सङ्ख्यानं सङ्ख्या सैव प्रमाणं सङ्ख्याप्रमाणं, नयसङ्ख्ये अपि गुणत्वं न व्यभिचरतः, केवलं गुणप्रमाणात् पृथगभिधाने कारणमुपरिष्टाद्वक्ष्यते, तत्र गुणप्रमाणं द्विधा–जीवगुणप्रमाणं च अजीवगुणप्रमाणं च, तत्राल्पवक्तव्यत्वादजीवगुणप्रमाणमेव तावदाह—'से किं तं अजीवगुणप्पमाणे' इत्यादि, एतत्सर्वमपि पाठसिद्धं, नवरं परिमण्डलसंस्थानं वलयादिवत्, वृत्तमयोगोलकवत्, त्र्यस्रं त्रिकोणं शृङ्गाटकफलवत्, चतुरस्रं समचतुष्कोणम्, आयतं–दीर्घमिति।

से किं तं जीवगुणप्पमाणे?, २ तिविहे पण्णत्ते, तंजहा–णाणगुणप्पमाणे दंसणगुणप्पमाणे चरित्तगुणप्पमाणे। से किं तं णाणगुणप्पमाणे?, २ चउव्विहे पण्णत्ते, तंजहा–पच्चक्खे अणुमाणे ओवम्मे आगमे। से किं तं पच्चक्खे?, २ दुविहे पण्णत्ते, तंजहा–इंदिअपच्चक्खे अ णोइंदिअपच्चक्खे अ। से किं तं इंदिअपच्चक्खे?, २ पंचविहे पण्णत्ते, तंजहा–सोइंदिअपच्चक्खे चक्खुरिंदियपच्चक्खे घाणिंदिअपच्चक्खे जिब्भिंदिअपच्चक्खे फासिंदिअपच्चक्खे, से तं इंदियपच्चक्खे। से किं तं णोइंदियपच्चक्खे?,

अनु. ३६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२ तिविहे पण्णत्ते, तंजहा–ओहिणाणपच्चक्खे मणपज्जवनाणपच्चक्खे केवलणाणपच्चक्खे, से तं णोइंदियपच्चक्खे, से तं पच्चक्खे ।

जीवस्य गुणा–ज्ञानादयस्तद्रूपं प्रमाणं जीवगुणप्रमाणं, तच्च ज्ञानदर्शनचारित्रगुणभेदात्त्रिधा, तत्र ज्ञानरूपो यो गुणस्तद्रूपं प्रमाणं चतुर्विधं, तद्यथा–प्रत्यक्षमनुमानमुपमानमागमः, तत्र 'अशू व्याप्ता'वित्यस्य धातोरश्नुते–ज्ञानात्मना अर्थान् व्याप्नोतीति अक्षो–जीवः 'अश भोजने' इत्यस्य वा अश्नाति–भुङ्क्ते पालयति वा सर्वार्थानित्यक्षो–जीव एव प्रतिगतम्–आश्रितमक्षं प्रत्यक्षमिति, अत्यादयः क्रान्ताद्यर्थे द्वितीयये (का० रू० ४३०)-ति समासः, जीवस्यार्थसाक्षात्कारित्वेन यद् ज्ञानं वर्तते तत्प्रत्यक्षमित्यर्थः, अन्ये त्वक्षमक्षं प्रति वर्तत इत्यव्ययीभावसमासं विदधति, तच्च न युज्यते, अव्ययीभावस्य नपुंसकलिङ्गत्वात् प्रत्यक्षशब्दस्य त्रिलिङ्गता न स्यात्, दृश्यते चेयं, प्रत्यक्षा बुद्धिः प्रत्यक्षो बोधः प्रत्यक्षं ज्ञानमिति दर्शनात्, ततो यथादर्शितस्तत्पुरुष एवायं, तच्च प्रत्यक्षं द्विविधम्–इन्द्रियप्रत्यक्षं नोइन्द्रियप्रत्यक्षं च, अत्रेन्द्रियं–श्रोत्रादि तन्निमित्तं–सहकारिकारणं यस्योत्पित्सोस्तदलिङ्गिकं शब्दरूपरसगन्धस्पर्शविषयज्ञानमिन्द्रियप्रत्यक्षम्, इदं चेन्द्रलक्षणजीवात् परं व्यतिरिक्तनिमित्तमाश्रित्योत्पद्यते इति धूमादग्निज्ञानमिव वस्तुतोऽर्थसाक्षात्कारित्वाभावात् परोक्षमेव, केवलं

१ तन्निर्वृत्तं प्र.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१४६--१४७] + गाथाः ||--||

दीप अनुक्रम [३००--३०९]

लोकेऽस्य प्रत्यक्षतया रूढत्वात् संव्यवहारतोऽत्रापि तथोच्यत इत्यलं विस्तरेण, तदाकाङ्क्षिणा तु नन्द्यध्ययनमन्वेषणीयम्। इन्द्रियप्रत्यक्षं तु यन्न भवति तन्नोइन्द्रियप्रत्यक्षं, नोशब्दस्य सर्वनिषेधपरत्वात्, यत्रेन्द्रियं सर्वथैव न प्रवर्तते किन्तु जीव एव साक्षादर्थं पश्यति तन्नोइन्द्रियप्रत्यक्षम्--अवधिमनःपर्यायकेवलाख्यमिति भावार्थः।

से किं तं अणुमाणे? २ तिविहे पण्णत्ते, तंजहा–पुव्ववं सेसवं दिट्ठसाहम्मवं। से किं तं पुव्ववं? २–माया पुत्तं जहा नट्ठं, जुवाणं पुणरागयं। काई पच्चभिजाणेज्जा, पुव्वलिंगेण केणई ॥ १ ॥ तंजहा–खत्तेण वा वण्णेण वा लंछणेण वा मसेण वा तिलएण वा, से तं पुव्ववं। से किं तं सेसवं?, २ पंचविहं पण्णत्तं, तंजहा–कज्जेणं कारणेणं गुणेणं अवयवेणं आसएणं। से किं तं कज्जेणं?, २ संखं सद्देणं भेरिं ताडिएणं वसभं ढक्किएणं मोरं किंकाइएणं हयं हेसिएणं गयं गुलगुलाइएणं रहं घणघणाइएणं, से तं कज्जेणं। से किं तं कारणेणं?, २ तंतवो पडस्स कारणं ण पडो तंतुकारणं वीरणा कडस्स कारणं ण कडो वीरणाकारणं मिप्पिंडो घडस्स कारणं ण घडो मिप्पिं-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[४५], चूलिकासूत्र-[२] अनुयोगद्वार मूलं एवं हेमचन्द्रसूरि-रचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१४६--१४७] + गाथा: ||--||

दीप अनुक्रम [३००--३०९]

डकारणं, से तं कारणेणं। से किं तं गुणेणं?, २ सुवण्णं निकसेणं पुप्फं गंधेणं लवणं रसेणं मइरं आसायएणं वत्थं फासेणं, से तं गुणेणं। से किं तं अवयवेणं?, २ महिसं सिंगेणं कुक्कुडं सिहाएणं हत्थिं विसाणेणं[1] वराहं दाढाए मोरं पिच्छेणं आसं खुरेणं वग्घं नहेणं चमरिं वालग्गेणं वाणरं लंगुलेण दुपयं मणुस्सादि चउपयं गवमादि बहुपयं गोमिआदि सीहं केसरेणं वसहं कुक्कुहेणं महिलं वलयबाहाए, गाहा–परिअरबंधेण भडं जाणिज्जा महिलिअं निवसणेणं। सित्थेण दोणपागं कविं च एक्काए गाहाए ॥ १ ॥ से तं अवयवेणं। से किं तं आसएणं?, २ अग्गिं धूमेणं सलिलं बलागेणं वुट्ठिं अब्भविकारेणं कुलपुत्तं सीलसमायारेणं–[इङ्गिताकारितैर्ज्ञेयैः, क्रियाभिर्भाषितेन च। नेत्रवक्त्रविकारैश्च, गृह्यतेऽन्तर्गतं मनः ॥ १ ॥] से तं आसएणं। से तं सेसवं।

अनु–लिङ्गग्रहणसम्बन्धस्मरणस्य पश्चान्मीयते–परिच्छिद्यते वस्त्वनेनेति अनुमानं, तच्च त्रिविधं–पूर्ववत् शे-

१ विषाणं तु शृङ्गे कोलेभदन्तयोरित्यभिधाननाममालोक्तेर्दन्तोऽर्थो विषाणस्य.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[४५], चूलिकासूत्र-[२] अनुयोगद्वार मूलं एवं हेमचन्द्रसूरि-रचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१४६--१४७] + गाथाः ||--||

दीप अनुक्रम [३००--३०९]

षवत् दृष्टसाधर्म्यवच्चेति । 'से किं तं पुव्ववं'इत्यादि, विशिष्टं पूर्वोपलब्धं चिह्नमिह पूर्वमुच्यते, तदेव निमित्तरूपतया यस्यानुमानस्यास्ति तत्पूर्ववत्, तद्द्वारेण गमकमनुमानं पूर्ववदिति भावः। तथा चाह—'माता पुत्र'मित्यादि श्लोकः, यथा माता स्वकीयं पुत्रं बाल्यावस्थायां नष्टं युवानं सन्तं कालान्तरेण पुनः कथमप्यागतं काचित्तथाविधस्मृतिपाटववती, न सर्वाः, पूर्वदृष्टेन लिङ्गेन केनचित् क्षतादिना प्रत्यभिजानीयात्-मत्पुत्रोऽयमिति अनुमिनुयादित्यर्थः, केन पुनर्लिङ्गेनेत्याह-'क्षतेन वे'त्यादि, स्वदेहोद्भवमेव क्षतं, आगन्तुकस्तु श्वदंष्ट्रादिकृतो व्रणः, लाञ्छनमषतिलकास्तु प्रतीताः, तदयमत्र प्रयोगो-मत्पुत्रोऽयम्, अनन्यसाधारणक्षतादिलक्षणविशिष्टलिङ्गोपलब्धेरिति, साधर्म्यवैधर्म्यदृष्टान्तयोः सत्त्वेतराभावादयमहेतुरिति चेत्, नैवं, हेतोः परमार्थेनैकलक्षणत्वात्, तद्बलेनैव गमकत्वोपलब्धेः, उक्तं च न्यायवादिना पुरुषचन्द्रेण—"अन्यथाऽनुपपन्नत्वमात्रं हेतोः स्वलक्षणम्। सत्त्वासत्त्वे हि तद्धर्मौ, दृष्टान्तद्वयलक्षणे ॥ १ ॥" तद्धर्माविति-अन्यथानुपपन्नत्वधर्मौ, कथम्भूते सत्त्वासत्त्वे इत्याह-साधर्म्यवैधर्म्यरूपे दृष्टान्तद्वये लक्ष्यते-निश्चीयते,अथ यदि दृष्टान्तद्वयलक्षणेन च धर्मिसत्तायां धर्माः सर्वेऽपि सर्वदा भवन्त्येव, पटादेः शुक्लत्वादिधर्मैर्व्यभिचारात्, ततो दृष्टान्तयोः सत्त्वासत्त्वधर्मौ यद्यपि क्वचिद्धेतौ न दृश्येते तथापि धर्मिस्वरूपमन्यथानुपपन्नत्वं भविष्यतीति न कश्चिद्विरोध इति भावः। यत्रापि धूमादौ दृष्टान्तयोः सत्त्वासत्त्वे हेतोर्दृश्येते तत्रापि साध्यान्यथानुपपन्नत्वस्यैव प्राधान्यात्तस्यैवैकस्य हेतुलक्षणताऽवसेया, तथा चाह—"धूमादेर्यद्यपि स्यातां, सत्त्वासत्त्वे च लक्षणे। अन्यथानुपपन्नत्वप्राधान्याल्लक्षणैकता

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[४५], चूलिकासूत्र-[२] अनुयोगद्वार मूलं एवं हेमचन्द्रसूरि-रचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१४६--१४७] + गाथाः ||--||

दीप अनुक्रम [३००--३०९]

॥ १ ॥" किंच-यदि दृष्टान्ते सत्त्वासत्त्वदर्शनाद्धेतुर्गमक इष्यते तदा लोहलेख्यं वज्रं पार्थिवत्वात् काष्ठादिवदित्यादेरपि गमकत्वं स्याद्, अभ्यधायि च—"दृष्टान्ते सदसत्त्वाभ्यां, हेतुः सम्यग् यदिष्यते। लोहलेख्यं भवेद्वज्रं, पार्थिवत्वाद् द्रुमादिवद् ॥ १ ॥" इति । यदि च-पक्षधर्मत्वसपक्षसत्त्वविपक्षासत्त्वलक्षणं हेतोस्त्रैरूप्यमभ्युपगम्यापि यथोक्तदोषभयात् साध्येन सहान्यथानुपपन्नत्वमन्वेषणीयं तर्हि तदेवैकं लक्षणतया वक्तुमुचितं, किं रूपत्रयेणेति, आह च—"अन्यथानुपपन्नत्वं, यत्र तत्र त्रयेण किम्?। नान्यथानुपपन्नत्वं, यत्र तत्र त्रयेण किम्? ॥१॥" इत्यादि, अत्र बहु वक्तव्यं तत्तु नोच्यते, ग्रन्थगहनताप्रसङ्गात्, अन्यत्र यत्नेनोक्तत्वाच्चेति। आह-प्रत्यक्षविषयत्वादेवात्रानुमानप्रवृत्तिरयुक्ता, नैवं, पुरुषपिण्डमात्रप्रत्यक्षतायामपि मत्पुत्रो न वेति सन्देहाद्युक्त एवानुमानोपन्यास इति कृतं प्रसङ्गेन । 'से किं तं सेसव'मित्यादि, पुरुषार्थोपयोगिनः परिज्ञिज्ञासितात्तुरगादेरर्थादन्यो हेषितादिरर्थः शेष इहोच्यते, स गमकत्वेन यस्यास्ति तच्छेषवदनुमानं, तच्च पञ्चविधं, तद्यथा-कार्येणेत्यादि, तत्र कार्येण कारणानुमानं यथा-हयम्-अश्वं हेषितेन अनुमिनुते इत्यध्याहारः, हेषितस्य तत्कार्यत्वात्, तदाकर्ण्य हयोऽत्रेति या प्रतीतिरुत्पद्यते तदिह कार्येण-कार्यद्वारेणोत्पन्नं शेषवदनुमानमुच्यत इति भावः, क्वचित्तु प्रथमतः शङ्खं शब्देनेत्यादि दृश्यते, तत्रोक्तानुसारतः सर्वोदाहरणेषु भावना कार्या। 'से किं तं कारणेण'मित्यादि, इह कारणेन कार्यमनुमीयते, यथा विशिष्टमेघोन्नतिदर्शनात् कश्चित् वृष्ट्यनुमानं करोति, यदाह—"रोलम्बगवलव्यालतमालमलिनत्विषः। वृष्टिं व्यभिचरन्तीह, नैवंप्रायाः प-

॥ २१३ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

योमुचः ॥ १ ॥" इति, एवं चन्द्रोदयाज्जलधेर्वृद्धिरनुमीयते कुमुदविकाशश्च, मित्रोदयाज्जलरुहप्रबोधो घूकमदमोक्षश्च, तथाविधवर्षणात्सस्यनिष्पत्तिः कृषीबलमनःप्रमोदश्चेत्यादि, तदेवं कारणमेवेहानुमापकं साध्यस्य नाकारणं, तत्र कार्यकारणभाव एव केषाञ्चिद्विप्रतिपत्तिं पश्यँस्तमेव तावन्नियतं दर्शयन्नाह–तन्तवः पटस्य कारणं न तु पटस्तन्तूनां कारणं, पूर्वमनुपलब्धस्य तस्यैव तद्भावे उपलम्भाद्, इतरेषां तु पटाभावेऽप्युपलम्भाद्, अत्राह–ननु यदा कश्चिन्निपुणः पटभावेन संयुक्तानपि तन्तून् क्रमेण वियोजयति तदा पटोऽपि तन्तूनां कारणं भवत्येव, नैवं, सत्त्वेनोपयोगाभावात्, यदेव हि लब्धसत्ताकं सत् स्वस्थितिभावेन कार्यमुपकुरुते तदेवं तस्य कारणत्वेनोपदिश्यते, यथा मृत्पिण्डो घटस्य, ये तु तन्तुवियोगतोऽभावीभवता पटेन तन्तवः समुत्पद्यन्ते तेषां कथं पटः कारणं निर्दिश्यते, न हि ज्वराभावेन भवत आरोगितासुखस्य ज्वरः कारणमिति शक्यते वक्तुं, यद्येवं पटेऽप्युत्पद्यमाने तन्तवोऽभावीभवन्तीति तेऽपि तत्कारणं न स्युरिति चेत, नैवं, तन्तुपरिणामरूप एव हि पटो, यदि च तन्तवः सर्वथाऽभावीभवेयुस्तदा मृद्भावे घटस्यैव पटस्य सर्वथैवोपलब्धिर्न स्यात्, तस्मात् पटकालेऽपि तन्तवः सन्तीति सत्त्वेनोपयोगात्ते पटस्य कारणमुच्यन्ते, पटवियोजनकाले त्वेकैकतन्त्ववस्थायां पटो नोपलभ्यते अतस्तत्र सत्त्वेनोपयोगाभावान्नासौ तेषां कारणम्, एवं वीरणकटादिष्वपि भावना कार्या, तदेवं यद्यस्य कार्यस्य कारणत्वेन निश्चितं तत्तस्य यथासम्भवं गमकत्वेन वक्तव्यमिति। 'से किं तं गुणेण'मित्यादि, निकषः–कषपट्टगता कषितसुवर्णरेखा तेन सुवर्णमनुमीयते, यथा पञ्च-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दशादिवर्णकोपेतमिदं सुवर्णं, तथाविधनिकषोपलम्भात्, पूर्वोपलब्धोभयसम्मतसुवर्णवत्, एवं शतपत्रिकादिपुष्पमत्र, तथाविधगन्धोपलम्भात्, पूर्वोपलब्धवस्तुवत्, एवं लवणमदिरावस्त्रादयोऽनेकभेदसम्भवतोऽनियतस्वरूपा अपि प्रतिनियततथाविधरसास्वादस्पर्शादिगुणोपलब्धेः प्रतिनियतस्वरूपाः साधयितव्याः। 'से किं तं अवयवेण'मित्यादि, अवयवदर्शनेनावयवी अनुमीयते, यथा महिषः, अत्र तदविनाभूतशृङ्गोपलब्धेः, पूर्वोपलब्धोभयसम्मतप्रदेशवत्, अयं च प्रयोगो वृत्तिवरण्डकाद्यन्तरितत्वादप्रत्यक्ष एवावयविनि द्रष्टव्यः, तत्प्रत्यक्षतायामध्यक्षत एव तत्सिद्धेरनुमानवैयर्थ्यप्रसङ्गादिति। एवं शेषोदाहरणान्यपि भावनीयानि, नवरं द्विपदं मनुष्यादीत्यादि, मनुष्योऽयं तदविनाभूतपदद्वयोपलम्भात्, पूर्वदृष्टमनुष्यवद्, एवं चतुष्पदबहुपदेष्वपि 'गोम्हीकण्णश्रृगाली परियरबंधेण भड'मित्यादि गाथा पूर्वं व्याख्यातैव, तदनुसारेण भावार्थोऽप्यूह्य इति। 'से किं तं आसएण'मित्यादि, आश्रयतीत्याश्रयो–धूमबलाकादिः, तत्र धूमादग्न्यनुमानं बलाकादेस्तु जलानुमानं प्रतीतमेव, आकारेङ्गितादिभिश्च पूर्वं व्याख्यातस्वरूपैर्देवदत्ताद्याश्रितैस्तदन्तर्गतं मनोऽनुमानं सुप्रसिद्धमेव, अत्राह–ननु धूमस्याग्निकार्यत्वात् पूर्वोक्तकार्यानुमान एव गतत्वात् किमिहोपन्यासः?, सत्यं, किन्त्वग्न्याश्रयत्वेनापि लोके तस्य रूढत्वादत्राप्युपन्यास कृत इत्यदोषः, तदेतत् शेषवदनुमानम्।

से किं तं दिट्ठसाहम्मवं?, २ दुविहं पण्णत्तं, तंजहा–सामन्नदिट्ठं च विसेसदिट्ठं च।
से किं तं सामण्णदिट्ठं?, २ जहा एगो पुरिसो तहा बहवे पुरिसा जहा बहवे पुरिसा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१४६--१४७] + गाथा: ||--||

दीप अनुक्रम [३००--३०९]

तहा एगो पुरिसो जहा एगो करिसावणो तहा बहवे करिसावणा जहा बहवे करिसावणा तहा एगो करिसावणो, से तं सामण्णदिट्ठं। से किं तं विसेसदिट्ठं?, २ से जहाणामए केई पुरुसे कंचि पुरिसं बहूणं पुरिसाणं मज्झे पुव्वदिट्ठं पच्चभिजाणेज्जा–अयं से पुरिसे, बहूणं करिसावणाणं मज्झे पुव्वदिट्ठं करिसावणं पच्चभिजाणिज्जा, अयं से करिसावणे। तस्स समासओ तिविहं गहणं भवइ, तंजहा–अतीयकालगहणं पडुप्पण्णकालगहणं अणागयकालगहणं। से किं तं अतीयकालगहणं?, २ उत्तणाणि वणाणि निप्पण्णसस्सं वा मेइणिं पुण्णाणि अ कुंडसरणइदीहिआतडागाइं पासित्ता तेणं साहिज्जइ जहा–सुवुट्ठी आसी, से तं अतीयकालगहणं। से किं तं पडुप्पण्णकालगहणं?, २ साहुं गोअरग्गगयं विच्छड्डिअपउरभत्तपाणं पासित्ता तेणं साहिज्जइ जहा सुभिक्खे वट्टई, से तं पडुप्पण्णकालगहणं। से किं तं अणागयकालगहणं?, २–अब्भस्स निम्मलत्तं कसिणा य गिरी सविज्जुआ मेहा। थणियं वा उब्भा-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मो संज्ञा रत्ता पणिट्ठा (द्धा) य ॥ १ ॥ वारुणं वा महिंदं वा अण्णयरं वा पसत्थं उप्पायं पासित्ता तेणं साहिज्जइ जहा–सुवुट्ठी भविस्सइ, से तं अणागयकालगहणं । एएसिं चेव विवज्जासे तिविहं गहणं भवइ, तंजहा–अतीयकालगहणं पडुप्पण्णकालगहणं अणागयकालगहणं। से किं तं अतीयकालगहणं ?, निप्पण्णाइं वणाइं अनिप्फण्णसस्सं वा मेइणीं सुक्काणि अ कुंडसरणईदीहिअतडागाइं पासित्ता तेणं साहिज्जइ जहा–कुवुट्ठी आसी, से तं अतीयकालगहणं। से किं तं पडुप्पण्णकालगहणं ?, २ साहुं गोअरग्गगयं भिक्खं अलभमाणं पासित्ता तेणं साहिज्जइ जहा–दुभिक्खे वट्टइ, से तं पडुपण्णकालगहणं। से किं तं अणागयकालगहणं ?, २ धूमायंति दिसाओ संविअमेइणी अपडिबद्धा । वाया नेरइआ खलु कुवुट्ठीमेवं निवेयंति ॥ १ ॥ अग्गेयं वा वायव्वं वा अण्णयरं वा अप्पसत्थं उप्पायं पासित्ता ते णं साहिज्जइ जहा–कुवुट्ठी भविस्सइ, से तं अणागयकालगहणं, से तं विसेसदिट्ठं, से तं दिट्ठसाहम्मवं, से तं अणुमाणे ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१४६--१४७] + गाथाः ||--||

दीप अनुक्रम [३००--३०९]

दृष्टेन पूर्वोपलब्धेनार्थेन सह साधर्म्ये दृष्टसाधर्म्ये, तद्गमकत्वेन विद्येत यत्र तद् दृष्टसाधर्म्यवत्, पूर्वदृष्टश्चार्थः कश्चित् सामान्यतः कश्चित्तु विशेषतो दृष्टः स्याद्, अतस्तद्भेदादिदं द्विविधं, सामान्यतो दृष्टार्थयोगात्सामान्यदृष्टं, विशेषतो दृष्टार्थयोगाद्विशेषदृष्टं, तत्र सामान्यदृष्टं यथा एकः पुरुषस्तथा बहवः पुरुषा इत्यादि, इदमुक्तं भवति–नालिकेरद्वीपादायातः कश्चित् तत्प्रथमतया सामान्यत एकं कञ्चन पुरुषं दृष्ट्वा अनुमानं करोति यथा अयमेकः परिदृश्यमानः पुरुष एतदाकारविशिष्टस्तथा बहवोऽन्यापरिदृश्यमाना अपि पुरुषा एतदाकारसम्पन्ना एव, पुरुषत्वाविशेषाद्, अन्याकारत्वे पुरुषत्वहानिप्रसङ्गाद्, गवादिवत्, बहुषु तु पुरुषेषु तत्प्रथमतो वीक्षितेष्वेवमनुमिनोति यथाऽमी परिदृश्यमानाः पुरुषा एतदाकारवन्तः तथाऽपरोऽप्येकः कश्चित्पुरुषः एतदाकारवानेव, पुरुषत्वाद्, अपराकारत्वे तद्धानिप्रसङ्गाद्, अश्वादिवदिति, एवं कार्षापणादिष्वपि वाच्यं, विशेषतो दृष्टमाह—'से जहानामए'इत्यादि, अत्र पुरुषाः सामान्येन प्रतीता एव, केवलं यदा कश्चित् कचित् कश्चित्पुरुषविशेषं दृष्ट्वा तदर्शनाहितसंस्कारोऽसञ्जाततत्प्रमोषः समयान्तरे बहुपुरुषसमाजमध्ये तमेव पुरुषविशेषमासीनमुपलभ्यानुमानयति–यः पूर्वं मयोपलब्धः स एवायं पुरुषः, तथैव प्रत्यभिज्ञायमानत्वाद्, उभयाभिमतपुरुषवदिति, एतत्तदा विशेषदृष्टमनुमानमुच्यते, पुरुषविशेषविषयत्वाद्, एवं कार्षापणादिष्वपि वाच्यं । तदेवमनुमानस्य त्रैविध्यमुपदर्श्य साम्प्रतं तस्यैव कालत्रयविषयतां दर्शयन्नाह—'तस्स समासओ तिविहं गहण'मित्यादि, तस्येति–सामान्येनानुवर्तमानमनुमानमात्रं संबध्यते, तस्या-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[४५], चूलिकासूत्र-[२] अनुयोगद्वार मूलं एवं हेमचन्द्रसूरि-रचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१४६--१४७] + गाथाः ||--||

दीप अनुक्रम [३००--३०९]

नुमानस्य त्रिविधं ग्रहणं भवति, तद्यथा–अतीतकालविषयं ग्रहणं–ग्राह्यस्य वस्तुनः परिच्छेदोऽतीतकालग्रहणं, प्रत्युत्पन्नो–वर्तमानः कालस्तद्विषयं ग्रहणं प्रत्युत्पन्नकालग्रहणम्, अनागतो–भविष्यत्कालस्तद्विषयं ग्रहणमनागतकालग्रहणं, कालत्रयवर्तिनोऽपि विषयस्यानुमानात्परिच्छेदो भवतीत्यर्थः, तत्र 'उत्तिणाइं'ति उद्गतानि तृणानि येषु वनेषु तानि तथा, अयमत्र प्रयोगः–सुवृष्टिरिहासीद् उत्तृणवननिष्पन्नसस्यपृथ्वीतलजलपरिपूर्णकुण्डादिजलाशयप्रभृतितत्कार्यदर्शनाद्, अभिमतदेशवदित्यतीतस्य वृष्टिलक्षणविषयस्य परिच्छेदः, साधुं च 'गोचराग्रगतं' भिक्षाप्रविष्टं विशेषेण छर्दितानि–गृहस्थैर्दत्तानि प्रचुरभक्तपानानि यस्य स तथा तं तादृशं दृष्ट्वा कश्चित्साधयति–सुभिक्षमिह वर्तते, साधूनां तद्धेतुकप्रचुरभक्तपानलाभदर्शनात्, पूर्वदृष्टप्रदेशवदिति । 'अब्भस्स निम्मलत्तं' गाहा सुगमा, नवरं स्तनितं–मेघगर्जितं 'वाउब्भामो'त्ति तथाविधो वृष्ट्यव्यभिचारी प्रदक्षिणं दिक्षु भ्रमन् प्रशस्तो वातः 'वारुणं'ति आर्द्रामूलादिनक्षत्रप्रभवं माहेन्द्रो-हिणीज्येष्ठादिनक्षत्रसम्भवं अन्यतरमुत्पातम्–उल्कापातदिग्दाहादिकं प्रशस्तं वृष्ट्यव्यभिचारिणं दृष्ट्वाऽनुमीयते, यथा–सुवृष्टिरत्र भविष्यति, तदव्यभिचारिणामभ्रनिर्मलत्वादीनां समुदितानामन्यतरस्य वा दर्शनात्, यथाऽन्यदेति, विशिष्टा ह्यभ्रनिर्मलत्वादयो वृष्टिं न व्यभिचरन्त्यतः प्रतिपत्त्रैव तत्र निपुणेन भाव्यमिति । 'एएसिं चेव विवज्जासे' इत्यादि, एतेषामेवोत्तृणवनादीनामतीतवृष्ट्यादिसाधकत्वेनोपन्यस्तानां हेतूनां व्यत्यासे–व्यत्यये साध्यस्यापि व्यत्ययः साधयितव्यो, यथा–कुवृष्टिरिहासीन्निस्तृणवनादिदर्शनादित्यादिव्य-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[४५], चूलिकासूत्र-[२] अनुयोगद्वार मूलं एवं हेमचन्द्रसूरि-रचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१४६--१४७] + गाथाः ||--||

दीप अनुक्रम [३००--३०९]

त्ययः सूत्रसिद्धो नवरमनागतकालग्रहणे माहेन्द्रवारुणपरिहारेणाग्नेयवायव्योत्पाता उपन्यस्ताः, तेषां वृष्टिविघातकत्वादितरेषां सुवृष्टिहेतुत्वादिति। 'से तं विसेसदिट्ठं, से तं दिट्ठसाहम्मव'मित्येतन्निगमनद्वयं दृष्टसाधर्म्यलक्षणानुमानगतभेदत्रयस्य समर्थनानन्तरं युज्यते, यदि तु सर्ववाचनास्वत्रैव स्थाने दृश्यते, तदा दृष्टसाधर्म्यवतोऽपि सभेदस्यानुमानविशेषत्वात् कालत्रयविषयता योजनीयैवातस्तामप्यभिधाय ततो निगमनद्वयमिदमकारीति प्रतिपत्तव्यं, तदेतदनुमानमिति। अथोपमानमभिधित्सुराह—

से किं तं ओवम्मे?, २ दुविहे पण्णत्ते, तंजहा–साहम्मोवणीए अ वेहम्मोवणीए अ। से किं तं साहम्मोवणीए?, २ तिविहे पण्णत्ते, तंजहा–किंचिसाहम्मोवणीए पायसाहम्मोवणीए सव्वसाहम्मोवणीए। से किं तं किंचिसाहम्मोवणीए?, २ जहा मंदरो तहा सरिसवो जहा सरिसवो तहा मंदरो जहा समुद्दो तहा गोप्पयं जहा गोप्पयं तहा समुद्दो जहा आइच्चो तहा खज्जोतो जहा खज्जोतो तहा आइच्चो जहा चंदो तहा कुमुदो जहा कुमुदो तहा चंदो, से तं किंचिसाहम्मो०। से किं तं पायसाहम्मोवणीए?, २ जहा गो तहा गवओ जहा गवओ तहा गो, से तं पायसाहम्मो०। से

अनु. ३७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१४६--१४७] + गाथा: ||--||

दीप अनुक्रम [३००--३०९]

किं तं सव्वसाहम्मोवणीए?, २ सव्वसाहम्मे ओवम्मे नत्थि, तहावि तेणेव तस्स ओवम्मं कीरइ जहा–अरिहंतेहिं अरिहंतसरिसं कयं चक्कवट्टिणा चक्कवट्टिसरिसं कयं, बलदेवेण बलदेवसरिसं कयं वासुदेवेण वासुदेवसरिसं कयं साहुणा साहुसरिसं कयं, से तं सव्वसाहम्मे, से तं साहम्मोवणीए। से किं तं वेहम्मोवणीए?, २ तिविहे पण्णत्ते, तंजहा–किंचिवेहम्मे पायवेहम्मे सव्ववेहम्मे। से किं तं किंचिवेहम्मे?, २ जहा सामलेरो न तहा बाहुलेरो जहा बाहुलेरो न तहा सामलेरो, से तं किंचिवेहम्मे। से किं तं पायवेहम्मे?, २ जहा वायसो न तहा पायसो, जहा पायसो न तहा वायसो, से तं पायवेहम्मे। से किं तं सव्ववेहम्मे?, सव्ववेहम्मे ओवम्मे नत्थि, तहावि तेणेव तस्स ओवम्मं कीरइ, जहा णीएणं णीअसरिसं कयं दासेण दाससरिसं कयं काकेण काकसरिसं कयं साणेण साणसरिसं कयं पाणेणं पाणसरिसं कयं, से तं सव्ववेहम्मे। से तं वेहम्मोवणीए। से तं ओवम्मे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उपमीयते–सदृशतया वस्तु गृह्यते अनयेत्युपमा सैवौपम्यं, तच्च द्विविधं–साधर्म्येणोपनीतम्–उपनयो यत्र तत्साधर्म्योपनीतं, वैधर्म्येणोपनीतम्–उपनयो यत्र तद्वैधर्म्योपनीतं, तत्र साधर्म्योपनीतं त्रिविधं–किञ्चित्साधर्म्यादिभेदात्, किञ्चित्साधर्म्यं च मन्दरसर्षपादीनां, तत्र मन्दरसर्षपयोर्द्वयोरपि मूर्तत्वं सादृश्यं, समुद्रगोष्पदयोः सोदकत्वमात्रम्, आदित्यखद्योतयोराकाशगमनोद्योतकत्वरूपं, चन्द्रकुमुदयोः शुक्लत्वमिति । 'से किं तं पायसाहम्मे' इत्यादि, खुरककुदविषाणलाङ्गूलादेर्द्वयोरपि समानत्वात्, नवरं सकम्बलो गौर्वृत्तकण्ठस्तु गवय इति प्रायःसाधर्म्यता। सर्वसाधर्म्यं तु क्षेत्रकालादिभिर्भेदान्न कस्यापि केनचित्सार्द्धं संभवति, सम्भवे त्वेकताप्रसङ्गः, तर्ह्युपमानस्य तृतीयभेदोपन्यासोऽनर्थक एवेत्याशङ्क्याह–तथापि तस्य–विवक्षितस्यार्हदादेस्तेनैव–अर्हदादिना औपम्यं क्रियते, तद्यथा–'अर्हता अर्हत्सदृशं कृतं' तत्किमपि सर्वोत्तमं तीर्थप्रवर्तनादि कार्यमर्हता कृतं यदर्हन्नेव करोति नापरः कश्चिदिति भावः, एवं च स एव तेनोपमीयते, लोकेऽपि हि केनचिदत्यद्भुते कार्ये कृते वक्तारो दृश्यन्ते–तत्किमपीदं भवद्भिः कृतं यद्भवन्त एव कुर्वन्ति नान्यः कश्चिदिति, एवं चक्रवर्तिवासुदेवादिष्वपि वाच्यम् । 'से किं तं वेहम्मोवणीए' इत्यादि, यथेति–यादृशः शबलाया गोरपत्यं शाबलेयो न तादृशो बहुलाया अपत्यं बाहुलेयो, यथा चायं न तथेतरः, अत्र च शेषधर्मैस्तुल्यत्वाद्विन्ननिमित्तजन्मादिमात्रतस्तु वैलक्षण्यात् किञ्चिद्वैधर्म्यं भावनीयम् । 'से किं तं पायवेहम्मे' इत्यादि, अत्र वायसपायसयोः सचेतनत्वाचेतनत्वादिभिर्बहुभिर्धर्मैर्विसंवादात् अभिधानगतवर्णद्वयेन सत्त्वादिमात्रतश्च साम्यात्प्रायोवैधर्म्यता

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१४६--१४७] + गाथाः ||--||

दीप अनुक्रम [३००--३०९]

अनुयो० मलधारीया ॥ २१८ ॥

भावनीया, सर्ववैधर्म्ये तु न कस्यचित्केनापि संभवति, सत्त्वप्रमेयत्वादिभिः सर्वभावानां समानत्वात्, तैरप्यसमानत्वेऽसत्त्वप्रसङ्गात्, तथापि तृतीयभेदोपन्यासवैयर्थ्यमाशङ्क्याह–तथापि तस्य तेनैवौपम्यं क्रियते यथा नीचेन नीचसदृशं कृतं गुरुघातादीत्यादि, आह–नीचेन नीचसदृशं कृतमित्यादि ब्रुवता साधर्म्यमेवोक्तं स्यान्न वैधर्म्यं, सत्यं, किन्तु नीचोऽपि प्रायो नैवंविधं महापापमाचरति किं पुनरनीचः?, ततः सकलजगद्विलक्षणप्रवृत्तत्वविवक्षया वैधर्म्यमिह भावनीयम्, एवं दासाद्युदाहरणेष्वपि वाच्यम्। 'से तं सव्ववेहम्मे'इत्यादि निगमनत्रयम्।

से किं तं आगमे?, २ दुविहे पण्णत्ते, तंजहा–लोइए अ लोउत्तरिए अ। से किं तं लोइए?, २ जण्णं इमं अण्णाणिएहिं मिच्छादिट्ठीएहिं सच्छंदबुद्धिमइविगप्पियं, तंजहा–भारहं रामायणं जाव चत्तारि वेआ संगोवंगा, से तं लोइए आगमे। से किं लोउत्तरिए?, २ जण्णं इमं अरिहंतेहिं भगवंतेहिं उप्पण्णणाणदंसणधरेहिं तीयपच्चुप्पण्णमणागयजाणएहिं तिलुक्कवहिअमहिअपूइएहिं सव्वण्णूहिं सव्वदरसीहिं पणीअं दुवालसंगं गणिपिडगं, तंजहा–आयारो जाव दिट्ठिवाओ। अहवा आगमे तिविहे प-

वृत्तिः उपक्रमे प्रमाणद्वारं ॥ २१८ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अथ 'आगम' शब्दस्य अर्थ एवं भेदस्य कथनं क्रियते

प्रत सूत्रांक [१४६--१४७] + गाथा: ||--||

दीप अनुक्रम [३००--३०९]

पण्णत्ते, तंजहा–सुत्तागमे अत्थागमे तदुभयागमे । अहवा–आगमे तिविहे पण्णत्ते, तंजहा–अत्तागमे अणंतरागमे परंपरागमे, तित्थगराणं अत्थस्स अत्तागमे गणहराणं सुत्तस्स अत्तागमे अत्थस्स अणंतरागमे गणहरसीसाणं सुत्तस्स अणंतरागमे अत्थस्स परंपरागमे, तेण परं सुत्तस्सवि अत्थस्सवि णो अत्तागमे णो अणंतरागमे परंपरागमे, से तं लोगुत्तरिए, से तं आगमे, से तं णाणगुणप्पमाणे ।

गुरुपारम्पर्येणागच्छतीत्यागमः, आ–समन्ताद्गम्यन्ते–ज्ञायन्ते जीवादयः पदार्था अनेनेति वा आगमः, अयं च द्विधा प्रज्ञप्तः, तद्यथा—'लोइए'त्यादि, इदं चेहैव पूर्वं भावश्रुतं विचारयता व्याख्यातं, यावत् से तं लोइए, से किं तं लोगुत्तरिए आगमेत्ति, 'अहवा आगमे तिविहे'इत्यादि, तत्र सूत्रमेव सूत्रागमः, तदभिधेयश्चार्थ एवार्थागमः, सूत्रार्थोभयरूपस्तु तदुभयागमः, अथवा अन्येन प्रकारेणागमस्त्रिविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा–आत्मागम इत्यादि, तत्र गुरूपदेशमन्तरेणात्मन एव आगम आत्मागमो, यथा तीर्थङ्कराणामर्थस्यात्मागमः, स्वयमेव केवलो(लेतो)पलब्धेः, गणधराणां तु सूत्रस्यात्मागमः, स्वयमेव ग्रथितत्वाद्, अर्थस्यानन्तरागमः, अनन्तरमेव तीर्थकरादागतत्वाद्, उक्तं च—"[१]अत्थं भासइ अरहा सुत्तं गंथंति गणहरा निउण"मित्यादि, गणधरशिष्याणां

१ अर्थं भाषते अर्हन् सूत्रं ग्रथ्नन्ति गणधरा निपुणम् ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१४६--१४७] + गाथा: ||--||

दीप अनुक्रम [३००--३०९]

जम्बूस्वामिप्रभृतीनां सूत्रस्यानन्तरागमः–अव्यवधानेन गणधरादेव श्रुतेः, अर्थस्य परम्परागमः–गणधरेणैव व्यवधानात्, तत ऊर्ध्वं प्रभवादीनां सूत्रस्यार्थस्य च नात्मागमो नानन्तरागमः, तल्लक्षणायोगाद्, अपि तु परम्परागम एव, अनेन चागमस्य तीर्थकरादिप्रभवत्वभणनेनैकान्तापौरुषेयत्वं निवारयति, पौरुषतालवादिव्यापारमन्तरेण नभसीव विशिष्टशब्दानुपलब्धेः, तालवादिभिरभिव्यज्यत एव शब्दो न तु क्रियते इति चेत्, ननु यद्येवं तर्हि सर्ववचसामपौरुषेयत्वप्रसङ्गः, तेषां भाषापुद्गलनिष्पन्नत्वाद्, भाषापुद्गलानां च लोके सर्वदैवावस्थानतोऽपूर्वक्रियमाणताऽयोगेन तालवादिभिरभिव्यक्तिमात्रस्यैव निर्वर्तनात्, न च वक्तव्यं–वचनस्य पौद्गलिकत्वमसिद्धं, महाध्वनिपटलपूरितश्रवणबाधिर्यकुड्यस्खलनाद्यन्यथानुपपत्तेः, तस्मान्नैकान्तेनापौरुषेयमागमवचः, तालवादिव्यापाराभिव्यङ्ग्यत्वाद्, देवदत्तादिवाक्यवत्, इत्याद्यत्र बहु वक्तव्यं तत्तु नोच्यते स्थानान्तरनिर्णीतत्वादिति । 'से तं लोगुत्तरिए' इत्यादि निगमनत्रयम् ॥ उक्तं ज्ञानगुणप्रमाणमथ दर्शनगुणप्रमाणमाह—

से किं तं दंसणगुणप्पमाणे ?, २ चउव्विहे पण्णत्ते, तंजहा–चक्खुदंसणगुणप्पमाणे अचक्खुदंसणगुणप्पमाणे ओहिदंसणगुणप्पमाणे केवलदंसणगुणप्पमाणे। चक्खुदंसणं चक्खुदंसणिस्स घडपडकडरहाइएसु दव्वेसु अचक्खुदंसणं अचक्खुदंसणिस्स

॥ २१९ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१४६--१४७] + गाथा: ||--||

दीप अनुक्रम [३००--३०९]

आयभावे ओहिदंसणं ओहिदंसणिस्स सव्वरूविदव्वेसु न पुण सव्वपज्जवेसु केवलदंसणं केवलदंसणिस्स सव्वदव्वेसु अ सव्वपज्जवेसु अ, से तं दंसणगुणप्पमाणे ।

दर्शनावरणकर्मक्षयोपशमादिजं सामान्यमात्रग्रहणं दर्शनमिति, उक्तं च—"जं सामन्नग्गहणं भावाणं नेय कट्टुमागारं । अविसेसिऊण अत्थे दंसणमिइ वुच्चए समए ॥ १ ॥" तदेवात्मनो गुणः स एव प्रमाणं दर्शनगुणप्रमाणम्, इदं च चक्षुर्दर्शनादिभेदाच्चतुर्विधं, तत्र भावचक्षुरिन्द्रियावरणक्षयोपशमाद् द्रव्येन्द्रियानुपघाताच्च चक्षुर्दर्शनिनः–चक्षुर्दर्शनलब्धिमतो जीवस्य घटादिषु द्रव्येषु चक्षुषो दर्शनं चक्षुर्दर्शनं, भवतीति क्रियाध्याहारः, सामान्यविषयत्वेऽपि चास्य यद् घटादिविशेषाभिधानं तत्सामान्यविशेषयोः कथञ्चिद्भेदादेकान्तेन विशेषेभ्यो व्यतिरिक्तस्य सामान्यस्याग्रहणख्यापनार्थम्, उक्तं च—"निर्विशेषं विशेषाणां, ग्रहो दर्शनमुच्यते"इत्यादि, चक्षुर्वर्जशेषेन्द्रियचतुष्टयं मनश्चाचक्षुरुच्यते, तस्य दर्शनमचक्षुर्दर्शनं, तदपि भावाचक्षुरिन्द्रियावरणक्षयोपशमाद् द्रव्येन्द्रियानुपघाताच्च अचक्षुर्दर्शनिनः–अचक्षुर्दर्शनलब्धिमतो जीवस्यात्मभावे भवति, आत्मनि–जीवे भावः–संश्लिष्टतया सम्बन्धो, विषयस्य घटादेरिति गम्यते, तस्मिन् सति इदं प्रादुर्भवतीत्यर्थः, इदमुक्तं भवति–चक्षुरप्राप्यकारि ततो दूरस्थमपि स्वविषयं परिच्छिनत्तीत्यस्यार्थस्य ख्यापनार्थं

१ यत्सामान्यग्रहणं भावानां नैव कृत्वाऽऽकारम् । अविशेषयित्वा अर्थान् दर्शनमित्युच्यते समये ॥ १ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१४६--१४७] + गाथा: ||--||

दीप अनुक्रम [३००--३०९]

घटादिषु चक्षुर्दर्शनं भवतीति पूर्वं विषयस्य भेदेनाभिधानं कृतं, श्रोत्रादीनि तु प्राप्यकारीणि ततो द्रव्येन्द्रियसंश्लेषद्वारेण जीवेन सह सम्बद्धमेव विषयं परिच्छिन्दन्तीत्येतद्दर्शनार्थमात्मभावे भवतीत्येवमिह विषयस्याभेदेन प्रतिपादनमकारीति, उक्तं च—"पुट्ठं सुणेइ सद्दं रूवं पुण पासई अपुट्ठं तु" इत्यादि। अवधेर्दर्शनमवधिदर्शनम्, अवधिदर्शिनः—अवधिदर्शनावरणक्षयोपशमसमुद्भूतावधिदर्शनलब्धिमतो जीवस्य सर्वेष्वपि रूपिद्रव्येषु भवति, न पुनः सर्वपर्यायेषु, यतोऽवधेरुत्कृष्टतोऽप्येकवस्तुगताः सङ्ख्येया असङ्ख्येया वा पर्याया विषयत्वेनोक्ताः, जघन्यतस्तु द्वौ पर्यायौ द्विगुणितौ, रूपरसगन्धस्पर्शलक्षणाश्चत्वारः पर्याया इत्यर्थः, उक्तं च—"दव्वाओ असङ्खेज्जे सङ्खेज्जे आवि पज्जवे लहइ। दो पज्जवे दुगुणिए लहइ य एगाउ दव्वाओ ॥ १॥" अत्राह—ननु पर्याया विशेषा उच्यन्ते, न च दर्शनं विशेषविषयं भवितुमर्हति, ज्ञानस्यैव तद्विषयत्वात्, कथमिहावधिदर्शनविषयत्वेन पर्याया निर्दिष्टाः, साधूक्तं, केवलं पर्यायैरपि घटशरावोदञ्चनादिभिर्मृदादि सामान्यमेव तथा तथा विशिष्यते न पुनस्ते तत एकान्तेन व्यतिरिच्यन्ते, अतो मुख्यतः सामान्यं गुणीभूतास्तु विशेषा अप्यस्य विषयीभवन्तीति ख्यापनार्थोऽत्र तदुपन्यासः, केवलं—सकलदृश्यविषयत्वेन परिपूर्णं दर्शनं केवलदर्शिनः—तदावरणक्षयाविर्भूततल्लब्धिमतो जीवस्य सर्वद्रव्येषु मूर्तामूर्तेषु सर्वपर्यायेषु च भवतीति । मनःपर्यायज्ञानं

१ स्पृष्टं शृणोति शब्दं रूपं पुनः पश्यत्यस्पृष्टमेव. २ द्रव्येषु असङ्ख्येयान् सङ्ख्येयान् वापि पर्यवान् लभते। द्वौ पर्यायौ द्विगुणितौ लभते चैकस्मिन् द्रव्ये ॥१॥

॥ २२० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१४६--१४७] + गाथा: ||--||

दीप अनुक्रम [३००--३०९]

तु तथाविधक्षयोपशमपाटवात् सर्वदा विशेषानेव गृह्णदुत्पद्यते न सामान्यम्, अतस्तद्दर्शनं नोक्तमिति, तदे-तद्दर्शनगुणप्रमाणम् ।

से किं तं चरित्तगुणप्पमाणे?, २ पंचविहे पण्णत्ते, तंजहा–सामाइअचरित्तगुणप्पमाणे छेओवट्ठावणचरित्तगुणप्पमाणे परिहारविसुद्धिअचरित्तगुणप्पमाणे सुहुमसंपरायचरि-त्तगुणप्पमाणे अहक्खायचरित्तगुणप्पमाणे । सामाइअचरित्तगुणप्पमाणे दुविहे पण्णत्ते, तंजहा–इत्तरिए अ आवकहिए अ । छेओवट्ठावणचरित्तगुणप्पमाणे दुविहे पण्णत्ते, तंजहा–साइआरे अ निरइआरे अ । परिहारविसुद्धिअचरित्तगुणप्पमाणे दुविहे प-ण्णत्ते, तंजहा–णिव्विसमाणए अ णिव्विट्ठकाइए अ । सुहुमसंपरायचरित्तगुणप्पमाणे दुविहे पण्णत्ते, तंजहा–पडिवाई अ अपडिवाई अ । अहक्खायचरित्तगुणप्पमाणे दु-विहे पण्णत्ते, तंजहा–छउमत्थिए अ केवलिए य । से तं चरित्तगुणप्पमाणे, से तं जीवगुणप्पमाणे, से तं गुणप्पमाणे (सू० १४७)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१४६--१४७] + गाथा: ॥--॥

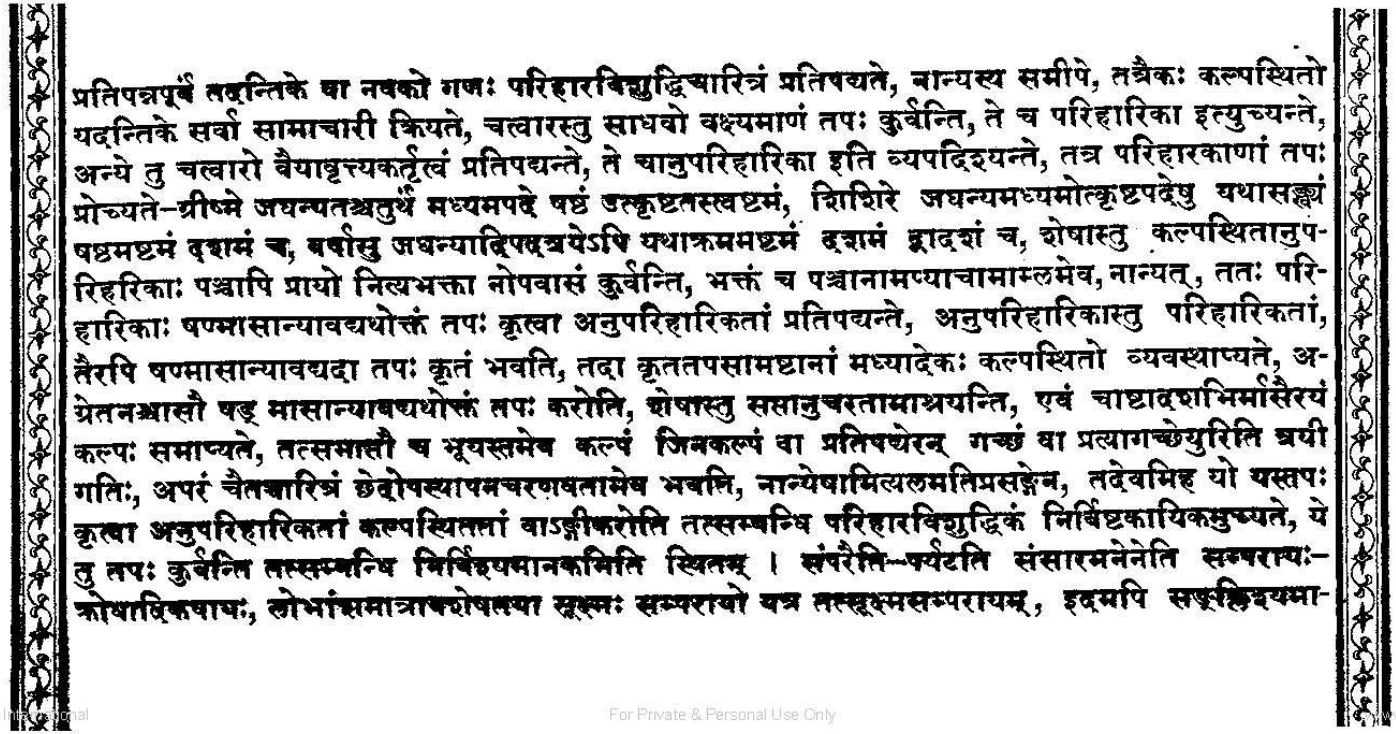
दीप अनुक्रम [३००--३०९]

चरन्त्यनिन्दितमनेनेति चरित्रं, तदेव चारित्रं, चारित्रमेव गुणः २ स एव प्रमाणं २–सावद्ययोगविरतिरूपं, तच्च पञ्चविधं सामायिकादि, पञ्चविधमप्येतदविशेषतः सामायिकमेव, छेदादिविशेषैस्तु विशेष्यमाणं पञ्चधा भिद्यते, तत्राद्यं विशेषाभावात् सामान्यसंज्ञायामेवावतिष्ठते सामायिकमिति, सामायिकं पूर्वोक्तशब्दार्थं, तच्चेत्वरं यावत्कथिकं च, तत्रेत्वरं भाविव्यपदेशान्तरत्वात् स्वल्पकालं, तच्चाद्यचरमतीर्थकरकालयोरेव यावदद्यापि महाव्रतानि आरोप्यन्ते तावच्छिष्यस्य संभवति, आत्मनः कथां यावदास्ते तद् यावत्कथं–यावज्जीवमित्यर्थः, यावत्कथमेव यावत्कथिकम्, एतच्च भरतैरावतेष्वाद्यचरमवर्जमध्यमतीर्थकरसाधूनां महाविदेहतीर्थकरयतीनां च संभवति, पूर्वपर्यायस्य छेदेनोपस्थापनं महाव्रतेषु यत्र तच्छेदोपस्थापनं, भरतैरावतप्रथमपश्चिमतीर्थकरतीर्थ एव, नान्यत्र, तच्च सातिचारं निरतिचारं च, तत्रेत्वरसामायिकस्य शैक्षकस्य यदारोप्यते तीर्थान्तरं वा सङ्क्रामतः साधोर्यथा पार्श्वनाथतीर्थान्महावीरतीर्थं सङ्क्रामतस्तन्निरतिचारं, मूलगुणघातिनस्तु यत् पुनर्व्रतारोपणं तत्सातिचारं, परिहारः–तपोविशेषस्तेन विशुद्धं, अथवा परिहारः–अनेषणीयादेः परित्यागो विशेषेण शुद्धो यत्र तत्परिहारविशुद्धं तदेव परिहारविशुद्धिकं, तदपि द्विविधं–निर्विश्यमानकं निर्विष्टकायिकं च, तत्र निर्विश्यमानम्–आसेव्यमानम्, अथवा तदनुष्ठातारः साधवो निर्विश्यमानकाः, तत्सहयोगात्तदपि निर्विश्यमानकं, निर्विष्ट–आसेवितः प्रस्तुततपोविशेषः कायो येषां ते निर्विष्टकायाः, त एव निर्विष्टकायिकाः साधवः, तदाश्रयत्वात् प्रस्तुतचारित्रमपि निर्विष्टकायिकम्, इदमत्र हृदयम्–तीर्थकरचरणमूले येन तीर्थकरसमीपे अदः

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१४६--१४७] + गाथा: ||--||

दीप अनुक्रम [३००--३०९]



प्रतिपन्नपूर्वं तदन्तिके वा नवको गणः परिहारविशुद्धिचारित्रं प्रतिपद्यते, नान्यस्य समीपे, तत्रैकः कल्पस्थितो यदन्तिके सर्वो सामाचारी क्रियते, चत्वारस्तु साधवो वक्ष्यमाणं तपः कुर्वन्ति, ते च परिहारिका इत्युच्यन्ते, अन्ये तु चत्वारो वैयावृत्त्यकर्तृत्वं प्रतिपद्यन्ते, ते चानुपरिहारिका इति व्यपदिश्यन्ते, तत्र परिहारकाणां तपः प्रोच्यते–ग्रीष्मे जघन्यतश्चतुर्थं मध्यमपदे षष्ठं उत्कृष्टतस्त्वष्टमं, शिशिरे जघन्यमध्यमोत्कृष्टपदेषु यथासङ्ख्यं षष्ठमष्टमं दशमं च, वर्षासु जघन्यादिपदत्रयेऽपि यथाक्रममष्टमं दशमं द्वादशं च, शेषास्तु कल्पस्थितानुपरिहरिकाः पञ्चापि प्रायो नित्यभक्ता नोपवासं कुर्वन्ति, भक्तं च पञ्चानामप्याचामाम्लमेव, नान्यत्, ततः परिहारिकाः षण्मासान्यावद्यथोक्तं तपः कृत्वा अनुपरिहारिकतां प्रतिपद्यन्ते, अनुपरिहारिकास्तु परिहारिकतां, तैरपि षण्मासान्यावद्यदा तपः कृतं भवति, तदा कृततपसामष्टानां मध्यादेकः कल्पस्थितो व्यवस्थाप्यते, अग्रेतनश्चासौ षड् मासान्यावद्यथोक्तं तपः करोति, शेषास्तु ससानुचरतामाश्रयन्ति, एवं चाष्टादशभिर्मासैरयं कल्पः समाप्यते, तत्समाप्तौ च भूयस्तमेव कल्पं जिनकल्पं वा प्रतिपद्येरन् गच्छं वा प्रत्यागच्छेयुरिति त्रयी गतिः, अपरं चैतच्चारित्रं छेदोपस्थापनचरणवतामेव भवति, नान्येषामित्यलमतिप्रसङ्गेन, तदेवमिह यो यस्तपः कृत्वा अनुपरिहारिकतां कल्पस्थिततां वाऽङ्गीकरोति तत्सम्बन्धि परिहारविशुद्धिकं निर्विष्टकायिकमुच्यते, ये तु तपः कुर्वन्ति तत्सम्बन्धि निर्विश्यमानकमिति स्थितम् । संपरैति–पर्यटति संसारमनेनेति सम्परायः–क्रोधादिकषायः, लोभांशमात्रावशेषतया सूक्ष्मः सम्परायो यत्र तत्सूक्ष्मसम्परायम्, इदमपि सपरिहृयमा-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[४५], चूलिकासूत्र-[२] अनुयोगद्वार मूलं एवं हेमचन्द्रसूरि-रचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१४६--१४७] + गाथा: ||--||

दीप अनुक्रम [३००--३०९]

नविशुद्ध्यमानकभेदाद्विधैव, तत्र श्रेणिमारोहतो विशुध्यमानकमुच्यते, ततः प्रच्यवमानस्य सङ्क्लिश्यमानकमिति। 'अहक्खायं'ति अथशब्दोऽत्र याथातथ्ये आङभिविधौ आ-समन्ताद्याथातथ्येन ख्यातमाख्यातं कषायोदयाभावतो निरतिचारत्वात् पारमार्थिकरूपेण ख्यातमाख्यातमित्यर्थः, एतदपि प्रतिपात्यप्रतिपातिभेदात् द्वेधा, तत्रोपशान्तमोहस्य प्रतिपाति क्षीणमोहस्य त्वप्रतिपाति, अथवा केवलिनश्छद्मस्थस्य चोपशान्तमोहक्षीणमोहस्य तद्भवत्यतः स्वामिभेदाद् द्वैविध्यमिति। तदेतच्चारित्रगुणप्रमाणं, तदेतज्जीवगुणप्रमाणं, तदेतद्गुणप्रमाणमिति ॥ १४७ ॥ तदेवं जीवाजीवभेदभिन्नं गुणप्रमाणं प्रतिपाद्य क्रमप्राप्तं नयप्रमाणं प्रतिपादयन्नाह—

से किं तं नयप्पमाणे?, २ तिविहे पण्णत्ते, तंजहा–पत्थगदिट्ठंतेणं वसहिदिट्ठंतेणं पएसदिट्ठंतेणं। से किं तं पत्थगदिट्ठंतेणं?, २ से जहानामए केई पुरिसे परसुं गहाय अडवीसमहुत्तो गच्छेज्जा तं पासित्ता केई वएज्जा–कहिं भवं गच्छंसि?, अविसुद्धो नेगमो भणइ–पत्थगस्स गच्छामि, तं च केई छिंदमाणं पासित्ता वएज्जा–किं भवं छिंदसि?, विसुद्धो नेगमो भणइ–पत्थयं छिंदामि, तं च केई तच्छमाणं पासित्ता वएज्जा–किं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१४८]

दीप अनुक्रम [३१०]

भवं तच्छसि?, विसुद्धतराओ णेगमो भणइ–पत्थयं तच्छामि, तं च केइ उक्कीरमाणं पासित्ता वएज्जा–किं भवं उक्कीरसि?, विसुद्धतराओ णेगमो भणइ–पत्थयं उक्कीरामि, तं च केइ (वि) लिहमाणं पासित्ता वएज्जा–किं भवं (वि) लिहसि?, विसुद्धतराओ णेगमो भणइ–पत्थयं (वि) लिहामि, एवं विसुद्धतरस्स णेगमस्स नामाउडिओ पत्थओ, एवमेव ववहारस्सवि, संगहस्स मिउमेज्जसमारूढो पत्थओ, उज्जुसुयस्स पत्थओऽवि पत्थओ मेज्जंपि पत्थओ, तिण्हं सद्दनयाणं पत्थयस्स अत्थाहिगारजाणओ जस्स वा वसेणं पत्थओ निप्फज्जइ, से तं पत्थयदिट्ठंतेणं।

अनन्तधर्मणो वस्तुन एकांशेन नयनं नयः, स एव प्रमाणं नयप्रमाणं, त्रिविधं प्रज्ञप्तमिति, यद्यपि नैगम-सङ्ग्रहादिभेदतो बहवो नयास्तथापि प्रस्थकादिदृष्टान्तत्रयेण सर्वेषामिह निरूपयितुमिष्टत्वात्त्रैविध्यमुच्यते, तथा चाह–तद्यथा–प्रस्थकदृष्टान्तेनेत्यादि, प्रस्थकादिदृष्टान्तत्रयेण हेतुभूतेन त्रिविधं नयप्रमाणं भवतीत्यर्थः, तत्र प्रस्थकदृष्टान्तं दर्शयति–तद्यथानामकः कश्चित्पुरुषः परशुं–कुठारं गृहीत्वा अटवीमुखो गच्छेदित्यादि, इदमुक्तं भवति–प्रस्थको–मागधदेशप्रसिद्धो धान्यमानविशेषस्तद्धेतुभूतकाष्ठकर्तनाय कुठारव्यग्रहस्तं तक्षादिपुरु-

अनु. ३८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१४८]

दीप अनुक्रम [३१०]

षमटवीं गच्छन्तं दृष्ट्वा कश्चिदन्यो वदेत्–क भवान् गच्छति?, तत्राविशुद्धनैगमो भणति–अविशुद्धनैगमनयमतानुसारी सन्नसौ प्रत्युत्तरयतीत्यर्थः, किमित्याह–प्रस्थकस्य गच्छामि, इदमुक्तं भवति–नैके गमा–वस्तुपरिच्छेदा यस्य अपि तु बहवः स निरुक्तवशात् ककारलोपतो नैगम उच्यते, अतो यद्यप्यत्र प्रस्थककारणभूतकाष्ठनिमित्तमेव गमनं, न तु प्रस्थकनिमित्तं, तथाऽप्यनेकप्रकारवस्त्वभ्युपगमपरत्वात्कारणे कार्योपचारात् तथाव्यवहारदर्शनादेवमप्यभिधत्तेऽसौ–प्रस्थकस्य गच्छामीति, तं च कश्चित् छिन्दन्तं, वृक्षमिति गम्यते, पश्येद्, दृष्ट्वा च वदेत्–किं भवाँश्छिनत्ति?, ततः प्राक्तनात् किञ्चिद्विशुद्धनैगमनयमतानुसारी सन्नसौ भणति–प्रस्थकं छिनद्मि, अत्रापि कारणे कार्योपचारात्तथाव्यवहृतिदर्शनादेव काष्ठेऽपि छिद्यमाने प्रस्थकं छिनद्मीत्युत्तरं, केवलं काष्ठस्य प्रस्थकं प्रति कारणताभावस्यात्र किञ्चिदासन्नत्वाद्विशुद्धत्वं, प्राक् पुनरतिव्यवहितत्वात् मलीमसत्वम्, एवं पूर्वपूर्वापेक्षया यथोत्तरस्य विशुद्धता भावनीया, नवरं तक्षणुवन्तं–तनूकुर्वन्तम् उत्किरन्तं–वेधनकेन मध्याद्विकिरन्तं विलिखन्तं–लेखन्या मृष्टं कुर्वाणम्, एवमनेन प्रकारेण तावन्नेयं यावद्विशुद्धतरनैगमस्य 'नामाऽडिऊ'त्ति आकुट्टितनामा प्रस्थकोऽयमित्येवं नामाङ्कितो निष्पन्नः प्रस्थक इति। एवमेव व्यवहारस्यापीति, लोकव्यवहारप्राधान्येनायं व्यवहारनयः, लोके च पूर्वोक्तावस्थासु सर्वत्र प्रस्थकव्यवहारो दृश्यतेऽतो व्यवहारनयोऽप्येवमेव प्रतिपद्यते इति भावः। 'संगहस्से'त्यादि, सामान्यरूपतया सर्वं वस्तु संगृह्णाति–क्रोडीकरोतीति सङ्ग्रहस्तस्य मतेन चितादिविशेषणैर्विशिष्ट एव प्रस्थो भवति, नान्यः, तत्र चितो–धान्येन व्याप्तः, स

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१४८]

दीप अनुक्रम [३१०]

च देशतोऽपि भवत्यत आह—'मितः' पूरितः, अनेनैव प्रकारेण मेयं समारूढं यत्र स आहितादेराकृतिगणत्वान्मेयसमारूढः, अयमत्र भावार्थः–प्राक्तननयद्वयस्याविशुद्धत्वात् प्रस्थककारणमपि प्रस्थक उक्तः, अनिष्पन्नः प्रस्थकोऽपि स्वकार्याकरणकालेऽपि प्रस्थक इष्टः, अस्य तु ततो विशुद्धत्वाद्धान्यमानलक्षणं स्वार्थं कुर्वन्नेव प्रस्थकः, तस्य तदर्थत्वात्, तदभावे च प्रस्थकव्यपदेशेऽतिप्रसङ्गादिति यथोक्त एव प्रस्थकः, सोऽपि प्रस्थकसामान्याव्यतिरेकात् व्यतिरेके चाप्रस्थकत्वप्रसङ्गात् सर्व एक एव प्रस्थक इति प्रस्तुतनयो मन्यते, सामान्यवादित्वादिति। 'उज्जुसुयस्से'त्यादि, ऋजुसूत्रः–पूर्वोक्तशब्दार्थः तस्य निष्पन्नस्वरूपोऽर्थक्रियाहेतुः प्रस्थकोऽपि प्रस्थकः, तत्परिच्छिन्नं धान्यादिकमपि वस्तु प्रस्थकः, उभयत्र प्रस्थकोऽयमिति व्यवहारदर्शनात्, तथाप्रतीतेः, अपरं चासौ पूर्वस्माद्विशुद्धत्वाद्वर्तमाने एव मानमेये प्रस्थकत्वेन प्रतिपद्यते, नातीतानागतकाले, तयोर्विनष्टानुत्पन्नत्वेनासत्त्वादिति। 'तिण्हं सद्दनयाण'मित्यादि, शब्दप्रधाना नयाः शब्दनयाः–शब्दसमभिरूढैवंभूताः, शब्देऽन्यथास्थितेऽर्थमन्यथा नेच्छन्त्यमी, किन्तु?, यथैव शब्दो व्यवस्थितस्तथैव शब्देनार्थं गमयन्तीत्यतः शब्दनया उच्यन्ते, आद्यास्तु यथाकथञ्चिच्छब्दाः प्रवर्तन्तामर्था एव प्रधानमित्यभ्युपगमपरत्वादर्थनयाः प्रकीर्त्यन्ते, अत एषां त्रयाणां शब्दनयानां 'प्रस्थकार्थाधिकारज्ञः' प्रस्थकस्वरूपपरिज्ञानोपयुक्तः प्रस्थकः, भावप्रधाना ह्येते नया इत्यतो भावप्रस्थकमेवेच्छन्ति, भावश्च प्रस्थकोपयोगोऽतः स प्रस्थकः, तदुपयोगवानपि च ततोऽव्यतिरेकात् प्रस्थकः, यो हि यत्रोपयुक्तः सोऽमीषां मते स एव भवति, उपयोगलक्षणो जीवः, उपयो-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१४८]

दीप अनुक्रम [३१०]

गश्चेत् प्रस्थकादिविषयतया परिणतः किमन्यज्जीवस्य रूपान्तरमस्ति? यत्र व्यपदेशान्तरं स्यादिति भावः, 'जस्स वा वसेणे'त्यादि, यस्य वा प्रस्थककर्तृगतस्योपयोगस्य वशेन प्रस्थको निष्पद्यते तत्रोपयोगे वर्तमानः कर्ता प्रस्थको, न हि प्रस्थकेऽनुपयुक्तः प्रस्थकं निर्वर्तयितुं कर्ता समर्थः, ततस्तदुपयोगानन्यत्वात् स एव प्रस्थकः, इमां च तेऽत्र युक्तिमभिदधति–सर्वं वस्तु स्वात्मन्येव वर्तते, न स्वात्मव्यतिरिक्ते आधारे, वक्ष्यमाणयुक्त्या एतन्मतेनान्यस्यान्यत्र वृत्त्ययोगात्, प्रस्थकश्च निश्चयात्मकं मानमुच्यते, निश्चयश्च ज्ञानं, तत्कथं जडात्मनि काष्ठभाजने वृत्तिमनुभविष्यति?, चेतनाचेतनयोः सामानाधिकरण्याभावात्, तस्मात् प्रस्थकोपयुक्त एव प्रस्थकः। 'से त'मित्यादि निगमनम् ॥

से किं तं वसहिदिट्ठंतेणं?, २ से जहानामए केई पुरिसे कंचि पुरिसं वएज्जा–कहिं भवं वससि?, तं अविसुद्धो णेगमो भणइ–लोगे वसामि, लोगे तिविहे पण्णत्ते, तंजहा–उड्ढलोए अहोलोए तिरिअलोए, तेसु सव्वेसु भवं वससि?, विसुद्धो णेगमो भणइ–तिरिअलोए वसामि, तिरिअलोए जंबूदीवाइआ सयंभूरमणपज्जवसाणा असंखिज्जा दीवसमुद्दा पण्णत्ता, तेसु सव्वेसु भवं वससि?, विसुद्धतराओ णेगमो भणइ–जंबूदीवे वसामि, जंबूदीवे दस खेत्ता पण्णत्ता, तंजहा–भरहे एरवए हेमवए

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१४८]

दीप अनुक्रम [३१०]

एरण्णवए हरिवस्से रम्मगवस्से देवकुरू उत्तरकुरू पुव्वविदेहे अवरविदेहे, तेसु सव्वेसु भवं वससि?, विसुद्धतराओ णेगमो भणइ–भरहे वासे वसामि, भरहे वासे दुविहे पण्णत्ते, तंजहा–दाहिणड्ढभरहे उत्तरड्ढभरहे अ, तेसु सव्वेसु (दोसु) भवं वससि?, विसुद्धतराओ णेगमो भणइ–दाहिणड्ढभरहे वसामि, दाहिणड्ढभरहे अणेगाइं गामागरणगरखेडकब्बडमडंबदोणमुहपट्टणासमसंवाहसण्णिवेसाइं, तेसु सव्वेसु भवं वससि?, विसुद्धतराओ णेगमो भणइ–पाडलिपुत्ते वसामि, पाडलिपुत्ते अणेगाइं गिहाइं, तेसु सव्वेसु भवं वससि?, विसु० णेग० भणइ–देवदत्तस्स घरे वसामि, देवदत्तस्स घरे अणेगा कोट्ठगा, तेसु सव्वेसु भवं वससि?, विसु० णे० भणइ–गब्भघरे वसामि, एवं विसुद्धस्स णेगमस्स वसमाणो, एवमेव ववहारस्सवि, संगहस्स संथारसमारूढो वसइ, उज्जुसुअस्स जेसु आगासपएसेसु ओगाढो तेसु वसइ, तिण्हं सद्दनयाणं आयभावे वसइ। से तं वसहिदिट्ठंतेणं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१४८]

दीप अनुक्रम [३१०]

वसतिः–निवासस्तेन दृष्टान्तेन नयविचार उच्यते, तद्यथानामकः कश्चित्पुरुषः पाटलिपुत्रादौ वसन्तं कश्चित्पुरुषं वदेत्–क्व भवान् वसति?, तत्राविशुद्धनैगमो भणति–अविशुद्धनैगमनयमतानुसारी सन्नसौ प्रत्युत्तरं प्रयच्छति–लोके वसामि, तन्निवासक्षेत्रस्यापि चतुर्दशरज्ज्वात्मकलोकादनर्थान्तरत्वाद्, इत्थमपि च व्यवहारदर्शनात्, विशुद्धनैगमस्त्वतिव्याप्तिपरत्वादिदमसङ्गतं मन्यते, ततस्तिर्यग्लोके वसामीति संक्षिप्योत्तरं ददाति, विशुद्धतरस्त्विदमप्यतिव्याप्तिनिष्ठं मन्यते ततो जम्बूद्वीपे वसामीति संक्षिप्ततरमाह, एवं भारतवर्षदक्षिणार्द्धभरतपाटलिपुत्रदेवदत्तगृहगर्भगृहेष्वपि भावनीयम्, एवं 'विसुद्धस्स णेगमस्स वसमाणो वसइ' एवमुत्तरोत्तरभेदापेक्षया विशुद्धतरनैगमस्य वसन्नेव वसति, नान्यथा, इदमुक्तं भवति–यत्र गृहादौ सर्वदा निवासित्वेनासौ विवक्षितः तत्र तिष्ठन्नेव एष तत्र वसतीति व्यपदिश्यते, यदि पुनः कारणवशतोऽन्यत्र रथ्यादौ वर्तते तदा तत्र विवक्षिते गृहादौ वसतीति न प्रोच्यते, अतिप्रसङ्गादिति भावः। 'एवमेवे'त्यादि, लोकव्यवहारनिष्ठो हि व्यवहारनयो, लोके च नैगमोक्तप्रकाराः सर्वेऽपि दृश्यन्ते इति भावः, अथ चरमनैगमोक्तप्रकारो लोके नेष्यते, कारणतो ग्रामादौ वर्तमानेऽपि देवदत्ते पाटलिपुत्रे एष वसतीति व्यपदेशदर्शनादिति चेत्, नैतदेवं, प्रोषिते देवदत्ते स इह वसति न वेति केनचित्पृष्टे प्रोषितोऽसौ नेह वसतीत्यस्यापि लोकव्यवहारस्य दर्शनादिति। 'संगहस्से'त्यादि, प्राक्तनात् विशुद्धत्वात् सङ्ग्रहनयस्य गृहादौ तिष्ठन्नपि संस्तारकारूढ एव शयनक्रियावान् वसतीत्युच्यते, इदमुक्तं भवति–संस्तारकेऽवस्थानादन्यत्र निवासार्थ एव न घ-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१४८]

दीप अनुक्रम [३१०]

टते, चलनादिक्रियावत्त्वात्, मार्गादिप्रवृत्तवत्, संस्तारके च वसतो गृहादौ वसतीति व्यपदेशायोग एव, अतिप्रसङ्गात्, तस्मात् कासौ वसतीति निवासजिज्ञासायां संस्तारके–शय्यामात्रस्वरूपे वसतीत्येतदेवास्य मतेनोच्यते, नान्यदिति भावः, स च नानादेशादिगतोऽप्येक एव, सङ्ग्रहस्य सामान्यवादित्वादिति । ऋजुसूत्रस्य तु पूर्वस्माद्विशुद्धत्वाद् येष्वाकाशप्रदेशेष्ववगाढस्तेष्वेव वसतीत्युच्यते, न संस्तारके, सर्वस्यापि वस्तुवृत्त्या नभस्येवावगाहात्, येषु प्रदेशेषु संस्तारको वर्तते–संस्तारकेणैवाक्रान्ता वर्त्तन्ते, ततो येष्वेव प्रदेशेषु स्वयमवगाढस्तेष्वेव वसतीत्युच्यते, स च वर्तमानकाल एवास्ति, अतीतानागतयोर्विनष्टानुत्पन्नत्वेनैतन्मतेऽसत्त्वादिति। त्रयाणां शब्दनयानामात्मभावे–स्वस्वरूपे सर्वोऽपि वसति, अन्यस्यान्यत्र वृत्त्ययोगात्, तथाहि–अन्योऽन्यत्र वर्तमानः किं सर्वात्मना वर्तते देशात्मना वा?, यद्याद्यः पक्षस्तर्हि तस्याधारव्यतिरेकिणा स्वकीयरूपेणाप्रतिभासनप्रसङ्गो, यथा हि संस्तारकाद्याधारस्य स्वरूपं सर्वात्मना तत्र वृत्तं न तद्व्यतिरेकेणोपलभ्यते एवं देवदत्तादिरपि सर्वात्मना तत्राधीयमानस्तद्व्यतिरेकेण नोपलभ्येत, अथ द्वितीयो विकल्पः स्वीक्रियते तर्हि तत्रापि देशे अनेन वर्त्तितव्यं, ततः पुनरपि विकल्पद्वयं–किं सर्वात्मना वर्तते देशात्मना वेति?, सर्वात्मपक्षे देशिनो देशरूपतापत्तिः, देशात्मपक्षे तु पुनस्तत्रापि देशे देशिना वर्तितव्यं, ततः पुनरपि तदेव विकल्पद्वयं, तदेव दूषणमित्यनवस्था, तस्मात्सर्वोऽपि स्वस्वभाव एव निवसति, तत्परित्यागेनान्यत्र निवासे तस्य निःस्वभावताप्रसङ्गादित्यलं बहुभाषितया। 'से त'मित्यादि निगमनम्।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१४८]

दीप अनुक्रम [३१०]

से किं तं पएसदिट्ठंतेणं?, २ णेगमो भणइ–छण्हं पएसो, तंजहा–धम्मपएसो अधम्मपएसो आगासपएसो जीवपएसो खंधपएसो देसपएसो, एवं वयंतं णेगमं संगहो भणइ–जं भणसि–छण्हं पएसो तं न भवइ, कम्हा?, जम्हा जो देसपएसो सो तस्सेव दव्वस्स, जहा को दिट्ठंतो?, दासेण मे खरो कीओ दासोऽवि मे खरोऽवि मे, तं मा भणाहि–छण्हं पएसो, भणाहि पंचण्हं पएसो, तंजहा–धम्मपएसो अधम्मपएसो आगासपएसो जीवपएसो खंधपएसो, एवं वयंतं संगहं ववहारो भणइ–जं भणसि–पंचण्हं पएसो, तं न भवइ, कम्हा?, जइ जहा पंचण्हं गोट्ठिआणं पुरिसाणं केइ दव्वजाए सामण्णे भवइ, तंजहा–हिरण्णे वा सुवण्णे वा धणे वा धण्णे वा, ते जुत्तं वत्तुं तहा पंचण्हं पएसो, तं मा भणिहि–पंचण्हं पएसो, भणाहि–पंचविहो पएसो, तंजहा–धम्मपएसो अधम्मपएसो आगासपएसो जीवपएसो खंधपएसो, एवं वयंतं ववहारं उज्जुसुओ भणइ–जं भणसि–पंचविहो पएसो, तं न भवइ, कम्हा?, जइ ते

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१४८]

दीप अनुक्रम [३१०]

पंचविहो पएसो एवं ते एक्केक्को पएसो पंचविहो एवं ते पणवीसतिविहो पएसो भवइ, तं मा भणाहि–पंचविहो पएसो, भणाहि–भइयव्वो पएसो–सिअ धम्मपएसो सिअ अधम्मपएसो सिअ आगासपएसो सिअ जीवपएसो सिअ खंधपएसो, एवं वयंतं उज्जुसुयं संपइ सद्दनओ भणइ–जं भणसि भइयव्वो पएसो, तं न भवइ, कम्हा?, जइ भइअव्वो पएसो एवं ते धम्मपएसोऽवि सिअ धम्मपएसो सिअ अधम्मपएसो सिअ आगासपएसो सिअ जीवपएसो सिअ खंधपएसो, अधम्मपएसोऽवि सिअ धम्मपएसो जाव खंधपएसो, जीवपएसोऽवि सिअ धम्मपएसो जाव सिअ खंधपएसो, खंधपएसोऽवि सिअ धम्मपएसो जाव सिअ खंधपएसो, एवं ते अणवत्था भविस्सइ, तं मा भणाहि–भइयव्वो पएसो, भणाहि–धम्मे पएसे से पएसे धम्मे, अहम्मे पएसे से पएसे अहम्मे, आगासे पएसे से पएसे आगासे, जीवे पएसे से पएसे नोजीवे, खंधे पएसे से पएसे नोखंधे, एवं वयंतं सद्दनयं समभिरूढो भणइ-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१४८]

दीप अनुक्रम [३१०]

जं भणसि–धम्मे पएसे से पएसे धम्मे जाव जीवे पएसे से पएसे नोजीवे खंधे पएसे से पएसे नोखंधे, तं न भवइ, कम्हा?, इत्थं खलु दो समासा भवंति, तंजहा–तप्पुरिसे अ कम्मधारए अ, तं ण णजइ कयरेणं समासेणं भणसि?, किं तप्पुरिसेणं किं कम्मधारएणं?, जइ तप्पुरिसेणं भणसि तो मा एवं भणाहि, अह कम्मधारएणं भणसि तो विसेसओ भणाहि, धम्मे अ से पएसे अ से पएसे धम्मे अहम्मे अ से पएसे अ से पएसे अहम्मे आगासे अ से पएसे अ से पएसे आगासे जीवे अ से पएसे अ से पएसे नोजीवे खंधे अ से पएसे अ से पएसे नोखंधे, एवं वयंतं समभिरूढं संपइ एवंभूओ भणइ–जं जं भणसि तं तं सव्वं कसिणं पडिपुण्णं निरवसेसं एगगहणगहियं देसेऽवि मे अवत्थू पएसेऽवि मे अवत्थू । से तं पएसदिट्ठंतेणं । से तं नयप्पमाणे (सू० १४८)

प्रकृष्टो देशः प्रदेशो–निर्विभागो भाग इत्यर्थः, स एव दृष्टान्तस्तेन नयमतानि चिन्त्यन्ते–तत्र नैगमो भ-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१४८]

दीप अनुक्रम [३१०]

णति–षण्णां प्रदेशः, तद्यथा—'धम्मपएसे' इत्यादि, धर्मशब्देन धर्मास्तिकायो गृह्यते, तस्य प्रदेशो धर्मप्रदेशः, एवमधर्माकाशजीवास्तिकायेष्वपि योज्यं, स्कन्धः–पुद्गलद्रव्यनिचयस्तस्य प्रदेशः स्कन्धप्रदेशः, देशः–एषामेव पञ्चानां धर्मास्तिकायादिद्रव्याणां प्रदेशद्वयादिनिर्वृत्तोऽवयवस्तस्य प्रदेशो देशप्रदेशः, अयं च प्रदेशसामान्याव्यभिचारात् षण्णां प्रदेश इत्युक्तं, विशेषविवक्षायां तु षट् प्रदेशाः। एवं वदन्तं नैगमं ततो निपुणतरः सङ्ग्रहो भणति–यद्भणसि षण्णां प्रदेश इति, तन्न भवति–तन्न युज्यते, कस्मात्?, यस्माद् यो देशप्रदेश इति षष्ठे स्थाने भवता प्रतिपादितं, तदसङ्गतमेव, यतो धर्मास्तिकायादिद्रव्यस्य सम्बन्धी यो देशस्तस्य यः प्रदेशः स वस्तुवृत्त्या तस्यैव द्रव्यस्य यत्सम्बन्धी देशो विवक्ष्यते, द्रव्याव्यतिरिक्तस्य देशस्य यः प्रदेशः स द्रव्यस्यैव भवति, यथा कोऽत्र दृष्टान्त इत्याह—'दासेणे'त्यादि, लोकेऽप्येवं व्यवहृतिर्दृश्यते, यथा कश्चिदाह–मदीयदासेन खरः क्रीतः, तत्र दासोऽपि मदीयः खरोऽपि मदीयः, दासस्य मदीयत्वात् तत्क्रीतः खरोऽपि मदीय इत्यर्थः, एवमिहापि देशस्य द्रव्यसम्बन्धित्वात्तत्प्रदेशोऽपि द्रव्यसम्बन्ध्येवेति भावः, तस्मान्मा भण –षण्णां प्रदेशः, अपि त्वेवं भण–पञ्चानां प्रदेश इति, त्वदुक्तषष्ठप्रदेशस्यैवाघटनादित्यर्थः, तदेव दर्शयति–तद्यथा–धर्मप्रदेश इत्यादि, एतानि च पञ्च द्रव्याणि तत्प्रदेशाश्चेत्येवमप्यविशुद्धसङ्ग्रह एव मन्यते, अवान्तरद्रव्ये सामान्याद्यभ्युपगमात्, विशुद्धस्तु द्रव्यबाहुल्यं प्रदेशकल्पनां च नेच्छत्येव, सर्वस्यैव वस्तुसामान्यक्रोडीकृतत्वेनैकत्वादित्यलं प्रसङ्गेन। प्रकृतमुच्यते–एवं वदन्तं सङ्ग्रहं ततोऽपि निपुणो व्यवहारो भणति–यद्भणसि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१४८]

दीप अनुक्रम [३१०]

पञ्चानां प्रदेश इति, तन्न भवति–न युज्यते, कस्माद्?, यदि यथा पञ्चानां गोष्ठिकानां किञ्चिद् द्रव्यं सामान्यम्-एकं भवति, तद्यथा–हिरण्यं वेत्यादि, एवं यदि प्रदेशोऽपि स्यात्ततो युज्यते वक्तुं–पञ्चानां प्रदेश इति, इदमुक्तं भवति–यथा केषाञ्चित्पञ्चानां पुरुषाणां साधारणं किञ्चिद्धिरण्यादि भवति, एवं पञ्चानामपि धर्मास्तिकायादिद्रव्याणां यद्येकः कश्चित्साधारणः प्रदेशः स्यात्तदेयं वाचोयुक्तिर्घटेत, न चैतदस्ति, प्रतिद्रव्यं प्रदेशभेदात्, तस्मान्मा भण पञ्चानां प्रदेशः, अपि तु भण–पञ्चविधः–पञ्चप्रकारः प्रदेशः, द्रव्यलक्षणस्याश्रयस्य पञ्चविधत्वादिति भावः, तदेवाह—'धर्मप्रदेश' इत्यादि । एवं वदन्तं व्यवहारमृजुसूत्रो भणति–यद्भणसि पञ्चविधः प्रदेशः, तन्न भवति, कस्माद्?, यस्माद्यदि ते पञ्चविधः प्रदेश एवमेकैको धर्मास्तिकायादिप्रदेशः पञ्चविधः प्राप्तः, शब्दादत्र वस्तुव्यवस्था, शब्दाच्चैवमेव प्रतीतिर्भवति, एवं च सति पञ्चविंशतिविधः प्रदेशः प्राप्नोति, तस्मान्मा भण–पञ्चविधः प्रदेशः, किन्त्वेवं भण–भाज्यः प्रदेशः, स्याद्धर्मस्येत्यादि, इदमुक्तं भवति–भाज्यो–विकल्पनीयो विभजनीयः प्रदेशः, कियद्भिर्विभागैः?–स्याद्धर्मप्रदेश इत्यादि पञ्चभिः, ततश्च पञ्चभेद एव प्रदेशः सिद्ध्यति, स च यथास्वमात्मीयात्मीय एवास्ति न परकीयः, तस्यार्थक्रियाऽसाधकत्वात् प्रस्तुतनयमतेनासत्त्वादिति । एवं भणन्तमृजुसूत्रं साम्प्रतं शब्दनयो भणति—यद्भणसि–भाज्यः प्रदेशः, तन्न भवति, कुतो?, यतो यदि भाज्यः प्रदेशः, एवं ते धर्मास्तिकायप्रदेशोऽपि कदाचिदधर्मास्तिकायादिप्रदेशः स्याद्, अधर्मास्तिकायप्रदेशोऽपि कदाचिद्धर्मास्तिकायादिप्रदेशः स्याद्, इत्थमपि भजनाया अ-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१४८]

दीप अनुक्रम [३१०]

निवारितत्वाद्, यथा एकोऽपि देवदत्तः कदाचिद्राज्ञो भृत्यः कदाचिदमात्यादेरिति, एवमाकाशास्तिकायादिप्रदेशेऽपि वाच्यं, तदेवं नैयत्याभावात्तवाप्यनवस्था प्रसज्येतेति, तन्मैवं भण–भाज्यः प्रदेशः, अपि तु इत्थं भण—'धम्मे पएसे [से पएसे धम्मे]'इत्यादि, इदमुक्तं भवति–धर्मः प्रदेश इति–धर्मात्मकः प्रदेश इत्यर्थः, अत्राह–नन्वयं प्रदेशः सकलधर्मास्तिकायाद्व्यतिरिक्तः सन् धर्मात्मक इत्युच्यते आहोस्वित्तदेकदेशाव्यतिरिक्तः सन् यथा सकलजीवास्तिकायैकदेशैकजीवद्रव्याव्यतिरिक्तः सँस्तत्प्रदेशो जीवात्मक इति व्यपदिश्यत इत्याह—'से पएसे धम्मे'त्ति स प्रदेशो धर्मः–सकलधर्मास्तिकायाद्व्यतिरिक्त इत्यर्थः, जीवास्तिकाये हि परस्परं भिन्नान्येवानन्तानि जीवद्रव्याणि भवन्ति, अतो य एकजीवद्रव्यस्य प्रदेशः स निःशेषजीवास्तिकायैकदेशवृत्तिरेव सन् जीवात्मक इत्युच्यते, अत्र तु धर्मास्तिकाय एकमेव द्रव्यं ततः सकलधर्मास्तिकायाव्यतिरिक्त एव सँस्तत्प्रदेशो धर्मात्मक उच्यत इति भावः । अधर्माकाशास्तिकाययोरप्येकैकद्रव्यत्वादेवमेव भावनीयं । जीवास्तिकाये तु 'जीवे पएसे से पएसे नोजीवे'त्ति, जीवः प्रदेश इति–जीवास्तिकायात्मकः प्रदेश इत्यर्थः, स च प्रदेशो नोजीवः, नोशब्दस्येह देशवचनत्वात् सकलजीवास्तिकायैकदेशवृत्तिरित्यर्थः, योऽप्येकजीवद्रव्यात्मकः प्रदेशः स कथमनन्तजीवद्रव्यात्मके समस्तजीवास्तिकाये वर्तेत इति भावः, एवं स्कन्धात्मकः प्रदेशो नोस्कन्धः, स्कन्धद्रव्याणामनन्तत्वादेकदेशवर्तिरित्यर्थः । एवं वदन्तं शब्दनयं नानार्थसमभिरोहणात् समभिरूढः स प्राह–यद्भणसि–धर्मः प्रदेशः स प्रदेशो धर्म इत्यादि, तन्न भवति–न युज्यते, कस्मा-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१४८]

दीप अनुक्रम [३१०]

दित्याह–इह खलु द्वौ समासौ भवतः, तद्यथा–तत्पुरुषः कर्मधारयश्च, इदमुक्तं भवति—'धम्मे पएसे से पएसे धम्मे' इत्युक्ते समासद्वयारम्भकवाक्यद्वयमत्र संभाव्यते, तथाहि–यदि धर्मशब्दात् सप्तमीयं तदा सप्तमीतत्पुरुषस्यारम्भकमिदं वाक्यं, यथा वने हस्तीत्यादि, अथ प्रथमा तदा कर्मधारयस्य, यथा नीलमुत्पलमित्यादि, ननु यदि वाक्यद्वयमेवात्र संभाव्यते तर्हि कथं द्वौ समासौ भवत इत्युक्तम्?, उच्यते, समासारम्भकवाक्ययोः समासोपचाराद्, अथवा अलुक्समासविवक्षया समासावप्येतौ भवतो, यथा कण्ठेकाल इत्यादीत्यदोषः, यदि नाम द्वौ समासावत्र भवतस्ततः किमित्याह–तन्न ज्ञायते कतरेण समासेन भणसि?, किं तत्पुरुषेण कर्मधारयेण वा?, यदि तत्पुरुषेण भणसि, तन्मैवं भण, दोषसम्भवादिति शेषः, स चायं दोषो–धर्मे प्रदेश इति भेदापत्तिः, यथा कुण्डे बदराणीति, न च प्रदेशदेशिनौ भेदेनोपलभ्येते, अथ अभेदेऽपि सप्तमी दृश्यते यथा घटे रूपमित्यादि, यद्येवमुभयत्र दर्शनात् संशयलक्षणो दोषः स्यात्, अथ कर्मधारयेण भणसि, ततो विशेषेण भण 'धम्मे अ से पएसे य से'त्ति, धर्मश्च स प्रदेशश्च स इति समानाधिकरणः कर्मधारयः, एवं च सप्तम्याशङ्काभावतो न तत्पुरुषसम्भव इति भावः। आह–नन्वयं प्रदेशः समस्तादपि धर्मास्तिकायाद्व्यतिरिक्तः सन् समानाधिकरणतया निर्दिश्यते? उत तदेकदेशवृत्तिः सन्? यथा जीवास्तिकायैकदेशवृत्तिर्जीवप्रदेश इत्याशङ्क्याह—'से पएसे धम्मे'त्ति स च प्रदेशः सकलधर्मास्तिकायाद्व्यतिरिक्तो न पुनस्तदेकदेशवृत्तिरित्यर्थः, शेषभावना पूर्ववत्, 'से पएसे नोजीवे से पएसे नोखंधे' इत्यत्रापि पूर्ववदेवार्थकथ-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१४८]

दीप अनुक्रम [३१०]

नम् । एवं वदन्तं समभिरूढं साम्प्रतमेवंभूतो भणति–यद्यद्धर्मास्तिकायादिकं वस्तु भणसि तत्तत्सर्वं समस्तं कृत्स्नं देशप्रदेशकल्पनारहितं प्रतिपूर्णमात्मस्वरूपेणाविकलं निरवशेषं तदेवैकत्वान्निरवयवमेकग्रहणगृहीतमेकाभिधानाभिधेयं न नानाभिधानाभिधेयं, तानि ह्येकस्मिन्नर्थेऽसौ नेच्छति, अभिधानभेदे वस्तुभेदाभ्युपगमात्, तदेवंभूतं तद्धर्मास्तिकायादिकं वस्तु भण, न तु प्रदेशादिरूपतया, यतो देशप्रदेशौ ममावस्तुभूतौ, अखण्डस्यैव वस्तुनः सत्त्वेनोपयोगात्, तथाहि–प्रदेशप्रदेशिनोर्भेदो वा स्यादभेदो वा ?, यदि प्रथमः पक्षस्तर्हि भेदेनोपलब्धिप्रसङ्गो, न च तथोपलब्धिरस्ति, अथाभेदस्तर्हि धर्मप्रदेशशब्दयोः पर्यायतैव प्राप्ता, एकार्थविषयत्वात्, न च पर्यायशब्दयोर्युगपदुच्चारणं युज्यते, एकेनैव तदर्थप्रतिपादने द्वितीयस्य वैयर्थ्यात्, तस्मादेकाभिधानाभिधेयं परिपूर्णमेकमेव वस्त्विति । तदेवमेते निजनिजार्थसत्यताप्रतिपादनपरा विप्रतिपद्यन्ते नयाः, एते च परस्परं निरपेक्षा दुर्नयाः, सौगतादिसमयवत्, परस्परसापेक्षास्तु सुनयाः, तैश्च परस्परसापेक्षैः समुदितैरेव सम्पूर्णं जिनमतं भवति, नैकैकावस्थायाम्, उक्तं च स्तुतिकारेण—"उदधाविव सर्वसिन्धवः, समुदीर्णास्त्वयि नाथ ! दृष्टयः । न च तासु भवान् प्रदृश्यते, प्रविभक्तासु सरित्स्विवोदधिः ॥ १ ॥" । एते च नया ज्ञानरूपास्ततो जीवगुणत्वेन यद्यपि गुणप्रमाणेऽन्तर्भवन्ति तथापि प्रत्यक्षादिप्रमाणेभ्यो नयरूपतामात्रेण पृथक् प्रसिद्धत्वाद्बहुविचारविषयत्वाच्च जिनागमे प्रतिस्थानमुपयोगित्वाच्च जीवगुणप्रमाणात्पृथगुक्ताः । तदेतत्प्रदेशदृष्टान्तेनेति निगमनम् । प्रस्थकादिदृष्टान्तत्रयेण च नयप्रमाणं प्रतिपाद्योपसंहरति–तदेतन्नयप्रमाणमिति । अनेन च

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१५०] + गाथा: ॥--॥

दीप अनुक्रम [३११--३१७]

दृष्टान्तत्रयेण दिग्मात्रदर्शनमेव कृतं, यावता यत्किमपि जीवादि वस्त्वस्ति तत्र सर्वत्र नयविचारः प्रवर्तते इत्यलं बहुजल्पितेनेति ॥ १४८ ॥ इतः क्रमप्राप्तं सङ्ख्याप्रमाणं विवरीषुराह—

से किं तं संखप्पमाणे ?, २ अट्ठविहे पण्णत्ते, तंजहा–नामसंखा ठवणसंखा दव्वसंखा ओवम्मसंखा परिमाणसंखा जाणणासंखा गणणासंखा भावसंखा । से किं तं नामसंखा ?, २ जस्स णं जीवस्स वा जाव से तं नामसंखा । से किं तं ठवणसंखा ?, २ जण्णं कट्ठकम्मे वा पोत्थकम्मे वा जाव से तं ठवणसंखा । नामठवणाणं को पइविसेसो ?, नाम [पाएणं] आवकहियं ठवणा इत्तरिया वा होजा आवकहिया वा होजा । से किं तं दव्वसंखा ?, २ दुविहा पण्णत्ता, तंजहा–आगमओ य नोआगमओ य, जाव से किं तं जाणयसरीरभविअसरीरवइरित्ता दव्वसंखा ?, २ तिविहा पण्णत्ता, तंजहा– एगभविए बद्धाउए अभिमुहणामगोत्ते अ । एगभविए णं भंते! एगभविएत्ति कालओ केवच्चिरं होइ ?, जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं पुव्वकोडी, बद्धाउए णं भंते!

॥ २३० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[४५], चूलिकासूत्र-[२] अनुयोगद्वार मूलं एवं हेमचन्द्रसूरि-रचिता वृत्ति:

अत्र मुद्रणदोषात् सूत्रक्रमांक '१४९' स्थाने सूत्रक्रमांक '१५०' इति मुद्रितं

अथ 'संख्या' विषयक प्ररुपणा क्रियते

प्रत सूत्रांक [१५०] + गाथा: ॥--॥

दीप अनुक्रम [३११--३१७]

बद्धाउएत्ति कालओ केवच्चिरं होइ?, जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं पुव्वकोडीतिभागं, अभिमुहनामगोए णं भंते! अभिमुहनामगोएत्ति कालओ केवच्चिरं होइ?, जहन्नेणं एक्कं समयं उक्कोसेणं अंतोमुहुत्तं। इयाणीं को णओ कं संखं इच्छइ–तत्थ णेगमसंगहववहारा तिविहं संखं इच्छंति, तंजहा–एगभविअं बद्धाउअं अभिमुहनामगोत्तं च, उज्जुसुओ दुविहं संखं इच्छइ, तंजहा–बद्धाउअं च अभिमुहनामगोत्तं च, तिण्णि सद्दनया अभिमुहणामगोत्तं संखं इच्छंति, से तं जाणयसरीरभविअसरीरवइरित्ता दव्वसंखा। से तं नोआगमओ दव्वसंखा। से तं दव्वसंखा।

सङ्ख्यानं सङ्ख्या संख्यायतेऽनयेति वा सङ्ख्या, सैव प्रमाणं सङ्ख्याप्रमाणम्, इह च सङ्ख्याशब्देन सङ्ख्याशङ्खयोर्द्वयोरपि ग्रहणं द्रष्टव्यं, प्राकृतमधिकृत्य समानशब्दाभिधेयत्वात्, गोशब्देन पशुभूम्यादिवत्, उक्तं च —"गोशब्दः पशुभूम्यप्सु, वाग्दिगर्थप्रयोगवान्। मन्दप्रयोगे दृष्टस्त्रीवज्रस्वर्गाभिधायकः ॥ १ ॥" एवमिहापि संखा इतिप्राकृतोक्तौ सङ्ख्या शङ्खाश्च प्रतीयन्ते, ततो द्वयस्यापि ग्रहणम्। एवं च नामस्थापनाद्रव्यादिविचारेऽपि प्रक्रान्ते सङ्ख्या शङ्खा वा यत्र घटन्ते तत्तत्र प्रस्तावज्ञेन स्वयमेव योज्यमिति। 'से किं तं नामसंखे'त्यादि, सर्वं पूर्वा-

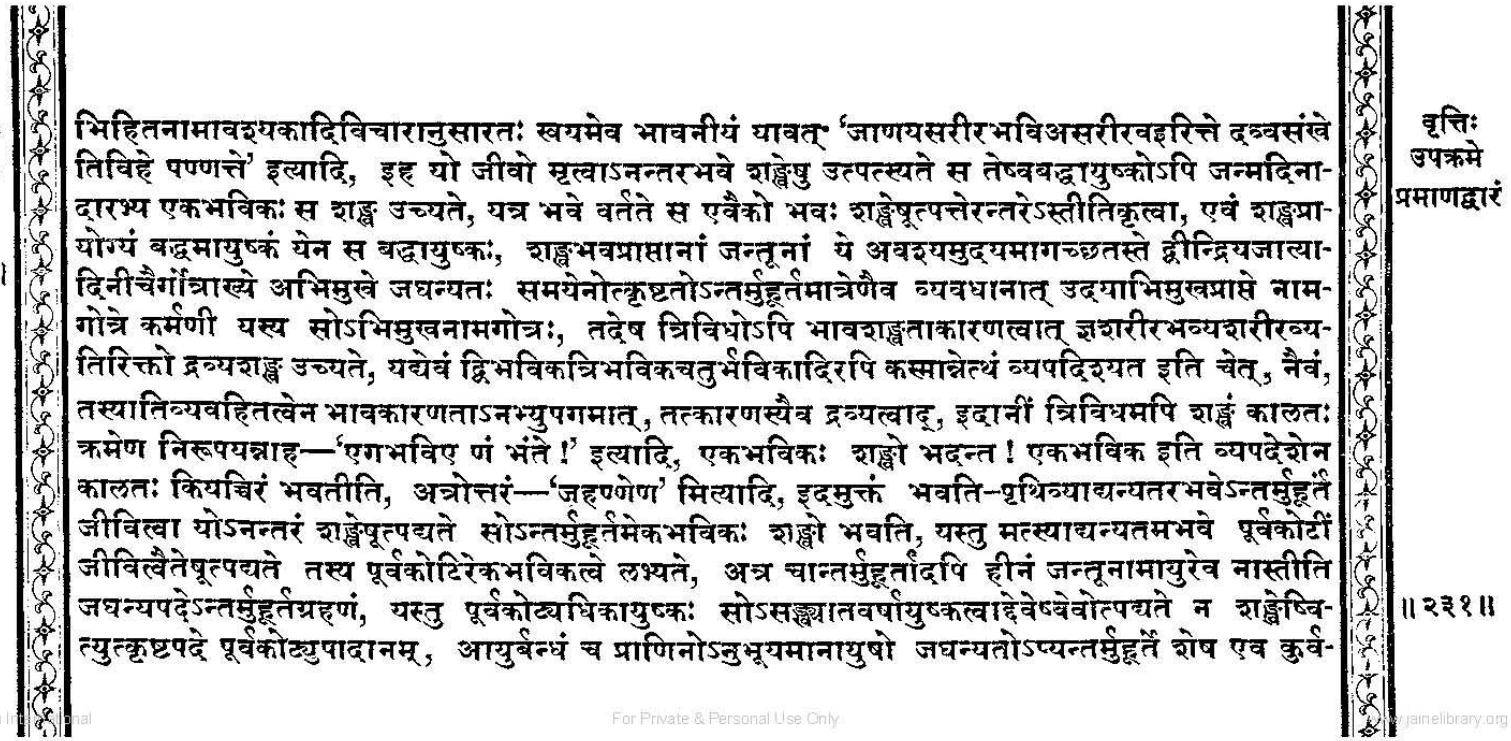
Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[४५], चूलिकासूत्र-[२] अनुयोगद्वार मूलं एवं हेमचन्द्रसूरि-रचिता वृत्तिः

अत्र मुद्रणदोषात् सूत्रक्रमांक '१४९' स्थाने सूत्रक्रमांक '१५०' इति मुद्रितं

प्रत सूत्रांक [१५०] + गाथा: ॥--॥

दीप अनुक्रम [३११--३१७]



अनुयो० मलधारीया ॥ २३१ ॥

भिहितनामावश्यकादिविचारानुसारतः स्वयमेव भावनीयं यावत् 'जाणयसरीरभविअसरीरवइरित्ते दव्वसंखे तिविहे पण्णत्ते' इत्यादि, इह यो जीवो मृत्वाऽनन्तरभवे शङ्खेषु उत्पत्स्यते स तेष्वबद्धायुष्कोऽपि जन्मदिनादारभ्य एकभविकः स शङ्ख उच्यते, यत्र भवे वर्तते स एवैको भवः शङ्खेषूत्पत्तेरन्तरेऽस्तीतिकृत्वा, एवं शङ्खप्रायोग्यं बद्धमायुष्कं येन स बद्धायुष्कः, शङ्खभवप्राप्तानां जन्तूनां ये अवश्यमुदयमागच्छतस्ते द्वीन्द्रियजात्यादिनीचैर्गोत्राख्ये अभिमुखे जघन्यतः समयेनोत्कृष्टतोऽन्तर्मुहूर्तमात्रेणैव व्यवधानात् उदयाभिमुखप्राप्ते नामगोत्रे कर्मणी यस्य सोऽभिमुखनामगोत्रः, तदेष त्रिविधोऽपि भावशङ्खताकारणत्वात् ज्ञशरीरभव्यशरीरव्यतिरिक्तो द्रव्यशङ्ख उच्यते, यद्येवं द्विभविकत्रिभविकचतुर्भविकादिरपि कस्मान्नेत्थं व्यपदिश्यत इति चेत्, नैवं, तस्यातिव्यवहितत्वेन भावकारणताऽनभ्युपगमात्, तत्कारणस्यैव द्रव्यत्वाद्, इदानीं त्रिविधमपि शङ्खं कालतः क्रमेण निरूपयन्नाह—'एगभविए णं भंते!' इत्यादि, एकभविकः शङ्खो भदन्त! एकभविक इति व्यपदेशेन कालतः कियच्चिरं भवतीति, अत्रोत्तरं—'जहण्णेण' मित्यादि, इदमुक्तं भवति–पृथिव्याद्यन्यतरभवेऽन्तर्मुहूर्तं जीवित्वा योऽनन्तरं शङ्खेषूत्पद्यते सोऽन्तर्मुहूर्तमेकभविकः शङ्खो भवति, यस्तु मत्स्याद्यन्यतमभवे पूर्वकोटीं जीवित्वैतेषूत्पद्यते तस्य पूर्वकोटिरेकभविकत्वे लभ्यते, अत्र चान्तर्मुहूर्तादपि हीनं जन्तूनामायुरेव नास्तीति जघन्यपदेऽन्तर्मुहूर्तग्रहणं, यस्तु पूर्वकोट्यधिकायुष्कः सोऽसङ्ख्यातवर्षायुष्कत्वादेवेष्वेवोत्पद्यते न शङ्खेष्वित्युत्कृष्टपदे पूर्वकोट्युपादानम्, आयुर्बन्धं च प्राणिनोऽनुभूयमानायुषो जघन्यतोऽप्यन्तर्मुहूर्तं शेष एव कुर्व-

वृत्तिः उपक्रमे प्रमाणद्वारं ॥ २३१ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[४५], चूलिकासूत्र-[२] अनुयोगद्वार मूलं एवं हेमचन्द्रसूरि-रचिता वृत्तिः

अत्र मुद्रणदोषात् सूत्रक्रमांक '१४९' स्थाने सूत्रक्रमांक '१५०' इति मुद्रितं

प्रत सूत्रांक [१५०] + गाथा: ॥--॥

दीप अनुक्रम [३११--३१७]

न्त्युत्कृष्टतस्तु पूर्वकोटित्रिभाग एव न परत इति बद्धायुष्कस्य जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्तमुत्कृष्टतः पूर्वकोटीत्रिभाग उक्तः, आभिमुख्यं त्वासन्नतायां सत्यामुपपद्यते अतोऽभिमुखनामगोत्रस्य जघन्यतः समय उत्कृष्टतस्त्वन्तर्मुहूर्तं काल उक्तः, यथोक्तकालात् परतस्त्रयोऽपि भावशङ्खतां प्रतिपद्यन्त इति भावः । इदानीं नैगमादिनयानां मध्ये को नयो यथोक्तत्रिविधशङ्खस्य मध्ये कं शङ्खमिच्छतीति विचार्यते–तत्र नैगमसङ्ग्रहव्यवहाराः स्थूलदृष्टित्वात्त्रिविधमपि शङ्खमिच्छन्ति, दृश्यते हि स्थूलदृशां कारणे कार्योपचारं कृत्वा इत्थं व्यपदेशप्रवृत्तिः, यथा राज्यार्हकुमारे राजशब्दस्य घृतप्रक्षेपयोग्ये घटे घृतघटशब्दस्येत्यादि, ऋजुसूत्र एभ्यो विशुद्धत्वादाद्यस्यातिव्यवहितत्वेनातिप्रसङ्गभयाद्द्विविधमेवेच्छति, शब्दादयस्तु विशुद्धतरत्वाद् द्वितीयमप्यतिव्यवहितं मन्यन्ते, अतोऽतिप्रसङ्गनिवृत्त्यर्थमेकं चरममेवेच्छन्ति । 'से त' मित्यादि निगमनम् ॥

से किं तं ओवम्मसंखा ?, २ चउव्विहा पण्णत्ता, तंजहा–अत्थि संतयं संतएणं उवमिज्जइ, अत्थि संतयं असंतएणं उवमिज्जइ, अत्थि असंतयं संतएणं उवमिज्जइ, अत्थि असंतयं असंतएणं उवमिज्जइ, तत्थ संतयं संतएणं उवमिज्जइ, जहा संता अरिहंता संतएहिं पुरवरेहिं संतएहिं कवाडेहिं संतएहिं वच्छेहिं उवमिज्जइ, तंजहा–पुर-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मुद्रणदोषात् सूत्रक्रमांक '१४९' स्थाने सूत्रक्रमांक '१५०' इति मुद्रितं

प्रत सूत्रांक [१५०] + गाथा: ॥--॥

दीप अनुक्रम [३११--३१७]

वरकवाडवच्छा फलिहभुआ दुंदुहित्थणिअघोसा। सिरिवच्छंकिअवच्छा सव्वेऽवि जिणा चउव्वीसं ॥ १ ॥ संतयं असंतएणं उवमिज्जइ, जहा संताइं नेरइअतिरिक्खजोणिअमणुस्सदेवाणं आउआइं असंतएहिं पलिओवमसागरोवमेहिं उवमिज्जंति, असंतयं संतएणं उ० तं०–परिजूरिअपेरंतं चलंतबिंटं पडंतनिच्छीरं । पत्तं व वसणपत्तं कालप्पत्तं भणइ गाहं ॥ १ ॥ जह तुब्भे तह अम्हे तुम्हेऽवि अ होहिहा जहा अम्हे । अप्पाहेइ पडंतं पंडुअपत्तं किसलयाणं ॥ २ ॥ णवि अत्थि णवि अ होही उल्लावो किसलपंडुपत्ताणं । उवमा खलु एस कया भविअजणविबोहणट्ठाए ॥ ३ ॥ असंतयं असंतएहिं उवमिज्जइ, जहा खरविसाणं तहा ससविसाणं । से तं ओवम्मसंखा ।

सङ्ख्यानं सङ्ख्या–परिच्छेदो वस्तुनिर्णय इत्यर्थः, औपम्येन उपमाप्रधाना वा सङ्ख्या औपम्यसङ्ख्या, इयं चोपमानोपमेययोः सत्त्वासत्त्वाभ्यां चतुर्द्धा, तद्यथा—'संतयं संतएणं'मित्यादि, तत्र प्रथमभङ्गे तीर्थकरादेरुपमेयस्य कपाटादिना उपमानेन स्वरूपं संख्यायते–निश्चीयते इत्यौपम्यसङ्ख्यात्वं भावनीयं, यस्य तीर्थकराः स्वरूपतो निश्चिता भवन्ति तस्य पुरवरकपाटोपमवक्षसो–नगरपरिघोपमबाहवस्ते भवन्तीत्याद्युपमया तत्स्वरूप-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मुद्रणदोषात् सूत्रक्रमांक '१४९' स्थाने सूत्रक्रमांक '१५०' इति मुद्रितं

प्रत सूत्रांक [१५०] + गाथा: ॥--॥

दीप अनुक्रम [३११--३१७]

निश्चयस्येहोत्पाद्यमानत्वादिति भावः । द्वितीयभङ्गे पल्योपमसागरोपमाणां योजनप्रमाणपल्यवालाग्रादिकल्पनामात्रेण प्ररूपितत्वादसत्त्वमवसेयम्, उपमानता चैषामेतन्महानारकाद्यायुर्महत्त्वसाधनादिति, तृतीयभङ्गे 'परिजूरियपेरंत'मित्यादि गाथा, तत्र वसन्तसमये परिजीर्णपर्यन्तं स्वपरिपाकत एव प्रचलद्वृन्तं वृक्षात्पतद्-भ्रश्यत्पत्रं गाथां भणतीति सम्बन्धः, परिणतत्वादेव निःक्षीरं वृक्षवियोगादित्यलक्षणव्यसनं प्राप्तं कालप्राप्तं-विनाशकालप्राप्तमिति । तामेव गाथामाह—'जह तुब्भे'इत्यादि, वृक्षात्पतता केनचिज्जीर्णपत्रेण किशलयानाश्रित्योक्तं, किं तद्?, उच्यते–शृणुत भो उद्गच्छत्कोमलपत्रविशेषरूपाणि किशलयान्यवहितानि भूत्वा, वृक्षात्पतत् मल्लक्षणं पाण्डुपत्रं युष्माकं 'अप्पाहेइ' इति कथयति, किं तदित्याह—'जह तुब्भे तह अम्हे'त्ति, यथा पुष्पदभिनवस्निग्धकान्तीनि कमनीयकामिनीकरतलस्पर्शलक्ष्मीकानि सकलजनमनोनेत्रानन्ददायीनि साम्प्रतं भवन्ति दृश्यन्ते तथा वयमपि पूर्वमासमेति क्रियाध्याहारः, यथा च परिजीर्णपर्यन्तादिस्वरूपाणि साम्प्रतं वयं वर्तेमहि यूयमपि निश्चितं कालेन तथा भविष्यथ इति न काचित् स्वसमृद्धौ गर्ववुद्धिः परासमृद्धौ तु हेलामतिर्विधेया, अनित्यत्वात्सकलसमृद्धिसम्बन्धानामिति भावः । नन्वलौकिकमिदं यत्पत्राणि परस्परं जल्पन्ति, सत्यमित्याह—'नवि अत्थि' गाहा सुगमा, नवरं वृक्षपत्रसमृद्ध्यसमृद्धिश्रवणतोऽनित्यतावगमेन भव्यानां सांसारिकसमृद्धिषु निर्वेदो यथा स्यादित्यसद्भूतोऽपि पत्राणामिहालाप उक्त इति भावः, तदेवं 'जह तुब्भे तह अम्हे' इत्यत्र किशलयपत्रावस्थया पाण्डुपत्रावस्था उपमीयते, एवं चोपमानभूतकिशलयपत्रावस्था तत्कालभावि-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मुद्रणदोषात् सूत्रक्रमांक '१४९' स्थाने सूत्रक्रमांक '१५०' इति मुद्रितं

प्रत सूत्रांक [१५०] + गाथा: ॥--॥

दीप अनुक्रम [३११--३१७]

त्वात्सती पाण्डुपत्राणां तूपमेयभूता साऽवस्था भूतपूर्वत्वादसती 'तुब्भेविय होहिहा' इत्यादौ तु पाण्डुपत्रावस्थया किशलयपत्रावस्था उपमीयते, तत्राप्युपमानभूता पाण्डुपत्रावस्था तत्कालयोगित्वात्सती किशलयदलानां तूपमेयभूता सा भविष्यत्कालयोगित्वादसती, अतोऽसत्सता उपमीयत इति तृतीयभङ्गविषयता संगच्छते, सुधिया तु यदि घटते तदाऽन्यथाऽपि सा वाच्येति। चतुर्थभङ्गे 'असंतयं असंतएणे'त्यादि, यथा खरविषाणमभावरूपं प्रतीतं तथा शशविषाणमप्यभावरूपं निश्चेतव्यं, यथा वा शशविषाणमभावरूपं निश्चितमित्थमितरदपि ज्ञातव्यमिति भावः, एवं चोपमानोपमेययोरसत्त्वं स्फुटमेवेति ॥

से किं तं परिमाणसंखा?, २ दुविहा पण्णत्ता, तं०–कालिअसुयपरिमाणसंखा दिट्ठिवायसुअपरिमाणसंखा य। से किं तं कालिअसुअपरिमाणसंखा?, २ अणेगविहा पण्णत्ता, तंजहा–पज्जवसंखा अक्खरसंखा संघायसंखा पयसंखा पायसंखा गाहासंखा सिलोगसंखा वेढसंखा निज्जुत्तिसंखा अणुओगदारसंखा उद्देसगसंखा अज्झयणसंखा सुअखंधसंखा अंगसंखा, से तं कालिअसुअपरिमाणसंखा। से किं तं दिट्ठिवायसुअपरिमाणसंखा?, २ अणेगविहा पण्णत्ता, तंजहा–पज्जवसंखा जाव अणुओगदारसंखा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मुद्रणदोषात् सूत्रक्रमांक '१४९' स्थाने सूत्रक्रमांक '१५०' इति मुद्रितं

प्रत सूत्रांक [१५०] + गाथा: ॥--॥

दीप अनुक्रम [३११--३१७]

पाहुडसंखा पाहुडिआसंखा पाहुडपाहुडिआसंखा वत्थुसंखा, से तं दिट्ठिवायसुअपरिमाणसंखा । से तं परिमाणसंखा । से किं तं जाणणासंखा ?, २ जो जं जाणइ तंजहा –सद्दं सद्दिओ गणियं गणिओ निमित्तं नेमित्तिओ कालं कालणाणी वेज्जयं वेज्जो, से तं जाणणासंखा ।

संख्यायते अनयेति सङ्ख्या, परिमाणं पर्यवादि तद्रूपा सङ्ख्या परिमाणसङ्ख्या, सा च कालिकश्रुतदृष्टिवादविषयत्वेन द्विविधा, तत्र कालिकश्रुतपरिमाणसङ्ख्यायां पर्यवसङ्ख्या इत्यादि, पर्यवादिरूपेण–परिमाणविशेषेण कालिकश्रुतं संख्यायत इति भावः, तत्र पर्यवाः पर्याया धर्मा इतियावत् तद्रूपा सङ्ख्या पर्यवसङ्ख्या सा च कालिकश्रुते अनन्तपर्यायात्मिका द्रष्टव्या, एकैकस्याप्यकाराद्यक्षरस्य तदभिधेयस्य च जीवादिवस्तुनः प्रत्येकमनन्तपर्यायत्वात्, एवमन्यत्रापि भावना कार्या, नवरं सङ्ख्येयान्यकाराद्यक्षराणि, द्व्याद्यक्षरसंयोगरूपाः सङ्ख्येयाः सङ्घाताः, सुसिङन्तानि समयप्रसिद्धानि वा सङ्ख्येयानि पदानि, गाथादिचतुर्थांशरूपाः सङ्ख्येयाः पादाः, सङ्ख्येया गाथाः, सङ्ख्येयाश्च श्लोकाः प्रतीताः, एवं छन्दोविशेषरूपाः सङ्ख्येया वेष्टकाः, निक्षेपनिर्युक्त्युपोद्घातनिर्युक्तिसूत्रस्पर्शकनिर्युक्तिलक्षणा त्रिविधा निर्युक्तिः, व्याख्योपायभूतानि सत्पदप्ररूपणतादीन्युपक्रमादीनि वा सङ्ख्येयान्यनुयोगद्वाराणि, सङ्ख्येया उद्देशाः, सङ्ख्येयान्यध्ययनानि, सङ्ख्येयाः श्रुतस्कन्धाः,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मुद्रणदोषात् सूत्रक्रमांक '१४९' स्थाने सूत्रक्रमांक '१५०' इति मुद्रितं

प्रत सूत्रांक [१५०] + गाथा: ॥--॥

दीप अनुक्रम [३११--३१७]

सङ्ख्येयान्यङ्गानि एषा कालिकश्रुतपरिमाणसङ्ख्या, एवं दृष्टिवादेऽपि भावना कार्या, नवरं प्राभृतादयः पूर्वान्तर्गताः श्रुताधिकारविशेषाः । 'से त'मित्यादि निगमनद्वयम् ॥ से किं तं जाणणासंखा' इत्यादि, 'जाणणा' ज्ञानं संख्यायते–निश्चीयते वस्त्वनयेति सङ्ख्या, ज्ञानरूपा सङ्ख्या ज्ञानसङ्ख्या, का पुनरियम्?, उच्यते, यो देवदत्तादिर्यच्छब्दादिकं जानाति स तज्जानाति, तच्च जानन्नसावभेदोपचाराद् ज्ञानसङ्ख्येत्युपस्कारः, शेषं पाठसिद्धम् ॥

से किं तं गणणासंखा?, २ एक्को गणणं न उवेइ, दुप्पभिइ संखा, तंजहा–संखेज्जए असंखेज्जए अणंतए । से किं तं संखेज्जए?, २ तिविहे पण्णत्ते, तंजहा–जहण्णए उक्कोसए अजहण्णमणुक्कोसए । से किं तं असंखेज्जए?, २ तिविहे पण्णत्ते, तंजहा–परित्तासंखेज्जए जुत्तासंखेज्जए असंखेज्जासंखेज्जए । से किं तं परित्तासंखेज्जए?, २ तिविहे पण्णत्ते, तंजहा–जहण्णए उक्कोसए अजहण्णमणुक्कोसए । से किं तं जुत्तासंखेज्जए?, २ तिविहे पण्णत्ते, तंजहा–जहण्णए उक्कोसए अजहण्णमणुक्कोसए । से किं तं असंखेज्जासंखेज्जए?, २ तिविहे पण्णत्ते, तंजहा–जहण्णए उक्कोसए अजहण्णमणुक्कोसए ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मुद्रणदोषात् सूत्रक्रमांक '१४९' स्थाने सूत्रक्रमांक '१५०' इति मुद्रितं

प्रत सूत्रांक [१५०] + गाथा: ||--||

दीप अनुक्रम [३११--३१७]

से किं तं अणंतए?, २ तिविहे पण्णत्ते, तंजहा–परित्ताणंतए जुत्ताणंतए अणंताणंतए। से किं तं परित्ताणंतए?, २ ति० प०, तं०–जहण्णए उक्कोसए अजहण्णमणुक्कोसए। से किं तं जुत्ताणंतए?, २ तिविहे पण्णत्ते, तंजहा–जहण्णए उक्कोसए अजहण्णम०। से किं तं अणंताणंतए?, २ दुविहे पण्णत्ते, तंजहा–जहण्णए अजहण्णमणुक्कोसए। जहण्णयं संखेज्जयं केवइअं होइ?, दोरूवयं, तेणं परं अजहण्णमणुक्कोसयाइं ठाणाइं जाव उक्कोसयं संखेज्जयं न पावइ।

एतावन्त एते इति सङ्ख्यानं गणनसङ्ख्या, तत्र 'एगो गणणं न उवेइ' एकस्तावद्गणनं–सङ्ख्यां नोपैति, यत एकस्मिन् घटादौ दृष्टे घटादि वस्त्विदं तिष्ठतीत्येवमेव प्रायः प्रतीतिरुत्पद्यते, नैकसङ्ख्याविषयत्वेन, अथवा आदानसमर्पणादिव्यवहारकाले एकं वस्तु प्रायो न कश्चिद्गणयत्यतोऽसंव्यवहार्यत्वादल्पत्वाद्वा नैको गणनसङ्ख्यामवतरति, तस्माद्विप्रभृतिरेव गणनसङ्ख्या, सा च सङ्ख्येयकादिभेदभिन्ना, तद्यथा–सङ्ख्येयकमसङ्ख्येयकमनन्तकं, तत्र सङ्ख्येयकं जघन्यादिभेदात् त्रिविधम्, असङ्ख्येयकं तु परीतासङ्ख्येयकं युक्तासङ्ख्येयकं असङ्ख्येयासङ्ख्यकं, पुनरेकैकं जघन्यादिभेदात्त्रिविधमिति सर्वमपि नवविधम्, अ-

अनु. ४०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[४५], चूलिकासूत्र-[२] अनुयोगद्वार मूलं एवं हेमचन्द्रसूरि-रचिता वृत्ति:

अत्र मुद्रणदोषात् सूत्रक्रमांक '१४९' स्थाने सूत्रक्रमांक '१५०' इति मुद्रितं

प्रत सूत्रांक [१५०] + गाथा: ॥--॥

दीप अनुक्रम [३११--३१७]

नन्तकमपि परीतानन्तकं युक्तानन्तकं अनन्तानन्तकम्, अत्राद्यानन्तभेदद्वये जघन्यादिभेदात् प्रत्येकं त्रैविध्यम्, अनन्तानन्तकं तु जघन्यमजघन्योत्कृष्टमेव संभवतीति, उत्कृष्टानन्तानन्तकस्य क्वाप्यसम्भवादिति सर्वमपीदमष्टविधं, तदेवं संक्षेपतः सङ्ख्येयकादिभेदप्ररूपणामात्रं कृत्वा विस्तरतः तत्स्वरूपनिरूपणार्थमाह— 'जहण्णयं संखेज्जयं केवइयं'मित्यादि, अत्र जघन्यं सङ्ख्येयकं द्वौ, ततः परं त्रिचतुरादिकं सर्वमप्यजघन्योत्कृष्टं यावदुत्कृष्टं न प्राप्नोति,

उक्कोसयं संखेज्जयं केवइअं होइ?, उक्कोसयस्स संखेज्जयस्स परूवणं करिस्सामि–से जहानामए पल्ले सिआ एगं जोयणसयसहस्सं आयामविक्खंभेणं तिण्णि जोयणसयसहस्साइं सोलस सहस्साइं दोण्णि अ सत्तावीसे जोयणसए तिण्णि अ कोसे अट्ठावीसं च धणुसयं तेरस य अंगुलाइं अद्धं अंगुलं च किंचि विसेसाहिअं परिक्खेवेणं पण्णत्ते, से णं पल्ले सिद्धत्थयाणं भरिए, तओ णं तेहिं सिद्धत्थएहिं दीवसमुद्दाणं उद्धारो घेप्पइ, एगो दीवे एगो समुद्दे एवं पक्खिप्पमाणेणं २ जावइआ दीवसमुद्दा तेहिं सिद्धत्थएहिं अप्फुण्णा एस णं एवइए खेत्ते पल्ले [आइट्ठा] पढमा सलागा, एव-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मुद्रणदोषात् सूत्रक्रमांक '१४९' स्थाने सूत्रक्रमांक '१५०' इति मुद्रितं

प्रत सूत्रांक [१५०] + गाथा: ॥--॥

दीप अनुक्रम [३११--३१७]

इआणं सलागाणं असंलप्पा लोगा भरिआ तहावि उक्कोसयं संखेज्जयं न पावइ, जहा को दिट्ठंतो?, से जहानामए मंचे सिआ आमलगाणं भरिए तत्थ एगे आमलए पक्खित्ते सेऽवि माते अण्णेऽवि पक्खित्ते सेऽवि माते अन्नेऽवि पक्खित्ते सेऽवि माते एवं पक्खिप्पमाणेणं २ होही सेऽवि आमलए जंसि पक्खित्ते से मंचए भरिज्जिहिइ जे तत्थ आमलए न माहिइ,•

तत्र कियत्पुनरुत्कृष्टं सङ्ख्येयकं भवतीति विनेयेन पृष्टे विस्तरेण तस्य प्ररूपयिष्यमाणत्वादित्थमाह–उत्कृष्टस्य सङ्ख्येयकस्य प्ररूपणां करिष्यामि, तदेवाह–तद्यथा नाम कश्चित्पल्यः स्यात्, कियन्मान इत्याह–आयामविष्कम्भाभ्यां योजनशतसहस्रं, परिधिना तु—'परिही तिलकुंभ सोलस सहस्स दो य सय सत्तवीसऽहिया। कोसतिय अट्ठवीसं, धणुसय तेरंगुलऽद्धहियं ॥ १ ॥'[1] इति गाथाप्रतिपादितमानो, जम्बूद्वीपप्रमाण इति भावः। अयं चाधस्ताद्योजनसहस्रमवगाढो द्रष्टव्यः, रत्नप्रभापृथिव्या रत्नकाण्डं भित्त्वा वज्रकाण्डे प्रतिष्ठित इत्यर्थः, स चैवंप्रमाणः पल्यो जम्बूद्वीपवेदिकात उपरि सप्रशिखः सिद्धार्थानां सर्षपानां भ्रियते, 'तओ णं तेहिं'इत्यादि, इदमुक्तं भवति–ते सर्षपा असत्कल्पनया देवादिना समुत्क्षिप्य एको द्वीपे एकः समुद्रे इत्येवं सर्वे-

१. परिधिस्त्रयो लक्षाः षोडश सहस्रा द्वे च शते सप्तविंशत्यधिके। क्रोशत्रिकमष्टाविंशं धनुःशतं त्रयोदशाङ्गुलानि अर्धाधिकानि ॥ १ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मुद्रणदोषात् सूत्रक्रमांक '१४९' स्थाने सूत्रक्रमांक '१५०' इति मुद्रितं

प्रत सूत्रांक [१५०] + गाथा: ॥--॥

दीप अनुक्रम [३११--३१७]

ऽपि प्रक्षिप्यन्ते, यत्र च द्वीपे समुद्रे वा ते इत्थं प्रक्षिप्यमाणा निष्ठां यान्ति तत्पर्यवसानो जम्बूद्वीपादिरनवस्थितपल्यः कल्प्यते, अत एवाह—'एस णं एवइए खेत्ते पल्ले'त्ति, यावन्तो द्वीपसमुद्रास्तैः सर्षपैः 'अप्फुण्ण'त्ति व्याप्ता इत्यर्थः, एतदेतावत्प्रमाणं क्षेत्रमनवस्थितपल्यः, सर्षपभृतो बुद्ध्या परिकल्प्यत इत्यर्थः, ततः किमित्याह—'पढमा सलाग'त्ति ततः शलाकापल्ये प्रथमशलाका–एकः सर्षपः प्रक्षिप्यत इत्यर्थः, 'एवइयाणं सलागाणं असंलप्पा लोगा भरिय'त्ति लोक्यन्ते–केवलिना दृश्यन्त इति लोका–व्याख्यानादिह वक्ष्यमाणाः शलाकापल्यरूपा गृह्यन्ते, ते चैकदशशतसहस्रलक्षकोटिप्रकारेण संलपितुमशक्या असंलप्याः, अतिबहव इत्यर्थः, यथोक्तशलाकानामसत्कल्पनया भृताः–पूरितास्तथाप्युत्कृष्टं सङ्ख्येयकं न प्राप्नोति, आकण्ठपूरिता अपि हि लोकरूढ्या भृता उच्यन्ते, न चैतावतैवोत्कृष्टं सङ्ख्येयकं संपद्यते, किन्तु यदा सप्रशिखतया तथा ते भ्रियन्ते यथा नैकोऽपि सर्षपस्तत्रापरो माति तदा तद्भवतीति भावः, ननु सप्रशिखतया सर्वथा अभृतमपि लोके किं भृतमुच्यते?, सत्यं, प्रोच्यत एव, तथा चात्रार्थे दृष्टान्तं दिदर्शयिषुराह–यथा कोऽत्र दृष्टान्तः?, इति शिष्येण पृष्टे सत्युत्तरमाह–तद्यथा नाम कश्चिन्मञ्चः स्यात्, स चामलकानां भृत इति शिखामन्तरेणापि लोकेन व्यपदिश्यते, अथ च तत्रैकमामलकं प्रक्षिप्तं तन्मातमपरमपि प्रक्षिप्तं तदपि मातमन्यदपि प्रक्षिप्तं तदपि मातमेवमपरापरैः प्रक्षिप्यमाणैः भविष्यति तदामलकं येनासौ मञ्चो भरिष्यति, यच्च तदुत्तरकालं तत्र मञ्चे न मास्यति, इत्थं चात्राप्यपरापरैर्यथोक्तशलाकारूपैः प्रक्षिप्तैर्यदा संलपितुमशक्या अतिबहवः सप्र-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मुद्रणदोषात् सूत्रक्रमांक '१४९' स्थाने सूत्रक्रमांक '१५०' इति मुद्रितं

प्रत सूत्रांक [१५०] + गाथा: ॥--॥ दीप अनुक्रम [३११--३१७]

शिखाः पल्या असत्कल्पनया भृता भवन्ति तदोत्कृष्टं सङ्ख्येयकं भवतीत्यध्याहारो द्रष्टव्य इति तावदक्षरार्थः। भावार्थस्त्वयं–पूर्वनिदर्शितस्वरूपादनवस्थितपल्यादपरेऽपि जम्बूद्वीपप्रमाणा योजनसहस्रावगाढास्त्रयः पल्या बुद्ध्या कल्प्यन्ते, तत्र प्रथमः शलाकापल्यो द्वितीयः प्रतिशलाकापल्यस्तृतीयो महाशलाकापल्यः, तत्रानवस्थितपल्यो भृतः शलाकापल्ये च प्रथमा शलाका प्रक्षिप्तेति पूर्वमादर्शितं, तदनन्तरं पुनरप्यनवस्थितपल्यसर्षपाः समुत्क्षिप्यैको द्वीपे एकः समुद्रे इत्येवं प्रक्षिप्यन्ते, तैश्च निष्ठितैः शलाकापल्ये द्वितीया शलाका प्रक्षिप्यते, सर्षपाश्च प्रक्षिप्यमाणा यत्र द्वीपे समुद्रे वा निष्ठितास्तत्पर्यवसानः पूर्वेण सह बृहत्तरोऽनवस्थितपल्यः सर्षपभृतः परिकल्प्यते, अत एवायमनवस्थितपल्य उच्यते, अवस्थितरूपाभावात्, पुनः सोऽप्युत्क्षिप्यैकैकसर्षपक्रमेण द्वीपसमुद्रेषु प्रक्षिप्यते, शलाकापल्ये च तृतीया शलाका प्रक्षिप्यते, ते च सर्षपाः प्रक्षिप्यमाणा यत्र द्वीपे समुद्रे वा निष्ठितास्तत्पर्यवसानः पूर्वेण सह बृहत्तमोऽनवस्थितपल्यः सर्षपभृतः परिकल्प्यते, पुनः सोऽप्युत्क्षिप्य तेनैव क्रमेण द्वीपसमुद्रेषु प्रक्षिप्यते, शलाकापल्ये च चतुर्थी शलाका प्रक्षिप्यते, एवं यथोत्तरं वृद्धस्यानवस्थितपल्यस्य भरणरिक्तीकरणक्रमेण तावद्वाच्यं यावदेकैकशलाकाप्रक्षेपेण शलाकापल्यो भ्रियते, अपरां शलाकां न प्रतीच्छति, ततोऽनवस्थितपल्यो भृतोऽपि नोत्क्षिप्यते, किन्तु शलाकापल्य एवोद्भ्रियते, अयमप्यनवस्थितपल्याक्रान्तक्षेत्रात्परत एकैकसर्षपक्रमेण द्वीपसमुद्रेषु प्रक्षिप्यते, यदा च निष्ठितो भवति तदा प्रतिशलाकापल्यलक्षणे तृतीये पल्ये प्रथमा प्रतिशलाका प्रक्षिप्यते, ततोऽनवस्थि-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[४५], चूलिकासूत्र-[२] अनुयोगद्वार मूलं एवं हेमचन्द्रसूरि-रचिता वृत्तिः

अत्र मुद्रणदोषात् सूत्रक्रमांक '१४९' स्थाने सूत्रक्रमांक '१५०' इति मुद्रितं

प्रत सूत्रांक [१५०] + गाथा: ॥--॥

दीप अनुक्रम [३११--३१७]

तपल्यः समुत्क्षिप्य शलाकापल्ये निष्ठास्थानात्परतस्तेनैव क्रमेण निक्षिप्यते, निष्ठिते च तस्मिन् शलाकापल्ये शलाका प्रक्षिप्यते, इत्थं पुनरप्यनवस्थितपल्यपूरणरेचनक्रमेण शलाकापल्यः शलाकानां भ्रियते, ततोऽनवस्थितशलाकापल्ययोर्भृतयोः शलाकापल्य एवोत्क्षिप्य पूर्वोक्तक्रमेणैव निक्षिप्यते, प्रतिशलाकापल्ये च द्वितीया प्रतिशलाका प्रक्षिप्यते, ततोऽनवस्थितपल्यः समुद्धृत्य शलाकापल्यनिष्ठास्थानात्परतस्तेनैव न्यायेन प्रक्षिप्यते, शलाकापल्ये च शलाका प्रक्षिप्यते, एवमनवस्थितपल्यस्योत्क्षेपप्रक्षेपक्रमेण शलाकापल्यः शलाकानां भरणीयः, शलाकापल्यस्य तूत्क्षेपप्रक्षेपविधिना प्रतिशलाकापल्यः प्रतिशलाकानां पूरणीयो, यदा च प्रतिशलाकापल्यः शलाकापल्योऽनवस्थितपल्यश्च त्रयोऽपि भृता भवन्ति तदा प्रतिशलाकापल्य एवोत्क्षिप्य द्वीपसमुद्रेषु तथैव प्रक्षिप्यते, निष्ठिते च तस्मिन् महाशलाकापल्ये प्रथमा महाशलाका प्रक्षिप्यते, ततः शलाकापल्य उत्क्षिप्य तथैव प्रक्षिप्यते, प्रतिशलाकापल्ये च प्रतिशलाका प्रक्षिप्यते, ततोऽनवस्थितपल्य उत्क्षिप्य तथैव प्रक्षिप्यते, शलाकापल्ये च शलाका प्रक्षिप्यते, एवमनवस्थितपल्योत्क्षेपप्रक्षेपक्रमेण शलाकापल्यो भरणीयः, शलाकापल्योद्धरणविकिरणविधिना प्रतिशलाकापल्यः पूरणीयः, प्रतिशलाकापल्योत्पाटनप्रक्षेपणाभ्यां महाशलाकापल्यः पूरयितव्यो, यदा तु चत्वारोऽपि परिपूर्णा भवन्ति तदोत्कृष्टं सङ्ख्येयकं रूपाधिकं भवति । इह यथोक्तेषु चतुर्षु पल्येषु ये सर्षपा ये चानवस्थितपल्यशलाकापल्यप्रतिशलाकापल्योत्क्षेपप्रक्षेपक्रमेण द्वीपसमुद्रा व्याप्ता एतावत्सङ्ख्यमुत्कृष्टसङ्ख्येयकमेकेन सर्षपरूपेण समधिकं संपद्यत इति

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मुद्रणदोषात् सूत्रक्रमांक '१४९' स्थाने सूत्रक्रमांक '१५०' इति मुद्रितं

प्रत सूत्रांक [१५०] + गाथा: ||--||

दीप अनुक्रम [३११--३१७]

भावः। एतावद्भिश्च सर्षपैरसंलप्या लोकाः–शलाकापल्यलक्षणा म्रियन्त एवेति सूत्रमविरोधेन भावनीयम्। इदं च तावदुत्कृष्टं सङ्ख्येयकं, जघन्यं तु द्वौ, जघन्योत्कृष्टयोश्चान्तराले यानि सङ्ख्यास्थानानि तत्सर्वमजघन्योत्कृष्टम्, आगमे च यत्र क्वचिदविशेषितं सङ्ख्येयकग्रहणं करोति तत्र सर्वत्राजघन्योत्कृष्टं द्रष्टव्यम्, इदं चोत्कृष्टं सङ्ख्येयकमित्थमेव प्ररूपयितुं शक्यते, शीर्षप्रहेलिकान्तराशिभ्योऽतिबहूनां समतिक्रान्तत्वात् प्रकारान्तरेणाख्यातुमशक्यत्वादिति। उक्तं त्रिविधं सङ्ख्येयकम्, अथ नवविधमसङ्ख्येयकं प्रागुद्दिष्टं निरूपयितुमाह—

एवामेव उक्कोसए संखेज्जए रूवे पक्खित्ते जहण्णयं परित्तासंखेज्जयं भवइ, तेण परं अजहण्णमणुक्कोसयाइं ठाणाइं जाव उक्कोसयं परित्तासंखेज्जयं न पावइ। उक्कोसयं परित्तासंखेज्जयं केवइअं होइ?, जहण्णयं परित्तासंखेज्जयं जहण्णयं परित्तासंखेज्जमेत्ताणं रासीणं अण्णमण्णब्भासो रूवूणो उक्कोसं परित्तासंखेज्जयं होइ, अहवा जहन्नयं जुत्तासंखेज्जयं रूवूणं उक्कोसयं परित्तासंखेज्जयं होइ। जहन्नयं जुत्तासंखेज्जयं केवइअं होइ?, जहण्णयपरित्तासंखेज्जयमेत्ताणं रासीणं अण्णमण्णब्भासो पडिपुण्णो जहन्नयं जुत्तासंखेज्जयं होइ, अहवा उक्कोसए परित्तासंखेज्जए रूवं पक्खित्तं जहण्णयं जुत्तासं-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[४५], चूलिकासूत्र-[२] अनुयोगद्वार मूलं एवं हेमचन्द्रसूरि-रचिता वृत्तिः

अत्र मुद्रणदोषात् सूत्रक्रमांक '१४९' स्थाने सूत्रक्रमांक '१५०' इति मुद्रितं

प्रत सूत्रांक [१५०] + गाथा: ॥--॥

दीप अनुक्रम [३११--३१७]

खेज्जयं होइ, आवलिआवि तत्तिआ चेव, तेण परं अजहण्णमणुक्कोसयाइं ठाणाइं जाव उक्कोसयं जुत्तासंखिज्जयं न पावइ । उक्कोसयं जुत्तासंखेज्जयं केवइअं होइ?, जहण्णएणं जुत्तासंखेज्जएणं आवलिआ गुणिआ अण्णमण्णब्भासो रूवूणो उक्कोसयं जुत्तासंखेज्जयं होइ, अहवा जहन्नयं असंखेज्जासंखेज्जयं रूवूणं उक्कोसयं जुत्तासंखेज्जयं होइ । जहण्णयं असंखेज्जासंखेज्जयं केवइअं होइ?, जहन्नएणं जुत्तासंखेज्जएणं आवलिआ गुणिआ अण्णमण्णब्भासो पडिपुण्णो जहण्णयं असंखेज्जासंखेज्जयं होइ, अहवा उक्कोसए जुत्तासंखेज्जए रूवं पक्खित्तं जहण्णयं असंखेज्जासंखेज्जयं होइ, तेण परं अजहण्णमणुक्कोसयाइं ठाणाइं जाव उक्कोसयं असंखेज्जासंखेज्जयं ण पावइ । उक्कोसयं असंखेज्जासंखेज्जयं केवइअं होइ?, जहण्णयं असंखेज्जासंखेज्जयमेत्ताणं रासीणं अण्णमण्णब्भासो रूवूणो उक्कोसयं असंखेज्जासंखेज्जयं होइ, अहवा जहण्णयं परित्ताणंतयं रूवूणं उक्कोसयं असंखेज्जासंखेज्जयं होइ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मुद्रणदोषात् सूत्रक्रमांक '१४९' स्थाने सूत्रक्रमांक '१५०' इति मुद्रितं

प्रत सूत्रांक [१५०] + गाथा: ॥--॥

दीप अनुक्रम [३११--३१७]

असङ्ख्येयकेऽपि निरूप्यमाणे एवमेवानवस्थितपल्यादिनिरूपणा क्रियत इत्यर्थः, तावद् यावदुत्कृष्टं स-
ङ्ख्येयकमानीतं, तस्मिँश्च यदेकं रूपं पूर्वमधिकं दर्शितं तद् यदा तत्रैव राशौ प्रक्षिप्यते तदा जघन्यं परी-
तासङ्ख्येयकं भवति। 'तेण पर'मित्यादि सूत्रं, ततः परं परीतासङ्ख्येयकस्यैवाजघन्योत्कृष्टानि स्थानानि
भवन्ति, यावदुत्कृष्टं परीतासङ्ख्येयकं न प्राप्नोति, शिष्यः पृच्छति–कियत्पुनरुत्कृष्टं परीतासङ्ख्येयकं भ-
वति?, अत्रोत्तरं—'जहण्णयं परित्तासंखेज्जयं'इत्यादि, जघन्यं परीतासङ्ख्येयकं यावत्प्रमाणं भवतीति शेषः,
तावत्प्रमाणानां जघन्यपरीतासङ्ख्येयकमात्राणां–जघन्यपरीतासङ्ख्येयकगतरूपसङ्ख्यानामित्यर्थः, राशी-
नामन्योऽन्यमभ्यासः–परस्परं गुणनारूप एकेन रूपेणोनमुत्कृष्टं परीतासङ्ख्येयकं भवति, इदमत्र हृदयं–
प्रत्येकं जघन्यपरीतासङ्ख्येयक एव यावन्ति रूपाणि भवन्ति तावन्तः पुञ्जा व्यवस्थाप्यन्ते, तैश्च परस्परगु-
णितैर्यो राशिर्भवति, स एकेन रूपेण हीन उत्कृष्टं परीतासङ्ख्येयकं मन्तव्यम् । अत्र सुखप्रतिपत्त्यर्थमुदाह-
रणं दर्श्यते–जघन्यपरीतासङ्ख्येयके किलासत्कल्पनया पञ्च रूपाणि संप्रधार्यन्ते, ततः पञ्चैव वाराः पञ्च पञ्च
व्यपस्थाप्यन्ते, तथाहि–५५५५५, अत्र पञ्चभिः पञ्च गुणिताः पञ्चविंशतिः, सा च पञ्चभिराहता जातं पञ्च-
विंशं शतमित्यादिक्रमेणामीषां राशीनां परस्पराभ्यासे जातानि पञ्चविंशत्यधिकान्येकत्रिंशच्छतानि, एतत्प्र-
कल्पनया एतावन्मानः सद्भावतस्त्वसङ्ख्येयरूपो राशिरेकेन रूपेण हीन उत्कृष्टं परीतासङ्ख्येयकं संपद्यते,
यदा तु तदप्यधिकं रूपं गण्यते तदा जघन्यं युक्तासङ्ख्येयकं जायते, अत एवाह—'अहवा जहण्णयं जुत्ता-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[४५], चूलिकासूत्र-[२] अनुयोगद्वार मूलं एवं हेमचन्द्रसूरि-रचिता वृत्तिः

अत्र मुद्रणदोषात् सूत्रक्रमांक '१४९' स्थाने सूत्रक्रमांक '१५०' इति मुद्रितं

प्रत सूत्रांक [१५०] + गाथा: ॥--॥

दीप अनुक्रम [३११--३१७]

संखेज्जय'मित्यादि, अनन्तरोक्ताद्धि युक्तासङ्ख्येयकादेकस्मिन् रूपे समाकर्षित उत्कृष्टं परीतासङ्ख्येयकं निष्पद्यते इति प्रतीयते एवेति। उक्तं जघन्यादिभेदभिन्नं त्रिविधं परीतासङ्ख्येयकम्, अथ तावद्भेदभिन्नस्यैव युक्तासङ्ख्येयकस्य निरूपणार्थमाह—'जहण्णयं जुत्तासंखेज्जयं कित्तिय'मित्यादि, अत्रोत्तरं 'जहण्णयं परित्तासंखेज्जय'मित्यादि, व्याख्या पूर्ववदेव, नवरम्—'अन्नमन्नब्भासो पडिपुन्नो'त्ति अन्योऽन्याभ्यस्तः स परिपूर्ण एव राशिरिह गृह्यते, न तु रूपं पात्यत इति भावः, (ग्रं० ५०००) 'अहवा उक्कोसए परित्तासंखेज्जए'इत्यादि, भावितार्थमेव, 'आवलिया तत्तिया चेव'त्ति यावन्ति जघन्ययुक्तासङ्ख्येयके सर्षपरूपाणि प्राप्यन्ते आवलिकायामपि तावन्तः समया भवन्तीत्यर्थः, ततः सूत्रे यत्रावलिका गृह्यते तत्र जघन्ययुक्तासङ्ख्येयकतुल्यसमयराशिमाना सा द्रष्टव्या। 'तेण पर'मित्यादि ततो जघन्ययुक्तासङ्ख्येयकात् परतः एकोत्तरया वृद्ध्या असङ्ख्येयान्यजघन्योत्कृष्टानि युक्तासङ्ख्येयस्थानानि भवन्ति यावदुत्कृष्टं युक्तासङ्ख्येयकं न प्राप्नोति। अत्र शिष्यः पृच्छति—'उक्कोसयं जुत्तासंखेज्जय'मित्यादि, अत्र प्रतिवचनम्—'जहण्णएण'मित्यादि, जघन्येन युक्तासङ्ख्येयकेनावलिकासमयराशिर्गुण्यते, किमुक्तं भवति?–अन्योऽन्यमभ्यासः क्रियते, जघन्ययुक्तासङ्ख्येयकराशिस्तेनैव राशिना गुण्यत इति तात्पर्यम्, एवं च कृते यो राशिर्भवति स एव एकेन रूपेणोनः उत्कृष्टं युक्तासङ्ख्येयकं भवति, यदि पुनस्तदपि रूपं गण्यते तदा जघन्यमसङ्ख्येयासङ्ख्येयकं जायते, अत एवाह—'अहवा जहण्णयं असंखिज्जासंखिज्जयं रूवूण'मित्यादि,गतार्थम्। उक्तं युक्तासङ्ख्येयकं त्रिविधम्, इदानीमसङ्ख्ये-

॥ २३९ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मुद्रणदोषात् सूत्रक्रमांक '१४९' स्थाने सूत्रक्रमांक '१५०' इति मुद्रितं

प्रत सूत्रांक [१५०] + गाथा: ॥--॥

दीप अनुक्रम [३११--३१७]

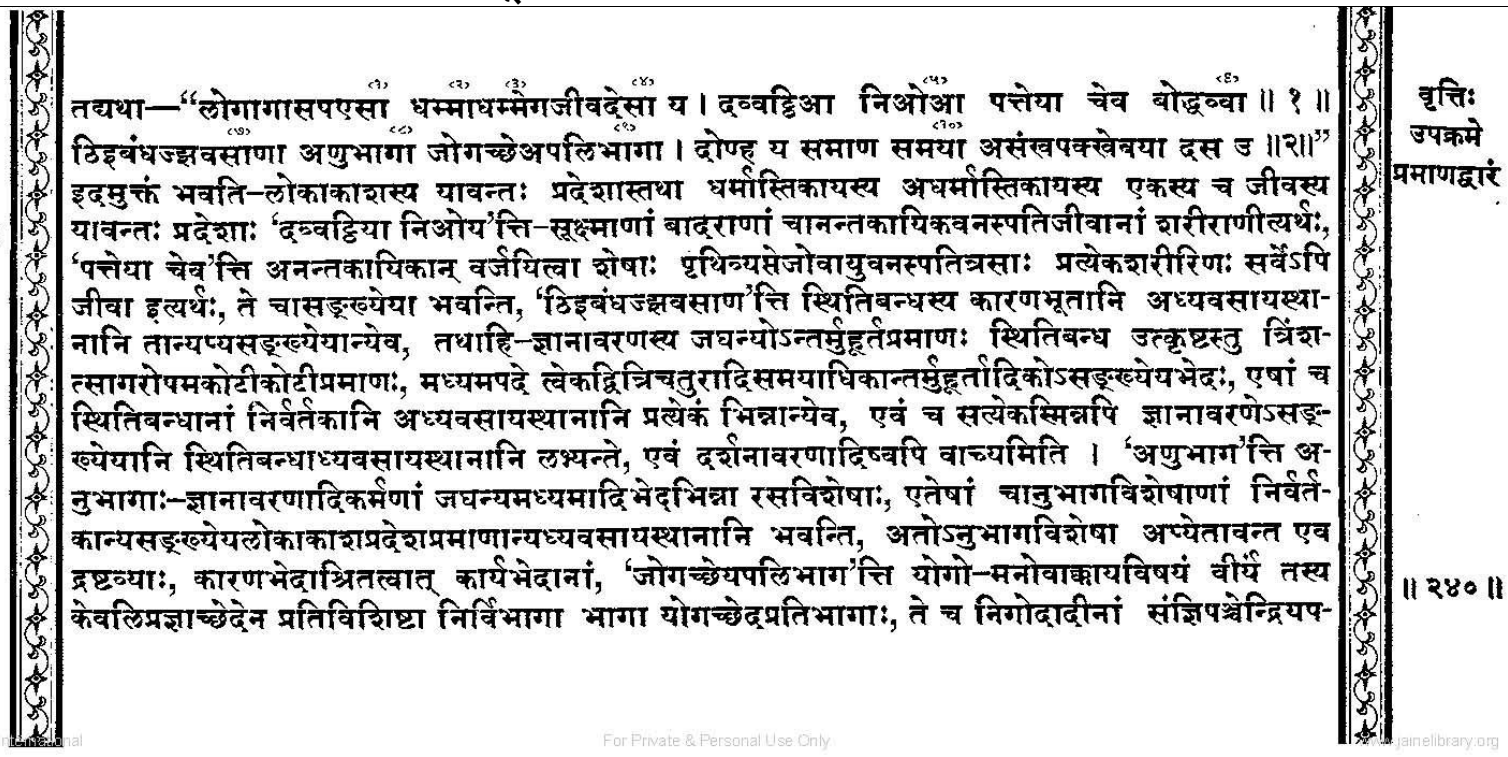
यासङ्ख्येयकं त्रिविधं बिभणिषुराह—'जहण्णयं असंखिज्जासंखेज्जय'मित्यादि, इदं तु सूत्रं भावितार्थमेव, नवरं पडिपुण्णोत्ति–परिपूर्णो, रूपं न पात्यत इत्यर्थः, अहवेत्याद्यपि गतार्थम्। 'तेण पर'मित्यादि, ततः परमसङ्ख्येयासङ्ख्येयकस्य असङ्ख्येयान्यजघन्योत्कृष्टस्थानानि भवन्ति, यावदुत्कृष्टासङ्ख्येयासङ्ख्येयकं न प्राप्नोति। अत्र विनेयः प्रश्नयति—'उक्कोसं असंखेज्जासंखेज्जकं केत्तिय'मित्यादि, अत्रोत्तरम्—'जहण्णयं असंखेज्जासंखेज्ज'मित्यादि, जघन्यमसङ्ख्येयासङ्ख्येयकं यावद्भवतीति शेषः, तावत्प्रमाणानां जघन्यासङ्ख्येयासङ्ख्येयकमात्राणां जघन्यासङ्ख्येयासंख्येयकरूपसङ्ख्यानामित्यर्थः, राशीनामन्योऽन्यमभ्यासः–परस्परं गुणनास्वरूपः एकेन रूपेणोनः उत्कृष्टमसङ्ख्येयासङ्ख्येयकं भवति, अयमत्र भावार्थः–प्रत्येकं जघन्यासङ्ख्येयासङ्ख्येयकरूपा जघन्यासङ्ख्येयासङ्ख्येयक एव यावन्ति रूपाणि भवन्ति तावन्तो राशयो व्यवस्थाप्यन्ते, तैश्च परस्परगुणितैर्यो राशिर्भवति स एकेन रूपेण हीनः उत्कृष्टमसङ्ख्येयासङ्ख्येयकं प्रतिपत्तव्यम्, उदाहरणं चात्राप्युत्कृष्टपरीतासङ्ख्येयकोक्तानुसारेण वाच्यम्, अत्र च यदेकं रूपं पातितं तदप्यत्र यदि गण्यते तदा जघन्यं परीतानन्तकं संपद्यते, अत एवेत्थं निर्दिशति—'अहवा जहण्णयं परित्ताणंतय'मित्यादि, गतार्थमेव, इत्येकीयाचार्यमतं तावदर्शितम्। अन्ये त्वाचार्या उत्कृष्टमसङ्ख्येयासङ्ख्येयकमन्यथा प्ररूपयन्ति, तथाहि–जघन्यासङ्ख्येयासङ्ख्येयकराशेर्वर्गः क्रियते, तस्यापि वर्गराशेः पुनर्वर्गो विधीयते, तस्यापि वर्गवर्गराशेः पुनरपि वर्गो निष्पाद्यते, एवं च वारत्रयं वर्गे कृतेऽन्येऽपि प्रत्येकमसङ्ख्येयस्वरूपा दश राशयस्तत्र प्रक्षिप्यन्ते,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[४५], चूलिकासूत्र-[२] अनुयोगद्वार मूलं एवं हेमचन्द्रसूरि-रचिता वृत्तिः

अत्र मुद्रणदोषात् सूत्रक्रमांक '१४९' स्थाने सूत्रक्रमांक '१५०' इति मुद्रितं

प्रत सूत्रांक [१५०] + गाथा: ॥--॥ दीप अनुक्रम [३११--३१७]



अनुयो० मलधारीया ॥ २४० ॥

तद्यथा—"लोगागासपएसा[1] धम्माधम्मेगजीवदेसा[2] य[3] । दव्वट्ठिआ निओआ[4] पत्तेया चेव बोद्धव्वा[5] ॥ १ ॥ ठिइबंधज्झवसाणा[6] अणुभागा[7] जोगच्छेअपलिभागा[8] । दोण्ह य समाण समया[9] असंखपक्खेवया दस उ ॥२॥" इदमुक्तं भवति–लोकाकाशस्य यावन्तः प्रदेशास्तथा धर्मास्तिकायस्य अधर्मास्तिकायस्य एकस्य च जीवस्य यावन्तः प्रदेशाः 'दव्वट्ठिया निओय'त्ति–सूक्ष्माणां बादराणां चानन्तकायिकवनस्पतिजीवानां शरीराणीत्यर्थः, 'पत्तेया चेव'त्ति अनन्तकायिकान् वर्जयित्वा शेषाः पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतित्रसाः प्रत्येकशरीरिणः सर्वेऽपि जीवा इत्यर्थः, ते चासङ्ख्येया भवन्ति, 'ठिइबंधज्झवसाण'त्ति स्थितिबन्धस्य कारणभूतानि अध्यवसायस्थानानि तान्यप्यसङ्ख्येयान्येव, तथाहि–ज्ञानावरणस्य जघन्योऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणः स्थितिबन्ध उत्कृष्टस्तु त्रिंशत्सागरोपमकोटीकोटीप्रमाणः, मध्यमपदे त्वेकद्वित्रिचतुरादिसमयाधिकान्तर्मुहूर्तादिकोऽसङ्ख्येयभेदः, एषां च स्थितिबन्धानां निर्वर्तकानि अध्यवसायस्थानानि प्रत्येकं भिन्नान्येव, एवं च सत्येकस्मिन्नपि ज्ञानावरणेऽसङ्ख्येयानि स्थितिबन्धाध्यवसायस्थानानि लभ्यन्ते, एवं दर्शनावरणादिष्वपि वाच्यमिति । 'अणुभाग'त्ति अनुभागाः–ज्ञानावरणादिकर्मणां जघन्यमध्यमादिभेदभिन्ना रसविशेषाः, एतेषां चानुभागविशेषाणां निर्वर्तकान्यसङ्ख्येयलोकाकाशप्रदेशप्रमाणान्यध्यवसायस्थानानि भवन्ति, अतोऽनुभागविशेषा अप्येतावन्त एव द्रष्टव्याः, कारणभेदाश्रितत्वात् कार्यभेदानां, 'जोगच्छेयपलिभाग'त्ति योगो–मनोवाक्कायविषयं वीर्यं तस्य केवलिप्रज्ञाच्छेदेन प्रतिविशिष्टा निर्विभागा भागा योगच्छेदप्रतिभागाः, ते च निगोदादीनां संज्ञिपञ्चेन्द्रियप-

वृत्तिः उपक्रमे प्रमाणद्वारं

॥ २४० ॥

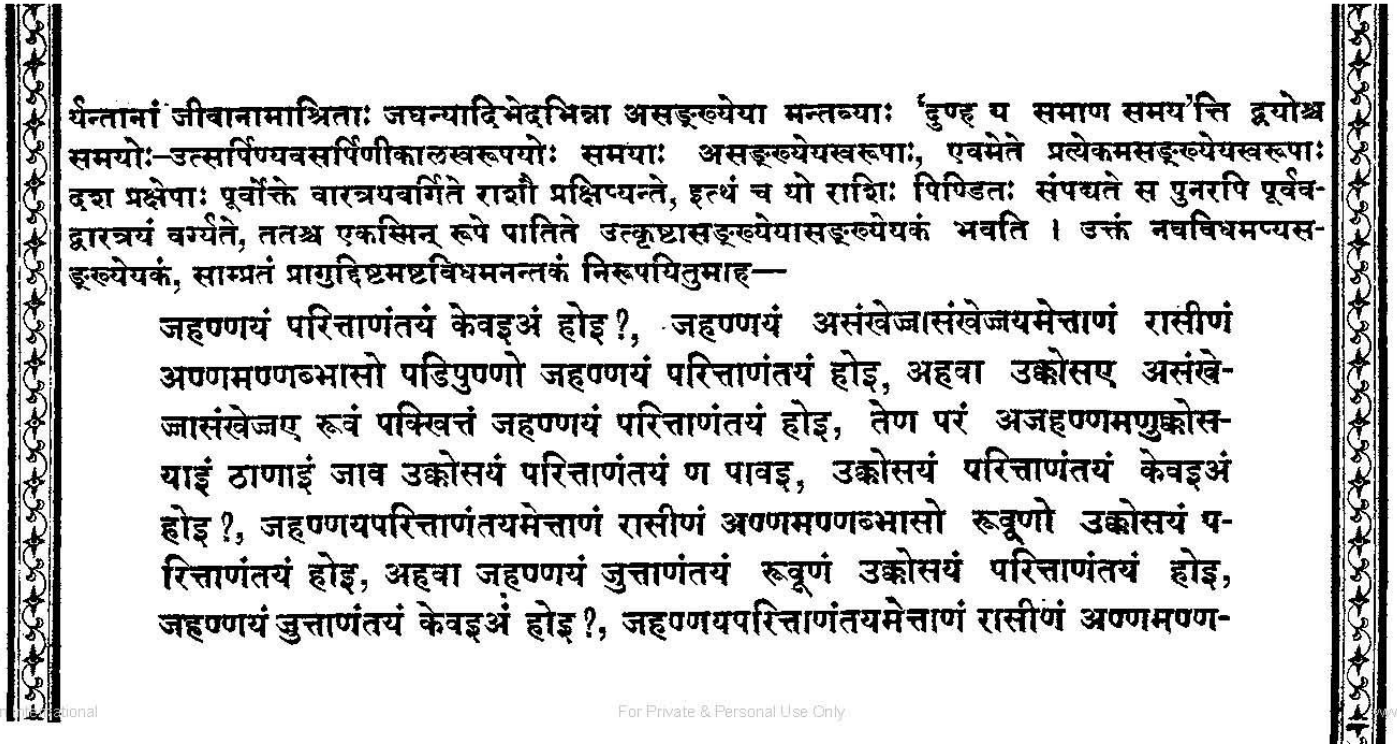
Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[४५], चूलिकासूत्र-[२] अनुयोगद्वार मूलं एवं हेमचन्द्रसूरि-रचिता वृत्तिः

अत्र मुद्रणदोषात् सूत्रक्रमांक '१४९' स्थाने सूत्रक्रमांक '१५०' इति मुद्रितं

प्रत सूत्रांक [१५०] + गाथा: ॥--॥

दीप अनुक्रम [३११--३१७]



र्थन्तानां जीवानामाश्रिताः जघन्यादिभेदभिन्ना असङ्ख्येया मन्तव्याः 'दुण्ह य समाण समय'त्ति द्वयोश्च समयोः–उत्सर्पिण्यवसर्पिणीकालस्वरूपयोः समयाः असङ्ख्येयस्वरूपाः, एवमेते प्रत्येकमसङ्ख्येयस्वरूपाः दश प्रक्षेपाः पूर्वोक्ते वारत्रयवर्गिते राशौ प्रक्षिप्यन्ते, इत्थं च यो राशिः पिण्डितः संपद्यते स पुनरपि पूर्ववद्वारत्रयं वर्ग्यते, ततश्च एकस्मिन् रूपे पातिते उत्कृष्टासङ्ख्येयासङ्ख्येयकं भवति । उक्तं नवविधमप्यसङ्ख्येयकं, साम्प्रतं प्रागुद्दिष्टमष्टविधमनन्तकं निरूपयितुमाह—

जहण्णयं परित्ताणंतयं केवइअं होइ?, जहण्णयं असंखेज्जासंखेज्जयमेत्ताणं रासीणं अण्णमण्णब्भासो पडिपुण्णो जहण्णयं परित्ताणंतयं होइ, अहवा उक्कोसए असंखेज्जासंखेज्जए रूवं पक्खित्तं जहण्णयं परित्ताणंतयं होइ, तेण परं अजहण्णमणुक्कोसयाइं ठाणाइं जाव उक्कोसयं परित्ताणंतयं ण पावइ, उक्कोसयं परित्ताणंतयं केवइअं होइ?, जहण्णयपरित्ताणंतयमेत्ताणं रासीणं अण्णमण्णब्भासो रूवूणो उक्कोसयं परित्ताणंतयं होइ, अहवा जहण्णयं जुत्ताणंतयं रूवूणं उक्कोसयं परित्ताणंतयं होइ, जहण्णयं जुत्ताणंतयं केवइअं होइ?, जहण्णयपरित्ताणंतयमेत्ताणं रासीणं अण्णमण्ण-

अनु. ४१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[४५], चूलिकासूत्र-[२] अनुयोगद्वार मूलं एवं हेमचन्द्रसूरि-रचिता वृत्तिः

अत्र मुद्रणदोषात् सूत्रक्रमांक '१४९' स्थाने सूत्रक्रमांक '१५०' इति मुद्रितं

अथ 'अष्टविध-अनन्तकम्' प्ररुप्यते

प्रत सूत्रांक [१५०] + गाथा: ॥--॥

दीप अनुक्रम [३११--३१७]

ब्भासो पडिपुण्णो जहण्णयं जुत्ताणंतयं होइ, अहवा उक्कोसए परित्ताणंतए रूवं पक्खित्तं जहन्नयं जुत्ताणंतयं होइ, अभवसिद्धिआवि तत्तिआ होइ, तेण परं अजहण्णमणुक्कोसयाइं ठाणाइं जाव उक्कोसयं जुत्ताणंतयं ण पावइ। उक्कोसयं जुत्ताणंतयं केवइअं होइ?, जहण्णएणं जुत्ताणंतएणं अभवसिद्धिआ गुणिया अण्णमण्णब्भासो रूवूणो उक्कोसयं जुत्ताणंतयं होइ, अहवा जहण्णयं अणंताणंतयं रूवूणं उक्कोसयं जुत्ताणंतयं होइ। जहण्णयं अणंताणंतयं केवइअं होइ?, जहण्णएणं जुत्ताणंतएणं अभवसिद्धिआ गुणिआ अण्णमण्णब्भासो पडिपुण्णो जहण्णयं अणंताणंतयं होइ, अहवा उक्कोसए जुत्ताणंतए रूवं पक्खित्तं जहण्णयं अणंताणंतयं होइ, तेण परं अजहण्णमणुक्कोसयाइं ठाणाइं। से तं गणणासंखा। से किं तं भावसंखा?, २ जे इमे जीवा संखगइनामगोत्ताइं कम्माइं वेदेइ(न्ति)। से तं भावसंखा, से तं संखापमाणे, से तं भावपमाणे, से तं पमाणे। पमाणेत्ति पयं समत्तं (सू० १५०)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मुद्रणदोषात् सूत्रक्रमांक '१४९' स्थाने सूत्रक्रमांक '१५०' इति मुद्रितं

प्रत सूत्रांक [१५०] + गाथा: ॥--॥

दीप अनुक्रम [३११--३१७]

भावितार्थमेव, नवरं परिपूर्ण इति रूपं न पात्यते इत्यर्थः। 'तेण परं'इत्यादि, गतार्थमेव, 'उक्कोसयं परित्ताणंतय'मित्यादि, जघन्यपरीतानन्तके यावन्ति रूपाणि भवन्ति तावत्सङ्ख्यानां राशीनां–प्रत्येकं जघन्यपरीतानन्तकप्रमाणानां पूर्ववदन्योऽन्याभ्यासे रूपोनमुत्कृष्टं परीतानन्तकं भवति, 'अहवा जहण्णयं जुत्ताणंतय'मित्यादि, स्पष्टं, 'जहण्णयं जुत्ताणंतयं केत्तिय'मित्यादि व्याख्यातार्थमेव। 'अहवा उक्कोसयं परित्ताणंतए'इत्यादि, सुबोधं, जघन्ये च युक्तानन्तके यावन्ति रूपाणि भवन्ति अभवसिद्धिका अपि जीवाः केवलिना तावन्त एव दृष्टाः, 'तेण पर'मित्यादि, कण्ठ्यम्, 'उक्कोसयं जुत्ताणंतयं केत्तिय'मित्यादि, जघन्येन युक्तानन्तकेनाभव्यराशिर्गुणितो रूपोनः सन्नुत्कृष्टं युक्तानन्तकं भवति, तेन तु रूपेण सह जघन्यमनन्तानन्तकं संपद्यते, अत एवाह—'अहवा जहण्णयं अणंताणंतय'मित्यादि, गतार्थं, 'जहण्णयं अणंताणंतयं केत्तिय'मित्यादि, भावितार्थमेव, 'अहवा उक्कोसए जुत्ताणंतए'इत्यादि, प्रतीतमेव, 'तेण परं अजहण्णुक्कोसयाइं'इत्यादि, जघन्यादनन्तानन्तकात् परतः सर्वाण्यपि अजघन्योत्कृष्टान्येवानन्तकानन्तकस्य स्थानानि भवन्ति, उत्कृष्टं त्वनन्तानन्तकं नास्त्येवेत्यभिप्रायः। अन्ये त्वाचार्याः प्रतिपादयन्ति–जघन्यमनन्तानन्तकं वारत्रयं पूर्ववत् वर्ग्यते, ततश्चैते षडनन्तकप्रक्षेपाः प्रक्षिप्यन्ते, तद्यथा—"सिद्धा निगोयजीवा वणस्सई काल पुग्गला चेव। सव्वमलोगागासं छप्पेतेऽणंतपक्खेवा ॥ १ ॥" अयमर्थः–सर्वे सिद्धाः सर्वे सूक्ष्मबादरनिगोदजीवाः प्रत्येकानन्ताः सर्वे वनस्पतिजन्तवः सर्वोऽप्यतीतानागतवर्तमानकालसमयराशिः सर्वपुद्गलद्रव्यसमूहः सर्वोऽलोकाकाशप्र-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मुद्रणदोषात् सूत्रक्रमांक '१४९' स्थाने सूत्रक्रमांक '१५०' इति मुद्रितं

प्रत सूत्रांक [१५०] + गाथा: ॥--॥

दीप अनुक्रम [३११--३१७]

देशराशिः एते च प्रत्येकमनन्तस्वरूपाः षट् प्रक्षेपाः, एतैश्च प्रक्षिप्तैर्यो राशिर्जायते स पुनरपि वारत्रयं पूर्ववद्वर्ग्यते, तथाऽप्युत्कृष्टमनन्तानन्तकं न भवति, ततश्च केवलज्ञानकेवलदर्शनपर्यायाः प्रक्षिप्यन्ते, एवं च सत्युत्कृष्टमनन्तानन्तकं संपद्यते, सर्वस्यैव वस्तुजातस्य सङ्गृहीतत्वात्, अतः परं वस्तुसत्त्वस्यैव सङ्ख्याविषयस्याभावादिति भावः, सूत्राभिप्रायस्त्वित्थमप्यनन्तानन्तकमुत्कृष्टं न प्राप्यते, अजघन्योत्कृष्टस्थानानामेव तत्र प्रतिपादितत्वादिति, तत्त्वं तु केवलिनो विदन्तीति भावः । सूत्रे च यत्र कुत्रापि अनन्तानन्तकं गृह्यते तत्र सर्वत्राजघन्योत्कृष्टं द्रष्टव्यम्। तदेवं प्ररूपितमनन्तानन्तकं, तत्प्ररूपणे च समाप्ता गणनसङ्ख्या ॥ अथ भावसङ्ख्यानिरूपणार्थमाह—'से किं तं भावसंखा'इत्यादि, इह सङ्ख्या(खा)शब्देन प्रागुक्तयुक्त्या शङ्खाः परिगृह्यन्ते, अत एव नामस्थापनादिबहुविचारविषयत्वात् सङ्ख्याप्रमाणात् गुणप्रमाणं पृथगुक्तम्, अन्यथा सङ्ख्याया अपि गुणत्वाद् गुणप्रमाणे एवान्तर्भावः स्यादिति । तत्र भावशङ्खस्वरूपं दर्शयितुमाह—'जे इमे'इत्यादि, ये इमे–प्रज्ञापकप्रत्यक्षा लोकप्रसिद्धा वा 'जीवाः' आयुःप्राणादिमन्तः 'शङ्खगतिनामगोत्राणि'इति शङ्खगतिनामगोत्रशब्देनेह शङ्खप्रायोग्यं तिर्यग्गतिनाम गृह्यते, तस्य चोपलक्षणार्थत्वाद् द्वीन्द्रियजात्यौदारिकशरीराङ्गोपाङ्गादीन्यपि गृह्यन्ते, ततश्च शङ्खप्रायोग्यं तिर्यग्गत्यादिनामकर्म नीचैर्गोत्रलक्षणं गोत्रकर्म च विपाकतो वेदयन्ति ये जीवास्त एते भावशङ्खाः प्रोच्यन्ते, तदेवं समाप्तं सङ्ख्याप्रमाणम्, अतो निगमयति—'से तं संखप्पमाणे'त्ति, तत्समाप्तौ चावसितं भावप्रमाणमित्याह—'से तं भावप्पमाणे'त्ति,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मुद्रणदोषात् सूत्रक्रमांक '१४९' स्थाने सूत्रक्रमांक '१५०' इति मुद्रितं

प्रत सूत्रांक [१५१]

दीप अनुक्रम [३१८]

एतदवसाने च निःशेषितं प्रमाणद्वारमित्युपसंहरति—'से तं पमाणे'त्ति । प्रमाणद्वारं समाप्तम् ॥ १५० ॥ अथ क्रमप्राप्तं वक्तव्यताद्वारं निरूपयितुमाह—

से किं तं वत्तव्वया?, २ तिविहा पण्णत्ता, तंजहा–ससमयवत्तव्वया परसमयवत्तव्वया ससमयपरसमयवत्तव्वया । से किं तं ससमयवत्तव्वया?, २ जत्थ णं ससमए आघविज्जइ पण्णविज्जइ परूविज्जइ दंसिज्जइ निदंसिज्जइ उवदंसिज्जइ, से तं ससमयवत्तव्वया । से किं तं परसमयवत्तव्वया?, २ जत्थ णं परसमए आघविज्जइ जाव उवदंसिज्जइ, से तं परसमयवत्तव्वया । से किं तं ससमयपरसमयवत्तव्वया?, २ जत्थ णं ससमए परसमए आघविज्जइ जाव उवदंसिज्जइ, से तं ससमयपरसमयवत्तव्वया। इआणीं को णओ कं वत्तव्वयं इच्छइ?; तत्थ णेगमसंगहववहारा तिविहं वत्तव्वयं इच्छंति, तंजहा–ससमयवत्तव्वयं परसमयवत्तव्वयं ससमयपरसमयवत्तव्वयं, उज्जुसुओ दुविहं वत्तव्वयं इच्छइ, तंजहा–ससमयवत्तव्वयं परस-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अथ 'वक्तव्यता' व्याख्यायते

प्रत सूत्रांक [१५१]

दीप अनुक्रम [३१८]

मयवत्तव्वयं, तत्थ णं जा सा ससमयवत्तव्वया सा ससमयं पविट्ठा, जा सा परसमयवत्तव्वया सा परसमयं पविट्ठा, तम्हा दुविहा वत्तव्वया, नत्थि तिविहा वत्तव्वया, तिण्णि सद्दणया एगं ससमयवत्तव्वयं इच्छंति, नत्थि परसमयवत्तव्वया, कम्हा?, जम्हा परसमए अणट्ठे अहेऊ असब्भावे अकिरिए उम्मग्गे अणुवएसे मिच्छादंसणमिति-कट्टु, तम्हा सव्वा ससमयवत्तव्वया, णत्थि परसमयवत्तव्वया णत्थि ससमयपरसमयवत्तव्वया । से तं वत्तव्वया (सू० १५१)

तत्राध्ययनादिषु प्रत्यवयवं यथासम्भवं प्रतिनियतार्थकथनं वक्तव्यता, इयं च त्रिविधा–स्वसमयादिभेदात्, तत्र यस्यां णमिति वाक्यालङ्कारे स्वसमयः–स्वसिद्धान्तः आख्यायते यथा–पञ्च अस्तिकायाः, तद्यथा–धर्मास्तिकाय इत्यादि, तथा प्रज्ञाप्यते यथा–गतिलक्षणो धर्मास्तिकाय इत्यादि, तथा प्ररूप्यते यथा–स एवासङ्ख्यातप्रदेशात्मकादिस्वरूपः, तथा दर्श्यते दृष्टान्तद्वारेण यथा मत्स्यानां गत्युपष्टम्भकं जलमित्यादि, तथा निर्दिश्यते उपनयद्वारेण यथा–तथैवैषोऽपि जीवपुद्गलानां गत्युपष्टम्भक इत्यादि, तदेवं दिग्मात्रप्रदर्शनेन व्याख्यातमिदं, सूत्राविरोधतोऽन्यथाऽपि व्याख्येयमिति । सेयं स्वसमयवक्तव्यता, परसमयवक्तव्यता तु

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१५१]

दीप अनुक्रम [३१८]

यस्यां परसमय आख्यायत इत्यादि, यथा सूत्रकृदङ्गप्रथमाध्ययने "संति पञ्च महब्भूया, इहमेगेसि आहिया। पुढवी आऊ तेऊ (य), वाऊ आगासपंचमा ॥ १ ॥ एए पंच महब्भुया, तेब्भो एगोत्ति आहिया। अह तेसिं विणासेणं, विणासो होइ देहिणो ॥ २ ॥" इत्यादि, अस्य च श्लोकद्वयस्य सूत्रकृद्वृत्तिकारलिखित एवायं भावार्थः–'एकेषां' नास्तिकानां स्वकीयासेन 'आहितानि' आख्यातानि 'इह' लोके 'सन्ति' विद्यन्ते पञ्च समस्तलोके व्यापकत्वान्महाभूतानि, तान्येवाह—'पृथिवी'त्यादि, पञ्चभूतव्यतिरिक्तजीवनिषेधार्थमाह—'एए पंचे'त्यादि 'एतानि' अनन्तरोक्तानि पृथिव्यादीनि यानि पञ्च महाभूतानि 'तेभ्य' इति तेभ्यः–कायाकारपरिणतेभ्यः 'एकः' कश्चिच्चिद्रूपो भूताव्यतिरिक्तः आत्मा भवति, न तु भूतव्यतिरिक्तः परलोकयायीत्येवं ते 'आहिय'त्ति आख्यातवन्तः, अथ तेषां भूतानां विनाशेन देहिनो–जीवस्य विनाशो भवति, तदव्यतिरिक्तत्वादेवेत्येवं लोकायतमतप्रतिपादनपरत्वात् परसमयवक्तव्यतेयमुच्यते, आख्यायते इत्यादिपदानां तु विभागः पूर्वोक्तानुसारेण स्वबुद्ध्या कार्यः। सेयं परसमयवक्तव्यता। स्वसमयपरसमयवक्तव्यता पुनर्यत्र स्वसमयः परसमयश्च आख्यायते, यथा—'आगारमावसंता वा, आरण्णा वावि पव्वया। इमं दरिसणमावन्ना, सव्वदुक्खा विमुच्चई ॥ १ ॥"त्यादि, व्याख्या—'आगारं' गृहं तत्रावसन्तो गृहस्था इत्यर्थः 'आरण्या वा' तापसादयः 'पव्वइय'त्ति प्रव्रजिताश्च शाक्यादयः, 'इदम्' अस्मदीयं मतमापन्ना–आश्रिताः सर्वदुःखेभ्यो विमुच्यन्त इत्येवं

१ विद्यादगारमागारमिति द्विरूपकोशात्.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१५१]

दीप अनुक्रम [३१८]

यदा साङ्ख्यादयः प्रतिपादयन्ति तदेवं (यं) परसमयवक्तव्यता, यदा तु जैनास्तदा स्वसमयवक्तव्यता, ततश्चासौ स्वसमयपरसमयवक्तव्यतोच्यते। अथ वक्तव्यतामेव नयैर्विचारयन्नाह—'इआणिं को नओ'इत्यादि, अत्र नैगमव्यवहारौ त्रिविधामपि वक्तव्यतामिच्छतः, नैगमस्यानेकगमत्वाद्व्यवहार[पर]स्य तु लोकव्यवहारपरत्वात्, लोके च सर्वप्रकाराणां रूढत्वादिति भावः, ऋजुसूत्रस्तु विशुद्धतरत्वादाद्यामेव द्विविधां वक्तव्यतामिच्छति, स्वपरसमयवक्तव्यतानभ्युपगमे युक्तिमाह—'तत्थ णं जा सा'इत्यादि, तृतीयवक्तव्यताभेदे याऽसौ स्वसमयवक्तव्यता गीयते सा स्वसमयं प्रविष्टा, कोऽर्थः?–प्रथमे वक्तव्यताभेदे अन्तर्भूता इत्यर्थः, या तु परसमयवक्तव्यता सा परसमयं प्रविष्टा, द्वितीये वक्तव्यताभेदे अन्तर्भाविता इत्यर्थः, ततश्चोभयरूपवक्तव्यतायाः प्रस्तुतनयमतेऽसत्त्वात् द्विविधैव वक्तव्यता न त्रिविधेति भावः। सङ्ग्रहस्तु सामान्यवादिनैगमान्तर्गतत्वेन विवक्षितत्वात् सूत्रगतिवैचित्र्याद्वा न पृथगुक्त इति। त्रयः शब्दनयाः–शब्दसमभिरूढैवंभूताः शुद्धतमत्वादेकां स्वसमवक्तव्यतामिच्छन्ति, नास्ति परसमयवक्तव्यता इति मन्यन्ते, कस्मादित्याह–यस्मात् परसमयोऽनर्थः, इत्यादि, इत्थं चेह योजना कार्या–नास्ति परसमयवक्तव्यता, परसमयस्यानर्थत्वादित्यादि, अनर्थत्वं परसमयस्य नास्त्येवात्मेत्यनर्थप्रतिपादकत्वाद्, आत्मनो नास्तित्वस्य चानर्थत्वमात्माभावे तत्प्रतिषेधानुपपत्तेः, उक्तं च—"[1]जो चिंतेइ सरीरे नत्थि अहं स एव होइ जीवोत्ति। न हु जीवंमि असंते संसयउप्पायओ अण्णो

१ यश्चिन्तयति शरीरे नास्म्यहं स एव भवति जीव इति। नैव जीवेऽसति संशयोत्पादकोऽन्यः ॥ १ ॥

Jain Education Inte For Private & Personal Use Only melibrary.org

प्रत सूत्रांक [१५१]

दीप अनुक्रम [३१८]

॥ १ ॥" इत्याद्यन्यदप्यभ्यूह्यम् । अहेतुत्वं च परसमयस्य हेत्वाभासबलेन प्रवृत्तेः, यथा नास्त्येवात्मा अत्यन्तानुपलब्धेः, हेत्वाभासश्चायं, ज्ञानादेस्तद्गुणस्योपलब्धेः, उक्तं च—"[1]नाणाईण गुणाणं अणुभवओ होइ जंतुणो सत्ता । जह रूवाइगुणाणं उवलंभाओ घडाईण ॥ १ ॥" मित्यादि प्रागेवोक्तमिति, असद्भावत्वं चैकान्तक्षणभङ्गासद्भूतार्थाभिधायकत्वाद्, एकान्तक्षणभङ्गादेश्चासद्भूतत्वं युक्तिविरोधात्, तथाहि—"[2]धम्माधम्मुवएसो कयाकयं परभवाइगमणं च । सव्वावि हु लोयठिई न घडइ एगंतखिणयम्मी ॥ १ ॥"त्यादि, अक्रियात्वं चैकान्तशून्यताप्रतिपादनात्, सर्वशून्यतायां च क्रियावतोऽभावेन क्रियाया असम्भवाद्, उक्तं च —"[3]सव्वं सुन्नंति जयं पडिवन्नं जेहि तेऽवि वत्तव्वा । सुन्नाभिहाणकिरिया कत्तुरभावेण कह घडई ॥ १ ॥"-त्यादि, उन्मार्गत्वं परस्परविरोधस्थाण्वाद्याकुलत्वात्, तथाहि—"न हिंस्यात् सर्वभूतानि, स्थावराणि चराणि च । आत्मवत्सर्वभूतानि, यः पश्यति स धार्मिकः ॥ १ ॥" इत्याद्यभिधाय पुनरपि "षट् सहस्राणि युज्यन्ते, पशूनां मध्यमेऽहनि । अश्वमेधस्य वचनान्यूनानि पशुभिस्त्रिभिः ॥ १ ॥" इत्यादि प्रतिपादयन्तीति, अनुपदेशित्वं चैकान्तक्षणभङ्गादिवादिनामहितेऽपि प्रवर्तकत्वात्, तदुक्तम्—"सर्वं क्षणिकमित्येतद्, ज्ञात्वा को न प्रवर्तते ? । विषयादौ विपाको मे, न भावीति विनिश्चयाद् ॥ १ ॥" इत्यादि, यतश्चैवं ततो मिथ्यादर्शनं, तत-

१ ज्ञानादीनां गुणानामनुभवाज्जन्तोः सत्ता । यथा रूपादिगुणानामुपलम्भाद् घटादीनाम् ॥ २ ॥ २ धर्माधर्मोपदेशः कृताकृतं परभवगमनादिकं च । सर्वोऽपि लोकस्थितिर्न घटत एकान्तक्षणिके ॥ १ ॥ ३ सर्वं शून्यं जगदिति प्रतिपन्नं यैस्तेऽपि वक्तव्याः । शून्याभिधानक्रिया कर्तुरभावे कथं घटते ? ॥ १ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१५१]

दीप अनुक्रम [३१८]

श्रमिथ्यादर्शनमितिकृत्वा नास्ति परसमयवक्तव्यतेति वर्तते, एवं साङ्ख्यादिसमयानामप्यनर्थत्वादियोजना स्वबुद्ध्या कार्येति। तस्मात् सर्वा स्वसमयवक्तव्यतैव, लोके प्रसिद्धानपि परसमयान् स्यात्पदलाञ्छननिरपेक्षतया दुर्नयत्वादसत्त्वेनैते नयाः प्रतिपद्यन्त इति भावः, स्यात्पदलाञ्छनसापेक्षतायां तु स्वसमयवक्तव्यताऽन्तर्भाव एव, प्रोक्तं च महामतिना—"नयास्तव स्यात्पदलाञ्छिता इमे, रसोपविद्धा इव लोहधातवः। भवन्त्यभिप्रेतगुणा यतस्ततो, भवन्तमार्याः प्रणता हितैषिणः ॥ १ ॥" इत्यादि, सेयं वक्तव्यतेति निगमनं ॥ वक्तव्यता समाप्ता ॥ १५१ ॥ साम्प्रतमर्थाधिकारावसरः—

से किं तं अत्थाहिगारे?, २ जो जस्स अज्झयणस्स अत्थाहिगारो, तंजहा–सावज्जजोगविरई उक्कित्तण गुणवओ य पडिवत्ती। खलियस्स निंदणा वणतिगिच्छ गुणधारणा चेव ॥ १ ॥ से तं अत्थाहिगारे (सू० १५२)

तत्र यो यस्य सामायिकाद्यध्ययनस्यात्मीयोऽर्थस्तदुत्कीर्तनमर्थाधिकारस्य विषयः, तच्च 'सावज्जजोगविरई'-त्यादिगाथावसरे प्रागेव कृतमिति न पुनः प्रतन्यत इति। वक्तव्यतार्थाधिकारयोस्त्वयं भेदः–अर्थाधिकारोऽध्ययने आदिपदादारभ्य सर्वपदेष्वनुवर्तते, पुद्गलास्तिकाये प्रतिपरमाणु मूर्तत्ववत्, वक्तव्यता तु देशादिनियतेति ॥ १५२ ॥ अथ समवतारं निरूपयितुमाह—

१ विभो प्र. २ विद्धा पा०.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१५३] + गाथा ||१|| दीप अनुक्रम [३२२--३२४]

से किं तं समोआरे?, २ छव्विहे पण्णत्ते, तंजहा–णामसमोआरे ठवणासमोआरे द-व्वसमोआरे खेत्तसमोआरे कालसमोआरे भावसमोआरे । नामठवणाओ पुव्वं व-ण्णिआओ जाव से तं भविअसरीरदव्वसमोआरे । से किं तं जाणयसरीरभविअस-रीरवइरित्ते दव्वसमोआरे?, २ तिविहे पण्णत्ते, तंजहा–आयसमोआरे परसमोआरे तदुभयसमोआरे, सव्वदव्वावि णं आयसमोआरेणं आयभावे समोअरंति, परसमो-आरेणं जहा कुंडे बदराणि, तदुभयसमोआरेणं जहा घरे खंभो आयभावे अ, जहा घडे गीवा आयभावे अ, अहवा जाणयसरीरभवियसरीरवइरित्ते दव्वसमोआरे दु-विहे पण्णत्ते, तंजहा–आयसमोआरे अ तदुभयसमोआरे अ । चउसट्ठिआ आयसमो-आरेणं आयभावे समोयरइ, तदुभयसमोआरेणं बत्तीसिआए समोअरइ आयभावे अ, बत्तीसिआ आयसमोआरेणं आयभावे समोयरइ तदुभयसमोयारेणं सोलसियाए समोयरइ आयभावे अ, सोलसिआ आयसमोआरेणं आयभावे समोअरइ, तदुभय-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१५३] + गाथा ॥१॥ दीप अनुक्रम [३२२--३२४]

समोआरेणं अट्ठभाइआए समोअरइ आयभावे अ, अट्ठभाइआ आयसमोआरेणं आयभावे समोअरइ तदुभयसमोआरेणं चउभाइआए समोअरइ आयभावे अ, चउभाइया आयसमोआरेणं आयभावे समोअरइ, तदुभयसमोआरेणं अद्धमाणीए समोअरइ आयभावे अ, अद्धमाणी आयसमोआरेणं आयभावे समोअरइ, तदुभयसमोआरेणं माणीए समोअरइ आयभावे अ, से तं जाणयसरीरभविअसरीरवइरित्ते दव्वसमोआरे । से तं नोआगमओ दव्वसमोआरे । से तं दव्वसमोआरे ।

समवतरणं–वस्तूनां स्वपरोभयेष्वन्तर्भावचिन्तनं समवतारः, स च नामादिभेदात् षोढा, तत्र नामस्थापने सुचर्चिते, एवं द्रव्यसमवतारोऽपि द्रव्यावश्यकादिवदभ्यूह्य वक्तव्यः, यावद् ज्ञशरीरभव्यशरीरव्यतिरिक्तो द्रव्यसमवतारस्त्रिविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा–आत्मसमवतार इत्यादि, तत्र सर्वद्रव्याण्यप्यात्मसमवतारेण चिन्त्यमानान्यात्मभावे–स्वकीयस्वरूपे समवतरन्ति–वर्तन्ते, तद्व्यतिरिक्तत्वात्तेषां, व्यवहारतस्तु परसमवतारेण परभावे समवतरन्ति, यथा कुण्डे बदराणि, निश्चयतः सर्वाण्यपि वस्तूनि प्रागुक्तयुक्त्या स्वात्मन्येव वर्तन्ते, व्यवहारतस्तु स्वात्मनि आधारे च कुण्डादिके वर्तन्त इति भावः, तदुभयसमवतारेण तदुभये वस्तूनि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१५३] + गाथा ॥१॥

दीप अनुक्रम [३२२--३२४]

वर्तन्ते, यथा कटकुड्यदेहलीपट्टादिसमुदायात्मके गृहे स्तम्भो वर्तते आत्मभावे च, तथैव दर्शनादिति, एवं बुध्नोदरकपालात्मके घटे ग्रीवा वर्तते आत्मभावे चेति, आह–यद्येवमशुद्धं तदा परसमवतारो नास्त्येव, कुण्डादौ वृत्तानामपि बदरादीनां स्वात्मनि वृत्तेर्विद्यमानत्वात्, सत्यं, किन्तु तत्र स्वात्मनि वृत्तिविवक्षामकृत्वैव तथोपन्यासः कृतो, वस्तुवृत्त्या तु द्विविध एव समवतारः, अत एवाह—अथवा ज्ञशरीरभव्यशरीरव्यतिरिक्तो द्रव्यसमवतारो द्विविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा–आत्मसमवतारस्तदुभयसमवतारश्च, अशुद्धस्य परसमवतारस्य काप्यसम्भवात्, न हि स्वात्मन्यवर्तमानस्य वान्ध्येयस्येव परस्मिन् समवतारो युज्यत इति भावः, पूर्वं चात्मवृत्तिविवक्षामात्रेणैव त्रैविध्यमुक्तमित्यभिहितं। 'चउसट्ठिआ आयसमोआरेण'मित्यादि सुबोधमेव, नवरं चतुःषष्टिका चतुष्पलमाना पूर्वं निर्णीता, ततश्चैषा लघुप्रमाणत्वादष्टपलमानत्वेन बृहत्प्रमाणायां द्वात्रिंशतिकायां समवतरतीति प्रतीतमेव, एवं द्वात्रिंशतिकाऽपि षोडशपलमानायां षोडशिकायां षोडशिकाऽपि द्वात्रिंशत्पलमानायामष्टभागिकायाम् अष्टभागिकाऽपि चतुःषष्टिपलमानायां चतुर्भागिकायां चतुर्भागिकाऽप्यष्टाविंशत्यधिकशतपलमानायामर्द्धमाणिकायां एषाऽपि षट्पञ्चाशदधिकपलशतद्वयमानायां माणिकायां समवतरति, आत्मसमवतारस्तु सर्वत्र प्रतीत एव। समाप्तो द्रव्यसमवतारः, अथ क्षेत्रसमवतारं विभणिषुराह—'से किं तं खेत्तसमोआरे'इत्यादि, इह भरतादीनां लोकपर्यन्तानां क्षेत्रविभागानां यथापूर्वं लघुप्रमाणस्य यथोत्तरं बृहत्क्षेत्रे समवतारो भावनीयः,

अनु: ४२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१५३] + गाथा ॥१॥

दीप अनुक्रम [३२२--३२४]

से किं तं खेत्तसमोआरे?, २ दुविहे पं०, तं०–आयसमोआरे अ तदुभयसमोआरे अ, भरहे वासे आयस० आयभावे स०, तदुभयसमोआरेणं जंबूद्दीवे समो० आयभावे अ, जंबूद्दीवे आयसमो० आयभावे समोअरइ, तदुभयसमोआरेणं तिरियलोए समोयरइ आयभावे अ, तिरियलोए आयसमोआरेणं आयभावे समोअरइ, तदुभयसमोआरेणं लोए समोअरइ आयभावे अ, से तं खेत्तसमोआरे । से किं तं कालसमोआरे?, २ दुविहे पण्णत्ते, तंजहा–आयसमोआरे अ तदुभयसमोआरे अ, समए आयसमोआरेणं आयभावे समोयरइ, तदुभयसमोआरेणं आवलिआए समोयरइ आयभावे अ, एवमाणापाणू थोवे लवे मुहुत्ते अहोरत्ते पक्खे मासे ऊऊ अयणे संवच्छरे जुगे वाससए वाससहस्से वाससयसहस्से पुव्वंगे पुव्वे तुडिअंगे तुडिए अडडंगे अडडे अववंगे अववे हूहूअंगे हूहूए उप्पलंगे उप्पले पउमंगे पउमे णलिणंगे णलिणे

१ इतः 'लोए आयसमोआरेण आयभावे समोयरइ, तदुभयसमोआरेणं अलोए समोयरइ आयभावे अ इत्यधिकं प्र.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१५३] + गाथा ||१|| दीप अनुक्रम [३२२--३२४]

अच्छनिउरंगे अच्छनिउरे अउअंगे अउए नउअंगे नउए पउअंगे पउए चूलिअंगे चूलिआ सीसपहेलिअंगे सीसपहेलिआ पलिओवमे सागरोवमे आयसमोआरेणं आयभावे स० तदुभयसमोआरेणं ओसप्पिणीउस्सप्पिणीसु समोयरइ आयभावे अ, ओसप्पिणीउस्सप्पिणीओ आयसमोआरेणं आयभावे०, तदुभयस० पोग्गलपरिअट्टे समो० आयभावे अ, पोग्गलपरिअट्टे आयसमोआरेणं आयभावे समोयरइ तदुभयस० तीतद्धाअणागतद्धासु समोयरइ आय०, तीतद्धाअणागतद्धाउ आयस० आयभावे० तदुभयसमोआरेणं सव्वद्धाए समोयरइ आयभावे अ। से तं कालसमोआरे। से किं तं भावसमोआरे?, २ दुविहे पण्णत्ते, तं०–आय० तदुभयस०, कोहे आय० आयभावे स०, तदु० माणे समो० आयभावे अ, एवं माणे माया लोभे रागे मोहणिज्जे अट्ठ कम्मपयडीओ आयसमोआरेणं आयभावे समोअरइ तदुभयसमोआरेणं छव्विहे भावे समोयरइ आयभावे अ, एवं छव्विहे भावे, जीवे जीवत्थिकाए आय-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१५३] + गाथा ॥१॥

दीप अनुक्रम [३२२--३२४]

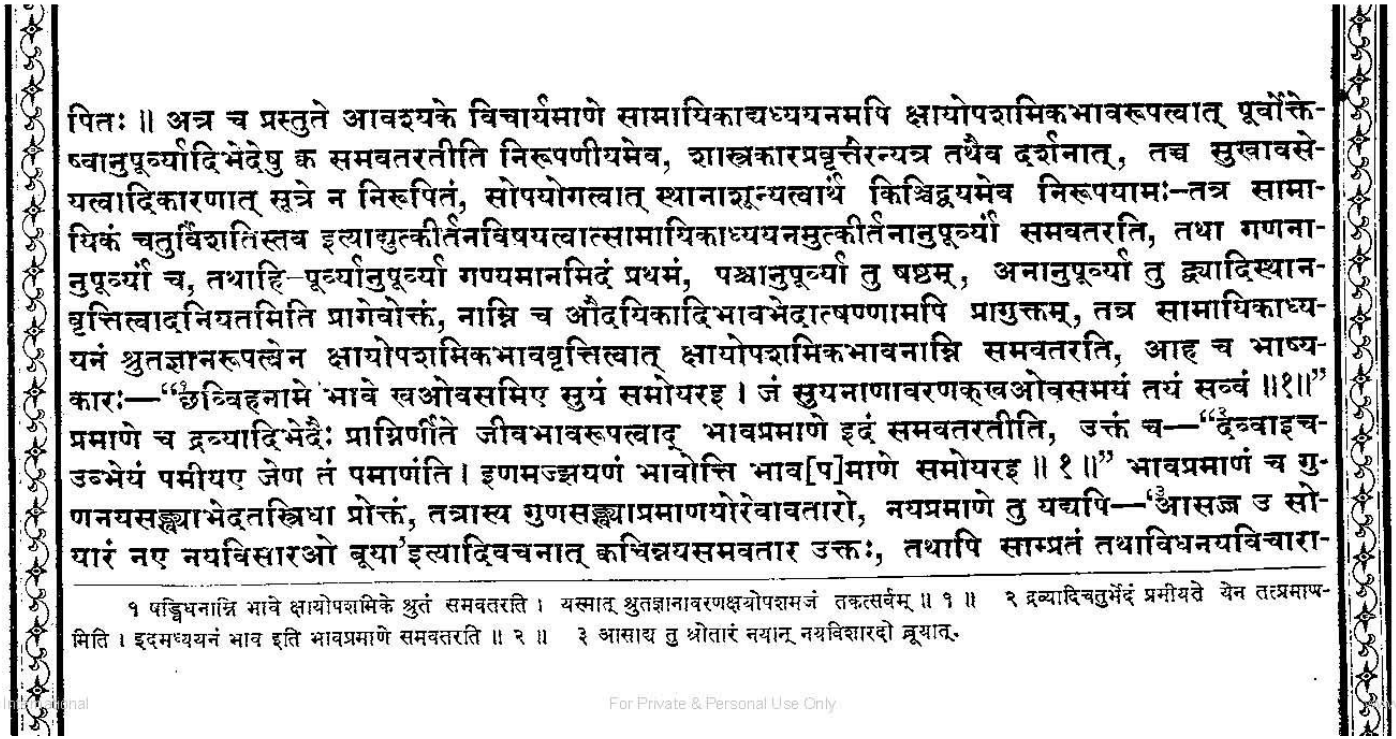
समोआरेणं आयभावे समोयरइ तदुभयसमोआरेणं सव्वदव्वेसु समोअरई आयभावे अ । एत्थ संगहणीगाहा–कोहे माणे माया लोभे रागे य मोहणिज्जे अ । पगडी भावे जीवे जीवत्थिकाय दव्वा य ॥ १ ॥ से तं भावसमोआरे । से तं समोआरे । से तं उवक्कमे । उवक्कम इति पढमं दारं (सू० १५३)

एवं कालसमवतारेऽपि समयादेः कालविभागस्य लघुत्वादावलिकादौ बृहति कालविभागे समवतारः सुबोध एव, आत्मसमवतारस्तु सर्वत्र स्पष्ट एव, अथ भावसमवतारं विवक्षुराह—से किं तं भावसमोआरेत्यादि, इहौदयिकभावरूपत्वात् क्रोधादयो भावसंमवतारेऽधिकृताः, तत्राहङ्कारमन्तरेण कोपासम्भवान्मानवानेव किल कुप्यतीति कोपस्य माने समवतार उक्तः, क्षपणकाले च मानदलिकं मायायां प्रक्षिप्य क्षपयतीति मानस्य मायायां समवतारः, मायादलिकमपि क्षपणकाले लोभे प्रक्षिप्य क्षपयतीति मायाया लोभे समवतारः, एवमन्यदपि कारणं परस्परान्तर्भावेऽभ्यूह्य सुधिया वाच्यं, लोभात्मकत्वात्तु रागस्य लोभो रागे समवतरति, रागोऽपि मोहभेदत्वान्मोहे, मोहोऽपि कर्मप्रकारत्वादष्टसु कर्मप्रकृतिषु, कर्मप्रकृतयोऽप्यौदयिकौपशमिकादिभाववृत्तित्वात् षट्सु भावेषु, भावा अपि जीवाश्रितत्वाज्जीवे, जीवोऽपि जीवास्तिकायभेदत्वात् जीवास्तिकाये, जीवास्तिकायोऽपि द्रव्यभेदत्वात्समस्तद्रव्यसमुदाये समवतरतीति, तदेष भावसमवतारो निरू-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१५३] + गाथा ॥१॥

दीप अनुक्रम [३२२--३२४]



पितः ॥ अत्र च प्रस्तुते आवश्यके विचार्यमाणे सामायिकाध्ययनमपि क्षायोपशमिकभावरूपत्वात् पूर्वोक्तेष्वानुपूर्व्यादिभेदेषु क्व समवतरतीति निरूपणीयमेव, शास्त्रकारप्रवृत्तेरन्यत्र तथैव दर्शनात्, तच्च सुखावसेयत्वादिकारणात् सूत्रे न निरूपितं, सोपयोगत्वात् स्थानाशून्यत्वार्थं किञ्चिद्वयमेव निरूपयामः–तत्र सामायिकं चतुर्विंशतिस्तव इत्यादुत्कीर्तनविषयत्वात्सामायिकाध्ययनमुत्कीर्तनानुपूर्व्यां समवतरति, तथा गणनानुपूर्व्यां च, तथाहि–पूर्व्यानुपूर्व्या गण्यमानमिदं प्रथमं, पश्चानुपूर्व्या तु षष्ठम्, अनानुपूर्व्या तु द्व्यादिस्थानवृत्तित्वादनियतमिति प्रागेवोक्तं, नाम्नि च औदयिकादिभावभेदात्षण्णामपि प्राग्उक्तम्, तत्र सामायिकाध्ययनं श्रुतज्ञानरूपत्वेन क्षायोपशमिकभाववृत्तित्वात् क्षायोपशमिकभावनाम्नि समवतरति, आह च भाष्यकारः—"[1]छव्विहनामे भावे खओवसमिए सुयं समोयरइ । जं सुयनाणावरणक्खओवसमयं तयं सव्वं ॥१॥" प्रमाणे च द्रव्यादिभेदैः प्राग्निर्णीते जीवभावरूपत्वाद् भावप्रमाणे इदं समवतरतीति, उक्तं च—"[2]दव्वाइचउब्भेयं पमीयए जेण तं पमाणंति । इणमज्झयणं भावोत्ति भाव[प]माणे समोयरइ ॥ १ ॥" भावप्रमाणं च गुणनयसङ्ख्याभेदतस्त्रिधा प्रोक्तं, तत्रास्य गुणसङ्ख्याप्रमाणयोरेवावतारो, नयप्रमाणे तु यद्यपि—"[3]आसज्ज उ सोयारं नए नयविसारओ बूया'इत्यादिवचनात् क्वचिन्नयसमवतार उक्तः, तथापि साम्प्रतं तथाविधनयविचारा-

१ षड्विधनाम्नि भावे क्षायोपशमिके श्रुतं समवतरति । यस्मात् श्रुतज्ञानावरणक्षयोपशमजं तत्सर्वम् ॥ १ ॥ २ द्रव्यादिचतुर्भेदं प्रमीयते येन तत्प्रमाणमिति । इदमध्ययनं भाव इति भावप्रमाणे समवतरति ॥ २ ॥ ३ आसाद्य तु श्रोतारं नयान् नयविशारदो ब्रूयात्.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१५३] + गाथा ॥१॥

दीप अनुक्रम [३२२--३२४]

भावाद्वस्तुवृत्त्याऽनवतार एव, यत इदमप्युक्तम्—"[1]मूढनइयं सुयं कालियं तु न नया समोयरंति इह" मित्यादि, महामतिनाऽप्युक्तम्—"[2]मूढनयं तु न संपई नयप्पमाणावआरो से" त्ति, गुणप्रमाणमपि जीवाजीवगुणभेदतो द्विधा प्रोक्तं, तत्रास्य जीवोपयोगरूपत्वाज्जीवगुणप्रमाणे समवतारः, तस्मिन्नपि ज्ञानदर्शनचारित्रभेदत्रयात्मके अस्य ज्ञानरूपतया ज्ञानप्रमाणेऽवतारः, तत्रापि प्रत्यक्षानुमानोपमानागमभेदाच्चतुर्विधे प्रकृताध्ययनस्योपदेशरूपतया आगमेऽन्तर्भावः, तस्मिन्नपि लौकिकलोकोत्तरभेदभिन्ने परमगुरुप्रणीतत्वेन लोकोत्तरिके तत्रापि आत्मागमानन्तरागमपरम्परागमभेदतस्त्रिविधेऽप्यस्य समवतारः, सङ्ख्याप्रमाणेऽपि नामादिभेदभिन्ने प्रागुक्ते परिमाणसङ्ख्यायामस्यावतारः, वक्तव्यतायामपि स्वसमयवक्तव्यतायामिदमवतरति, यत्रापि परोभयसमयवर्णनं क्रियते तत्रापि निश्चयतः स्वसमयवक्तव्यतैव, परोभयसमययोरपि सम्यग्दृष्टिपरिगृहीतत्वेन स्वसमयत्वात्, सम्यग्दृष्टिर्हि परसमयमपि विषयविभागेन योजयति नत्वेकान्तपक्षनिक्षेपेणेत्यतः सर्वोऽपि तत्परिगृहीतः स्वसमय एव, अत एव परमार्थतः सर्वाध्ययनानामपि स्वसमयवक्तव्यतायामेवावतारः, तदुक्तम्—"[3]परसमओ उभयं वा सम्मद्दिट्ठिस्स ससमओ जेणं । तो सव्वऽज्झयणाइं ससमयवत्तव्वनियताइं ॥ १ ॥"

१ मूढनयिकं श्रुतं कालिकं तु न नयाः समवतरन्तीह. २ मूढनयं तु न सम्प्रति नयप्रमाणावतारस्तस्य. ३ परसमय उभयं वा सम्यग्दृष्टेः स्वसमयो येन । ततः सर्वाण्यध्ययनानि स्वसमयवक्तव्यतानियतानि ॥ १ ॥

॥ २४९ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१५४] + गाथा: ॥--॥

दीप अनुक्रम [३२५--३३६]

एवं चतुर्विंशतिस्तवादिष्वपि वाच्यमित्यलमतिविस्तरेणेति समासः समवतारः, तत्समर्थने च समासं प्रथमसुपक्रमद्वारम् ॥ १५३ ॥ अथ निक्षेपद्वारं निरूपयितुमाह—

से किं तं निक्खेवे?, २ तिविहे पण्णत्ते, तंजहा–ओहनिप्फण्णे नामनिप्फण्णे सुत्तालावगनिप्फण्णे । से किं तं ओहनिप्फण्णे?, २ चउव्विहे पण्णत्ते, तंजहा–अज्झयणे अज्झीणे आए खवणा । से किं तं अज्झयणे?, २ चउव्विहे पण्णत्ते, तंजहा–णामज्झयणे ठवणज्झयणे दव्वज्झयणे भावज्झयणे, णामट्ठवणाओ पुव्वं वण्णिआओ, से किं तं दव्वज्झयणे?, २ दुविहे पण्णत्ते, तंजहा–आगमओ अ णोआगमओ अ । से किं तं आगमओ दव्वज्झयणे?, २ जस्स णं अज्झयणत्ति पयं सिक्खियं ठियं जियं मियं परिजियं जाव एवं जावइआ अणुवउत्ता आगमओ तावइआइं दव्वज्झयणाइं, एवमेव ववहारस्सवि, संगहस्स णं एगो वा अणेगो वा जाव, से तं आगमओ दव्वज्झयणे । से किं तं णोआगमओ दव्वज्झयणे?, २ तिविहे पण्णत्ते,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१५४] + गाथा: ॥--॥ दीप अनुक्रम [३२५--३३६]

तंजहा–जाणयसरीरदव्वज्झयणे भविअसरीरदव्वज्झयणे जाणयसरीरभविअसरीरवइरित्ते द० । से किं तं जाणग०?, २ अज्झयणपयत्थाहिगारजाणयस्स जं सरीरं ववगयचुअचाविअचत्तदेहं जीवविप्पजढं जाव अहो णं इमेणं सरीरसमुस्सएणं जिणदिट्ठेणं भावेणं अज्झयणेत्तिपयं आघवियं जाव उवदंसियं, जहा को दिट्ठंतो?–अयं घयकुंभे आसी अयं महुकुंभे आसी, से तं जाणयसरीरदव्वज्झयणे । से किं तं भविअसरीरदव्वज्झयणे?, २ जे जीवे जोणिजम्मणनिक्खंते इमेणं चेव आदत्तएणं सरीरसमुस्सएणं जिणदिट्ठेणं भावेणं अज्झयणेत्तिपयं सेअकाले सिक्खिस्सइ न ताव सिक्खइ, जहा को दिट्ठंतो?–अयं महुकुंभे भविस्सइ अयं घयकुंभे भविस्सइ, से तं भविअसरीरदव्वज्झयणे । से किं तं जाणयसरीरभविअसरीरवइरित्ते दव्वज्झयणे?, २ पत्तयपोत्थयलिहियं, से तं जाणयसरीरभविअसरीरवइरित्ते दव्वज्झयणे । से तं णोआगमओ दव्वज्झयणे । से तं दव्वज्झयणे से । किं तं भावज्झयणे?, २ दुविहे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१५४] + गाथा: ॥--॥ दीप अनुक्रम [३२५--३३६]

पण्णत्ते, तंजहा–आगमओ अ णोआगमओ अ । से किं तं आगमओ भावज्झयणे ?, २ जाणए उवउत्ते, से तं आगमओ भावज्झयणे । से किं तं नोआगमओ भावज्झयणे ?, २–अज्झप्पस्साणयणं कम्माणं अवचओ उवचिआणं । अणुवचओ अ नवाणं तम्हा अज्झयणमिच्छंति ॥ १ ॥ से तं णोआगमओ भावज्झयणे । से तं भावज्झयणे, से तं अज्झयणे ।

निक्षेपः–पूर्वोक्तशब्दार्थस्त्रिविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा–ओघनिष्पन्न इत्यादि, तत्रौघः–सामान्यमध्ययनादिकं श्रुताभिधानं तेन निष्पन्नः ओघनिष्पन्नः, नाम–श्रुतस्यैव सामायिकादिविशेषाभिधानं तेन निष्पन्नो नामनिष्पन्नः, सूत्रालापकाः–'करेमि भंते! सामाइअ'मित्यादिकास्तैर्निष्पन्नः सूत्रालापकनिष्पन्नः । एतदेव भेदत्रयं विवरीषुराह–'से किं तं ओहनिष्फण्णे'इत्यादि, ओघनिष्पन्नश्चतुर्विधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा–अध्ययनम् अक्षीणम् आयः क्षपणा, एतानि चत्वार्यपि सामायिकचतुर्विंशतिस्तवादिश्रुतविशेषाणां सामान्यनामानि, यथा (यदेव) हि सामायिकमध्ययनमुच्यते तदेवाक्षीणं निगद्यते इदमेवाऽऽयः प्रतिपाद्यते एतदेव क्षपणाऽभिधीयते, एवं चतुर्विंशतिस्तवादिष्वप्यभिधानीयं । साम्प्रतमेतेषां चतुर्णामपि निक्षेपं प्रत्येकमभिधित्सुराह–'से किं तं अज्झयणे'-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१५४] + गाथा: ॥--॥ दीप अनुक्रम [३२५--३३६]

इत्यादि, नामस्थापनाद्रव्यभावभेदाच्चतुर्विधोऽध्ययनशब्दस्य निक्षेपः, तत्र नामादिविचारः सर्वोऽपि पूर्वोक्तद्रव्यावश्यकानुसारेण वाच्यो यावन्नोआगमतो भावाध्ययने 'अज्झप्पस्साणयण'मित्यादि गाथाव्याख्या, 'अज्झप्पस्स आणयणं' इह निरुक्तविधिना प्राकृतत्वाभाव्याच्च पकारस्सकारआकारणकारलक्षणमध्यगतवर्णचतुष्टयलोपे अज्झयणमिति भवति, अध्यात्मं–चेतस्तस्यानयनमध्ययनमुच्यते इति भावः, आनीयते च सामायिकाद्यध्ययने शोभनं चेतः, अस्मिन् सत्यशुभकर्मप्रबन्धविघटनात्, अत एवाह–कर्मणामुपचितानां–प्रागुपनिबद्धानां यतोऽपचयो–ह्रासोऽस्मिन् सति संपद्यते, नवानां चानुपचयः–अबन्धो यतस्तस्मादिदं यथोक्तशब्दार्थप्रतिपत्तेः अज्झयणं प्राकृतभाषायामिच्छन्ति सूरयः, संस्कृते त्विदमध्ययनमुच्यत इति, सामायिकादिकं चाध्ययनं ज्ञानक्रियासमुदायात्मकं, ततश्चागमस्यैकदेशवृत्तित्वान्नोशब्दस्य च देशवचनत्वात् नोआगमतो अध्ययनमिदमुक्तमिति गाथार्थः॥ 'से त'मित्यादि निगमनत्रयम् ॥ उक्तमध्ययनम्, अथाक्षीणनिक्षेपं विवक्षुराह—

से किं तं अज्झीणे?, २ चउव्विहे पण्णत्ते, तंजहा–णामज्झीणे ठवणज्झीणे दव्वज्झीणे भावज्झीणे । नामठवणाओ पुव्वं वण्णिआओ, से किं तं दव्वज्झीणे?, २ दुविहे पण्णत्ते, तंजहा–आगमओ अ नोआगमओ अ । से किं तं आगमओ दव्वज्झीणे?, २ जस्स णं अज्झीणेत्तिपयं सिक्खियं जियं मियं परिजियं जाव से तं आ-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१५४] + गाथा: ||--||

दीप अनुक्रम [३२५--३३६]

गमओ दव्वज्झीणे। से किं तं नोआगमओ दव्वज्झीणे?, २ तिविहे पण्णत्ते, तंजहा –जाणयसरीरदव्वज्झीणे भविअसरीरदव्वज्झीणे जाणयसरीरभविअसरीरवइरित्ते दव्वज्झीणे। से किं तं जाणयसरीरदव्वज्झीणे?, २ अज्झीणपयत्थाहिगारजाणयस्स जं सरीरयं ववगयचुयचाविअचत्तदेहं जहा दव्वज्झयणे तहा भाणिअव्वं, जाव से तं जाणयसरीरदव्वज्झीणे। से किं तं भविअसरीरदव्वज्झीणे?, २ जे जीवे जोणिजम्मणनिक्खंते जहा दव्वज्झयणे, जाव से तं भविअसरीरदव्वज्झीणे। से किं तं जाणयसरीरभविअसरीरवइरित्ते दव्वज्झीणे?, २ सव्वागाससेढी, से तं जाणयसरीरभविअसरीरवइरित्ते दव्वज्झीणे। से तं नोआगमओ दव्वज्झीणे, से तं दव्वज्झीणे। से किं तं भावज्झीणे?, २ दुविहे पण्णत्ते, तंजहा–आगमओ अ नोआगमओ अ। से किं तं आगमओ भावज्झीणे?, २ जाणए उवउत्ते, से तं आगमओ भावज्झीणे। से किं तं नोआगमओ भावज्झीणे? २–जह दीवा दीवसयं पइप्पए दिप्पए अ सो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१५४] + गाथा: ॥--॥ दीप अनुक्रम [३२५--३३६]

दीवो । दीवसमा आयरिया दिप्पंति परं च दीवंति ॥ १ ॥ से तं नोआगमओ भावज्झीणे । से तं भावज्झीणे, से तं अज्झीणे ।

अत्रापि तथैव विचारो यावत् 'सव्वागाससेढि'त्ति सर्वाकाशं–लोकालोकनभःस्वरूपं तस्य सम्बन्धिनी श्रेणिः प्रदेशापहारतोऽपह्रियमाणाऽपि न कदाचित् क्षीयते अतो ज्ञशरीरभव्यशरीरव्यतिरिक्तद्रव्याक्षीणतया प्रोच्यते, द्रव्यता चास्याऽऽकाशद्रव्यान्तर्गतत्वादिति । 'से किं तं आगमओ भावज्झीणे?, २ जाणए उवउत्ते' अत्र वृद्धा व्याचक्षते–यस्माच्चतुर्दशपूर्वविदः आगमोपयुक्तस्यान्तर्मुहूर्तमात्रोपयोगकाले येऽर्थोपलम्भोपयोगपर्यायास्ते प्रतिसमयमेकैकापहारेणानन्ताभिरप्युत्सर्पिण्यवसर्पिणीभिर्नापह्रियन्ते अतो भावाक्षीणतेहावसेया, नोआगमतस्तु भावाक्षीणता शिष्येभ्यः सामायिकादिश्रुतप्रदानेऽपि स्वात्मन्यनाशादिति, एतदेवाह—'जह दीवा'-गाहा, व्याख्या–यथा दीपाद् अवधिभूतादीपशतं प्रदीप्यते–प्रवर्तते, स च मूलभूतो दीपः तथापि दीप्यते–तेनैव रूपेण प्रवर्तते, न तु स्वयं क्षयमुपयाति, प्रकृते सम्बन्धयन्नाह—एवं दीपसमा आचार्या दीप्यन्ते–स्वयं विवक्षितश्रुतयुक्तत्वेन तथैवावतिष्ठन्ते, परं च–शिष्यवर्गं दीपयन्ति–श्रुतसम्पदं लम्भयन्ति, अत्र च नोआगमतो भावाक्षीणता श्रुतदायकाचार्योपयोगस्यागमत्वाद्वाक्काययोगयोश्चानागमत्वान्नोशब्दस्य मिश्रवचनत्वाद्भावनीयेति वृद्धा व्याचक्षते इति गाथार्थः ॥ अथाऽऽयनिक्षेपं कर्तुमाह—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१५४] + गाथा: ॥--॥ दीप अनुक्रम [३२५--३३६]

से किं तं आए?, २ चउव्विहे पं०, तं०–नामाए ठवणाए दव्वाए भावाए, नामठवणाओ पुव्वं भणिआओ, से किं तं दव्वाए?, २ दुविहे पं०, तं०–आगमओ अ नोआगमओ अ। से किं तं आगमओ दव्वाए?, २ जस्स णं आयत्तिपयं सिक्खियं ठियं जियं मियं परिजियं जाव कम्हा?, अणुवओगो दव्वमितिकट्टु, नेगमस्स णं जावइआ अणुवउत्ता आगमओ तावइआ ते दव्वाया, जाव से तं आगमओ दव्वाए। से किं तं नोआगमओ दव्वाए?, २ तिविहे पं०, तं०–जाणयसरीरदव्वाए भविअसरीरदव्वाए जाणयसरीरभविअसरीरवइरित्ते दव्वाए। से किं तं जाणयसरीरदव्वाए?, २ आयपयत्थाहिगारजाणयस्स जं सरीरयं ववगयचुअचाविअचत्तदेहं जहा दव्वज्झयणे, जाव से तं जाणयसरीरदव्वाए । से किं तं भविअसरीरदव्वाए?, २ जे जीवे जोणिजम्मणणिक्खंते जहा दव्वज्झयणे जाव से तं भविअसरीरदव्वाए । से किं तं जाणयसरीरभविअसरीरवइरित्ते दव्वाए?, २ तिविहे पण्णत्ते, तंजहा–लोइए कुप्पा-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१५४] + गाथा: ॥--॥ दीप अनुक्रम [३२५--३३६]

वयणिए लोगुत्तरिए । से किं तं लोइए ?, २ तिविहे पण्णत्ते, तंजहा–सचित्ते अचित्ते मीसए अ । से किं तं सचित्ते ?, २ तिविहे पण्णत्ते, तंजहा–दुपयाणं चउप्पयाणं अपयाणं, दुपयाणं दासाणं दासीणं चउप्पयाणं आसाणं हत्थीणं अपयाणं अंबाणं अंबाडगाणं आए, से तं सचित्ते। से किं तं अचित्ते ?, २ सुवण्णरययमणिमोत्तिअसंख-सिलप्पवालरत्तरयणाणं (संतसावएज्जस्स) आए, से तं अचित्ते । से किं तं मीसए ?, २ दासाणं दासीणं आसाणं हत्थीणं समाभरिआउज्जालंकियाणं आए, से तं मीसए, से तं लोइए । से किं तं कुप्पावयणिए ?, २ तिविहे पण्णते, तंजहा–सचित्ते अचित्ते मीसए अ, तिण्णिवि जहा लोइए, जाव से तं मीसए, से तं कुप्पावयणिए । से किं तं लोगुत्तरिए ?, २ तिविहे पं० तं०–सचित्ते अचित्ते मीसए अ । से किं तं सचित्ते ?, २ सीसाणं सिस्सणिआणं, से तं सचित्ते। से किं तं अचित्ते?, २ पडिग्गहाणं वत्थाणं कंबलाणं पायपुंछणाणं आए, से तं अचित्ते। से किं तं मीसए ?, २ सिस्साणं सिस्स-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१५४] + गाथा: ॥--॥ दीप अनुक्रम [३२५--३३६]

णिआणं सभंडोवगरणाणं आए, से तं मीसए, से तं लोगुत्तरिए, से तं जाणयसरीरभविअसरीरवइरित्ते दव्वाए, से तं नोआगमओ दव्वाए, से तं दव्वाए। से किं तं भावाए?, दुविहे पं०, तं०–आगमओ अ नोआगमओ अ। से किं तं आगमओ भावाए?, २ जाणए उवउत्ते, से तं आगमओ भावाए। से किं तं नोआगमओ भावाए?, २ दुविहे पं०, तं०–पसत्थे अ अपसत्थे अ। से किं तं पसत्थे?, २ तिविहे पं० तं०–णाणाए दंसणाए चरित्ताए, से तं पसत्थे। से किं तं अपसत्थे?, २ चउव्विहे पं० तं०–कोहाए माणाए मायाए लोहाए, से तं अपसत्थे। से तं णोआगमओ भावाए, से तं भावाए, से तं आए।

आयः प्राप्तिर्लाभ इत्यनर्थान्तरम्, अस्यापि नामादिभेदभिन्नस्य विचारः सूत्रसिद्ध एव, यावत् 'से किं तं अचित्ते?, २ सुवण्णे'त्यादि, लौकिकोऽचित्तस्य सुवर्णादेरायो मन्तव्यः, तत्र सुवर्णादीनि प्रतीतानि 'सिल'त्ति शिला मुक्ताशैलराजपट्टादीनां, रक्तरत्नानि–पद्मरागरत्नानि 'संतसावएज्जस्स'त्ति सद्–विद्यमानं स्वापतेयं–

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१५४] + गाथा: ॥--॥ दीप अनुक्रम [३२५--३३६]

द्रव्यं तस्याऽऽयः, 'समाभरियाउज्जालंकियाणं'ति आ(समा)भरितानां–सुवर्णसङ्कलिकादिभूषितानां आतोद्यैर्झल्लरीप्रमुखैरलङ्कृतानाम् ॥ अथ क्षपणानिक्षेपं विवक्षुराह—

से किं तं झवणा ?, २ चउव्विहा पण्णत्ता, तंजहा–नामज्झवणा ठवणज्झवणा दव्वज्झवणा भावज्झवणा । नामठवणाओ पुव्वं भणिआओ । से किं तं दव्वज्झवणा ?, २ दुविहा पण्णत्ता, तंजहा–आगमओ अ नोआगमओ अ । से किं तं आगमओ दव्वज्झवणा ?, २ जस्स णं झवणेतिपयं सिक्खियं ठियं जियं मियं परिजिअं जाव से तं आगमओ दव्वज्झवणा। से किं तं नोआगमओ दव्वज्झवणा ?, २ तिविहा पण्णत्ता, तंजहा–जाणयसरीरदव्वज्झवणा भविअसरीरदव्वज्झवणा जाणयसरीरभविअसरीरवइरित्ता दव्वज्झवणा। से किं तं जाणय० ?, २ झवणापयत्थाहिगारजाणयस्स जं सरीरयं ववगयचुअ० सेसं जहा दव्वज्झयणे, जाव से तं जाणय० । से किं तं भवि० दव्व० ?, २ जे जीवे जोणिजम्मणणिक्खंते सेसं जहा दव्वज्झयणे, जाव से तं भवि-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१५४] + गाथा: ||--||

दीप अनुक्रम [३२५--३३६]

असरीरदव्वज्झवणा । से किं तं जाणयसरीरभविअसरीरवइरित्ता दव्वज्झवणा?, २ जहा जाणयसरीरभविअसरीरवइरित्ते दव्वाए तहा भाणिअव्वा, जाव से तं मीसिआ, से तं लोगुत्तरिआ, से तं जाणयसरीरभविअसरीरवइरित्ता दव्वज्झवणा, से तं नोआगमओ दव्वज्झवणा, से तं दव्वज्झवणा । से किं तं भावज्झवणा?, २ दुविहा पण्णत्ता, तंजहा–आगमओ अ णोआगमओ अ । से किं तं आगमओ भावज्झवणा?, २ जाणए उवउत्ते, से तं आगमओ भावज्झवणा । से किं तं णोआगमओ भावज्झवणा?, २ दुविहा पण्णत्ता, तंजहा–पसत्था य अपसत्था य । से किं तं पसत्था?, २ तिविहा पण्णत्ता, तंजहा–नाणज्झवणा दंसणज्झवणा चरित्तज्झवणा, से तं पसत्था । से किं तं अपसत्था?, २ चउव्विहा पण्णत्ता, तंजहा–कोहज्झवणा माणज्झवणा मायज्झवणा लोहज्झवणा, से तं अपसत्था । से तं नोआगमओ भावज्झवणा, से तं भावज्झवणा, से तं झवणा, से तं ओहनिप्फण्णे ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१५४] + गाथा: ॥--॥ दीप अनुक्रम [३२५--३३६]

क्षेपणा अपचयो निर्जरा इति पर्यायाः, शेषं सूत्रसिद्धमेव, यावदोघनिष्पन्नो निक्षेपः समाप्तः । सर्वत्र चेह भावे विचार्येऽध्ययनमेवायोजनीयम् ॥ अथ नामनिष्पन्ननिक्षेपमाह—

से किं तं नामनिप्फण्णे?, २ सामाइए, से समासओ चउव्विहे पं०, तं०–णामसामाइए ठवणासामाइए दव्वसामाइए भावसामाइए । णामठवणाओ पुव्वं भणिआओ । दव्वसामाइएवि तहेव, जाव से तं भविअसरीरदव्वसामाइए । से किं तं जाणयसरीरभविअसरीरवइरित्ते दव्वसामाइए?, २ पत्तयपोत्थयलिहियं, से तं जाणयसरीरभविअसरीरवइरित्ते दव्वसामाइए, से तं णोआगमओ दव्वसामाइए, से तं दव्वसामाइए । से किं तं भावसामाइए?, २ दुविहे पं०, तं०–आगमओ अ नोआगमओ अ । से किं तं आगमओ भावसामाइए?, २ जाणए उवउत्ते, से तं आगमओ भावसामाइए । से किं तं नोआगमओ भावसामाइए?, २–जस्स सामाणिओ अप्पा, संजमे णिअमे तवे । तस्स सामाइअं होइ, इइ केवलिभासिअं ॥ १ ॥ जो समो स-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१५४] + गाथा: ||--||

दीप अनुक्रम [३२५--३३६]

व्वभूएसु, तसेसु थावरेसु अ । तस्स सामाइयं होइ, इइ केवलिभासिअं ॥ २ ॥ जह मम ण पिअं दुक्खं जाणिअ एमेव सव्वजीवाणं । न हणइ न हणावेइ अ सममणइ तेण सो समणो ॥ ३ ॥ णत्थि य से कोइ वेसो पिओ अ सव्वेसु चेव जीवेसु । एएण होइ समणो एसो अन्नोऽवि पज्जाओ ॥ ४ ॥ उरगगिरिजलणसागरनहतलतरुगणसमो अ जो होइ । भमरमियधरणिजलरुहरविपवणसमो अ सो समणो ॥ ५ ॥ तो समणो जइ सुमणो भावेण य जइ ण होइ पावमणो । सयणे अ जणे अ समो समो अ माणावमाणेसु ॥ ६ ॥ से तं नोआगमो भावसामाइए, से तं भावसामाइए, से तं सामाइए, से तं नामनिप्फण्णे ।

इहाध्ययनाक्षीणाद्यपेक्षया सामायिकमिति वैशेषिकं नाम, इदं चोपलक्षणं चतुर्विंशतिस्तवादीनाम्, अस्यापि पूर्वोक्तशब्दार्थस्य सामायिकस्य नामस्थापनाद्रव्यभावभेदाच्चतुर्विधो निक्षेपः, अत एवाह–'से समासओ चउव्विहे' इत्यादि, सूत्रसिद्धमेव, यावत् 'जस्स सामाणिओ अप्पा' इत्यादि, यस्य–सत्त्वस्य सामानिकः–

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१५४] + गाथा: ॥--॥ दीप अनुक्रम [३२५--३३६]

सन्निहित आत्मा सर्वकालं व्यापारात् क?–संयमे–मूलगुणरूपे नियमे–उत्तरगुणसमूहात्मके तपसि–अनशनादौ तस्येत्थंभूतस्य सामायिकं भवतीत्येतत्केवलिभाषितमिति श्लोकार्थः ॥ 'जो समो' इत्यादि, यः समः–सर्वत्र मैत्रीभावात्तुल्यः 'सर्वभूतेषु' सर्वजीवेषु त्रसेषु स्थावरेषु च तस्य सामायिकं भवतीत्येतदपि केवलिभाषितं, जीवेषु च समत्वं संयमसान्निध्यप्रतिपादनात्पूर्वश्लोकेऽपि लभ्यते, किन्तु जीवदयामूलत्वाद्धर्मस्य तत्प्राधान्यख्यापनाय पृथगुपादानमिति। यत एव हि सर्वभूतेषु समोऽत एव साधुः समणो भण्यते इति भावं दर्शयन्नाह—'जह मम' गाहा, व्याख्या–यथा 'मम' स्वात्मनि हननादिजनितं दुःखं न प्रियं एवमेव सर्वजीवानां तन्नाभीष्टमिति 'ज्ञात्वा' चेतसि भावयित्वा समस्तानपि जीवान्न हन्ति स्वयं, नाप्यन्यैर्घातयति, चशब्दात् घ्नतश्चान्यान्न समनुजानीत इत्यनेन प्रकारेण सममणतित्ति–सर्वजीवेषु तुल्यं वर्तते यतस्तेनासौ समण इति गाथार्थः ॥ तदेवं सर्वजीवेषु समत्वेन सममणतीति समण इत्येकः पर्यायो दर्शितः, एवं समं मनोऽस्येति समना इत्यन्योऽपि पर्यायो भवत्येवेति दर्शयन्नाह—'णत्थि य से' गाहा, व्याख्या–नास्ति च 'से' तस्य कश्चिद् द्वेष्यः प्रियो वा, सर्वेष्वपि जीवेषु सममनस्त्वाद् , अनेन भवति समं मनोऽस्येति निरुक्तविधिना समना इत्येषोऽन्योऽपि पर्याय इति गाथार्थः ॥ तदेवं पूर्वोक्तप्रकारेण सामायिकवतः साधोः स्वरूपं निरूप्य प्रकारान्तरेणाऽपि तन्निरूपणार्थमाह—'उरग'गाहा, स श्रमणो भवतीति सर्वत्र संबध्यते, यः कथंभूतो भवतीत्याह–उरगः–सर्पस्तत्समः परकृताश्रयनिवासादिति, एवं समशब्दोऽपि सर्वत्र योज्यते, तथा गिरिसमः परीषहोपसर्ग-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१५४] + गाथा: ॥--॥ दीप अनुक्रम [३२५--३३६]

निष्प्रकम्पत्वात्, ज्वलनसमः तपस्तेजोमयत्वात्, तृणादिष्विव[1] सूत्रार्थेष्वतृप्तेः, सागरसमो गम्भीरत्वाद् ज्ञानादिरत्नाकरत्वात् स्वमर्यादानतिक्रमाच्च, नभस्तलसमः सर्वत्र निरालम्बनत्वात्, तरुगणसमः सुखदुःखयोरदर्शितविकारत्वात्, भ्रमरसमोऽनियतवृत्तित्वात्, मृगसमः संसार[3]भयोद्विग्नत्वात्, धरणिसमः सर्वखेदसहिष्णुत्वात्, जलरुहसमः कामभोगो[4]द्भवत्वेऽपि पङ्कजलाभ्यामिव तदूर्ध्ववृत्तेः, रविसमः धर्मा[5]स्तिकायादिलोकमधिकृत्याविशेषेण प्रकाशकत्वात्, पवनसमश्च सर्वत्राप्रतिबद्धत्वात्, स एवंभूतः श्रमणो भवतीति गाथार्थः ॥ यथोक्तगुणविशिष्टश्च श्रमणस्तदा भवति यदा शोभनं मनो भवेदिति दर्शयति—'तो समणो'गाहा, व्याख्या–ततः श्रमणो यदि द्रव्यमन आश्रित्य सुमना भवेत्, 'भावेन च' भावमनश्चाश्रित्य यदि न भवति पापमनाः, सुमनस्त्वचिह्नान्येव श्रमणगुणत्वेन दर्शयति–स्वजने च–पुत्रादिके जने च–सामान्ये समो–निर्विशेषः मानापमानयोश्च सम इति गाथार्थः ॥ इह च ज्ञानक्रियारूपं सामायिकाध्ययनं नोआगमतो भावसामायिकं भवत्येव, ज्ञानक्रियासमुदाये आगमस्यैकदेशवृत्तित्वात्, नोशब्दस्य च देशवचनत्वाद्, एवं च सति सामायिकवतः साधोरपीह नोआगमतो भावसामायिकत्वेनोपन्यासो न विरुध्यते, सामायिकतद्वतोरभेदोपचारादिति भावः ॥ नामनिष्पन्नो निक्षेपः समाप्तः ॥ अथ सूत्रालापकनिष्पन्नं निक्षेपं निर्दिदिक्षुराह—

१ नास्तीदं प्र. २ गुणरत्नपरिपूर्णत्वाद् ज्ञानादिगुणैरगाधत्वाद्वा स्व० प्र. ३ संसारं प्रति नित्योद्विग्नत्वात् प्र. ४ सर्वसहत्वात् प्र. ५ निष्पङ्कत्वात् पङ्कजलस्थानीयकामभोगोपरिवृत्तेरित्यर्थः प्र. ६ तमोविघातकत्वात् प्र.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१५४] + गाथा: ॥--॥ दीप अनुक्रम [३२५--३३६]

से किं तं सुत्तालावगनिप्फण्णे ?, २ इआणिं सुत्तालावयनिप्फण्णं निक्खेवं इच्छावेइ से अ पत्तलक्खणेऽवि ण णिक्खिवप्पइ, कम्हा ?, लाघवत्थं, अत्थि इओ तइए अणुओगदारे अणुगमेत्ति, तत्थ णिक्खित्ते इहं णिक्खित्ते भवइ, इहं वा णिक्खित्ते तत्थ णिक्खित्ते भवइ, तम्हा इहं ण णिक्खिवप्पइ तहिं चेव निक्खिवप्पइ, से तं निक्खेवे (सू० १५४)

अथ कोऽयं सूत्रालापकनिष्पन्नो निक्षेपः ?, 'करोमि भदन्त ! सामायिकं' इत्यादीनां सूत्रालापकानां नामस्थापनादिभेदभिन्नो यो न्यासः स सूत्रालापकनिष्पन्नो निक्षेप इति शेषः, 'इयाणि'मित्यादि, स चेदानीं सूत्रालापकनिष्पन्नो निक्षेप एष इत्यवसरप्राप्तत्वादित्थमात्मानं प्रतिपादयितुं वाञ्छामुत्पादयति, स च प्राप्तलक्षणोऽपि–प्राप्ततत्स्वरूपाभिधानसमयोऽपि न निक्षिप्यते–न सूत्रालापकनिक्षेपद्वारेणाभिधीयते, कस्मादित्याह–लाघवार्थं, तदेव लाघवं दर्शयति–अस्ति अतोऽग्रे तृतीयमनुयोगद्वारमनुगम इति, तत्र च निक्षिप्तः सूत्रालापकसमूह इह निक्षिप्तो भवति, इह वा निक्षिप्तस्तत्र निक्षिप्तो भवति, तस्मादिह न निक्षिप्यते, तत्रैव निक्षेप्स्यत इति, आह–यद्येवमत्रैव निक्षिप्यते न पुनस्तत्रेत्यपि कस्मान्नोच्यते ?, नैवं, यतः सूत्रानुगमे एव सूत्रमुच्चारयिष्यते, नात्र, न च सूत्रोच्चारणमन्तरेण तदालापकानां निक्षेपो युक्तः, ततो युक्तमुक्तं—'तस्मादिह न निक्षिप्यते इत्यादि' । पुनरप्याह–यद्येवं किमर्थं सूत्रालापकनिक्षेपस्य अत्रोपन्यासः ?, उच्यते, निक्षेप-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१५५] + गाथा: ॥१-२॥

दीप अनुक्रम [३३७--३४०]

साम्यमात्रादित्यलं विस्तरेण ॥ निक्षेपलक्षणं द्वितीयमनुयोगद्वारं समाप्तम् ॥ १५४ ॥ अथ तृतीयमनुयोगद्वारं निरूपयितुमाह—

से किं तं अणुगमे?, २ दुविहे पण्णत्ते, तंजहा–सुत्ताणुगमे अ निज्जुत्तिअणुगमे अ । से किं तं निज्जुत्तिअणुगमे?, २तिविहे पण्णत्ते, तंजहा–निक्खेवनिज्जुत्तिअणुगमे उवग्घायनिज्जुत्तिअणुगमे सुत्तप्फासिअनिज्जुत्तिअणुगमे । से किं तं निक्खेवनिज्जुत्तिअणुगमे?, २ अणुगए, से तं निक्खेवनिज्जुत्तिअणुगमे । से किं तं उवग्घायनिज्जुत्तिअणुगमे?, २ इमाहिं दोहिं मूलगाहाहिं अणुगंतव्वो, तंजहा–उद्देसे १ निद्देसे अ २ निग्गमे ३ खेत्त ४ काल ५ पुरिसे य ६ । कारण ७ पच्चय ८ लक्खण ९ नए १० समोआरणाणुमए ११ ॥ १ ॥ किं १२ कइविहं १३ कस्स १४ कहिं १५ केसु २६ कहं १७ किच्चिरं हवइ कालं १८? । कइ १९ संतर २० मविरहियं २१ भवा २२ गरिस २३ फासण २४ निरुत्ती २५ ॥ २ ॥ से तं उवग्घायनिज्जुत्तिअणुगमे ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१५५] + गाथा: ॥१-२॥

दीप अनुक्रम [३३७--३४०]

अनुगमः–पूर्वोक्तशब्दार्थः, स च द्विधा–सूत्रानुगमः–सूत्रव्याख्यानमित्यर्थः, 'निर्युक्त्यनुगमश्च' नितरां युक्ताः –सूत्रेण सह लोलीभावेन सम्बद्धा निर्युक्ता–अर्थास्तेषां युक्तिः–स्फुटरूपतापादनम् एकस्य युक्तशब्दस्य लोपान्निर्युक्तिः–नामस्थापनादिप्रकारैः सूत्रविभजनेत्यर्थः, तद्रूपोऽनुगमस्तस्या वा अनुगमो–व्याख्यानं निर्युक्त्यनुगमः, स च त्रिविधो–निक्षेपो–नामस्थापनादिभेदभिन्नः तस्य तद्विषया वा निर्युक्तिः–पूर्वोक्तशब्दार्थो निक्षेपनिर्युक्तिः, तद्रूपस्तस्या वाऽनुगमो निक्षेपनिर्युक्त्यनुगमः। तथा उपोद्घननं–व्याख्येयस्य सूत्रस्य व्याख्याविधिसमीपीकरणमुपोद्घातस्तस्य तद्विषया वा निर्युक्तिस्तद्रूपस्तस्या वा अनुगमः उपोद्घातनिर्युक्त्यनुगमः, तथा सूत्रं स्पृशतीति सूत्रस्पर्शिका सा चासौ निर्युक्तिश्च सूत्रस्पर्शिकनिर्युक्तिः। सूत्रनिक्षेपनिर्युक्त्यनुगमोऽनुगतो वक्ष्यते च, इदमुक्तं भवति–अत्रैव प्रागावश्यकसामायिकादिपदानां नामस्थापनादिनिक्षेपद्वारेण यद्व्याख्यानं कृतं तेन निक्षेपनिर्युक्त्यनुगमोऽनुगतः–प्रोक्तो द्रष्टव्यः, सूत्रालापकानां नामादिनिक्षेपप्रस्तावे पुनर्वक्ष्यते च। उपोद्घातनिर्युक्त्यनुगमस्त्वाभ्यां द्वाभ्यां द्वारगाथाभ्यामनुगन्तव्यः, तद्यथा—'उद्देसे'गाहा 'किं कइविहं'गाहा, व्याख्या–उद्देशनमुद्देशः–सामान्याभिधानरूपो, यथा अध्ययनमिति, वक्तव्य इति सर्वत्र क्रिया द्रष्टव्या, तथा निर्देशनं निर्देशो–विशेषाभिधानं, यथा सामायिकमिति, अत्राह–ननु सामान्यविशेषाभिधानद्वयं निक्षेपद्वारे प्रोक्तमेव, तत्किमितीह पुनरुच्यते?, नैतदेवं, यतोऽत्र सिद्धस्यैव तत्र तस्य निक्षेपमात्राभिधानं कृतमित्यदोषः। तथा निर्गमनं–निर्गमः, कुतः सामायिकं निर्गतमित्येवंरूपो वक्तव्यः, तथा क्षेत्रकालौ च ययोः

Jain Education Inter... For Private & Personal Use Only ...elibrary.org

प्रत सूत्रांक [१५५] + गाथा: ||१-२||

दीप अनुक्रम [३३७--३४०]

सामायिकमुत्पन्नं तौ वक्तव्यौ, यद्वक्ष्यत्यावश्यके—"वइसाहसुद्धएक्कारसीए पुव्वण्हदेसकालंमि । महसेणवणुज्जाणे अणंतर परंपरं सेसं ॥ १ ॥"[1]ति तथा कुतः पुरुषात्तन्निर्गतमिति वक्तव्यं, तथा केन कारणेन गौतमादयः सामायिकं भगवतः समीपे शृण्वन्तीत्येवंरूपं कारणं वाच्यं, यदभिधास्यति—"गोयमाई[2] सामाइयं तु किं कारणं निसामिंती'त्यादि, तथा प्रत्याययतीति प्रत्ययः, केन प्रत्ययेन भगवतेदमुपदिष्टं?, केन वा प्रत्ययेन गणधरास्तेनोपदिष्टं तच्छृण्वन्तीत्येतद्वक्तव्यमित्यर्थः, तथा च वक्ष्यति—"केवलनाणिंत्ति[3] अहं अरिहा सामाइयं परिकहेई । तेसिंपि पचओ खलु सव्वन्नू तो निसामिंति ॥ १ ॥"[3]त्ति, तथा सम्यक्त्वसामायिकस्य तत्त्वश्रद्धानं लक्षणं, श्रुतसामायिकस्य जीवादिपरिज्ञानं, चारित्रसामायिकस्य सावद्यविरतिः, देशविरतिसामायिकस्य तु विरत्यविरतिस्वरूपं मिश्रं लक्षणं, निर्देक्ष्यति च—"सद्दहण जाणणा खलु विरई मीसं च लक्खणं कहए'[4]इत्यादि, एवं नैगमादयो नया वाच्याः, तेषां च नयानां समवतरणं समवतारो यत्र संभवति तत्र दर्शनीयो, यतो निवेदयिष्यति—"मूढनइयं[5] सुयं कालियं तु न नया समोअरंति इहं । अपुहुत्ते समोयारो नत्थि पुहुत्ते समोयारो ॥ १ ॥" इत्यादि, तथा कस्य व्यवहारादेः किं सामायिकमनुमतमित्यभिधानीयं, भणिष्यति च—

१ वैशाखशुक्लैकादश्यां पूर्वाह्णदेशकाले । महासेनवनोद्याने अनन्तरं परम्परं शेषमिति ॥ १ ॥ २ गौतमादयः सामायिकं तु किं कारणं निशाम्यन्ति. ३ केवलज्ञानीत्यहमर्हन् सामायिकं परिकथयति । तेषामपि प्रत्ययः खलु सर्वज्ञः ततो निशाम्यन्ति ॥ १ ॥ ४ श्रद्धानं ज्ञानं खलु विरतिर्मिश्रं च लक्षणं कथयति. ५ मूढनयिकं श्रुतं कालिकं तु न नयाः समवतरन्तीह । अपृथक्त्वे समवतारो नास्ति पृथक्त्वे समवतारः ॥ १ ॥

अनु. ४४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१५५] + गाथा: ॥१-२॥

दीप अनुक्रम [३३७--३४०]

"तवसंजमो अणुमओ निग्गंथं पवयणं च ववहारो । सहुज्जुसुयाणं पुण निव्वाणं संजमो चेव ॥ १ ॥"त्ति, किं सामायिकमित्यत्र प्रत्युत्तरयिष्यति—"जीवो गुणपडिवण्णो णयस्स दव्वट्ठियस्स सामइय" मित्यादि, कतिविधं तदित्यत्र निर्वचनयिष्यति—"सामाइयं च तिविहं समत्त सुयं तहा चरित्तं चे'त्यादि, कस्य सामायिकमित्यत्राभिधास्यति—"जस्स सामाणिओ अप्पा'इत्यादि, क सामायिकमित्येतदपि—"खेत्तदिसकालगइभवियसण्णिउस्सासदिट्ठिमाहारे'इत्यादिना द्वारकपालेन निरूपयिष्यति, केषु सामायिकमित्यत्रोत्तरं सर्वद्रव्येषु, तथाहि—"सव्वगयं सम्मत्तं सुए चरित्ते न पज्जवा सव्वे । देसविरइं पडुच्चा दुण्हवि पडिसेहणं कुज्जा॥१॥"इति दर्शयिष्यति, कथं सामायिकमवाप्यत इत्यत्र—"माणुस्स खेत्त जाई कुलरूवारोग आउयं बुद्धी'त्यादि प्रतिपादयिष्यति, कियचिरं कालं तद्भवतीति चिन्तायामभिधास्यति—"सम्मत्तस्स सुयस्स य छावट्ठि सागरोवमाइ ठिइ । सेसाण पुव्वकोडी देसूणा होइ उक्कोसा ॥ १ ॥" 'कइ'त्ति कियन्तः सामायिकस्य युगपत् प्रतिपद्यमानकाः पूर्वप्रतिपन्ना वा लभ्यन्ते इति वक्तव्यं, भणिष्यति च—"सम्मत्तदेसविरया पलियस्स असंख-

१ तपःसंयमोऽनुमतो नैर्ग्रन्थं प्रवचनं च व्यवहारः । शब्दर्जुसूत्राणां पुनर्निर्वाणं संयमश्चैव ॥ १ ॥ २ जीवो गुणप्रतिपन्नो नयस्य द्रव्यार्थिकस्य सामायिकम्. ३ सामायिकं च त्रिविधं सम्यक्त्वं श्रुतं तथा चारित्रं च. ४ यस्य सामानिकः (सन्निहित) आत्मा. ५ क्षेत्रदिक्कालगतिभव्यसंज्ञ्युच्छ्वासदृष्ट्याहाराः. ६ सर्वगतं सम्यक्त्वं श्रुते चारित्रे न पर्यवाः सर्वे । देशविरतिं प्रतीत्य द्वयोरपि प्रतिषेधनं कुर्यात् ॥ १ ॥ ७ मानुष्यं क्षेत्रं जातिः कुलं रूपमारोग्यमायुर्बुद्धिः. ८ सम्यक्त्वस्य श्रुतस्य च षट्षष्टिः सागरोपमाणि स्थितिः । शेषयोः पूर्वकोटी देशोना भवत्युत्कृष्टा ॥ १ ॥ ९ सम्यक्त्वदेशविरतौ पल्यस्यासङ्ख्यभागमात्रास्तु.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१५५] + गाथा: ॥१-२॥

दीप अनुक्रम [३३७--३४०]

भागमेत्ता उ"इत्यादि, सहान्तरेण वर्तत इति सान्तरमिति विचारणायां निर्णेष्यति—"[1]कालमणंतं च सुए अद्धापरियट्टओ य देसूणो। आसायणबहुलाणं उक्कोसं अंतरं होइ ॥ १ ॥"त्ति, अविरहितं–निरन्तरं कियन्तं कालं सामायिकप्रतिपत्तारो लभ्यन्त इत्यत्रावेदयिष्यति–"[2]सम्मसुयअगारीणं आवलियअसंखभागमेत्ता उ। अट्ठसमया चरित्ते सव्वेसु जहण्णओ समओ ॥ १ ॥" इत्यादि, कियन्तो भवान् उत्कृष्टतस्तदवाप्यत इत्यत्र प्रतिवचनं दास्यति—"[3]सम्मत्तदेसविरया पलियस्स असंखभागमेत्ता उ। अट्ठभवा उ चरित्ते अणंतकालं च सुयसमए ॥ १ ॥" आकर्षणमाकर्षः–एकस्मिन्नानाभवेषु वा पुनः पुनः सामायिकस्य ग्रहणानि प्रतिपत्तय इति वाच्यं, तच्च वक्ष्यति—"तिण्हं सहसपुहुत्तं सयप्पुहुत्तं च होइ विरईए। एगभवे आगरिसा एवइया होंति नायव्वा ॥ १ ॥ तिण्ह सहस्समसंखा सहसपुहुत्तं च होइ विरईए। नाणाभवे आगरिसा एवइया हुंति नायव्वा ॥ २ ॥" इति, 'फासण'त्ति कियत् क्षेत्रं सामायिकवन्तः स्पृशन्तीत्यभिधानीयं, तच्चैवम्—"[4]सम्मत्त-चरणसहिया सव्वं लोगं फुसे निरवसेसं। सत्त य चउद्दसभाए पंच य सुयदेसविरईए ॥ १ ॥" इत्यादि,

१ कालोऽनन्तश्च श्रुते अर्धपरावर्तश्च देशोनः। आशातनाबहुलानामुत्कृष्टमन्तरं भवति ॥ १ ॥ २ सम्यक्त्वश्रुतागारिणामावलिकासङ्ख्यभागमात्रास्तु। अष्टसमयाश्चारित्रे सर्वेषु जघन्यतः समयः ॥ १ ॥ ३ सम्यक्त्वदेशविरताः पल्यस्यासङ्ख्यभागमात्रास्तु। अष्टभवाश्चारित्रेऽनन्तकालश्च श्रुतसमये ॥ १ ॥ ४ त्रयाणां सहस्रपृथक्त्वं शतपृथक्त्वं च भवति विरतौ। एकस्मिन् भवे आकर्षा एतावन्तो भवन्ति ज्ञातव्याः ॥ १ ॥ त्रयाणां सहस्रमसङ्ख्याः सहस्रपृथक्त्वं च भवति विरतौ। नानाभवेष्वाकर्षा एतावन्तो भवन्ति ज्ञातव्याः ॥ २ ॥ ५ सम्यक्त्वचरणसहिताः सर्वं लोकं स्पृशेन्निरवशेषम्। सप्त च चतुर्दशभागान् पञ्च च श्रुतदेशविरत्योः ॥ १ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१५५] + गाथा: ॥१-२॥

दीप अनुक्रम [३३७--३४०]

निश्चिता उक्तिर्निरुक्तिर्वक्तव्या, तत्र च—"सम्मदिट्ठि अमोहो सोही सब्भाव दंसणं बोही । अविवज्जओ सुदिट्ठित्ति एवमाइं निरुत्ताइ ॥ १ ॥" इत्यादि वक्ष्यति, एवं तावद्गाथाद्वयसंक्षेपार्थः, विस्तरार्थस्त्वावश्यकनिर्युक्तिटीकाभ्यामवसेय इति । तदेवंमेतद्गाथाद्वयव्याख्याने उपोद्घातनिर्युक्तिः समर्थिता भवति, अस्यां च प्रस्तुताध्ययनस्याशेषविशेषेषु विचारितेषु सत्सु सूत्रं व्याख्यानयोग्यतामानीतं भवति, ततः प्रत्यवयवं सूत्रव्याख्यानरूपायाः सूत्रस्पर्शकनिर्युक्तेरवसरः संपद्यते, सूत्रं च सूत्रानुगमे सत्येव भवति, सोऽप्यवसरप्राप्त एव, ततस्तमभिधित्सुराह—

से किं तं सुत्तप्फासिअनिज्जुत्तिअणुगमे ?, २ सुत्तं उच्चारेअव्वं अक्खलिअं अमिलिअं अवच्चामेलिअं पडिपुण्णं पडिपुण्णघोसं कंठोट्ठविप्पमुक्कं गुरुवायणोवगयं, तओ तत्थ णज्जिहिति ससमयपयं वा परसमयपयं वा बंधपयं वा मोक्खपयं वा सामाइअपयं वा णोसामाइअपयं वा, तओ तम्मि उच्चारिए समाणे केसिं च णं भगवंताणं केइ अत्थाहिगारा अहिगया भवन्ति, केइ अत्थाहिगारा अणहिगया भवन्ति, ततो तेसिं

१ सम्यग्दृष्टिरमोहः शोधिः सद्भावो दर्शनं बोधिः । अविपर्ययः सुदृष्टिरिति एवमादीनि निरुक्तानि ॥ १ ॥

Jain Education Int... For Private & Personal Use Only ...elibrary.org

प्रत सूत्रांक [१५५] + गाथा: ॥१-३॥

दीप अनुक्रम [३३७--३४२]

अणहिगयाणं अहिगमणट्ठाए पयं पएणं वन्नइस्सामि,–संहिया य पदं चेव, पयत्थो पयविग्गहो । चालणा य पसिद्धी अ, छव्विहं विद्धि लक्खणं ॥ १ ॥ से तं सुत्तप्फासियनिज्जुतिअणुगमे, से तं निज्जुत्तिअणुगमे, से तं अणुगमे (सू० १५५)

आह–ननु यदि यथोक्तनीत्या सूत्रानुगमे सत्येव सूत्रस्पर्शिकनिर्युक्त्या प्रयोजनं, तर्हि किमित्यसावुपोद्घातनिर्युक्त्यनन्तरमुपन्यस्ता?, यावता सूत्रानुगमं निर्दिश्य पश्चात्किमिति नोच्यते?, सत्यं, किन्तु निर्युक्तिसाम्यात्तत्प्रस्ताव एव निर्दिष्टेत्यदोषः । प्रकृतमुच्यते–तत्रास्खलितादिपदानां व्याख्या यथैव प्राग्द्रव्यावश्यकविचारे कृता तथैव द्रष्टव्या, अयं च सूत्रदोषपरिहारः शेषसूत्रलक्षणस्योपलक्षणं, तच्चेदम्—"अप्पग्गंथमहत्थं बत्तीसादोसविरहियं जं च । लक्खणजुत्तं सुत्तं, अट्ठहि य गुणेहि उववेयं ॥ १ ॥" अस्या व्याख्या–अल्पग्रन्थं च तत् महार्थं चेति समाहारद्वन्द्वः 'उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सदि'त्यादिवत्सूत्रमल्पग्रन्थं महार्थं च भवतीत्यर्थः, यच्च द्वात्रिंशद्दोषविरहितं तत्सूत्रं भवति, के पुनस्ते द्वात्रिंशद्दोषाः ये सूत्रे वर्जनीयाः?, उच्यते, "अलियमुवघायजणयं निरत्थयमवत्थयं छलं दुहिलं । निस्सारमहियमूणं पुणरुत्तं वाहयमजुत्तं ॥ १ ॥ कमभिन्नवयणभिन्नं विभत्तिभिन्नं च लिंगभिन्नं च । अणभिहियमपयमेव य सहावहीणं ववहियं च ॥ २ ॥ कालजतिच्छविदोसो समयविरुद्धं च वयणमित्तं च । अत्थावत्तीदोसो नेओ असमासदोसो य ॥ ३ ॥ उव-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१५५] + गाथा: ॥१-३॥

दीप अनुक्रम [३३७--३४२]

मोरूवगदोसो निद्देसपेयत्थसंधिदोसो य। एए अ सुत्तदोसा बत्तीसा हुंति नायव्वा ॥ ४ ॥" तत्राद्दतमभूतोद्भावनं भूतनिह्नवश्च, यथा ईश्वरकर्तृकं जगदित्याद्यभूतोद्भावनं, नास्त्यात्मेत्यादिकस्तु भूतनिह्नवः १, उपघातः सत्त्वघातादिः, तज्जनकं यथा वेदविहिता हिंसा धर्मायेत्यादि २, निरर्थकं यत्र वर्णानां क्रमनिर्देशमात्रमुपलभ्यते न त्वर्थो, यथा अआइईत्यादि डित्थादिवद्वा ३, असम्बद्धार्थकमपार्थकं यथा दश दाडिमानि षडपूपाः कुण्डमजाजिनं पललपिण्डस्त्वर कीटिके दिशमुदीचीमित्यादि ४, यत्रानिष्टस्यार्थान्तरस्य सम्भवतो विवक्षितार्थोपघातः कर्तुं शक्यते तच्छलं यथा–नवकम्बलो देवदत्त इत्यादि ५, जन्तूनामहितोपदेशकत्वेन पापव्यापारपोषकं दुहिलं यथा 'एतावानेव लोकोऽयं, यावानिन्द्रियगोचरः। भद्रे! वृकपदं पश्य, यद्वदन्त्यबहुश्रुताः ॥ १ ॥ पिब खाद च चारुलोचने!, यदतीतं वरगात्रि! तन्न ते। न हि भीरु! गतं निवर्तते, समुदयमात्रमिदं कलेवरम् ॥ २ ॥ इत्यादि ६, वेदवचनादिवत् तथाविधयुक्तिरहितं परिफल्गु निःसारं ७, अक्षरपदादिभिरतिमात्रमधिकं ८, तैरेव हीनमूनम्, अथवा हेतोर्दृष्टान्तस्य वाऽधिक्ये सत्यधिकं, यथा–अनित्यः शब्दः कृतकत्वप्रयत्नानन्तरीयकत्वाभ्यां घटपटवदित्यादि, एकस्मिन् साध्ये एक एव हेतुर्दृष्टान्तश्च वक्तव्यः, अत्र च प्रत्येकं द्वयाभिधानादाधिक्यमिति भावः, हेतुदृष्टान्ताभ्यामेव हीनमूनं, यथा अनित्यः शब्दो घटवदिति, यथा अनित्यः शब्दः कृतकत्वादित्यादि ९, पुनरुक्तं द्विधा–शब्दतोऽर्थतश्च, तथाऽर्थादापन्नस्य पुनर्वचनं पुनरुक्तं, तत्र शब्दतः पुनरुक्तं यथा घटो घट इत्यादि, अर्थतः पुनरुक्तं यथा घटः कुटः कुम्भ इत्यादि, अर्थादापन्नस्य

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१५५] + गाथाः ||१-३||

दीप अनुक्रम [३३७--३४२]

पुनर्वचनं यथा पीनो देवदत्तो दिवा न भुङ्क्ते इत्युक्ते अर्थादापन्नं रात्रौ भुङ्क्त इति, तत्रार्थापन्नमपि य एतत्साक्षाद् ब्रूयात्तस्य पुनरुक्तता १०, व्याहतं यत्र पूर्वेण परं विहन्यते यथा—'कर्म चास्ति फलं चास्ति, कर्ता न त्वस्ति कर्मणा'मित्यादि ११, अयुक्तमनुपपत्तिक्षमं यथा–तेषां कटतटभ्रष्टैर्गजानां मदबिन्दुभिरित्यादि १२, क्रमभिन्नं यत्र क्रमो नाराध्यते यथा-स्पर्शनरसनघ्राणचक्षुःश्रोत्राणामर्थाः स्पर्शरसगन्धरूपशब्दा इति वक्तव्ये स्पर्शरूपशब्दगन्धरसा इति ब्रूयात् इत्यादि १३, वचनभिन्नं यत्र वचनव्यत्ययो यथा वृक्षाः ऋतौ पुष्पितः इत्यादि १४, विभक्तिभिन्नं यत्र विभक्तिव्यत्ययो यथा वृक्षं पश्य इति वक्तव्ये वृक्षः पश्य इति ब्रूयादित्यादि १५, लिङ्गभिन्नं यत्रलिङ्गव्यत्ययो यथा अयं स्त्रीत्यादि १६, अनभिहितं–स्वसिद्धान्तानुपदिष्टं यथा सप्तमः पदार्थो वैशेषिकस्य,प्रकृतिपुरुषाभ्यधिकं साङ्ख्यस्य, दुःखसमुदायमार्गनिरोधलक्षणचतुरार्यसत्यातिरिक्तं वा बौद्धस्येत्यादि १७, यत्रान्यच्छन्दोऽधिकारेऽन्यच्छन्दोऽभिधानं तदपदं, यथाऽऽर्षापदेऽभिधातव्ये वैतालीयपदमभिदध्यादित्यादि १८, यत्र वस्तुस्वभावोऽन्यथास्थितोऽन्यथाऽभिधीयते तत्स्वभावहीनं, यथा शीतो वह्निः मूर्तिमदाकाशमित्यादि १९, यत्र प्रकृतं मुक्त्वाऽप्रकृतं व्यासतोऽभिधाय पुनः प्रकृतमुच्यते तद्व्यवहितं २०, कालदोषो यत्रातीतादिकालव्यत्ययो यथा रामो वनं प्रविवेशेति वक्तव्ये रामो वनं प्रविशतीत्याह २१, यतिदोषोऽस्थानविरतिः सर्वथाऽविरतिर्वा २२, छविरलङ्कारविशेषस्तेन शून्यं छविदोषः २३, समयविरुद्धं स्वसिद्धान्तविरुद्धं यथा साङ्ख्यस्यासत् कारणे कार्यं, वैशेषिकस्य वा सदिति २४, वचनमात्रं निर्हेतुकं, यथा कश्चिद्यथेच्छया कश्चि-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१५५] + गाथा: ॥१-३॥

दीप अनुक्रम [३३७--३४२]

त्प्रदेशं लोकमध्यतया जनेभ्यः प्ररूपयति २५, यत्रार्थापत्त्याऽनिष्टमापतति तत्रार्थापत्तिदोषो, यथा गृहकुक्कुटो न हन्तव्य इत्युक्तेऽर्थापत्त्या शेषघातोऽदुष्ट इत्यापतति २६, यत्र समासविधिप्राप्तौ समासं न करोति व्यत्ययेन वा करोति तत्रासमासदोषः २७, उपमादोषो यत्र हीनोपमा क्रियते, यथा मेरुः सर्षपोपमः, अधिकोपमा वा क्रियते यथा सर्षपो मेरुसन्निभः, अनुपमा वा यथा मेरुः समुद्रोपम इत्यादि २८, रूपकदोषः स्वरूपभूतानामवयवानां व्यत्ययो यथा पर्वते निरूपयितव्ये शिखरादींस्तदवयवान्निरूपयति, अन्यस्य वा समुद्रादेः सम्बन्धिनोऽवयवाँस्तत्र निरूपयतीति २९, निर्देशदोषस्तत्र यत्र निर्दिष्टपदानामेकवाक्यता न क्रियते, यथेह देवदत्तः स्थाल्यामोदनं पचतीत्यभिधातव्ये पचतिशब्दं नाभिधत्ते ३०, पदार्थदोषो यत्र वस्तुनि पर्यायोऽपि सन् पदार्थान्तरत्वेन कल्प्यते यथा सतो भावः सत्तेतिकृत्वा वस्तुपर्याय एव सत्ता, सा च वैशेषिकैः षट्सु पदार्थेषु मध्ये पदार्थान्तरत्वेन कल्प्यते, तचायुक्तं, वस्तूनामनन्तपर्यायत्वेन पदार्थानन्त्यप्रसङ्गादिति ३१, यत्र सन्धिप्राप्तौ तं न करोति दुष्टं वा करोति तत्र सन्धिदोषः३२, एते द्वात्रिंशत्सूत्रदोषाः, एतैर्विरहितं यत्तल्लक्षणयुक्तं सूत्रं। अष्टाभिश्च गुणैरुपपेतं यत्तल्लक्षणयुक्तमिति वर्तते। ते चेमे गुणाः—"निद्दोसं सारवंतं च, हेउजुत्तमलंकियं। उवणीयं सोवयारं च, मियं महुरमेव य ॥१॥" तत्र निर्दोषं–सर्वदोषविप्रमुक्तं १, सारवद्गोशब्दवद्बहुपर्यायं २, हेतवः–अन्वयव्यतिरेकलक्षणास्तैर्युक्तम् ३, उपमोत्प्रेक्षाद्यलङ्कारैरलङ्कृतम् ४, उपनयोपसंहृतमुपनीतं ५, ग्राम्यभणितिरहितं सोपचारं ६, वर्णादिनियतपरिमाणं मितं ७, श्रवणमनोहरं मधुरम् ८। अन्यैश्च कैश्चिद् षड्

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१५५] + गाथा: ॥१-३॥

दीप अनुक्रम [३३७--३४२]

गुणाः सूत्रस्य पठ्यन्ते, तद्यथा—"अप्पक्खरमसंदिद्धं, सारवं विस्सओमुहं । अत्थोभमणवज्जं च, सुत्तं सव्वण्णुभासियं ॥१॥ यत्राल्पाक्षरं–मिताक्षरं यथा सामायिकसूत्रम्, असन्दिग्धं–सैन्धवशब्दवद्यल्लवणवसनतुरगाद्यनेकार्थसंशयकारि न भवति, सारवत्त्वं च पूर्ववत्, विश्वतोमुखं प्रतिसूत्रं चरणानुयोगाद्यनुयोगचतुष्टयव्याख्याक्षमं, यथा—'धम्मो मंगलमुक्किट्ठ'मित्यादिश्लोके चत्वारोऽप्यनुयोगा व्याख्यायन्ते, अथवा अनन्तार्थत्वाद् यतो विश्वतोमुखं ततः सारवदित्येवं सारवत्त्वस्यैव हेतुभावेनेदं योज्यते, अस्मिँश्च व्याख्याने पञ्चैवैते गुणा भवन्ति, स्तोभकाः–चकारवाशब्दादयो निपातास्तैर्वियुक्तमस्तोभकम्, अनवद्यं कामादिपापव्यापाराप्ररूपकं, एवंभूतं सूत्रं सर्वज्ञभाषितमिति । यैस्तु पूर्वे अष्ट सूत्रगुणाः प्रोक्तास्तेऽनन्तरश्लोकोक्तगुणास्तेष्वेवाष्टसु गुणेष्वन्तर्भावयन्ति, ये त्वनन्तरश्लोकोक्तानेव सूत्रगुणानिच्छन्ति ते अमीभिरेव पूर्वोक्तानामष्टानामपि सङ्ग्रहं प्रतिपादयन्ति । एवं सूत्रानुगमे समस्तदोषविप्रमुक्ते लक्षणयुक्ते सूत्रे उच्चारिते ततो ज्ञास्यते यदुतैतत्स्वसमयगतजीवाद्यर्थप्रतिपादकं पदं स्वसमयपदं, परसमयगतप्रधानेश्वराद्यर्थप्रतिपादकं पदं परसमयपदं, अनयोरेव मध्ये परसमयपदं देहिनां कुवासनाहेतुत्वाद्बन्धपदमितरत्तु सद्बोधकारणत्वान्मोक्षपदमिति तावदेके, अन्ये तु व्याचक्षते–प्रकृतिस्थित्यनुभावप्रदेशलक्षणभेदभिन्नस्य बन्धस्य प्रतिपादकं पदं बन्धपदम्, सद्बोधकारणत्वात् कृत्स्नकर्मक्षयलक्षणस्य मोक्षस्य प्रतिपादकं पदं मोक्षपदमिति । आह–नन्वत्र व्याख्याने बन्धमोक्षप्रतिपादकं पदद्वयं स्वसमयपदान्नातिरिच्यते तत्किमिति भेदेनोपन्यासः?, सत्यं, किन्तु स्वसमयपदस्याप्यभिधेयवै-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१५५] + गाथा: ॥१-३॥

दीप अनुक्रम [३३७--३४२]

चिन्यदर्शनार्थो भेदेनोपन्यासः, अत एव सामायिकप्रतिपादकं पदं सामायिकपदमित्यादावपि भेदेनोपादानं सार्थकमिति, सामायिकव्यतिरिक्तानां नारकतिर्यगाद्यर्थानां प्रतिपादकं पदं नोसामायिकपदमित्येतच्च सूत्रोच्चारणस्य फलं दर्शितम्, इदमुक्तं भवति–यतः सूत्रे समुच्चारिते स्वसमयपदादिपरिज्ञानं भवति ततस्तदुच्चारणीयमेव, ततस्तस्मिन् सूत्रे उच्चारितमात्र एव सति केषाञ्चिद्भगवतां साधूनां यथोक्तनीत्या केचिदर्थाधिकारा अधिगताः–परिज्ञाता भवन्ति, केचित्तु क्षयोपशमवैचित्र्यादनधिगता भवन्ति, ततस्तेषामनधिगतानामर्थाधिकाराणामधिगमार्थं पदेन पदं वर्णयिष्यामि, एकैकं पदं व्याख्यास्यामीत्यर्थः। तत्र व्याख्यालक्षणमेव तावदाह —'संहिया ये'त्यादि, तत्रास्खलितपदोच्चारणं संहिता, यथा 'करोमि भयान्त! सामायिक'मित्यादि, पदं तु करोमीत्येकं पदं भयान्त इति द्वितीयं सामायिकमिति तृतीयम् इत्यादि, पदार्थस्तु करोमीत्यभ्युपगमो भयान्त इति गुर्वामन्त्रणं समस्यायः सामायिकमित्यादिकः, पदविग्रहः समासः, स चानेकपदानामेकत्वापादानविषयो यथा भयस्यान्तो भयान्त इत्यादि, सूत्रस्यार्थस्य वा अनुपपत्युद्भावनं चालना, तस्यैवानेकोपपत्तिभिस्तथैव स्थापनं प्रसिद्धिः, एते च चालनाप्रसिद्धी आवश्यके सामायिकव्याख्यावसरे स्वस्थान एव विस्तरवत्यौ द्रष्टव्ये, एवं षड्विधं 'विद्धि'जानीहि लक्षणं व्याख्याया इति प्रक्रमाङ्गम्यते इति श्लोकार्थः। अत्राह–नन्वस्याः षड्विधव्याख्याया मध्ये कियान् सूत्रानुगमस्य विषयः? को वा सूत्रालापकनिक्षेपस्य? कश्च सूत्रस्पर्शिकनिर्युक्तेः? किं वा नयैर्विषयीक्रियते?, उच्यते, सूत्रं सपदच्छेदं तावदभिधाय सूत्रानुगमः कृतप्रयोजनो भवति,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१५५] + गाथा: ॥१-३॥

दीप अनुक्रम [३३७--३४२]

सूत्रानुगमेन च सूत्रे समुच्चारिते पदच्छेदे च कृते सूत्रालापकानामेव नामस्थापनादिनिक्षेपमात्रमभिधाय सूत्रालापकनिक्षेपः कृतार्थो भवति, शेषस्तु पदार्थपदविग्रहादिनियोगः सर्वोऽपि सूत्रस्पर्शिकनिर्युक्तेः, वक्ष्यमाणनैगमादिनयानामपि प्रायः स एव पदार्थादिविचारो विषयः, ततो वस्तुवृत्त्या सूत्रस्पर्शिकनिर्युक्त्यन्तर्भाविन एव नयाः, आह च भाष्यकारः—"होई कयत्थो वोत्तुं सपयच्छेयं सुयं सुयाणुगमो । सुत्तालावगनासो नामाइन्नासविणिओगं ॥ १ ॥ सुत्तफासियनिज्जुत्तिविणिओगो सेसओ पयत्थाइ । पायं सो चिय नेगमनयाइमयगोयरो होइ ॥ २ ॥" अनेन च विधिना सूत्रे व्याख्यायमाने सूत्रं सूत्रानुगमादयश्च युगपत्समाप्यन्ते, यत आह भाष्यसुधाम्भोनिधिः—"[3]सुत्तं सुत्ताणुगमो सुत्तालावयकओ य निक्खेवो । सुत्तफासियनिज्जुत्ती नया य समगं तु वच्चंति ॥ १ ॥" इत्यलं विस्तरेण । 'से तं अणुगमो'त्ति अनुगमः समाप्तः ॥ १५५ ॥ अथ नयद्वारमभिधित्सुराह—

सें किं तं णए?, सत्त मूलणया पण्णत्ता, तंजहा–णेगमे संगहे ववहारे उज्जुसुए सद्दे समभिरूढे एवंभूए, तत्थ–णेगेहिं माणेहिं मिणइत्ति णेगमस्स य निरुत्ती । सेसाणंपि

१ भवति कृतार्थ उक्त्वा सपदच्छेदं सूत्रं सूत्रानुगमः । सूत्रालापकन्यासो नामादिन्यासविनियोगम् ॥ १ ॥ सूत्रस्पर्शकनिर्युक्तिविनियोगः शेषकः पदार्थादिः । प्रायः स एव नैगमनयादिमतगोचरो भवति ॥ २ ॥ २ सूत्रं सूत्रानुगमः सूत्रालापककृतश्च निक्षेपः । सूत्रस्पर्शिकनिर्युक्तिर्नयाश्च समकं तु व्रजन्ति ॥ १ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[४५], चूलिकासूत्र-[२] अनुयोगद्वार मूलं एवं हेमचन्द्रसूरि-रचिता वृत्तिः

अथ 'नय' प्ररुपणा आरभ्यते

प्रत सूत्रांक [१५६] + गाथा: ॥१-६॥

दीप अनुक्रम [३४३--३५०]

नयाणं लक्खणमिणमो सुणह वोच्छं ॥ १ ॥ संगहिअपिंडिअत्थं संगहवयणं समासओ बिंति । वच्चइ विणिच्छिअत्थं ववहारो सव्वदव्वेसुं ॥ २ ॥ पच्चुप्पन्नग्गाही उज्जुसुओ णयविही मुणेअव्वो । इच्छइ विसेसियतरं पच्चुप्पण्णं णओ सद्दो ॥ ३ ॥ वत्थूओ संकमणं होइ अवत्थू नए समभिरूढे । वंजणअत्थतदुभयं एवंभूओ विसेसेइ ॥ ४ ॥

अथ कोऽयं पूर्वोक्तशब्दार्थो नयः?, तत्रोत्तरभेदापेक्षया ससैव मूलभूता नया मूलनयाः, तद्यथा–नैगम इत्यादि, तत्र नैगमं व्याचिख्यासुराह–णेगेहिमित्यादि गाथा, व्याख्या–न एकं नैकं प्रभूतानीत्यर्थः, नैकैर्मानैर्मेहासत्तासामान्यविशेषादिज्ञानैर्मिमीते मिनोति वा वस्तूनि परिच्छिनत्तीति नैगमः इतीयं नैगमस्य निरुक्तिः–व्युत्पत्तिः, अथवा निगमा–लोके वसामि तिर्यग्लोके वसामीत्यादयः पूर्वोक्ता एव बहवः परिच्छेदास्तेषु भवो नैगमः, शेषाणामपि नयानां सङ्ग्रहादीनां लक्षणमिदं शृणुत वक्ष्येऽहमिति गाथार्थः ॥ यथाप्रतिज्ञातमेवाह—'संगहिअ'गाहा, व्याख्या–सम्यग् गृहीत–उपात्तः सङ्गृहीतः पिण्डित एकजातिमापन्नोऽर्थो विषयो यस्य सङ्ग्रहवचनस्य तत्सङ्गृहीतपिण्डितार्थं सङ्ग्रहस्य वचनं सङ्ग्रहवचनं 'समासतः' संक्षेपतो ब्रुवते तीर्थकरगणधराः, अयं हि सामान्यमेवेच्छति न विशेषान्, ततोऽस्य वचनं सङ्गृहीतसामान्यार्थमेव भवति,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१५६] + गाथा: ॥१-६॥

दीप अनुक्रम [३४३--३५०]

अत एव सङ्गृह्णाति सामान्यरूपतया सर्वं वस्तु क्रोडीकरोतीति सङ्ग्रहोऽयमुच्यते, युक्तिश्चात्र लेशतः प्राग्दर्शितैव, 'वच्चई'त्यादि, निराधिक्ये चयनं चयः–पिण्डीभवनं अधिकश्चयो निश्चयः–सामान्यं विगतो निश्चयो विनिश्चयो–सामान्याभावः तदर्थं–तन्निमित्तं व्रजति–प्रवर्तते, सामान्याभावायैव सर्वदा यतते व्यवहारो नय इत्यर्थः, क?–'सर्वद्रव्येषु' सर्वद्रव्यविषये, लोके हि घटस्तम्भाम्भोरुहादयो विशेषा एव प्रायो जलाहरणादिक्रियासूपयुज्यमाना दृश्यन्ते न पुनस्तदतिरिक्तं सामान्यम्, अतो लोकव्यवहारानङ्गत्वात्सामान्यमसौ नेच्छतीति भावः, अत एव लोकव्यवहारप्रधानो नयो व्यवहारनयोऽसावुच्यते, युक्तिश्चात्रापि लेशतः प्रागुक्तैव, अथवा विशेषेण निश्चयो विनिश्चयः–आगोपालाद्यङ्गनाद्यवबोधो न कतिपयविद्वत्सम्बद्धः तदर्थं व्रजति व्यवहारनयः सर्वद्रव्येषु, इदमुक्तं भवति–यद्यपि निश्चयेन घटादिवस्तूनि सर्वाण्यपि प्रत्येकं पञ्चवर्णानि द्विगन्धानि पञ्चरसान्यष्टस्पर्शानि तथाऽपि गोपालाङ्गनादीनां यत्रैव क्वचिदेकस्मिन् स्थले कालनीलवर्णादौ विनिश्चयो भवति तमेवासौ सत्त्वेन प्रतिपद्यते न शेषान्, लोकव्यवहारपरत्वादेवेति गाथार्थः ॥ 'पच्चुप्पन्न'गाहा, साम्प्रतमुत्पन्नं प्रत्युत्पन्नमुच्यते, वर्तमानकालभावीत्यर्थः, तद् ग्रहीतुं शीलमस्येति प्रत्युत्पन्नग्राही ऋजुसूत्रो नयविधिर्मुणितव्यः, तत्रातीतानागताभ्युपगमकुटिलतापरिहारेण ऋजु–अकुटिलं वर्तमानकालभावि वस्तु सूत्रयतीति ऋजुसूत्रः, अतीतानागतयोर्विनाशानुत्पत्तिभ्यामसत्त्वाद्, असदभ्युपगमश्च कुटिल इति भावः, अथवा ऋजु–अवक्रं श्रुतमस्येति ऋजुश्रुतः, शेषज्ञानैर्मुख्यतया तथाविधपरोपकारासाधनात् श्रुतज्ञा-

अनु. ४५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

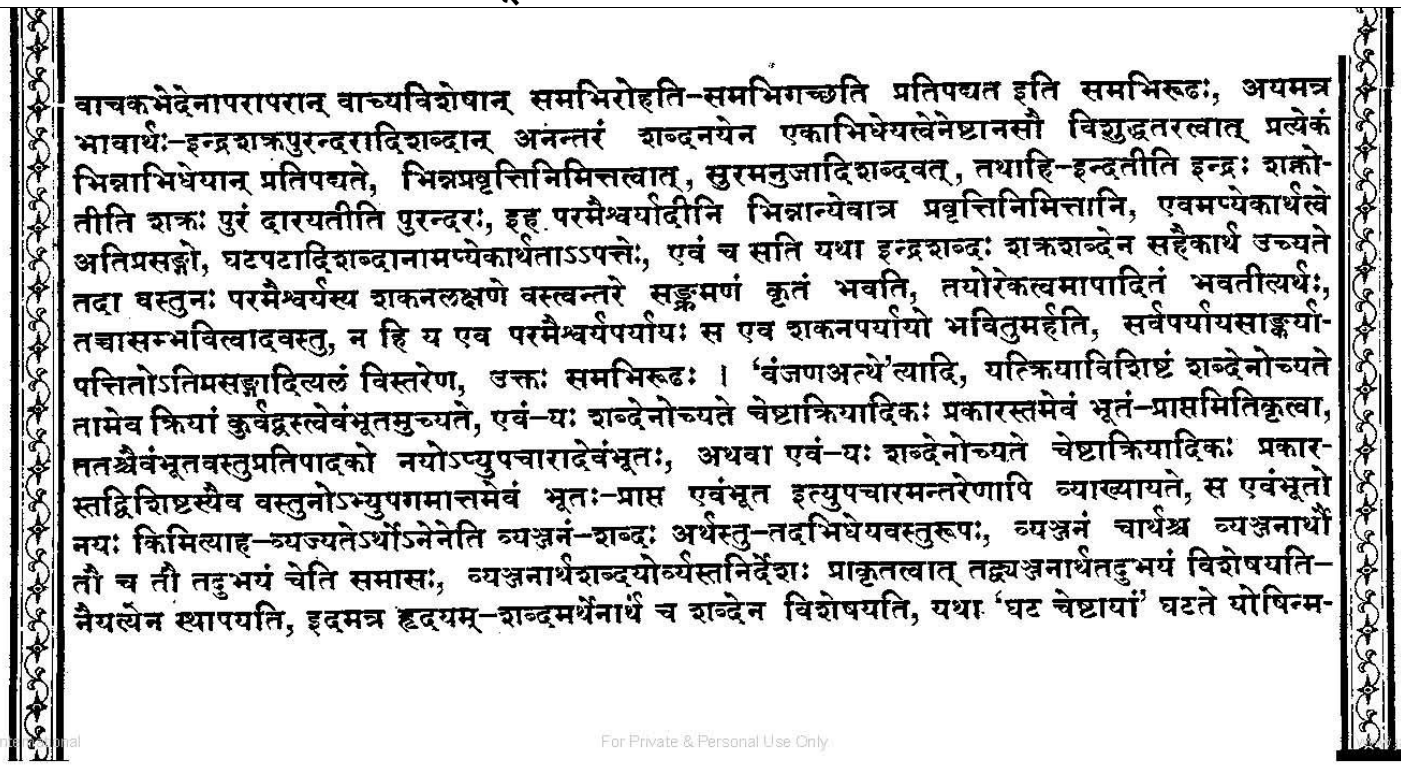
प्रत सूत्रांक [१५६] + गाथा: ॥१-६॥

दीप अनुक्रम [३४३--३५०]

नमेवैकमिच्छतीत्यर्थः, उक्तं च—"सुयनाणे अ नियुत्तं, केवले तयणंतरं। अप्पणो य परेसिं च, जम्हा तं परिभावगं ॥ १ ॥"[1]ति, अयं च नयो वर्तमानमपीच्छन् स्वकीयमेवेच्छति, परकीयस्य स्वाभिमतकार्यासाधकत्वेन वस्तुतोऽसत्त्वादिति, अपरं च–भिन्नलिङ्गैर्भिन्नवचनैश्च शब्दैरेकमपि वस्त्वभिधीयत इति प्रतिजानीते, यथा तटः तटी तटमित्यादि, तथा गुरुर्गुरव इत्यादि, तथा इन्द्रादेर्नामस्थापनादिभेदान् प्रतिपद्यते, वक्ष्यमाणनयस्त्वतिविशुद्धत्वाल्लिङ्गवचनभेदाद्वस्तुभेदं प्रतिपत्स्यते नामस्थापनाद्रव्याणि च नाभ्युपगमिष्यतीति भावः, इत्युक्त ऋजुसूत्रः, अथ शब्द उच्यते–तत्र 'शप आक्रोशे' शप्यते–अभिधीयते वस्त्वनेनेति शब्दः, तमेव गुणीभूतार्थं मुख्यतया यो मन्यते स नयोऽप्युपचाराच्छब्दः, अयं च प्रत्युत्पन्नं–वर्तमानं तदपि ऋजुसूत्राभ्युपगमापेक्षया विशेषिततरमिच्छति, तथाहि–तटस्तटी तटमित्यादिशब्दानां भिन्नान्येवाभिधेयानि, भिन्नलिङ्गवृत्तित्वात्, स्त्रीपुरुषनपुंसकशब्दवदित्यसौ प्रतिपद्यते, तथा गुरुर्गुरव इत्यत्राप्यभिधेयभेद एव, भिन्नवचनवृत्तित्वात्पुरुषः पुरुषा इत्यादिवदिति, नामस्थापनाद्रव्यरूपाश्च नेन्द्राः, तत्कार्याकरणात्, खपुष्पवदिति, प्राक्तनाद्विशुद्धत्वाद्विशेषिततरोऽस्याभ्युपगमः, समानलिङ्गवचनानां तु बहूनामपि शब्दानामेकमभिधेयमसौ मन्यते, यथेन्द्रः शक्रः पुरन्दर इत्यादि, इति गाथार्थः ॥ 'वत्थूओ'इत्यादि, वस्तुनः–इन्द्रादेः सङ्क्रमणमन्यत्र शक्रादाविति दृश्यं, भवति अवस्त्वसंभवतीत्यर्थः, केत्याह–नये समभिरूढे, समभिरूढनयमतेनेत्यर्थः, तत्र

[1] श्रुतज्ञाने च नियुक्तं, (नियोक्तुं योग्यं) केवले तदनन्तरम् । आत्मनश्च परेषां च यस्मात्तत् परिभावकम् ॥ १ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१५६] + गाथा: ॥१-६॥ दीप अनुक्रम [३४३--३५०]	

वाचकभेदेनापरापरान् वाच्यविशेषान् समभिरोहति–समभिगच्छति प्रतिपद्यत इति समभिरूढः, अयमत्र भावार्थः–इन्द्रशक्रपुरन्दरादिशब्दान् अनन्तरं शब्दनयेन एकाभिधेयत्वेनेष्टानसौ विशुद्धतरत्वात् प्रत्येकं भिन्नाभिधेयान् प्रतिपद्यते, भिन्नप्रवृत्तिनिमित्तत्वात्, सुरमनुजादिशब्दवत्, तथाहि–इन्दतीति इन्द्रः शक्नोतीति शक्रः पुरं दारयतीति पुरन्दरः, इह परमैश्वर्यादीनि भिन्नान्येवात्र प्रवृत्तिनिमित्तानि, एवमप्येकार्थत्वे अतिप्रसङ्गो, घटपटादिशब्दानामप्येकार्थताऽऽपत्तेः, एवं च सति यथा इन्द्रशब्दः शक्रशब्देन सहैकार्थ उच्यते तदा वस्तुनः परमैश्वर्यस्य शकनलक्षणे वस्त्वन्तरे सङ्क्रमणं कृतं भवति, तयोरेकत्वमापादितं भवतीत्यर्थः, तच्चासम्भवित्वादवस्तु, न हि य एव परमैश्वर्यपर्यायः स एव शकनपर्यायो भवितुमर्हति, सर्वपर्यायसाङ्कर्यापत्तितोऽतिप्रसङ्गादित्यलं विस्तरेण, उक्तः समभिरूढः । 'वंजणअत्थे'त्यादि, यत्क्रियाविशिष्टं शब्देनोच्यते तामेव क्रियां कुर्वद्वस्त्वेवंभूतमुच्यते, एवं–यः शब्देनोच्यते चेष्टाक्रियादिकः प्रकारस्तमेवं भूतं–प्राप्तमितिकृत्वा, ततश्चैवंभूतवस्तुप्रतिपादको नयोऽप्युपचारादेवंभूतः, अथवा एवं–यः शब्देनोच्यते चेष्टाक्रियादिकः प्रकारस्तद्विशिष्टस्यैव वस्तुनोऽभ्युपगमात्तमेवं भूतः–प्राप्त एवंभूत इत्युपचारमन्तरेणापि व्याख्यायते, स एवंभूतो नयः किमित्याह–व्यज्यतेऽर्थोऽनेनेति व्यञ्जनं–शब्दः अर्थस्तु–तदभिधेयवस्तुरूपः, व्यञ्जनं चार्थश्च व्यञ्जनार्थौ तौ च तौ तदुभयं चेति समासः, व्यञ्जनार्थशब्दयोर्व्यस्तनिर्देशः प्राकृतत्वात् तद्व्यञ्जनार्थतदुभयं विशेषयति–नैयत्येन स्थापयति, इदमत्र हृदयम्–शब्दमर्थेनार्थं च शब्देन विशेषयति, यथा 'घट चेष्टायां' घटते योषिन्म-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१५६] + गाथा: ॥१-६॥

दीप अनुक्रम [३४३--३५०]

स्तकाद्यारूढश्चेष्टत इति घट इति, अत्र तदैवासौ घटो यदा योषिन्मस्तकाद्यारूढतया जलाहरणचेष्टावान्नान्यदा, घटध्वनिरपि चेष्टां कुर्वत एव तस्य वाचको नान्यदेत्येवं चेष्टावस्थातोऽन्यत्र घटस्य घटत्वं घटशब्देन निवर्त्यते, घटध्वनेरपि तदवस्थातोऽन्यत्र घटेन स्ववाचकत्वं निवर्त्यत इति भावः, इति गाथार्थः ॥ उक्ता मूलनयाः, एषां चोत्तरोत्तरभेदप्रभेदा आवश्यकादिभ्योऽवसेयाः । एते च सावधारणाः सन्तो दुर्नयाः, अवधारणविरहितास्तु सुनयाः, सर्वैश्च सुनयैर्मीलितैः स्याद्वाद इत्यलं बहुभाषितया ॥ अत्राह काश्चित्–ननूक्ता एते नयाः, केवलं प्रस्तुते किमेतैः प्रयोजनमिति नावगच्छामः, उच्यते, उपक्रमेणोपक्रान्तस्य निक्षेपेण च यथासम्भवं निक्षिप्तस्यानुगमेनानुगतस्य च प्रक्रान्तसामायिकाध्ययनस्य विचारणाऽमीषां प्रयोजनं । पुनरप्याह–नन्वेषा नयैर्विचारणा किं प्रतिसूत्रमभिप्रेता सर्वाध्ययनस्य वा?, यद्याद्यः पक्षः स न युक्तः, प्रतिसूत्रं नयविचारस्य 'न नया समोयरंति इह'मित्यनेन निषिद्धत्वाद्, अथापरः पक्षः सोऽपि न युक्तः, समस्ताध्ययनविषयस्य नयविचारस्य प्रागुपोद्घातनिर्युक्तौ 'नए समोयारणाणुमए' इत्यत्रोपन्यस्तत्वात्, न च सूत्रव्यतिरिक्तमध्ययनमस्ति यन्नयैर्विचार्यते, अत्रोच्यते, यस्तावत्प्रतिसूत्रं नयविचारनिषेधः प्रेर्यते, तत्राविप्रतिपत्तिरेव, किं च—'आसज्ज उ सोयारं नए नयविसारओ बूया' इत्यनेनापवादिकः सोऽनुज्ञात एव, यदप्युच्यते—'समस्ताध्ययनविषयस्य नयविचारस्य प्रागुपोद्घाते'त्यादि, तत्समयानभिज्ञस्यैव वचनं, यस्मादिदमेव चतुर्थानु-

१ आसाद्य तु श्रोतारं नयान् नयविशारदो ब्रूयात् ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१५६] + गाथा: ॥१-६॥ दीप अनुक्रम [३४३--३५०]

योगद्वारं नयवक्तव्यताया मूलस्थानम्, अत्र सिद्धानामेव तेषां तत्रोपन्यासः, यदप्युक्तम् 'न च सूत्रव्यतिरिक्तमध्ययन'मित्यादि, तदप्यसारं, समुदायसमुदायिनोः कार्यादिभेदतः कथञ्चिद्भेदसिद्धेः, तथाहि–प्रत्येकावस्थायामनुपलब्धमप्युद्वहनसामर्थ्यलक्षणं कार्यं शिबिकावाहकपुरुषसमुदाये उपलभ्यते, एवं च प्रत्येकसमुदितावस्थयोः कार्यभेदः शिबिकावाहनादिषु सामर्थ्यासामर्थ्यलक्षणो विरुद्धधर्माध्यासश्च दृश्यते, यदि चायमपि न भेदकस्तर्हि सर्वं विश्वमेकं स्यात्, ततश्च सहोत्पत्त्यादिप्रसङ्गः, तस्मात्कार्यभेदाद्विरुद्धधर्माध्यासाच्च समुदायसमुदायिनोर्भेदः प्रतिपत्तव्यः, एवं सङ्ख्यासंज्ञादिभ्योऽपि तद्भेदो भावनीयः, तस्मात्कश्चित्कचित्सूत्रविषयः समस्ताध्ययनविषयश्च नयविचारो न दुष्यति, भवत्वेवं तथाऽप्यध्ययनं नयैर्विचार्यमाणं किं सर्वैरेव विचार्यते? आहोस्विद् कियद्भिरेव?, यदि सर्वैरिति पक्षः स न युक्तः, तेषामसङ्ख्येयत्वेन तैर्विचारस्य कर्तुमशक्यत्वात्, तथाहि–यावन्तो वचनमार्गास्तावन्त एव नयाः, यथोक्तम्—"जावइया वयणपहा तावइया चेव होंति नयवाया। जावइया नयवाया तावइया चेव परसमया ॥ १ ॥" न च निजनिजाभिप्रायविरचितानां वचनमार्गाणां सङ्ख्या समस्ति, प्रतिप्राणि प्रायो भिन्नत्वादभिप्रायाणां, नापि कियद्भिरिति वक्तुं शक्यम्, अनवस्थाप्रसङ्गात्, सङ्ख्यातीतेषु हि तेषु यावद्भिर्विचारणा क्रियते तावद्भिरपि किं नेत्यनवस्थाप्रेरणायां न नैयत्यावस्थापकं हेतुमुत्पश्यामः, अथापि स्यादसंख्येयत्वेऽप्येषां सकलनयसङ्ग्राहिभिर्नयैर्विचारो विधीयते,

१ यावन्तो वचनपथास्तावन्तश्चैव भवन्ति नयवादाः। यावन्तो नयवादास्तावन्तश्चैव परसमयाः ॥ १ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१५६] + गाथा: ॥१-६॥ दीप अनुक्रम [३४३--३५०]

ननु तेषामपि सङ्ग्राहिनयानामनेकविधत्वात् पुनरनवस्थैव, तथाहि-पूर्वविद्भिः सकलनयसङ्ग्राहीणि सप्त नयशतान्युक्तानि, यत्प्रतिपादकं सप्तशतारं नयचक्राध्ययनमासीद्, उक्तं च—"[1]एक्केको य सयविहो सत्तनयसया हवंति एमेवे"त्यादि, सप्तानां च नयशतानां सङ्ग्राहकाः पुनरपि विध्यादयो द्वादश नयाः, यत्प्ररूपकमिदानीमपि द्वादशारं नयचक्रमस्ति, एतत्सङ्ग्राहिणोऽपि सप्त नैगमादिनयाः, तत्सङ्ग्राहिणौ पुनरपि द्रव्यपर्यायास्तिकौ नयौ ज्ञानक्रियानयौ वा निश्चयव्यवहारौ वा शब्दार्थनयौ वेत्यादि, इति सङ्ग्राहकनयानामप्यनेकविधत्वात्सैवानवस्था, अहो अतिनिपुणमुक्तं, किन्तु प्रक्रान्ताध्ययने सामायिकं विचार्यते, तच्च मुक्तिफलं, ततो यदेवास्य मुक्तिप्राप्तिनिबन्धनं रूपं तदेव विचारणीयं, तच्च ज्ञानक्रियात्मकमेव, ततो ज्ञानक्रियानयाभ्यामेवास्य विचारो युक्ततरो नान्यैः, तत्र ज्ञाननयो ज्ञानमेव मुक्तिप्रापकतया प्रतिजानीते, ततस्तन्मताविष्करणार्थमाह—

णायंमि गिण्हिअव्वे अगिण्हिअव्वंमि चेव अत्थंमि । जइअव्वमेव इइ जो उवएसो
सो नओ नाम ॥ ५ ॥ सव्वेसिंपि नयाणं बहुविहवत्तव्वयं निसामित्ता । तं सव्वनयविसुद्धं जं चरणगुणट्ठिओ साहू ॥६॥ से तं नए । अणुओगदारा सम्मत्ता (सू०१५६)

॥ २६७॥

[1] एकैकश्च शतविधः सप्तशतानि नया भवन्ति एवमेव.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१५६] + गाथा: ॥१-६॥

दीप अनुक्रम [३४३--३५०]

सोलससयाणि चउरुत्तराणि होंति उ इमंमि गाहाणं । दुसहस्समणुट्ठुभछंदवित्तप्पमाणओ भणिओ ॥ १ ॥ णयरमहादारा इव उवक्कमदाराणुओगवरदारा । अक्खराबिंदुगमत्ता लिहिया दुक्खक्खयट्ठाए ॥ २ ॥ गाहा १६०४ अनुष्टुप् ग्रंथाग्रं ॥ २०८५ ॥ अणुओगदारंसुत्तं समत्तं ॥

व्याख्या—'ज्ञाते'सम्यग् अवगते 'गिण्हियव्वे' ग्रहीतव्ये उपादेय इत्यर्थः, 'अग्रहीतव्ये' अनुपादेये, स च हेय उपेक्षणीयश्च, द्वयोरप्यग्रहणाविशेषात्, चशब्द उक्तसमुच्चये, अथवा अग्रहीतव्यशब्देन हेय एवैको गृह्यते, उपेक्षणीयं त्वनुक्तमप्ययमेव चकारः समुचिनोति, एवो गाथालङ्कारमात्रे, 'अत्थंमि'त्ति 'अर्थे' ऐहिकामुष्मिके, तत्र ऐहिको ग्रहीतव्यः स्रक्चन्दनाङ्गनादिः अग्रहीतव्योऽहिविषकण्टकादिरुपेक्षणीयस्तृणादिः, आमुष्मिको ग्रहीतव्यः सम्यग्दर्शनचारित्रादिः अग्रहीतव्यो मिथ्यात्वादिरुपेक्षणीयस्तु स्वर्गविभूत्यादिः, एवंभूतेऽर्थे यतितव्यमेवेति, अत्रैवकारोऽवधारणे, तस्य च व्यवहितः प्रयोगः, तद्यथा–ज्ञात एवेति, तदयमर्थो–ग्राह्याग्राह्योपेक्षणीयेऽर्थे ज्ञात एव तत्प्राप्तिपरिहारोपेक्षार्थिना यतितव्यं, प्रवृत्त्यादिलक्षणः प्रयत्नः कार्य इति, 'इति' एवंभूतः सर्वव्यवहाराणां ज्ञाननिबन्धनत्वप्रतिपादनपरो य उपदेशः, स किमित्याह—'नय' इति प्रस्तावाज्ज्ञाननयो 'नामे'ति शिष्यामन्त्रणे इत्यक्षरघटना । भावार्थस्त्वयम्–इह ज्ञाननयो ज्ञानप्राधान्यख्यापनार्थं प्रतिपाद-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१५६] + गाथा: ॥१-६॥ दीप अनुक्रम [३४३--३५०]

यति–नन्वैहिकामुष्मिकफलार्थिना तावत्सम्यग्विज्ञात एवार्थे प्रवर्तितव्यम्, अन्यथाप्रवृत्तौ फलविसंवाददर्शनाद्, आगमेऽपि च प्रोक्तम्—'पढमं नाणं तओ दए'त्यादि 'जं अन्नाणी कम्मं खवेई'त्यादि, तथा अपरमप्युक्तम्—"[1]पावाओ विणियत्ती पवत्तणा तह य कुसलपक्खंमि । विणयस्स य पडिवत्ती तिन्निवि नाणे समप्पंति ॥ १ ॥" तथा अन्यैरप्युक्तम्—"विज्ञप्तिः फलदा पुंसां, न क्रिया फलदा मता । मिथ्याज्ञानात्प्रवृत्तस्य, फलासंवाददर्शनाद् ॥ १ ॥" इति, इतश्च ज्ञानस्यैव प्राधान्यं, यतस्तीर्थकरगणधरैरगीतार्थानां केवलानां विहारोऽपि निषिद्धः, तथा च तद्वचनम्—"[2]गीयत्थो य विहारो बीओ गीयत्थमीसिओ भणिओ । इत्तो तइयविहारो नाणुन्नाओ जिणवरेहिं ॥ १ ॥" न यस्मादन्धेनान्धः समाकृष्यमाणः सम्यक् पन्थानं प्रतिपद्यत इति भावः, एवं तावत् क्षायोपशमिकं ज्ञानमधिकृत्योक्तं, क्षायिकमप्यङ्गीकृत्य विशिष्टफलसाधकत्वं तस्यैव विज्ञेयं, यस्मादर्हतोऽपि भवाम्भोधितटस्थस्य दीक्षां प्रतिपन्नस्योत्कृष्टतपश्चरणवतोऽपि न तावदपवर्गप्राप्तिः संजायते यावदखिलजीवादिवस्तुस्तोमसाक्षात्करणदक्षं केवलज्ञानं नोत्पन्नं, तस्माज्ज्ञानमेव पुरुषार्थसिद्धेर्निबन्धनं, प्रयोगश्चात्र–यद् येन विना न भवति तत्तन्निबन्धनमेव, यथा बीजाद्यविनाभावी तन्निबन्धन एवाङ्कुरो, ज्ञानाविनाभाविनी च सकलपुरुषार्थसिद्धिरिति, ततश्चायं नयश्चतुर्विधे सामायिके सम्यक्त्वसामायिकश्रुतसामा-

१ पापाद्विनिवृत्तिः प्रवर्तना तथा च कुशलपक्षे । विनयस्य च प्रतिपत्तिस्त्रीण्यपि ज्ञानात्समाप्यन्ते ॥ १ ॥ २ गीतार्थश्च विहारो द्वितीयो गीतार्थमिश्रितो भणितः । एताभ्यां तृतीयो विहारो नानुज्ञातो जिनवरैः ॥ १ ॥

Jain Education Inte... For Private & Personal Use Only ...elibrary.org

प्रत सूत्रांक [१५६] + गाथा: ॥१-६॥

दीप अनुक्रम [३४३--३५०]

थिके एवाभ्युपगच्छति, ज्ञानात्मकत्वेन प्रधानमुक्तिकारणत्वात्, देशविरतिसर्वविरतिसामायिके तु नेच्छति, ज्ञानकार्यत्वेन गौणत्वात् तयोरिति गाथार्थः ॥ विचारितं ज्ञाननयमतेन सामायिकम्, अथ क्रियानयमतेन तद्विचार्यते–तत्रासौ क्रियैव सकलपुरुषार्थसिद्धेः प्रधानं कारणमिति मन्यमानो ज्ञाननयमतव्याख्यातामेव गाथामाह—'नायम्मी'त्यादि, इयं च क्रियानयमतेनेत्थं व्याख्यायते–इह ज्ञाते ग्रहीतव्ये अग्रहीतव्ये चैवार्थे सर्वोऽपि पुरुषार्थसिद्धिमभिलषता यतितव्यमेव–प्रवृत्त्यादिलक्षणा क्रियैव कर्तव्येति, एवमत्र व्याख्याने एवकारः स्वस्थान एव योज्यते, एवं च सति ज्ञातेऽप्यर्थे क्रियैव साध्या, ततो ज्ञानं क्रियोपकरणत्वाद्गौणमित्यतः सकलस्यापि पुरुषार्थस्य क्रियैव प्रधानं कारणमित्येवं य उपदेशः स नयः प्रस्तावात् क्रियानयः, शेषं पूर्ववद् । अयमपि स्वपक्षसिद्धये युक्तीरुद्भावयति–ननु क्रियैव प्रधानं पुरुषार्थसिद्धिकारणं, यत आगमेऽपि तीर्थकरगणधरैः क्रियाविकलानां ज्ञानं निष्फलमेव उक्तं, 'सुबहुंपि सुयमहीयं किं काही चरणविप्पमुक्कस्स?। अंधस्स जह पलित्ता दीवसयसहस्सकोडीवि ॥ १ ॥ नाणं सविसयनियतं न नाणमित्तेण कज्जनिप्फत्ती । मग्गण्णू दिट्ठंतो होई सचिट्ठो अचिट्ठो य ॥ २ ॥ जाणंतोऽवियं तरिउं काइयजोगं न जुंजइ जो उ । सो वुज्झइ सोएणं एवं नाणी चरणहीणो ॥ ३ ॥ जहा खरो चंदणभारवाही"त्यादि तथा अन्यैरप्युक्तम्—"क्रियैव फलदा पुंसां, न

१ सुबह्वपि श्रुतमधीतं किं करिष्यति चरणविप्रमुक्तस्य?। अन्धस्य यथा प्रदीप्ता दीपशतसहस्रकोट्यपि ॥ १ ज्ञानं स्वविषयनियतं न ज्ञानमात्रेण कार्यनिष्पत्तिः। मार्गज्ञो दृष्टान्तो भवति सचेष्टोऽचेष्टश्च ॥२॥ जानन्नपि तरीतुं कायिकयोगं न युनक्ति यस्तु। स उह्यते श्रोतसा एवं ज्ञानी चरणहीनः ॥ ३ ॥ यथा खरश्चन्दनभारवाही

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१५६] + गाथा: ||१-६||

दीप अनुक्रम [३४३--३५०]

ज्ञानं फलदं मतम् । यतः स्त्रीभक्ष्यभोगज्ञो, न ज्ञानात्सुखितो भवेद् ॥ १ ॥" इति, एवं तावत् क्षायोपशमिकीं चरणक्रियामङ्गीकृत्य प्राधान्यमुक्तम्, अथ क्षायिकीमप्याश्रित्य तस्या एव प्राधान्यमवसेयं, यस्मादर्हतोऽपि भगवतः समुत्पन्नकेवलज्ञानस्यापि न तावद् मुक्त्यवाप्तिः संपद्यते यावदखिलकर्मेन्धनानलज्वालाकलापरूपायां शैलेश्यवस्थायां सर्वसंवररूपां चारित्रक्रियां न प्राप्नोति, तस्माद् क्रियैव प्रधाना सर्वपुरुषार्थसिद्धिकारणं, प्रयोगश्चात्र–यद्यत्समनन्तरभावि तत्तत्कारणं, यथा अन्त्यावस्थाप्राप्तपृथिव्यादिसामग्र्यनन्तरभावी तत्कारणोऽङ्कुरः, क्रियाऽनन्तरभाविनी च सकलपुरुषार्थसिद्धिरिति, ततश्चैष चतुर्विधे सामायिके देशविरतिसर्वविरतिसामायिके एव मन्यते, क्रियारूपत्वेन प्रधानमुक्तिकारणत्वात्, सम्यक्त्वश्रुतसामायिके तु तदुपकारित्वमात्रतो गौणत्वान्नेच्छतीति गाथार्थः ॥ ननु पक्षद्वयेऽपि युक्तिदर्शनात्किमिह तत्त्वमिति न जानीम इति शिष्यजनसम्मोहमाशङ्क्य ज्ञानक्रियानयमतप्रदर्शनानन्तरं स्थितपक्षं दर्शयन्नाह—

'सव्वेसिंपि'गाहा, न केवलमनन्तरोक्तनयद्वयस्य, किं तर्हि?–'सर्वेषामपि' स्वतन्त्रसामान्यविशेषवादिनां नामस्थापनादिवादिनां वा नयानां 'वक्तव्यता' परस्परविरोधिनीं प्रोक्तिं 'निशम्य'श्रुत्वा तदिह 'सर्वनयविशुद्धं' सर्वनयसम्मतं तत्त्वरूपतया ग्राह्यं, यत् किमित्याह—'यच्चरणगुणस्थितः साधुः' चरणं–चारित्रक्रिया गुणोऽत्र ज्ञानं तयोस्तिष्ठतीति चरणगुणस्थः, ज्ञानक्रियाभ्यां द्वाभ्यामपि युक्त एव साधुः मुक्तिसाधको न पुनरेकेन केनचिदिति भावः, तथाहि–यस्मादज्ञानवादिना प्रोक्तं–यद्येन विना न भवति तत्तन्निबन्धनमेवेत्यादि, तत्र

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१५६] + गाथा: ||१-६||

दीप अनुक्रम [३४३--३५०]

तदविनाभावित्वलक्षणो हेतुरसिद्ध एव, ज्ञानमात्राविनाभाविन्याः पुरुषार्थसिद्धेः काप्यदर्शनात्, न हि दाह-पाकार्थिनां दहनपरिज्ञानमात्रादेव तत्सिद्धिर्भवति, किन्तु तदानयनसन्धुक्षणज्वालनादिक्रियानुष्ठानादपि, न च तीर्थकरोऽपि केवलज्ञानमात्रान्मुक्तिं साधयति, किन्तु यथाख्यातचारित्रक्रियातोऽपि, तस्मात्सर्वत्र ज्ञान-क्रियाऽविनाभाविन्येव पुरुषार्थसिद्धिः, ततस्तदविनाभावित्वलक्षणो हेतुर्यथा पुरुषार्थसिद्धेर्ज्ञाननिबन्धनत्वं साधयति तथा क्रियानिबन्धनत्वमपि, तामप्यन्तरेण तदसिद्धेरित्यनैकान्तिकोऽप्यसाविति, एवं क्रियावादि-नाऽपि यद्यत्समनन्तरभावि तत्तत्कारणमित्यादि प्रयोगे यस्तदनन्तरभावित्वलक्षणो हेतुरुक्तः, सोऽप्यसिद्धो-ऽनैकान्तिकश्च, तथाहि–स्त्रीभक्ष्यभोगादिक्रियाकालेऽपि ज्ञानमस्ति, तदन्तरेण तत्र प्रवृत्तेरेवायोगाद्, एवं शैलेश्यवस्थायां सर्वसंवररूपक्रियाकालेऽपि केवलज्ञानमस्ति, तदन्तरेण तस्या एवाप्राप्तेः, तस्मात्केवलक्रियान-न्तरभावित्वेन पुरुषार्थस्य काप्यसिद्धेरसिद्धो हेतुः, यथा च तदनन्तरभावित्वलक्षणो हेतुः क्रियाकारणत्वं मु-क्त्यादिपुरुषार्थस्य साधयति तथा ज्ञानकारणत्वमपि, तदप्यन्तरेण तस्य कदाचिदप्यभावादित्यनैका-न्तिकताऽप्यस्येति, तस्माद् ज्ञानक्रियोभयसाध्यैव मुक्त्यादिसिद्धिः, उक्तं च—"[1]हयं नाणं कियाहीणं, हया अन्नाणओ किया। पासंतो पंगुलो दड्ढो, धावमाणो य अंधओ ॥ १ ॥ संयोगसिद्धीअ फलं वयंति, न हु एग-

१ हतं ज्ञानं क्रियाहीनं हता अज्ञानतः क्रिया। पश्यन् पङ्गुर्दग्धो धावँश्चान्धः ॥ १ ॥ संयोगसिद्धया फलं वदन्ति नैवैकचक्रेण रथः प्रयाति। अन्धश्च पङ्गुश्च वने समेत्य तौ सम्प्रयुक्तौ नगरं प्रविष्टौ ॥ २ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१५६] + गाथा: ॥१-६॥

दीप अनुक्रम [३४३--३५०]

चक्केण रहो पयाइ । अंधो य पंगू य वणे समेचा, ते संपउत्ता नयरं पविट्ठा ॥ २ ॥" इत्यादि, अत्राह–नन्वेवं ज्ञानक्रिययोर्मुक्त्यवापिका शक्तिः प्रत्येकमसती समुदायेऽपि कथं स्यात्[1], न हि यत्येषु प्रत्येकं नास्ति तत्तेषु समुदितेष्वपि भवति, यथा प्रत्येकमसत्समुदितेष्वपि सिकताकणेषु तैलं, प्रत्येकमसती च ज्ञानक्रिययोर्मुक्त्यवापिका शक्तिः, उक्तं च—"[2]पत्तेयमभावाओ निव्वाणं समुदियासुवि न जुत्तं । नाणकिरियासु वोत्तुं सिकतासमुदायतेल्लं व ॥ १ ॥", उच्यते, स्यादेतद्, यदि सर्वथा प्रत्येकं तयोर्मुक्त्यनुपकारिताऽभिधीयेत, यदा तु तयोः प्रत्येकं देशोपकारिता समुदाये तु सम्पूर्णा हेतुता तदा न कश्चिद्दोषः, आह च—"[3]वीसुं न सव्वहच्चिय सिकतातेल्लं व साहणाभावो । देसोवगारिया जा सा समवायंमि संपुण्णा ॥ १ ॥" अतः स्थितमिदं–ज्ञानक्रिये समुदिते एव मुक्तिकारणं, न प्रत्येकमिति तत्त्वं, तथा च पूज्याः—"[3]नाणाहीणं सव्वं नाणनओ भणइ किं च किरियाए? । किरियाए चरणनओ तदुभयगाहो य सम्मत्तं ॥ १ ॥" तस्माद्भावसाधुः सर्वैरपि नयैरिष्यत एव, स च ज्ञानक्रियायुक्त एवेत्यतो व्यवस्थितमिदं–तत्सर्वनयविशुद्धं यच्चरणगुणव्यवस्थितः साधुरिति ॥ तदेवं समर्थितं नयद्वारं, तत्समर्थने च समर्थितानि चत्वार्यप्युपक्रमादीनि द्वाराणि, तत्समर्थने चानुयोगद्वारशास्त्रं समासम् ॥ प्रायोऽन्यशास्त्रदृष्टः सर्वोऽप्यर्थो मयाऽत्र सङ्कलितः । न पुनः स्वमनीषिकया तथाऽपि यत्किञ्चिदिह वितथम्

१ प्रत्येकमभावान्निर्वाणं समुदितयोरपि न युक्तम् । ज्ञानक्रिययोर्वक्तुं सिकतासमुदाये तैलमिव ॥ १ ॥ २ विष्वक् न सर्वथैव सिकतातैलवत् साधनाभावः । देशोपकारिता या सा समवाये सम्पूर्णा ॥ १ ॥ ३ ज्ञानाधीनं सर्वं ज्ञाननयो भणति किं च क्रियया? । क्रियाया (अधीनं) चरणनयस्तदुभयग्राहश्च सम्यक्त्वम् ॥१॥

॥ २७० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [--] + गाथा: ||--||

दीप अनुक्रम [--]

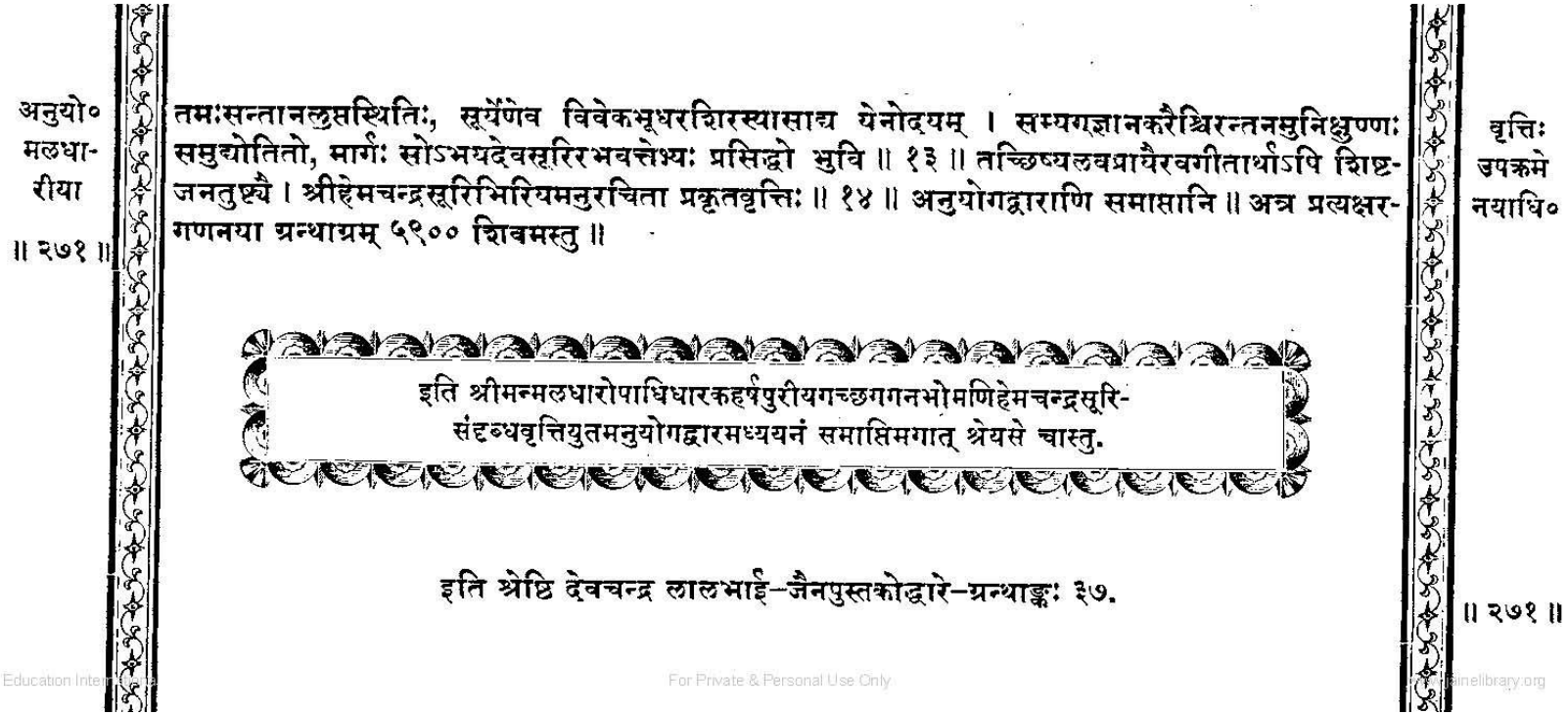
॥ १ ॥ सूत्रमतिलङ्घ्य लिखितं तच्छोध्यं मय्यनुग्रहं कृत्वा । परकीयदोषगुणयोस्त्यागोपादानविधिकुशलैः
॥ २ ॥ छद्मस्थस्य हि बुद्धिः स्खलति न कस्येह कर्मवशगस्य । सद्बुद्धिविरहितानां विशेषतो मद्विधासुमताम्
॥ ३ ॥ कृत्वा यदूवृत्तिमिमां पुण्यं समुपार्जितं मया तेन । मुक्तिमचिरेण लभतां क्षपितरजाः सर्वभव्यजनाः
॥ ४ ॥ श्रीप्रश्नवाहनकुलाम्बुनिधिप्रसूतः, क्षोणीतलप्रथितकीर्तिरुदीर्णशाखः । विश्वप्रसाधितविकल्पितवस्तुरुचै-
श्छायाशतप्रचुरनिर्वृतभव्यजन्तुः ॥ ५ ॥ ज्ञानादिकुसुमनिचितः फलितः श्रीमन्मुनीन्द्रफलवृन्दैः । कल्पद्रुम इव
गच्छः श्रीहर्षपुरीयनामास्ति ॥ ६ ॥ युग्मम् । एतस्मिन् गुणरत्नरोहणगिरिर्गाम्भीर्यपाथोनिधिस्तुङ्गत्वानुकृतक्षमा-
धरपतिः सौम्यत्वतारापतिः । सम्यग्ज्ञानविशुद्धसंयमतपःस्वाचारचर्यानिधिः, शान्तः श्रीजयसिंहसूरिरभव-
न्निःसङ्गचूडामणिः ॥ ७ ॥ रत्नाकरादिवैतस्माच्छिष्यरत्नं बभूव तत् । स वागीशोऽपि नो मन्ये, यद्गुणग्रहणे प्रभुः
॥ ८ ॥ श्रीवीरदेवविबुधैः सन्मन्त्राधतिशयप्रवरतोयैः । द्रुम इव यः संसिक्तः कस्तद्गुणवर्णने विबुधः? ॥ ९ ॥
तथाहि–आज्ञा यस्य नरेश्वरैरपि शिरस्यारोप्यते सादरं, यं दृष्ट्वाऽपि मुदं व्रजन्ति परमां प्रायोऽतिदुष्टा अपि ।
यद्वक्राम्बुधिनिर्यदुज्ज्वलवचःपीयूषपानोद्यतैर्गीर्वाणैरिव दुग्धसिन्धुमथने तृप्तिर्न लेभे जनैः ॥ १० ॥ कृत्वा येन
तपः सुदुष्करतरं विश्वं प्रबोध्य प्रभोस्तीर्थं सर्वविदः प्रभावितमिदं तैस्तैः स्वकीयैर्गुणैः । शुक्लीकुर्वदशेषविश्व-
कुहरं भव्यैर्निबद्धस्पृहं, यस्याऽऽज्ञास्वनिवारितं विचरति श्वेतांशुगौरं यशः ॥ ११ ॥ यमुनाप्रवाहविमलश्रीम-
न्मुनिचन्द्रसूरिसम्पर्कात् । अमरसरितेव सकलं पवित्रितं येन भुवनतलम् ॥ १२ ॥ विस्फुर्जत्कलिकालदुस्तर-

अनु. ४६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [--] + गाथा: ||--||

दीप अनुक्रम [--]



अनुयो० मलधारीया ॥ २७१ ॥

तमःसन्तानलुप्तस्थितिः, सूर्येणेव विवेकभूधरशिरस्यासाद्य येनोदयम् । सम्यग्ज्ञानकरैश्चिरन्तनमुनिक्षुण्णः समुद्योतितो, मार्गः सोऽभयदेवसूरिरभवत्तेभ्यः प्रसिद्धो भुवि ॥ १३ ॥ तच्छिष्यलवप्रायैरवगीतार्थोऽपि शिष्टजनतुष्ट्यै । श्रीहेमचन्द्रसूरिभिरियमनुरचिता प्रकृतवृत्तिः ॥ १४ ॥ अनुयोगद्वाराणि समाप्तानि ॥ अत्र प्रत्यक्षरगणनया ग्रन्थाग्रम् ५९०० शिवमस्तु ॥

इति श्रीमन्मलधारोपाधिधारकहर्षपुरीयगच्छगगनभोमणिहेमचन्द्रसूरिसंदृब्धवृत्तियुतमनुयोगद्वारमध्ययनं समाप्तिमगात् श्रेयसे चास्तु.

इति श्रेष्ठि देवचन्द्र लालभाई–जैनपुस्तकोद्धारे–ग्रन्थाङ्कः ३७.

वृत्तिः उपक्रमे नयाधि० ॥ २७१ ॥

Jain Education Inter... For Private & Personal Use Only ...elibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[४५], चूलिकासूत्र-[२] अनुयोगद्वार मूलं एवं हेमचन्द्रसूरि-रचिता वृत्तिः

	सवृत्तिक-आगम-सुत्ताणि भाग १ से ४० में कहां क्या मिलेगा?		
भाग	इस भागमे समाविष्ट आगम के नाम और आगम-क्रम		कुलपृष्ठ
01	आगम ०१ आचार मूलं एवं वृत्ति भाग-१ श्रुतस्कन्ध-१, अध्ययन- १,२		३१४
02	आगम ०१ आचार मूलं एवं वृत्ति, भाग-२ श्रुतस्कन्ध-१, अध्ययन- ३ से ९, श्रुतस्कन्ध- २		५८६
03	आगम ०२ सूत्रकृत मूलं एवं वृत्ति, भाग-१ श्रुतस्कन्ध-१, अध्ययन- १ से १३		४९८
04	आगम ०२ सूत्रकृत मूलं एवं वृत्ति, भाग-२ श्रुतस्कन्ध-१, अध्ययन १४ से १६, श्रुतस्कन्ध-२		३९२
05	आगम ०३ स्थान मूलं एवं वृत्ति, भाग-१ स्थान- १ से ४		५९४
06	आगम ०३ स्थान मूलं एवं वृत्ति, भाग-२ स्थान- ५ से १० संपूर्ण		४९४
07	आगम ०४ समवाय मूलं एवं वृत्ति.		३३८
08	आगम ०५ भगवती मूलं एवं वृत्ति, भाग-१ शतक- १ से ६		५९२
09	आगम ०५ भगवती मूलं एवं वृत्ति, भाग-२ शतक- ७ से ११		५५२
10	आगम ०५ भगवती मूलं एवं वृत्ति, भाग-३ शतक- १२ से २०		५१४
11	आगम ०५ भगवती मूलं एवं वृत्ति, भाग-४ शतक- २१ से ४१ संपूर्ण		३८४
12	आगम ०६ ज्ञाताधर्मकथा मूलं एवं वृत्ति.		५२२
13	आगम-७,८,९,१०उपासकदशा, अंतकृतदशा, अनुत्तरोपपातिकदशा, प्रश्नव्याकरण मूलं एवं वृत्ति.		५३८
14	आगम-११,१२, विपाक, उववाई मूलं एवं वृत्ति.		३८४
15	आगम १३ राजप्रश्नीय मूलं एवं वृत्ति.		३१४
16	आगम१४ जीवाजीवाभिगम भाग-१ मूलं एवं वृत्ति. [प्रतिपत्ति-३-अतर्गत] सूत्र- १ से १३८		४८०
17	आगम१४ जीवाजीवाभिगम भाग-२ मूलं एवं वृत्ति. [प्रतिपत्ति-३-अतर्गत] सूत्र- १३९ से प्रतिपत्ती-१० संपूर्ण		४८८
18	आगम १५ प्रज्ञापना भाग-१ मूलं एवं वृत्ति. पद- १ से ५		४२६
19	आगम १५ प्रज्ञापना भाग-२ मूलं एवं वृत्ति. पद- ६ से २२		५१४
20	आगम १५ प्रज्ञापना भाग-३ मूलं एवं वृत्ति. पद- २३ से ३६ संपूर्ण		३३६
21	आगम १६ सूर्यप्रज्ञप्ति मूलं एवं वृत्ति.		६१०

	सवृत्तिक-आगम-सुत्ताणि भाग १ से ४० में कहां क्या मिलेगा?		
भाग	इस भागमे समाविष्ट आगम के नाम और आगम-क्रम		कुलपृष्ठ
22	आगम १७ चन्द्रप्रज्ञप्ति मूलं एवं वृत्ति.		६१४
23	आगम१८ जंबूद्विपप्रज्ञप्ति भाग-१ मूलं एवं वृत्ति. वक्षस्कार- १ एवं २.		३७६
24	आगम१८ जंबूद्विपप्रज्ञप्ति भाग-२ मूलं एवं वृत्ति. वक्षस्कार- ३ एवं ४.		४२६
25	आगम१८ जंबूद्विपप्रज्ञप्ति भाग-३ मूलं एवं वृत्ति. वक्षस्कार- ५ से ७.		३४४
26	आगम १९-३२ निरयावलिका, कल्पवतंसिका, पुष्पिका, पुष्पचूलिका, वृष्णिदशा, चतु:शरण, आतुरपरत्याख्यान, महाप्रत्याख्यान, भक्तपरिज्ञा, तंदुलवैचारिक, संस्तारक, गच्छाचार, गणिविदया, देवेन्द्रस्तव मूलं एवं छाया		३१२
27	आगम ३३ थी ३९ मरणसमाधि मूलं एवं छाया, निशीथ, ब्रुहत्कल्प, व्यवहार, दशाश्रुतस्कंध, जीतकल्प/पंचकल्प, महानिशीथ मूलं एव		३३०
28	आगम ४० आवश्यक मूलं एवं वृत्ति, भाग-१, निर्युक्ति- १ से ५२१		४६६
29	आगम ४० आवश्यक मूलं एवं वृत्ति, भाग-२, निर्युक्ति- ५२२ से ९५१		४४२
30	आगम ४० आवश्यक मूलं एवं वृत्ति, भाग-३ निर्युक्ति- ९५२ से १२७३ अपूर्ण, [अध्ययन- १ से ४ अपूर्ण]		४६४
31	आगम ४० आवश्यक मूलं एवं वृत्ति, भाग-४ निर्युक्ति- १२७३ अपूर्ण से १६२३, [अध्ययन- ४ अपूर्ण से ६ संपूर्ण]		४२६
32	आगम ४१/१ ओघनिर्युक्ति मूलं एवं वृत्ति.		४७२
33	आगम ४१/२ पिंडनिर्युक्ति मूलं एवं वृत्ति.		३७६
34	आगम ४२ दशवैकालिक मूलं एवं वृत्ति.		५९०
35	आगम ४३ उत्तराध्यन मूलं एवं वृत्ति, भाग-१, अध्ययन- १ से ५		५२२
36	आगम ४३ उत्तराध्यन मूलं एवं वृत्ति, भाग-२, अध्ययन- ६ से २१		४८२
37	आगम ४३ उत्तराध्यन मूलं एवं वृत्ति, भाग-३, अध्ययन- २२ से ३६		४६६
38	आगम ४४ नन्दिसूत्र मूलं एवं वृत्ति.		५२८
39	आगम ४५ अनुयोगद्वार् मूलं एवं वृत्ति.		५६०
40	कल्प[बारसा]सूत्र... चतु:शरण, तन्दुलवैचारिक, गच्छाचार मूलं एवं वृत्ति.		३९४

नमो नमो निम्मलदंसणस्स

पूज्य आनंद-क्षमा-ललित-सुशील-सुधर्मसागर गुरूभ्यो नम:

[भाग-३९] आगम 45

पूज्य आगमोध्धारक आचार्य श्री सागरानंदसूरीश्वरेण संशोधित: संपादितश्च

“अनुयोगद्वार (चूलिका)सूत्र” [मूलं + हेमचन्द्रसूरि-रचिता वृत्ति:]

(किंचित् वैशिष्ठ्यं समर्पितेन सह)

मुनि दीपरत्नसागरेण पुन: संकलितं

“अनुयोगद्वार” मूलं एवं वृत्ति: नामेण परिसमाप्तं

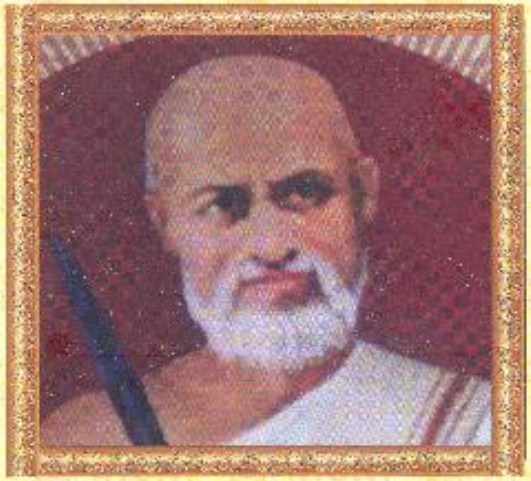
“सवृत्तिक-आगम-सुत्ताणि” श्रेणि, भाग-39


आगम
वाचना शताब्दी वर्ष

नमो नमो निम्मलदंसणस्स

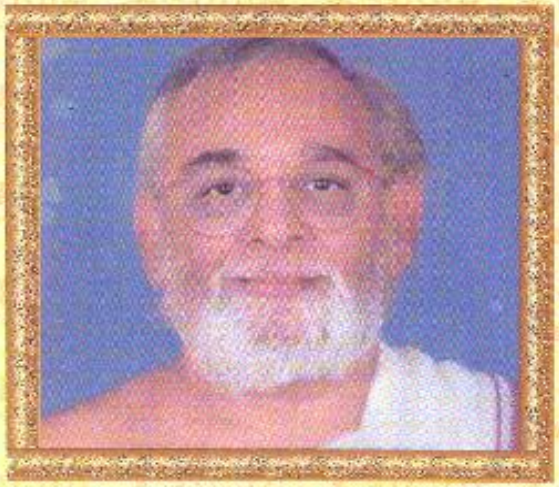
सवृत्तिक-आगम-सुत्ताणि

मूल संशोधक



पूज्यपाद आगमोद्धारक आचार्य
श्री आनंदसागरसूरीश्वरजी महाराज

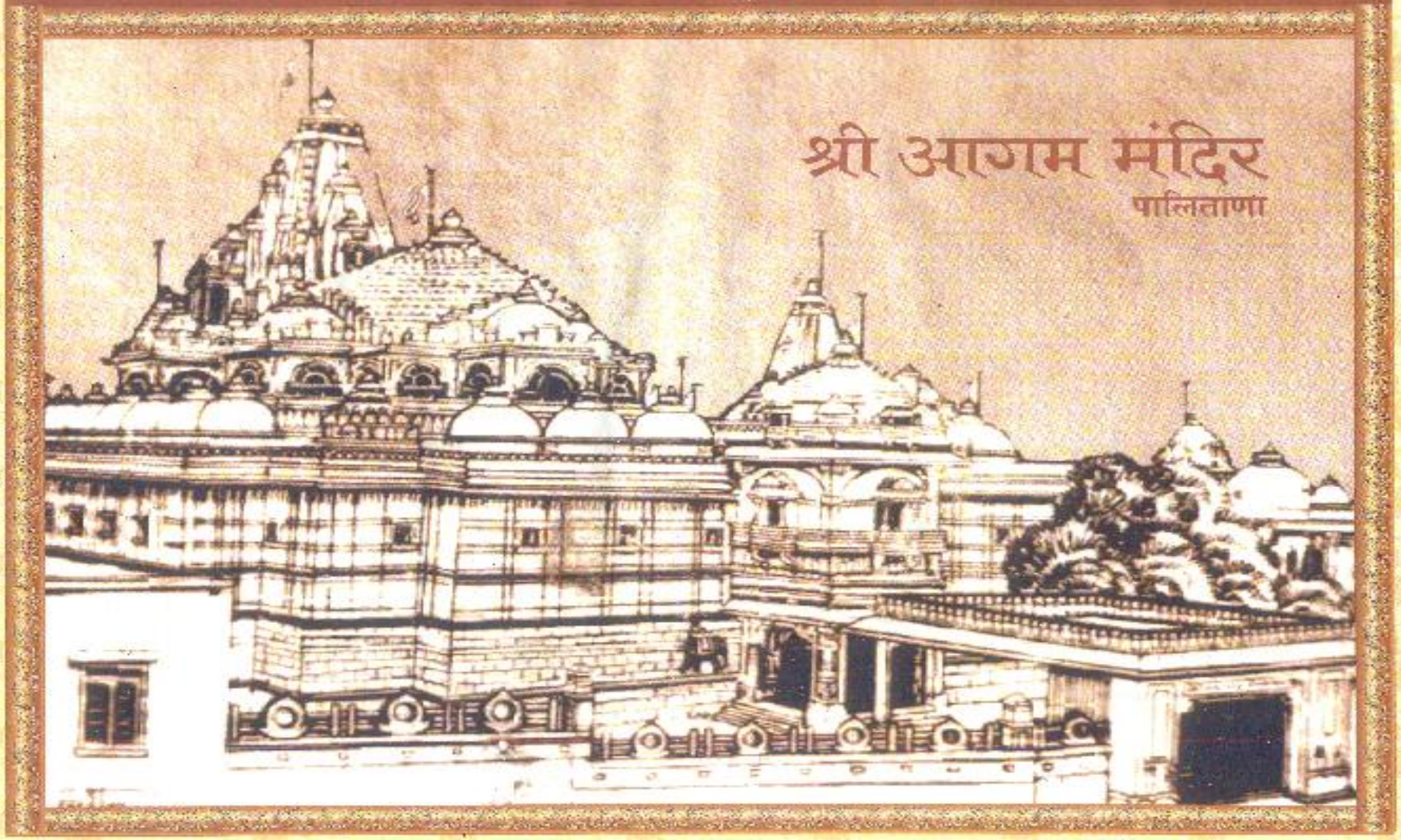
अभिनव-संकलनकर्ता

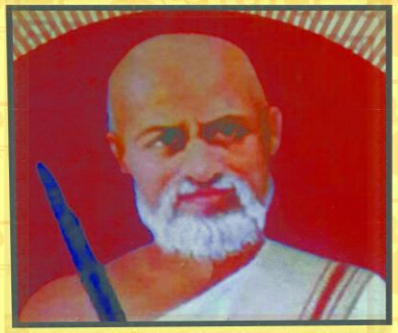


आगम दिवाकर मुनिश्री दीपरत्नसागरजी
[M.Com., M.Ed., Ph.D., श्रुतमहर्षि]

प्रत-प्राप्ति और पेज-सेटिंग कर्ता : www.jainelibrary.org के चेरमन श्री प्रवीणभाई शाह, अमेरिका
मुद्रक : नवप्रभात प्रिन्टींग प्रेस अमदाबाद Mo 9825598855 / 9825306275

ईस प्रोजेक्ट के संपूर्ण-अनुदान-दाता





मूल संशोधक

पूज्यपाद आगमोद्धारक आचार्य

श्री आनंदसागरसूरीश्वरजी महाराजसाहेब

आगम ४५

"अनुयोगद्वार" मूलं एवं वृत्तिः

अभिनव-संकलनकर्ता

आगम दिवाकर मुनिश्री दीपरत्नसागरजी

[M.Com., M.Ed., Ph.D., श्रुतमहर्षि]

